ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

अष्टपाहुड़ प्रवचन

भाग-७

परम पूज्य श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित
परमागम श्री अष्टपाहुड़(लिंगपाहुड़ तथा शीलपाहुड़) पर
परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाहिक शब्दशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

प्रथमावृत्ति :

प्रकाशनतिथि : पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के 41वें समाधिदिवस की स्मृति में

ISBN No. :

न्यौछावर राशि : 20 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250, फोन : 02846-244334

2. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com

3. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.)

4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458

5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044

6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)

7. **श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
   राजकोट-360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

प्रकाशकीय

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीर परमात्मा का वर्तमान शासन प्रवर्त रहा है। आपश्री की दिव्यध्वनि द्वारा प्रकाशित मोक्षमार्ग, परम्परा हुए अनेक आचार्य भगवन्तों द्वारा आज भी विद्यमान है। श्री गौतम गणधर के बाद अनेक आचार्य हुए, उनमें श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव का स्थान श्री महावीरस्वामी, श्री गौतम गणधर के पश्चात् तीसरे स्थान पर आता है, यह जगत विदित है।

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य विक्रम संवत् ४९ के लगभग हुए हैं। आपश्री ने स्वयं की ऋद्धि द्वारा वर्तमान विदेहक्षेत्र में प्रत्यक्ष विराजमान श्री सीमन्धर भगवान के समवसरण में आठ दिन रहकर दिव्यदेशना ग्रहण की है, वहाँ से आकर उन्होंने अनेक महान परमागमों की रचना की। उनमें अष्टप्राभृत ग्रन्थ का भी समावेश होता है। आचार्य भगवन्त की पवित्र परिणति के दर्शन उनकी प्रत्येक कृतियों में होते हैं। भव्य जीवों के प्रति निष्कारण करुणा करके उन्होंने मोक्षमार्ग का अन्तर-बाह्यस्वरूप स्पष्ट किया है। आचार्य भगवन्त ने मोक्षमार्ग को टिका रखा है, यह कथन वस्तुतः सत्य प्रतीत होता है।

चतुर्थ गुणस्थान से चौदह गुणस्थानपर्यन्त अन्तरंग मोक्षमार्ग के साथ भूमिकानुसार वर्तते विकल्प की मर्यादा कैसी और कितनी होती है वह आपश्री ने स्पष्ट किया है। इस प्रकार निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग का स्वरूप स्पष्ट करके अनेक प्रकार के विपरीत अभिप्रायों में से मुमुक्षु जीवों को उभारा है। अष्टप्राभृत ग्रन्थ में मुख्यरूप से निर्ग्रन्थ मुनिदशा कैसी होती है और साथ में कितनी मर्यादा में उस गुणस्थान में विकल्प की स्थिति होती है, यह स्पष्ट किया है।

वर्तमान दिगम्बर साहित्य तो था ही परन्तु साहित्य में निहित मोक्षमार्ग का स्वरूप यदि इस काल में किसी दिव्यशक्ति धारक महापुरुष ने प्रकाशित किया हो तो वे हैं परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी। पूज्य गुरुदेवश्री ने शास्त्रों में निहित मोक्षमार्ग को स्वयं की दिव्य श्रुतलब्धि द्वारा समाज में निर्भीकता से उद्घाटित किया है। शास्त्र में मोक्षमार्ग का रहस्य तो प्ररूपित था ही परन्तु इस काल के अचम्भा समान पूज्य गुरुदेवश्री की अतिशय भगवती प्रज्ञा ने उस रहस्य को स्पष्ट किया है। पूज्य गुरुदेवश्री का असीम उपकार आज तो गाया ही जाता है किन्तु पंचम काल के अन्त तक गाया जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा अनेक परमागमों पर विस्तृत प्रवचन हुए हैं। उनमें अष्टपाहुड़ का भी समावेश होता है। प्रस्तुत प्रवचन शब्दशः प्रकाशित हों, ऐसी भावना मुमुक्षु समाज में से व्यक्त होने से श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विले पार्ला, मुम्बई द्वारा इन प्रवचनों का अक्षरशः प्रकाशित करना सहर्ष स्वीकार किया गया तद्नुसार प्रस्तुत अष्टपाहुड़ ग्रन्थ के प्रवचन का अन्तिम सातवाँ भाग प्रकाशित किया जा रहा है। इस भाग में **लिंगपाहुड़ की 22 गाथाओं** तथा **शीलपाहुड़ की 40 गाथाओं** के प्रवचनों का हैं।

लिंगपाहुड़ में जो जीव मुनि का बाह्यलिंग धारण करके अति भ्रष्टाचार से आचरण करता है, उसका अत्यन्त निकृष्टपना और निन्द्यपना इस प्राभृत में दर्शाया गया है।

शीलप्राभृत में सम्यग्ज्ञान बिना जो कभी नहीं होता, ऐसे शील के तत्त्वज्ञान गम्भीर सुमधुर गुणगान इस प्राभृत में जिनवचनानुसार गाये गये।

उपरोक्त विषयों की सम्पूर्ण छनावट पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक पहलुओं से प्रस्तुत प्रवचनों में की है। आचार्य भगवान के हृदय में प्रविष्ट होकर उनके भावों को खोलने की अलौकिक सामर्थ्य के दर्शन पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों में होते हैं। सम्यक्त्वसहित चारित्र का स्वरूप कैसा होता है, इसका विशद वर्णन प्रस्तुत प्रवचनों में हुआ है।

इन प्रवचनों को सी.डी. में से सुनकर गुजराती भाषा में शब्दश: तैयार करने का कार्य नीलेशभाई जैन, भावनगर द्वारा किया गया है, तत्पश्चात् इन प्रवचनों को श्री मणिभाई गाला देवलाली द्वारा जाँच लिया गया है। तत्पश्चात् पढ़कर सम्पूर्ण रूप से चैक करने का कार्य श्री चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा किया गया है। बहुत प्रवचन बैटरीवाले होने से जहाँ आवाज बराबर सुनायी नहीं दी, वहाँ .... करके छोड़ दिया गया है। वाक्य रचना पूर्ण करने के लिये कोष्ठक का भी प्रयोग किया गया है।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज में भी इन प्रवचनों का व्यापक प्रचार-प्रसार हो इस भावना से इन प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) ने किया है। तदर्थ संस्था सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करती है।

ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है।

प्रवचनों को पुस्तकारूढ़ करने में जागृतिपूर्वक सावधानी रखी गयी तथापि कहीं क्षति रह गयी हो तो पाठकवर्ग से प्रार्थना है कि वे हमें अवश्य सूचित करें। जिनवाणी का कार्य अति गम्भीर है, इसलिए कहीं प्रमादवश क्षति रह गयी हो तो देव-गुरु-शास्त्र की विनम्रतापूर्वक क्षमायाचना करते हैं। पूज्य गुरुदेवश्री के चरणों में तथा प्रशममूर्ति भगवती माता के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन समर्पित करते हुए भावना भाते हैं कि आपश्री की दिव्यदेशना जयवन्त वर्तो.. जयवन्त वर्तो..

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ www.vitragvani.com पर रखा गया है।

अन्तत: प्रस्तुत प्रवचनों के स्वाध्याय द्वारा मुमुक्षु जीव आत्महित की साधना करें इसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

एवं

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्यर्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन–उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते–करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 – फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त

पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनांक	गाथा	पृष्ठ नम्बर
१७५	१५-०१-१९७१	६१-६२, १-२	००१
१७६	१६-०१-१९७१	२ से ६	०२२
१७७	१७-०१-१९७१	७ से ९	०४२
१७८	१८-०१-१९७१	१० से १४	०६२
१७९	२०-०१-१९७१	१५ से २२	०८५
१८०	२१-०१-१९७१	१ - २	१११
१८१	२२-०१-१९७१	२ से ४	१३०
१८२	२३-०१-१९७१	४ से ६	१४७
१८३	२४-०१-१९७१	७ से १०	१६५
१८४	२५-०१-१९७१	१० से १३	१८३
१८५	२७-०१-१९७१	१३ - १४	२०२
१८६	२८-०१-१९७१	१५ से १८	२२०
१८७	२९-०१-१९७१	१९ - २०	२३९
१८८	३०-०१-१९७१	२० - २१	२५३
१८९	०१-०२-१९७१	२२ से २४	२७०
१९०	०२-०२-१९७१	२४ से २६	२८८
१९१	२०-०२-१९७१	२७ से २९	३०५
१९२	२१-०२-१९७१	२९ से ३१	३२४
१९३	२२-०२-१९७१	३२ - ३३	३३३
१९४	२३-०२-१९७१	३३ से ३७	३५०
१९५	२४-०२-१९७१	३७ - ३८	३६९
१९६	२६-०२-१९७१	३८ से ४०	३८५
१९७	२७-०२-१९७१	४०	४०४

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

अष्टपाहुड़ प्रवचन

(श्रीमद् भगवत कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री अष्टपाहुड़ ग्रन्थ पर
अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन)

(भाग – ७)

प्रवचन-१७५, गाथा-६१-६२, (लिंगपाहुड़) १-२, शुक्रवार, पौष कृष्ण ४,
दिनांक १५-०१-१९७१

बोधपाहुड़ की ६१ वीं गाथा। **आगे आचार्य इस बोधपाहुड़ का वर्णन अपनी बुद्धिकल्पित नहीं है, किन्तु पूर्वाचार्यों के अनुसार कहा है, इस प्रकार कहते हैं –**

सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स।।६१।।

कहते हैं कि वाणी **शब्द के विकार से उत्पन्न हुआ,....** भाषा जो है, वह शब्द का विकार है। **अक्षररूप परिणमे भाषासूत्रों में....** यह परमाणु है न जड़? यह शब्द का विकार है। उससे उपजे अक्षर। अक्षररूप परिणमी भाषा। जड़ की अवस्था, हों! भाषा। भाषासूत्र में ऐसे भाषासूत्र में **जिनदेव ने कहा,....** जिनदेव का निमित्त था। उस वाणी में जिनदेव ने कहा का अर्थ निमित्त था। वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा एक समय में त्रिकाल ज्ञान, ऐसे जिनेश्वरदेव की वाणी में वे स्वयं जिनेश्वरदेव निमित्त थे। **वही श्रवण में अक्षररूप आया....** सुनने में अक्षररूप आया है।

और जैसा जिनदेव ने कहा, वैसा ही परम्परा से भद्रबाहु नामक पंचम श्रुतकेवली ने जाना.... भद्रबाहु पाँचवें (श्रुत) केवली हो गये हैं। श्रुतकेवली, हों! केवली नहीं।

उन श्रुतकेवली ने ऐसा जाना। महावीर भगवान से परम्परा से आया, वह भगवान भद्रबाहुस्वामी ने जाना। **अपने शिष्य विशाखाचार्य आदि को कहा।** उनके शिष्य विशाखाचार्य हैं, उनको कहा। **वह उन्होंने जाना, वही अर्थरूप विशाखाचार्य की परम्परा से चला आया।** परम्परा से यह भाव चला आता है। देखो! निश्चयप्रतिमा आत्मा, निश्चयदेव आत्मा, निश्चयतीर्थ आत्मा, यह बात कहते हैं, ठेठ भगवान की वाणी में आया, विशाखाचार्य तक परम्परा से आया। उससे हमें परम्परा आयी है, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। समझ में आया ?

विशाखाचार्य की परम्परा से चला आया। वही अर्थ आचार्य कहते हैं, हमने कहा है, वह हमारी बुद्धि से कल्पित करके नहीं कहा गया है,.... हमने जो यह कहा है कि आत्मा, वह आयतन—धर्म का स्थान है। आनन्दमूर्ति ज्ञायकभाव, वही आयतन—धर्म का स्थान है। वह धर्म का स्थान यह है, वह तो बाह्य है। आत्मा अखण्ड आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्य, वही जिनप्रतिमा है, वही जिनमुद्रा है। ऐसा परम्परा का मार्ग भगवान की वाणी में आया था, उसे भद्रबाहुस्वामी ने अपने शिष्य को दिया। परम्परा से हमें मिला। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। हमारे घर की यह बात नहीं है।

इस प्रकार अभिप्राय है। लो! इसमें ऐसा अभिप्राय है। कितनों को यह निश्चय है, वह बात बराबर लगती है परन्तु वापस वह व्यवहार है, उसे उड़ाते हैं। ऐसा नहीं। निश्चय से जिनप्रतिमा आत्मा है। निर्विकारी शुद्ध भगवान आत्मा। मुनिपद की दशा को यहाँ जिनप्रतिमा कहते हैं। उसे जिनमुद्रा कहते हैं। उसे आयतन कहते हैं। इत्यादि मुनि और अरिहन्त के ग्यारह बोल हैं, अन्तर के। परन्तु व्यवहार में उसका भाव शुभभाव होता है, तब अरिहन्त की प्रतिमा आदि पूजनीक गिनी जाती है। देखो! आचार्य भद्रबाहुस्वामी की बात लेकर हमने परम श्रुतकेवली से परम्परा से मिला हुआ है। वह हमने कहा है। हमने घर का कुछ नहीं कहा।

आगे भद्रबाहुस्वामी की स्तुतिरूप वचन कहते हैं - अन्तिम श्लोक।

बारसअंगवियाणं चउदसपुव्वंगविउलवित्थरणं।
सुयणाणि भद्दबाहू गमयगुरू भयवओ जयउ ।।६२।।

अर्थ - भद्रबाहु नाम आचार्य जयवन्त होवें, कैसे हैं? जिनको बारह अंगों का विशेष ज्ञान है,.... बारह अंग के जाननेवाले थे। ओहोहो! अगाध ज्ञान। लब्धिरूप से प्रगट ऐसा। बारह अंग के जाननेवाले। आचारांग, सूयगडांग (इत्यादि)। एक आचारांग में अठारह हजार पद, एक पद के इक्यावन करोड़ अधिक श्लोक। ऐसे-ऐसे एक आचारांग, दुगना सूयगडांग... दुगुना... ऐसे। बारह अंग वह तो अपूर्व लब्धि। लिखने से लिखी नहीं जाती, सीधी पढ़ने से पढ़ी नहीं जाती। अन्दर ऐसी लब्धि बारह अंग की प्रगट हुई। बहुत ज्ञान, पूर्व का सहित विशेष ज्ञान। और कैसे हैं?

चौदह पूर्वों का विपुल विस्तार है, इसीलिए श्रुतज्ञानी हैं,.... इस बारह अंग में चौदह पूर्व आ गये। परन्तु विशेष खास यह डाला। एक-एक पूर्व का ज्ञान इतना है कि हाथी ऊँचा खड़ा रखे और इतनी स्याही करे और वन की कलम करे तो लिखने से पूरा नहीं पड़े। इतना वह पूर्व का ज्ञान है। श्रुतज्ञान, भावश्रुतज्ञान इतना है। वह चौदह पूर्व का जिसे विपुल विस्तार ज्ञान था। ऐसे जो श्रुतज्ञानी **पूर्ण भावज्ञान सहित....** भावश्रुतज्ञान तो पूर्ण था। उपयोग में रागरहित आत्मा को पर्याय में जानने से ऐसा भावश्रुतज्ञानरूप परिणमन, वह भद्रबाहुस्वामी को था। केवलज्ञान की तो बात क्या करना, परन्तु यह बारह अंग की बात क्या करना! इतना ज्ञान! ऐसा आत्मा ज्ञान का समुद्र है। वह तो चैतन्यस्वभाव का समुद्र है। उसमें से दशा में ज्वार आवे। समुद्र के किनारे (जब ज्वार आता है), तब भले वर्षा २५-२५ इंच हो, और उसमें नदियाँ गिरती हों, परन्तु भाटा के समय वह पानी ज्वार नहीं ला सकता। ज्वार तो समुद्र के मध्य में से उछलकर जब किनारे आवे, तब समुद्र में ज्वार आता है। इसी प्रकार यह बारह अंग का ज्ञान कहीं पढ़ने से, अक्षर से और इन्द्रियों से अन्दर नहीं जाना जा सकता, मध्यबिन्दु द्रव्यस्वभाव भगवान आत्मा का, उसमें अनन्त-अनन्त बेहद ज्ञानस्वभाव का सत्त्व-तत्त्व का भाव है। उसमें से प्रवाह होकर बारह अंग का ज्ञान पर्यायरूप परिणमता है। कहते हैं कि श्रुतज्ञान से पूर्ण भावज्ञानवाले थे। केवलज्ञानी ज्ञान से-पर्याय से पूर्ण, यह श्रुतज्ञान से पूर्ण। छद्मस्थ है न?

अक्षरात्मक श्रुतज्ञान उनके था,.... ऐसे भावश्रुतज्ञान का अक्षरस्वरूप भी श्रुतज्ञान उन्हें था। अक्षर। ऐसा कहा न? **पूर्ण भावज्ञान सहित अक्षरात्मक श्रुतज्ञान उनके**

था,.... द्रव्यश्रुत। '**गमक गुरु' है, जो सूत्र के अर्थ को प्राप्त कर....** सूत्र के सिद्धान्त के भाव को पाकर **उसी प्रकार वाक्यार्थ करे....** जैसा सर्वज्ञ को कहना है, श्रुतकेवलियों को कहना है, ऐसा जो शब्द का अर्थ और वाक्यार्थ करे, **उसको 'गमक' कहते हैं,...** समझ में आया? **सूत्र के अर्थ को प्राप्त कर....** जैसा अर्थ है, वैसा करे, उसे गमक कहते हैं कि इस शब्द का ऐसा ही अर्थ होता है, इस वाक्य का ऐसा ही भाव होता है। ऐसा जो समझावे, उसे यहाँ गमक गुरु कहा जाता है।

उनके भी गुरुओं में प्रधान हैं,.... ऐसे अर्थ का बोध देनेवाले सन्तों में भी यह भद्रबाहुस्वामी प्रधान अर्थात् मुख्य थे। प्रधान अर्थात् यहाँ वे गुरु, राजा और प्रधान, ऐसा नहीं। प्रधान अर्थात् मुख्य। सब ऐसे सन्तों में ये भद्रबाहुस्वामी मुख्य थे। और कैसे हैं भगवान? भद्रबाहुस्वामी श्रुतकेवली **भगवान हैं - सुरासुरों से पूज्य हैं,....** देव से पूज्य थे। देवता जिनकी सेवा-पूजा करते थे। ऐसे श्रुतकेवली।

आत्मा चैतन्यसमुद्र, शक्ति में तो केवलज्ञान अकेला ज्ञान है परिपूर्ण वस्तु में। जैसे पीपर के दाने में चौठस पहरी चरपराहट शक्ति है। चौसठ पहरी चरपराहट भरी है। भले दाना छोटा, कद छोटा, रंग में काला परन्तु चौठस पहर अर्थात् रुपया-रुपया चरपरा। शक्ति का सत्त्व अन्दर पड़ा है, वह बाहर आता है। घूँटने से बाहर आता है।

उसी प्रकार इस वस्तु में—भगवान आत्मा में शक्तिरूप सत्त्वरूप-भावरूप केवलज्ञान पड़ा है। केवलज्ञान अर्थात् अकेला ज्ञान, ऐसा। आहाहा! ऐसा आत्मा जँचे किस प्रकार? पामररूप से माना, उसे ऐसी प्रभुता विद्यमान है, उसे अविद्यमान किया है। समझ में आया? ऐसा स्वरूप भगवान आत्मा का जिसे अन्दर श्रुतज्ञान में प्रगट हुआ है, उन सब श्रुतज्ञानियों में भी मुख्य थे।

सुरासुरों से पूज्य हैं, वे जयवन्त होवें। आचार्य महाराज स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं)। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुन्दकुन्दाचार्य। तीसरे नाम में आये। वे भद्रबाहुस्वामी को कहते हैं, अहो! प्रभु! आप जयवन्त रहो! आपका भावश्रुतज्ञान, अक्षरात्मक ज्ञान जयवन्त रहो! बात ऐसी है कि यह आत्मा क्या चीज़ है,

यह बात ही लोगों को ख्याल में नहीं आती। यह सब तो जड़ है—मिट्टी, वह तो किसी की चीज़ है, कहीं इसकी (आत्मा की) नहीं। कर्म अन्दर है, वह मिट्टी है, जड़ है। उसके उदय काल में यह सब बाहर के संयोग-वियोग, संयोग-वियोग होते हैं। पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वह विकार है। वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं है।

मुमुक्षु : कल आपने आत्मा का स्वरूप कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो दूसरी बात। पर्याय में इसकी पर्याय है, इस अपेक्षा से। इसकी ही पर्याय है। वह जड़ की नहीं, पर की नहीं, ऐसा बतलाने को (कहा था)। बाकी उसके स्वभाव में त्रिकाल में वह विकार नहीं है। त्रिकाल वस्तु तो विकार से रहित है। पर्याय में विकारसहित है। समझ में आया? भारी कठिन!

अरे! यह आत्मा स्वयं भगवानस्वरूप ही है। कैसे जँचे? इन्द्रियों से काम लेना। जिसकी दशा-अवस्था ऐसे इन्द्रियों से काम ले। अब उसे अतीन्द्रिय ऐसा आत्मा (कैसे जँचे)? ज्ञान अतीन्द्रियस्वभाव से भरपूर स्वरूप है। उसे इन्द्रिय की आवश्यकता नहीं, मन की आवश्यकता नहीं, राग के विकल्प की भी आवश्यकता नहीं। ऐसा जो चैतन्यस्वभाव जिसका स्वभाव, जिसका स्वस्वरूप सत्त्व, उसे मर्यादा क्या? अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... ज्ञान, दर्शन, आनन्द से भरपूर है। उसमें से यह ज्ञान आया हुआ है, ऐसा कहते हैं।

इस प्रकार कहने में उनको स्तुतिरूप नमस्कार सूचित है। स्तुतिरूप नमस्कार किया भद्रबाहुस्वामी को। **'जयति' धातु सर्वोत्कृष्ट अर्थ में है...** जय होओ, यह सब सर्वोत्कृष्ट में है। जय होओ। अर्थात् जो स्वरूप शुद्ध है, वह वैसा टिका रहो, निभा रहो। पूर्णानन्द की दशा आपको जो प्रगट हुई अथवा श्रुतज्ञानादि हुआ, (वह) जयवन्त रहो। ऐसा का ऐसा वह ज्ञान जीवन्त रहो। प्रकाश जो अन्दर का आया है, वह ऐसा का ऐसा जीवन्त टिकता रहो। पण्डितजी! अरे! अन्तर की बातें पूरी दुनिया ने बहुत बदल डाली। खबर नहीं होती चीज़ की और कुछ न कुछ कल्पित किया... कुछ न कुछ कल्पित किया और कल्पित करके कुछ कर डाला।

आहा! ऐसा मीठा महेरामण। भगवान अन्तर स्वभाव जिसका। अतीन्द्रिय ज्ञान

और अतीन्द्रिय आनन्द मीठा महेरामण है। उसमें एकाकार हो तो अन्दर शक्ति जो महेरामण महा पड़ा है प्रभु, वह प्रगट होता है। ऐसी श्रुतज्ञान की दशा प्रगट हुई, उसे जयवन्त रहो, ऐसा कहते हैं। ऐसा करके स्तुति करते हैं। समझ में आया? **सर्वोत्कृष्ट कहने से नमस्कार ही आता है।** सर्वोत्कृष्ट कहा। जय हो, इसका अर्थ कि आपको नमता हूँ। ऐसी स्थिति टिकी रहो, ऐसा कहकर भी ऐसे भाववन्त को नमते और विनय करते हैं। समझ में आया?

भावार्थ - भद्रबाहुस्वामी पंचम श्रुतकेवली हुए। केवलज्ञानी महावीर भगवान के पश्चात् गौतमस्वामी के पश्चात् सुधर्मस्वामी, पश्चात् जम्बूस्वामी (हुए)। वहाँ तक तो केवलज्ञान—तीन काल का ज्ञान था। बाद में प्रभवस्वामी से लेकर भद्रबाहुस्वामी तक पाँच श्रुतकेवली हुए। श्रुतज्ञान में पूरे। वे पूर्ण ज्ञान में पूरे थे। ये श्रुतज्ञान में पूरे—भावश्रुतज्ञान। **उनकी परम्परा से शास्त्र का अर्थ जानकर,....** उनकी परम्परा से इस शास्त्र का अर्थ जानने में आया। **यह बोधपाहुड़ ग्रन्थ रचा गया है, इसलिए उनको अन्तिम मंगल के लिए आचार्य ने स्तुतिरूप नमस्कार किया है। इस प्रकार बोधपाहुड़ समाप्त किया है।** लो। यह नाम (कहते हैं)। पहला अधिकार आ गया है।

प्रथम आयतन दुतिय चैत्यगृह तीजी प्रतिमा।
दर्शन अर जिनबिंब छठो जिनमुद्रा यतिमा।।
ज्ञान सातमूं देव आठमूं नवमूं तीरथ।
दसमूं है अरहन्त ग्यारमूं दीक्षा श्रीपथ।।
इम परमारथ मुनिरूप सति अन्यभेष सब निंद्य है।
व्यवहार धातुपाषाणमय आकृति इनिकी वंद्य है।।१।।

अब फिर से अर्थ। यह तो नाम शब्द बोले गये। प्रथम **आयतन....** आत्मा जिसे अतीन्द्रिय प्रगट हुआ है और इन्द्रिय का आधीनपना जिसे टल गया है। पाँच इन्द्रियाँ हैं, वे तो जड़ हैं, उनके आधीन की दशा जिसकी टली है और अतीन्द्रिय भगवान आत्मा का आधीनपना जिसे प्रगट हुआ है, ऐसे आत्मा को आयतन—धर्म का स्थान कहते हैं। समझ में आया? यह मन्दिर और यह उपाश्रय और इस सम्मेदशिखर को धर्मस्थान कहा

जाता है न? वह सब व्यवहार है। निश्चय धर्मस्थान यह भगवान है। अपना स्वभाव अतीन्द्रिय है। जिसे इन्द्रिय का आधीनपना अनादि से वर्तता है, वह अनायतन है। पाँच इन्द्रियाँ यह मिट्टी–जड़, उनका आधीनपना टलकर अतीन्द्रिय आनन्द के आधीन जिसकी दशा प्रगट हुई है, ऐसे मुनि को धर्म का स्थानक कहा जाता है। जिसमें से धर्म प्रगट हुआ और उपजा। आहाहा! समझ में आया? यह धर्म के स्थानक।

दूसरा, **चैत्यगृह....** प्रतिमा का घर। चैत्य का घर, वह यह आत्मा। संयमी मुनि। जिसकी अन्तर दशा अत्यन्त निर्विकल्प आनन्द के वेदन में बढ़ गयी है, ऐसे आत्मा को चैत्यगृह, यह ज्ञान का घर उसे कहा जाता है। चैत्यालय कहा जाता है न तुम्हारे? वह चैत्यालय नहीं, कहते हैं, यह चैत्यालय है। समझ में आया? तीसरा, **प्रतिमा...** प्रतिमा भी आत्मा वीतराग मुद्रारूप से परिणमे, वह जिनप्रतिमा है। विकल्प जो रागादि हैं, उनसे रहित निर्विकल्परूप से आत्मा बिम्ब चैतन्य आत्मा हो जाये, उस मुनिपने की अतीन्द्रिय दशारूप परिणमन है, उसे सच्ची प्रतिमा कहा जाता है। यह प्रतिमा और यह मन्दिर, वह सब व्यवहार है। निश्चय तो यह है।

दर्शन.... दर्शन भी मुनिपने की वीतरागदशा और बाह्य में नग्नपना। अन्तर में आनन्द की लहर वर्तती हो। जैसा सच्चिदानन्द प्रभु, सत् शाश्वत् आनन्द की खान है, ऐसी आनन्द की दशा जिसे बहुत बढ़ गयी है और जिसकी नग्नदशा है, उसे यहाँ दर्शन कहा जाता है। वह जैनदर्शन है। समझ में आया?

जिनबिम्ब.... जिन का बिम्ब–मूर्ति। वह भी आत्मा संयमी मुनि, अतीन्द्रियस्वभावस्वरूप भगवान आत्मा अतीन्द्रियरूप से अन्दर स्थिर हो गया है। विकल्प और विषय की वासना जिसकी नाश हो गयी है। ऐसा जिनबिम्ब। आत्मा स्वयं जिनबिम्ब है। कहो, समझ में आया? यह जिनबिम्ब आदि व्यवहार है।

छठवाँ, **जिनमुद्रा...** दिखाव। अन्तर वीतरागता और बाह्य माता से जन्मा, ऐसी मुद्रा। अन्तर में निर्विकल्प रागरहित शान्ति जिसे प्रगट हुई है, उसे यहाँ जिनमुद्रा कहा जाता है। '**यतिमा**' कहा न? '**यति**' यति को जिनमुद्रा कहा है। '**यति**' अर्थात् यह बाबा और यति हो, ऐसे नहीं, हों! आत्मा आनन्दस्वरूप की यतना, यतना, जतना करे और

राग की रक्षा छोड़ दे, उसे यहाँ यति आत्मा को कहा जाता है। यह यति तो बहुत होते हैं। वे तो जतड़ा कहलाते हैं। यह तो आत्मा अनादि से जो पुण्य-पाप के विकल्प की रक्षा करता था, वह अयति था। संसारी मूढ़ जीव (था)। उसे आत्मा के आनन्द और वस्तु के स्वभाव की जतना-जयना-है, वैसा रखा नहीं। और विकार को जिसने टाला है, ऐसे आत्मा को यति-जिनमुद्रा कहा जाता है। गजब! देखो! यह सब हमें परम्परा से मिला हुआ कहते हैं, ऐसा कहते हैं।

ज्ञान सातमूं.... ज्ञान कहीं शास्त्र में नहीं है, पृष्ठ में नहीं है। यह पृष्ठ तो जड़, मिट्टी, अजीव है। यह तो शब्द के विकारकृत है। यहाँ अन्दर चैतन्यप्रकाश का पूर, किरण अन्दर में से आयी। क्या कहलाता है तुम्हारे वह? हजार बोल्ट की सर्चलाईट। सर्चलाईट दो थी न वहाँ? बाहुबली। हजार-हजार की दो। उसी प्रकार यह ज्ञान की सर्चलाईट अन्दर है। अनन्त-अनन्त किरण फटें ऐसी। वह हजार और दो हजार... क्या कहलाता है वह? वोल्ट। जो कहते हों वह। यह भगवान चैतन्य तो अनन्त चैतन्य के किरण से प्रगट हो, ऐसा वह आत्मा है। ऐसी अनन्त चैतन्य किरणें जिसे प्रगट हुई है, उसे यहाँ ज्ञान कहा जाता है। ज्ञान वाणी में नहीं, ज्ञान कण्ठ में नहीं, बोले वह ज्ञान नहीं, भाषा वह ज्ञान नहीं। समझ में आया? सब निश्चय से वर्णन किया है। निश्चय अर्थात् सत्य।

ज्ञान सातमूं.... उसे ज्ञान कहते हैं। जो ज्ञान ज्ञानरूप होकर रहे, उसे ज्ञान कहते हैं। जो ज्ञानस्वभाव राग होकर रहे, वह ज्ञान नहीं। समझ में आया? अनन्त-अनन्त ज्ञान है, उसमें से अनन्त-अनन्त ज्ञान में, यहाँ श्रुत की अपेक्षा है मुनिपने में। अनन्त-अनन्त भी श्रुतकेवली का ज्ञान अन्दर से प्रगट हुआ है, अन्दर से आया है। ऐसे ज्ञान को ज्ञान कहते हैं। बाहर से पढ़े, वह ज्ञान नहीं; शास्त्र से पढ़े, वह ज्ञान नहीं।

मुमुक्षु : सब कचरा निकाल डाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : था कब?

फूलझड़ी नहीं आती? वह फूलझड़ी पहले आती थी दिवाली में। फूल झरे, फूल। दियासलाई रखे तो (फूल झरे)। उसी प्रकार यह तो अकेला ज्ञान का झरना है।

वह तो इतनी हो, इसलिए समाप्त हो जाये। यह तो अनन्त-अनन्त बेहद ज्ञानस्वभाव वस्तु स्वयं चैतन्यप्रभु, उसमें से पर्याय निकली, एक के बाद एक... एक के बाद एक.... एक के बाद एक। वह खिरकर चली जाये और यह हो और अन्दर मिल जाती है। नयी होती है और पुरानी मिल जाती है, नयी होती है और पुरानी मिल जाती है। क्या कहा यह? फूलझड़ी। आहाहा! यह ज्ञानझड़ी। आत्मा ज्ञानझड़ी है। अन्दर अनन्त ज्ञान का समुद्र है। परन्तु बैठना कठिन पड़ता है। बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं, विषय बिना चले नहीं, पैसे बिना चले नहीं। उसे यह जँचे किस प्रकार? विषय के अर्थी के तत्पर हुए को विषयरहित ऐसी चीज़ उसे प्रतीति में नहीं आती। पाँच इन्द्रिय के विषयों में शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श में आर्त हो गया है, पीड़ित हो गया है। उसे अतीन्द्रिय ऐसा स्वरूप है, वह उसकी प्रतीति में, विश्वास में, भरोसे में नहीं आता। समझ में आया? आहाहा! ऐसा भगवान ज्ञानस्वरूप आत्मा है। वह तो चैतन्य का नूर है। चैतन्य के प्रकाश का पूर है। उसमें जिसने एकाग्र होकर ज्ञान प्रगट किया, उसे ज्ञान कहते हैं। बाकी वाचा ज्ञान। आता है न श्रीमद् में? नहीं?

मुमुक्षु : सकल जगत है ऐंठ वत्।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'सकल जगत है ऐंठ वत् अथवा स्वप्न समान, वह कहिये ज्ञानी दशा, बाकी वाचा ज्ञान।' सातवाँ (हुआ)।

देव आठमूं.... अब अरिहन्त आये। वे देव भी आत्मा अरिहन्तरूप से है। जिन्हें दिव्यशक्ति अन्दर पड़ी है, वह प्रगट हुई है, वह आत्मा देव है। आहाहा! चौसठ पहरी पीपर में जैसे अन्दर शक्ति थी, वह बाहर आयी। कुछ सर्दी को टाले, ऐसी जिसकी ताकत। उसी प्रकार भगवान आत्मा चौसठ अर्थात् पूर्ण। रुपया-रुपया शक्ति से था, दिव्यशक्ति थी, उस शक्ति की प्रगट पर्याय अवस्था में की, उसे देव कहते हैं। कहो, समझ में आया? स्वर्ग के देव वे तो व्यवहारिक देव हैं। यह तो दिव्यशक्ति का धनी भगवान आत्मा। जिसकी दिव्यता शक्ति में थी, उसकी प्रगटदशारूप दिव्यता प्रगट हुई, उसे देव कहा जाता है। अरे! गजब बात। आठवाँ (हुआ)।

नवमूं तीरथ.... तीर्थ, वह आत्मा। चिदानन्दस्वभाव में अन्दर स्नान कर तो तीर्थ

है वह। बाह्य तीर्थ, वे सब व्यवहार निमित्त, शुभभाव में निमित्त कहे जाते हैं। वे पुण्य में निमित्त, हों! वह धर्म तो नहीं। आहाहा! अन्दर चिदानन्द भगवान। द्रव्यसंग्रह में श्लोक आता है। 'संयम तोय पूरणा...' द्रव्यसंग्रह में नहीं आता यह? श्लोक आता है। सत्यार्थ। यह श्लोक बोलते थे पहले। क्या था? श्लोक नहीं वह? द्रव्यसंग्रह में आता है। पाण्डव को श्रीकृष्ण कहते हैं। श्रीकृष्ण पाण्डव को कहते हैं, ऐसा आता है। पहला शब्द भूल गये। पहले बहुत आता था वह सम्प्रदाय में। द्रव्यसंग्रह में है। उसमें श्लोक है। श्रीकृष्ण पाण्डव को कहते हैं।

यह स्थानकवासी में बहुत चलता है। उन्हें निश्चय का सही न, इसलिए। पाण्डव गये थे यात्रा करने। श्रीकृष्ण ने उन्हें तुम्बी दी। लौकी। यह तुम्बी कड़वी। नहाते-नहाते इस तुम्बी को नहलाना, जहाँ जाओ वहाँ। यात्रा करके आये। कहाँ होगा वह कहाँ खबर पड़े? कि ऐसा है, जहाँ तीर्थ का अधिकार है। अब वह तो श्लोक है। दूसरा खोजे तब हो। मुझे तो देरी लगेगी। इस जगह है। मेरी पुस्तक है, उसमें इस जगह है। होगा कहीं, तीर्थ होगा न तीर्थ, जहाँ तीर्थ की व्याख्या होगी, वहाँ होगा। पहला शब्द हाथ में नहीं आता। गुरु पाण्डुपुत्रा, ऐसा आता है अन्तिम शब्द। .... इसमें आया नहीं परन्तु कण्ठस्थ आ गया। 'आत्मा नदी संयम तोय पूर्णा...' लो! श्लोक आ गया। यह तो आवे तब आवे न।

श्रीकृष्ण पाण्डव को कहते हैं कि यह दूधी—तुम्बड़ी तुम ले आओ। स्नान करके आने के बाद सबको टुकड़ा-टुकड़ा करके दिया। रखो। तीर्थ की प्रसादी। खाने लगे तो कड़वी। अरे! परन्तु यह मीठी तो हुई नहीं। तीर्थ के इतने स्नान कराये तो भी मीठी हुई नहीं। तुम्बड़ी-तुम्बड़ी। कड़वी होती है। तो फिर तुम्हारा आत्मा मीठा कहाँ से हो गया ऐसी यात्रा में से? बाहर से। फिर कहते हैं, 'आत्मा नदी संयम तोय पूर्णा...' आत्मारूपी नदी, उसमें संयमरूपी तोय अर्थात् पानी भरा है। अतीन्द्रिय। 'आत्मा नदी संयम तोय पूर्णा सत्यावहा...' उसके दो किनारे। सत्य के दो किनारे हैं। 'सत्यावहा...' उसमें है। 'तत्राअभिषेकं करु पांडुपुत्रा...' ऐसे आनन्दस्वरूप भगवान सत्य जिसके किनारे हैं। ज्ञान जिसका जल भरा है, उसमें अभिषेक कर। 'न वारिणाम् शुद्ध चैतन

आत्मा।' पानी से कहीं आत्मा शुद्ध हो, ऐसा नहीं है। नहा-धोकर हो गये पवित्र। धूल में भी नहीं। ... हमेशा बहुत नहाते हैं। समझ में आया? 'आत्मा नदी संयम तोय पूर्णा सत्यावहा शील कटाय दयोर्मि।' लो! शील। प्रिय ब्रह्मचर्य और रागरहित स्वभाव, यह उसके दो तट हैं। 'तत्राभिषेकं करुं पांडु पुत्रा न वारिणामं शुद्धचेतनत्र आत्मा' इस पानी से अन्तर का आत्मा शुद्ध नहीं होता। कहो, समझ में आया?

वह यह तीर्थ, यहाँ देखो! यह आत्मा तीर्थ है। आहाहा! परन्तु जँचे कैसे? बाहर की महत्ता घुस गयी है न, इसलिए बाहरवाले को बाहर की चीज़ उसे तीर्थ लगती है परन्तु अन्तरात्मा भगवान पूर्णानन्द की पवित्र का धाम, एक क्षण का विकार, उसके पीछे पूरा भगवान पूर्ण आनन्द और शान्ति से भरपूर है। आहाहा! वह तेरा तीर्थ है। अन्य तो व्यवहार तीर्थ है। व्यवहार होता है, जब तक पूर्ण वीतराग न हो, (तब तक)।

दसमूं है अरहन्त.... भगवान साक्षात्, लो! शुरु करके अपने वर्णन किया न! अरिहन्त का स्वरूप वर्णन किया। दो बाकी थे। **ग्यारमूं दीक्षा....** प्रव्रज्या। यह श्रीपथ है। श्री अर्थात् मोक्ष का पन्थ है। लो! **इम परमारथ मुनिरूप सति....** परमार्थ मुनि का रूप। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव और नग्नदशा **अन्यभेष सब निंद्य है।** इसके अतिरिक्त दूसरे वेश वे निन्दनीय हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग।

आज सुना कि एक वह साध्वी होगी कोई मारवाड़ी। गुरु-शिष्य वे दो साध्वी रजनीश में मिल गयी। गजब है न! ऐसा मार्ग! कुछ होगा। गुरु होंगे। पढ़ते होंगे। पढ़ते-पढ़ते... कुछ भान नहीं होता। कुछ भी गड़बड़झाला पढ़े, अखबार जहाँ-तहाँ पढ़े और दौड़ जाये। आहाहा! ऐसा मार्ग प्रभु का। प्रभु अर्थात् तेरा। उसके अन्तर का माहात्म्य नहीं और बाहर के माहात्म्य में। या तो ऐसे व्याख्यान देना, पाँच-पाँच, दस हजार लोग इकट्ठे हों। ऊँट की तरह भूंके। लोग भी ऐसे हों बेचारे सुननेवाले। उन्हें कुछ खबर नहीं हो। आहाहा! आहाहा! मार्ग की तो कुछ खबर नहीं होती। पण्डितजी! आहाहा!

प्रभु! तू तेरे पूर्ण गुण से पूर्ण है। ऐसी चीज़ कहीं अन्यत्र है नहीं। तेरी ऐसी चीज़ अन्यत्र कहीं है नहीं। आहाहा! वीतराग तो कहते हैं, वह यह कहते हैं वीतराग। तेरा तत्त्व ऐसा है, यह वीतराग कहते हैं।

कहते हैं कि **परमारथ मुनिरूप सति....** वास्तव में तो मुनि का वेश, दिगम्बरदशा और अन्तर वीतरागी आनन्द का वेदन। **अन्यभेष सब निंद्य है।** इसके अतिरिक्त वेश साधुपने के नहीं हो सकते। **व्यवहार धातुपाषाणमय आकृति इनिकी वंद्य है।** व्यवहार से भगवान की धातु की पाषाणमय मूर्ति, वह व्यवहार से वन्द्य है। नामस्मरण आदि शुभभाव है न? इसलिए व्यवहार से वन्द्य कहने में आता है।

दोहा :

भयो वीर जिनबोध यहु, गौतमगणधर धारि।
बरतायो पंचमगुरु, नमूं तिनहिं मद छारि।।२।।

भयो वीर जिनबोध.... वीतराग परमात्मा बोधसूर्य प्रगट हुआ। **गौतमगणधर....** उसमें से सब गौतमस्वामी ने ऐसे भाव को धारण किया। भगवान ने केवलज्ञानमय स्वरूप होकर बोध प्रगट किया। गौतम गणधर ने धारण किया। **बरतायो पंचमगुरु,....** और पंचम श्रुतकेवली भद्रबाहुस्वामी ने उसका विस्तार किया। **नमूं तिनहिं मद छारि।** अहो! मान छोड़कर इन तीनों को मैं नमन करता हूँ, ऐसा कहते हैं।

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित बोधपाहुड़ की जयपुरनिवासि पण्डित जयचन्द्रछाबड़ाकृत देशभाषामयवचनिका समाप्त। हुआ, लो! यह भावपाहुड़ पढ़ गये हैं। मोक्षपाहुड़ पढ़ गये हैं। अब लिंगपाहुड़। अन्तिम दो।

●●●

लिंगपाहुड़

अथ लिंगपाहुड की वचनिका का अनुवाद लिखते हैं –

(दोहा)

जिनमुद्राधारक मुनी निजस्वरूपकूं ध्याय।
कर्म नाशि शिवसुख लियो बंदूं तिनके पांय।।१।।

गाथा–१

इस प्रकार मंगल के लिए जिन मुनियों ने शिवसुख प्राप्त किया उनको नमस्कार करके श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत प्राकृत गाथाबंध लिंगपाहुडनामक ग्रंथ की देशभाषामय वचनिका का अनुवाद लिखा जाता है, प्रथम ही आचार्य मंगल के लिए इष्ट को नमस्कार कर ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा करते हैं –

काऊण णमोकारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
वोच्छामि समणलिंगं पाहुडसत्थं समासेण।।१।।

कृत्वा नमस्कारं अर्हतां तथैव सिद्धानाम्।
वक्ष्यामि श्रमणलिंगं प्राभृतशास्त्रं समासेन।।१।।

करके नमन भगवान श्री अरहंत एवं सिद्ध को।
संक्षेप से मैं कहूँगा मुनि–लिंग प्राभृत शास्त्र को।।१।।

अर्थ – आचार्य कहते हैं कि मैं अरहन्तों को नमस्कार करके और वैसे ही सिद्धों को नमस्कार करके तथा जिसमें श्रमणलिंग का निरूपण है इस प्रकार पाहुडशास्त्र को कहूँगा।

भावार्थ – इस काल में मुनि का लिंग जैसा जिनदेव ने कहा है, उसमें विपर्यय हो गया, उसका निषेध करने के लिए यह लिंगनिरूपण शास्त्र आचार्य ने रचा है, इसकी आदि में घातिकर्म का नाश कर अनन्त चतुष्टय प्राप्त करके अरहन्त हुए इन्होंने यथार्थरूप

से श्रमण का मार्ग प्रवर्ताया और उस लिंग को साधकर सिद्ध हुए, इस प्रकार अरहन्त सिद्धों को नमस्कार करके ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा की है।।१।।

गाथा-१ पर प्रवचन

लिंग-लिंग। ३६७ पृष्ठ पर है। लिंगपाहुड़। गाथायें २२ हैं, लो। छह (पाहुड़ों का) वाँचन हो गया है। अब यह दो बाकी हैं। उनमें यह आया, देखो! लिंग। मुनि की मुद्रा कैसी होती है, लिंग कैसा होता है, उसकी बात करते हैं।

अर्थ लिंगपाहुड़ की वचनिका (का अनुवाद) लिखते हैं - पण्डित जयचन्द्रजी कहते हैं। उसकी वचनिका लिखते हैं। प्रचलित भाषा में अर्थ करते हैं, ऐसा।

(दोहा)

जिनमुद्राधारक मुनी निजस्वरूपकूं ध्याय।
कर्म नाशि शिवसुख लियो बंदूं तिनके पांय।।१।।

जिसमें जिनमुद्रा, वीतरागमुद्रा धारण की। जैसा माता ने जन्म दिया, वैसी शरीर की नग्न दिगम्बरदशा धारण की। यह तो बाह्य हुआ। '**निजस्वरूपकूं ध्याय**' जिनमुद्रा, निज स्वरूप। जिनमुद्रा, वीतरागमुद्रा दिगम्बर। उसमें जिनमुद्रा, यह निज स्वरूप। निज स्वरूप भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का ज्ञान का धाम, उसका जिसने ध्यान किया है। अकेला बाह्य वेश नहीं। बाह्य वेश तो कहीं आत्मा को लाभदायक नहीं है। वेश होता अवश्य है। परन्तु इस वस्तु के भान बिना कोई बाह्य वेश लाभ नहीं करता। नग्नपना धारण करे, उससे क्या?

'**निजस्वरूपकूं ध्याय**' देखो! भगवान के स्वरूप को ध्याकर, ऐसा करके नहीं कहा। भगवान तो परद्रव्य है। उनके ऊपर लक्ष्य जाये तो विकल्प उठता है, राग उठता है। यह वस्तु का स्वरूप नहीं ध्यान सच्चा। लिंगपाहुड़ होगा। पीछे-पीछे। पीछे नहीं उसमें? छह ही हैं। इसमें होगा, होवे तो। है न उसमें? इसमें छह ही पाहुड़ हैं। नहीं? द्रव्यसंग्रह। यहाँ है। हिन्दी है, यह हिन्दी में।

जिनमुद्राधारक मुनी निजस्वरूपकूं ध्याय।
कर्म नाशि शिवसुख लियो बंदूं तिनके पांय।।१।।

शिव अर्थात् आत्मा। निरुपद्रव। शिव का अर्थ निरुपद्रव्य कल्याणमूर्ति भगवान अपने आनन्दस्वरूप को प्राप्त हुए। शिव अर्थात् मोक्ष। मोक्ष के सुख को जो प्राप्त हुए, **वन्दू तिनिके पांय....** उनके पद को मैं नमन करता हूँ। उनके चरणकमल को नमता हूँ। ऐसा चलती भाषा के अर्थकार का यह मांगलिक है।

इस प्रकार मंगल के लिए जिन मुनियों ने शिवसुख प्राप्त किया.... जो मोक्ष का सुख प्राप्त किया। शिव अर्थात् मोक्ष। नमोत्थुणं में आता है। 'सिवमलयमरुयमणंतमक्ख...' और **श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत प्राकृत गाथाबन्ध लिंगपाहुडनामक ग्रन्थ की देशभाषामय....** प्रचलित भाषा में वचनिका अर्थात् कथन करते हैं। **(वचनिका का अनुवाद लिखा जाता है), प्रथम ही आचार्य मंगल के लिए इष्ट को नमस्कार कर ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा करते हैं -** ह्लो!

काऊण णमोकारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
वोच्छामि समणलिंगं पाहुडसत्थं समासेण।।१।।

इसमें अरहन्ताणं आया। वह अरिहन्ताणं। यह अरहन्ताणं। आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य भगवान मुनि कहते हैं। **आचार्य कहते हैं कि मैं अरहन्तों को नमस्कार करके....** जो इन्द्रों को पूज्य हुए और अपनी पूज्य पदवी जिन्होंने अन्तर में से पूर्ण प्रगट की। भगवान आत्मा जैसा स्वभाव से है, वैसी जिसकी दशा वर्तमान में अन्तर में से प्रगट की, ऐसे अरिहन्त को नमस्कार करता हूँ। **और वैसे ही सिद्धों को नमस्कार....** अरिहन्त हैं, वे अभी शरीरसहित होते हैं। सिद्ध हैं, वे शरीररहित हो गये। णमो अरिहन्ताणं है न पहला पद? वह अरिहन्ताणं अर्थात् अरि अर्थात् राग-द्वेष और अज्ञानरूपी अरि को नाश करके जिन्होंने अपना निजपद प्राप्त किया, उन्हें अरिहन्त कहते हैं। अरिहन्त कोई पक्ष का शब्द नहीं। अरिहन्त, वह आत्मा के गुण के वाचक का शब्द है।

कहते हैं कि जिसने अज्ञान और राग-द्वेष टालकर आत्मा का ज्ञान और वीतरागता जिसने पूर्ण प्रगट की, ऐसे अरिहन्त को अथवा अर्हंताणं, जो बड़े महापुरुष इन्द्र आदि

से भी पूज्य हैं, ऐसे अरहन्त को मैं नमस्कार करता हूँ। और शरीररहित हुए ऐसे सिद्ध भगवान को भी नमस्कार करता हूँ। अरिहन्त को शरीर होता है, वाणी होती है, वाणी निकलती है, ध्वनि निकलती है। परन्तु होता है अन्दर केवलज्ञान, केवलदर्शन परिपूर्ण। सिद्ध होने के पश्चात् शरीर और वाणी नहीं होते। दोनों को नमस्कार। णमो सिद्धाणं, दूसरा पद। जिनकी शरीररहित पूर्ण दशा प्रगट हुई, अकेला आत्मा आनन्द के अनुभव में रहता है, ऐसे सिद्ध को मैं नमस्कार करता हूँ।

तथा जिसमें श्रमणलिंग का निरूपण है.... साधु का वेश बाह्य और अभ्यन्तर कैसा होता है ? **इस प्रकार पाहुडशास्त्र को कहूँगा**। लो ! कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा लिंग कहते हैं। वे (श्वेताम्बर) कहें, पन्द्रह भेद से सिद्ध हुए, उसमें से एक भेद कम माने तो अनन्त संसारी होता है, ऐसा लिखा है। अभी हम्पी से काल कर गये न ? पन्द्रह भेद से सिद्ध। यह श्वेताम्बर आगम कथन जगजाहिर है। उसमें से एक भेद को उत्थापित करनेवाले उत्सूत्र भाषी को अनन्त संसारी होना पड़ता है। लो ! उसे ... वह तो आत्मानुभवी महा योगीराज थे, लो ! अमरचन्द नाहटा श्वेताम्बर इतिहासिक ... काशी में मिले थे। काशी में जब गये थे न ? ऐसी दिव्यध्वनि सुनानेवाले अविरती केवल मनकल्पित स्वलिंग मात्र का ऐकान्तिक आग्रह कैसे हो सकता है ? यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, यह एक ही आग्रह है। मुनिलिंग नग्न मार्ग एक का एक ही होता है। कोई दूसरा आकर वस्त्र डाल दे, वह अलग बात है। परन्तु स्वयं तो मन, वचन और काया से कृत, कारित और अनुमोदन से सब परिग्रह छूट गया होता है। काया से भी परिग्रह छूट गया होता है, वस्त्र का धागा भी जिसे नहीं होता। ऐसा अनादि जैनलिंग वीतराग मार्ग में कहा जाता है। समझ में आया ? यह सब वेश-बेश स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी यह सब वेश वीतराग के नहीं हैं, ऐसा कहते हैं। जगत के जीवों ने बाहर से कल्पित (वेश हैं)। **जिसमें श्रमणलिंग का निरूपण है, इस प्रकार पाहुडशास्त्र को कहूँगा**। प्राभृत शास्त्र। शास्त्र का सार। प्राभृत अर्थात् सार। उसे **कहूँगा**।

भावार्थ - इस काल में मुनि का लिंग जैसा जिनदेव ने कहा है, उसमें विपर्यय हो गया,.... उसमें विपरीत हो गया है। **उसका निषेध करने के लिए यह लिंगनिरूपण**

शास्त्र आचार्य ने रचा है, इसकी आदि में घातिकर्म का नाश कर अनन्त चतुष्टय प्राप्त... जिसने अनन्त ज्ञान स्वभाव में था, उस शक्ति में से दशा वर्तमान में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य-बल प्रगट किया, और **अरहन्त हुए....** यहाँ अरहन्त शब्द प्रयोग किया है। अर्हंत भगवान हुए। जैसे सीमन्धर भगवान अभी महाविदेह में विचरते हैं। वे अरिहन्तपद में हैं। महावीर भगवानादि शरीररहित हो गये, वे अभी सिद्धपद में हैं। अकेले। शरीररहित अकेला आत्मा।

इन्होंने यथार्थरूप से श्रमण का मार्ग प्रवर्ताया.... ऐसे अरिहन्त भगवान ने साधु का मार्ग बराबर यथार्थ कहा। **उस लिंग को साधकर सिद्ध हुए,....** उस लिंग को, भाव और द्रव्य को साधकर **इस प्रकार अरहन्त सिद्धों को नमस्कार करके ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा की है।** यह अरिहन्त भी इस प्रकार हुए, कहते हैं। भाव में आनन्दस्वरूपादि दशा और बाह्य में नग्नदशा। अनादि का वीतराग का मार्ग यह है। यह सब बीच में फेरफार हो गया श्वेताम्बर निकलकर, उसका निषेध करने के लिये यह सब लिखा। कहो, समझ में इसमें? अब तो यहाँ बहुत वर्ष हो गये, ३६ वर्ष, इसलिए बहुत दिक्कत आवे ऐसा बहुतों को नहीं है। नया हो तो अभी भड़के। अब ३६ वर्ष हुए। बहुत सुनते थे न। बहुत बार सुनाया है या नहीं? चिमनभाई! नये-नये तो भड़के जरा।

मुमुक्षु : आदत हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आदत हो गयी अब तो। (ऐसा) कहते हैं, लो।

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्त ने जो लिंग बताया, वह लिंग एक ही सच्चा है। दूसरा मार्ग सच्चा नहीं। श्रद्धा से भ्रष्ट होकर, वस्त्र-पात्र रखकर मुनिपने के लिंग धारण किये, वह वीतराग का मार्ग नहीं है। उसे वीतराग की श्रद्धा नहीं है। कहो, समझ में आया?

गाथा-२

आगे कहते हैं कि जो लिंग बाह्यभेष है वह अन्तरंगधर्मसहित कार्यकारी है –

धम्मेण होइ लिंगं ण लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ती।
जाणेहि भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो।।२।।

धर्मेण भवति लिंगं न लिंगमात्रेण धर्मसंप्राप्तिः।
जानीहि भावधर्मं किं ते लिंगेन कर्तव्यम्।।२।।

हो धर्म से ही लिंग केवल लिंग से नहिं धर्म है।
उस भाव-धर्म को जान लो कर्तव्य क्या है लिंग से?।।२।।

अर्थ – धर्म सहित तो लिंग होता है, परन्तु लिंगमात्र ही से धर्म की प्राप्ति नहीं है, इसलिए हे भव्यजीव! तू भावरूप धर्म को जान और केवल लिंग ही से तेरा क्या कार्य होता है अर्थात् कुछ भी नहीं होता है।

भावार्थ – यहाँ ऐसा जानो कि लिंग ऐसा चिह्न का नाम है, वह बाह्य भेष धारण करना मुनि का चिह्न है, ऐसा चिह्न यदि अन्तरंग वीतराग स्वरूप धर्म हो तो उस सहित तो यह चिह्न सत्यार्थ होता है और इस वीतरागस्वरूप आत्मा के धर्म के बिना लिंग जो बाह्य भेषमात्र से धर्म की संपत्ति-सम्यक् प्राप्ति नहीं है, इसलिए उपदेश दिया है कि अन्तरंग भावधर्म रागद्वेष रहित आत्मा का शुद्ध ज्ञान दर्शनरूप स्वभाव धर्म है, उसे हे भव्य! तू जान, इस बाह्य लिंग भेषमात्र से क्या काम है ? कुछ भी नहीं। यहाँ ऐसा भी जानना कि जिनमत में लिंग तीन कहे हैं – एक तो मुनि का यथाजात दिगम्बर लिंग, दूजा उत्कृष्ट श्रावक का, तीजा आर्यिका का, इन तीनों ही लिंगों को धारण कर भ्रष्ट होकर जो कुक्रिया करते हैं, इसका निषेध है। अन्यमत के कई भेष हैं इनको भी धारण करके जो कुक्रिया करते हैं, वह भी निंदा ही पाते हैं, इसलिए भेष धारण करके कुक्रिया नहीं करना ऐसा बताया।।२।।

गाथा-२ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो लिंग बाह्यभेष है, वह अन्तरंगधर्मसहित कार्यकारी है- अब कहते हैं कि नग्नपना हो, परन्तु अकेला नग्नपना अन्तर के भान और अनुभव बिना कार्यकारी नहीं है।

धम्मेण होइ लिंगं ण लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ती।
जाणेहि भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो।।२।।

वापस ऐसा करके निकाले कि लिंग से कुछ कार्य नहीं होता, इसलिए चाहे जैसा लिंग हो। ऐसा नहीं है। समझ में आया? श्रीमद् में से यह कहते हैं न सब, 'जाति वेश का भेद नहीं कहा मार्ग जो होय।' जहाँ-तहाँ यह डालते हैं। परन्तु यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं वह? उन्हें श्रीमद् ने गुरु माना है। वे तो ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव यह, परन्तु लिंग? वह और भाव अलग बात हुई। भाव अलग। भाव बराबर है। लिंग भी कैसा होता है, वह यहाँ बात चलती है। स्त्री का लिंग नहीं होता।

मुमुक्षु : लिंग कुछ नहीं करता, बाह्य लिंग चाहे जैसा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही विवाद है। करता नहीं परन्तु निमित्त ऐसा ही होता है। इसलिए तो यह बनाया है। केशवलालजी ऐसा कहते थे। कहा था न उन्होंने? चेतनजी को। निमित्त चाहे जैसा हो। निमित्त चाहे जैसा नहीं होता। होता ही नहीं। जीव गति करता है तब निमित्त, जीव और पुद्गल गति करे, तब धर्मास्तिकाय ही निमित्त होता है, दूसरा निमित्त होता ही नहीं। तथापि निमित्त ने किया नहीं। करे तो निमित्त नहीं और अनुकूल न हो तो निमित्त कहलाये नहीं। विवाद बड़ा, बड़ा विवाद। झगड़ा... झगड़ा...

धर्मसहित तो लिंग होता है, परन्तु लिंगमात्र ही से धर्म की प्राप्ति नहीं है,.... ऐसा कहते हैं। देखो! धर्मसहित जो लिंग हो, वह होता है। बराबर है। आत्मा के अनुभव का वीतरागी समकित ज्ञान और शान्ति (हो), ऐसी दशा में लिंग नग्नपना, वह बराबर है,

कहते हैं, परन्तु **लिंगमात्र ही से धर्म की प्राप्ति नहीं है,....** परन्तु बाह्य का लिंग नग्न धारण किया, इसलिए धर्म प्राप्ति होती है, ऐसा नहीं है। भारी बात, भाई! समझ में आया? **लिंगमात्र ही से धर्म की प्राप्ति नहीं है,....** नग्न धारण किया और बाहर महाव्रत के विकल्प हुए, इसलिए धर्म है—ऐसा बिल्कुल नहीं है। वह धर्म है ही नहीं। नग्नपना, वह धर्म नहीं और पंच महाव्रत का विकल्प पुण्य के परिणाम हैं, वह भी धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए हे भव्यजीव! तू भावरूप धर्म को जान.... अन्तर का भगवान आत्मा आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान की मूर्ति है। उसका ज्ञान कर अर्थात् उसका आश्रय कर और उसका अनुभव कर तो धर्म की प्राप्ति होगी। बाह्य लिंग वेश नग्न धारण किया, उसमें क्या हो गया? नग्न तो सब श्वान भी घूमते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ निकाला?

यहाँ तो लिंग भले हो, परन्तु उस लिंग से आत्मा का कल्याण नहीं। कल्याण नहीं, तो भी लिंग दूसरा हो, ऐसा नहीं है। ऐसी बात है, भाई! मुनि का लिंग तो नग्नदशा दिगम्बरदशा, एक वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं, पात्र लेने का कहाँ से हो? आहाहा! गौतमस्वामी जैसे पात्र लेकर आहार लेने गये। पानी और आहार। भगवान को बतलाया।

मुमुक्षु : वह वापस भगवान के लिये लेने गये थे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उनके लिये, स्वयं के लिये लेने गये थे। गौतम तो स्वयं के लिये गये थे।

मुमुक्षु : दवा लेने...

पूज्य गुरुदेवश्री : दवा के लिये दूसरे साधु गये थे। ...

मुमुक्षु : भगवान को बताया क्यों?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहार लेकर लावे बतावे कि इस प्रमाण में ले आया हूँ। ऐसा पाठ है। श्वेताम्बर के उपासक में। गौतमस्वामी लेने गये। बाहर भगवान उतरे थे और

गाँव में आहार लेने गये, झोली में पात्र भरकर। उसमें आनन्द श्रावक ने संथारा किया। आनन्द श्रावक आता है उसमें। संथारा करके, उसके पास गये। गये तो कहे, अवधिज्ञान कैसा है तुमको! स्वामी मुझे इतना हुआ। ऐसा अवधिज्ञान नहीं होता, गौतम कहे। महाराज! फिर गौतम कहे प्रायश्चित लो। साहेब! सच्चे का प्रायश्चित खोटे का? इसलिए गौतमस्वामी भगवान के पास गये। भगवान को आहार बताया। महाराज! इस तरह मेरी बात हुई है। यह हुआ है। कहे, तेरी भूल है। उसे अवधिज्ञान हुआ है, वह बराबर हो सकता है। कहो, यह गणधर भी भूले।

मुमुक्षु : ... गणधर भूले।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतनी खबर न हो कि श्रावक हो धर्मी, धर्मात्मा, हों! समकिती अनुभवी। वाडावाले श्रावक की कहाँ बात है यह? उसे ऐसा अन्तर से अवधिज्ञान होता है। द्वीप, समुद्र देखे। यह कहे, इतना बड़ा नहीं होता। प्रायश्चित लो, प्रायश्चित सच्चे का या खोटे का? तुम लो, ऐसा नहीं कहा।

मुमुक्षु : पंचम काल में तो अवधिज्ञान होता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले शुरुआत में है यह। पंचम काल के शुरुआत में थे।

यहाँ तो कहते है भाव अन्तर के, आनन्द के और सम्यग्दर्शन और अनुभव बिना अकेला बाह्यलिंग कोई धर्म का कार्य नहीं करता। ऐसे वेश तो अनन्त बार धारण किये। परन्तु वेश होवे तो यही होता है। परन्तु यह वेश भी धर्म का कारण नहीं है। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१७६, गाथा-२ से ६, शनिवार, पौष कृष्ण ५, दिनांक १६-०१-१९७१

लिंगपाहुड़ गाथा-२, इसका भावार्थ चलता है।

भावार्थ :- यहाँ ऐसा जानो कि लिंग ऐसा चिह्न का नाम है,... यहाँ लिंग वीतरागदेव कुन्दकुन्दाचार्य महाराज वीतरागदेव ने कहा कि मुनि का लिंग कैसा होता है, भाव और द्रव्य? उसका इसमें वर्णन है। **लिंग ऐसा चिह्न का नाम है, वह बाह्य वेश धारण करना मुनि का चिह्न है,...** नग्नपना, दिगम्बरपना, वस्त्ररहितपना वह बाह्यलिंग है। **ऐसा यदि अन्तरंग वीतरागस्वरूप धर्म हो तो उस सहित तो यह चिह्न सत्यार्थ होता है...** अन्तर में आत्मा आनन्दस्वरूप वीतरागस्वरूप है। उसकी अन्तर अनुभव दृष्टि, ज्ञान और रमणता हो तो वह बाह्यलिंग शोभता है। परन्तु वह भाव न हो तो बाह्यलिंग नहीं शोभता। यह कहा, देखो! **अन्तरंग वीतरागस्वरूप धर्म हो...** रागस्वरूप व्यवहार विकल्प पंच महाव्रतादि नहीं, वह तो विकल्प-राग है।

आत्मा इस पुण्य-पाप के रागरहित शुद्ध चैतन्य आनन्द, वीतराग जिसका अन्तर त्रिकाली स्वरूप है। वीतराग अर्थात् निर्दोष। वीत नहीं, राग नहीं। अर्थात् कषाय नहीं अर्थात् दोष नहीं। ऐसा जिसका त्रिकाली भगवान आत्मा निर्दोष पवित्र आनन्द जिसका स्वभाव है। ऐसी जिसे वर्तमान में शक्ति में से व्यक्तता प्रगट आनन्द और वीतरागभाव की की हो, उसे अभ्यन्तर लिंग हो, उसे बाह्यलिंग शोभा कहने में आता है। अकेला बाह्यलिंग हो परन्तु अन्तर में वस्तुस्थिति का भान नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं, आनन्द नहीं, चारित्र यह वीतरागता नहीं। उसे कोई बाह्यलिंग नहीं है। वह तो कुलिंग जैसा है। वास्तविक वह लिंग नहीं है। कुक्रिया आगे कहेंगे।

उस सहित तो यह चिह्न सत्यार्थ होता है और इस वीतरागस्वरूप आत्मा के धर्म के बिना... शुद्ध चैतन्य वस्तुस्वभाव, उसका भान, उसकी दशा अरागी, वीतरागी, निर्दोषपने की प्रगटता न हो, वीतराग आनन्द जहाँ अन्तर में न हो, उसके बिना **लिंग जो बाह्य वेशमात्र से धर्म की सम्पत्ति-सम्यक् प्राप्ति नहीं है,...** लो! उससे बाह्यलिंग नग्न धारण करे या कदाचित् महाव्रत के विकल्प पंच महाव्रतादि के हों, वह तो राग है।

मुमुक्षु : वह तो लिंग में आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बाह्यलिंग है।

अन्तरस्वरूप शुद्ध आनन्द का धाम अनाकुल सत्त्व, निर्दोष स्वभाव का पिण्ड आत्मा है, उसकी निर्दोषता जिसकी दशा में-वर्तमान हालत में-प्रगट हुई हो। वीतराग समकित, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी लीनता। इनके बिना का बाह्यलिंग तो निरर्थक है। उसे धर्म की सम्पत्ति सम्यक्ता... धर्म की प्राप्ति, धर्म अर्थात् वीतरागस्वरूप आत्मा, उसकी पर्याय में वीतरागता की प्राप्ति, उसका नाम धर्म की सम्पत्ति की प्राप्ति। सूक्ष्म, धर्म बहुत सूक्ष्म। बाह्य वेश अकेला, कहते हैं कि धारण करे, परन्तु अन्तर आत्मा वीतरागमूर्ति चैतन्य, उसका निर्विकल्प—राग बिना का समकितदर्शन, राग बिना का स्वसंवेदनज्ञान, राग बिना की स्वरूप में लीनता के वीतरागी आनन्द के भाव जिसे प्रगट न हुए हों तो वह बाह्यलिंग किसी काम का नहीं है। कहो, समझ में आया? अभ्यन्तर ऐसा लिंग हो तो बाह्यलिंग ऐसा होता है। बाह्यलिंग दूसरा होता है, ऐसा नहीं, इतनी बात है। इसलिए कुन्दकुन्दाचार्य को यह लिंगपाहुड़ कहना पड़ा।

इसलिए उपदेश दिया है कि अन्तरंग भावधर्म राग-द्वेषरहित आत्मा का शुद्ध ज्ञान-दर्शनरूप स्वभाव धर्म... आत्मा का स्वभाव वीतरागी शुद्ध चैतन्य, उसकी अन्तर में स्वस्वभाव की सन्मुख की वीतराग निर्दोष श्रद्धा, वीतरागस्वभाव का निर्दोष ज्ञान, वीतरागस्वभाव की लीनता-अन्दर रमणता-इस रहित **आत्मा का शुद्ध ज्ञान-दर्शनरूप स्वभाव धर्म है...** राग-द्वेषरहित, पुण्य-पाप के विकल्प की वृत्तिरहित ऐसा आत्मा का स्वभाव शुद्ध ध्रुव चैतन्य पवित्र धाम आत्मा, उसमें से प्रगट हुई वीतरागदशा अनुभव के आनन्दसहित, उसके बिना का बाह्यवेश निरर्थक है। है?

मुमुक्षु : क्या काम हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या काम हुआ? उससे क्या हुआ? आहाहा!

आत्मा का शुद्ध ज्ञान-दर्शनरूप... कहा न? राग-द्वेषरहित, पुण्य-पाप के विकल्प की वृत्ति से रहित भगवान आत्मा का शुद्ध ज्ञान-दर्शनरूप स्वभाव, उसका नाम भगवान धर्म कहते हैं। कहो, पण्डितजी! पंच महाव्रत के विकल्प, वह धर्म नहीं, वह तो राग

है। शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु, स्वयं सत् शाश्वत् वस्तु है। उसका ज्ञान अन्दर भरा हुआ है, स्व और स्व आनन्द है। ऐसे ज्ञान और आनन्द की दशा में वर्तमान अवस्था में प्रगट होना, राग-द्वेषरहित वीतरागभावस्वरूप धर्म, उसे धर्म कहते हैं। इसके बिना सब बातें हैं। कहो, समझ में आया?

उसे हे भव्य! तू जान, इस बाह्य लिंग वेशमात्र से क्या काम है? अकेला वेश धारण किया नग्नपने का, बाहर साधुपने का, उससे क्या कार्य? **कुछ भी नहीं।** उसमें कुछ कार्य तेरा है नहीं। **यहाँ ऐसा भी जानना कि जिनमत में...** वीतराग परमात्मा ने, केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ प्रभु ने **लिंग तीन कहे हैं - एक तो मुनि का यथाजात दिगम्बर लिंग १,...** एक मुनि का दिगम्बर लिंग, माता से जैसा जन्मा, वैसा लिंग बाह्य। **दूजा उत्कृष्ट श्रावक का,...** क्षुल्लक आदि। लंगोटिया वेश हो। उसका एक वेश। **तीजा आर्यिका का,...** आर्यिका, स्त्री। जिसे एक ही वस्त्र होता है।

इन तीनों ही लिंगों को धारण कर... ऐसे तीन लिंगों को धारण करके, **भ्रष्ट हो...** स्वभाव का भान नहीं होता, आनन्द की धारा आत्मा में क्या है, अतीन्द्रिय आनन्द, हों! उसकी खबर नहीं होती, अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ अन्तर में स्वाद और अनुभव नहीं हो, ऐसे भ्रष्ट होकर **जो कुक्रिया करते हैं...** आत्मा के स्वभाव का तो भान नहीं और रागादि की क्रियायें करे, पुण्य आदि की क्रिया करे, **इसका निषेध है।** उसका यहाँ निषेध किया गया है। देखो! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य अष्टपाहुड़ में और यह एक लिंगपाहुड़ लिखा है। भगवान निकले जब, तब उस समय सम्प्रदाय निकल गया था। इसलिए यह बात उन्हें विशिष्ट डालनी पड़ी।

अन्यमत के कई वेश हैं... वीतरागस्वरूप आत्मा के अतिरिक्त बाह्य में अनेक प्रकार के वेश हैं। **इनको भी धारण करके जो कुक्रिया करते हैं, वह निन्दा पाते हैं,...** जैन का लिंग धारण करके भी जो कुक्रिया करे, अन्तर आत्मधर्म प्रगट न करे तो वह भी निन्दा का पात्र है। अन्य के वेशधारी को उसके योग्य न करे तो वह भी निन्दा का पात्र है। **इसलिए वेश धारण करके कुक्रिया नहीं करना...** राग की क्रिया, वह वास्तव में कुक्रिया है। आहाहा! सुक्रिया तो आत्मा की पुण्य-पाप के रागरहित निर्दोष आत्मा की शान्ति और वीतरागी अन्तर की परिणति क्रिया, उसे क्रिया कहा जाता है। आहाहा!

अरे! अनन्त काल में इसने कभी खबर नहीं ली। यह चौरासी के अवतार कर-करके अनन्त काल में ऐसे अवतार किये कि कहीं किंचित् सुख नहीं, अकेला दुःख (भोगा)। समझ में आया?

कहते हैं कि वीतरागमार्ग का वेश धारण करके ऐसा स्वभाव यदि प्रगट नहीं किया तो तुझे कुछ भी संसार परिभ्रमण का अभाव नहीं होगा। समझ में आया? यह पंच महाव्रत की क्रिया हो, दया आदि, अहिंसा, वह भी राग है और उसके फल में तो स्वर्ग गति मिले, आकुलता मिले। स्वर्ग का देव हो। स्वर्ग के देव यह पुण्य करके जाये, वहाँ भी अंगारे, कषाय के अंगारों से वे सिकते हैं। भगवान आत्मा का अकषाय वीतरागी स्वभाव, उसे छोड़कर देव भी विषय की वासना में लगते हैं। बहुत ही अनुकूल पुण्य के फल में, कहते हैं कि यह विषयवासनारूपी अंगारे, उसमें वे सिकते हैं। वे देव सुखी नहीं। राजा, सेठिया कहलाये वे सब, पाँच-दस करोड़ रुपये के आसामी, कहते हैं कि वे सब राग से सिकते हैं। अरे रे!

भगवान आत्मा अनाकुल शान्तरस का स्वरूप उसका त्रिकाल है। उसे छोड़कर राग के भाव में जुड़ जाता है, वह शान्ति में से अग्नि में सिकता है। कहो, रतिभाई! बराबर होगा यह? क्या परन्तु तुमको तो कोई ऐसा कहते नहीं, लो! वे कहते हैं सुखी है। घीया का नाम सुने वहाँ कहे, घीया! ओहोहो! वह तो करोड़पति सुखी है, ऐसा कहते हैं, लो। कल कोई आया था, वह कहता था। यह तो घीया। विष्णु था विष्णु। भावनगर का।

मुमुक्षु : करोड़पति हो तो करोड़पति ही कहलाये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु करोड़पति अर्थात् क्या?

मुमुक्षु : करोड़पति अर्थात् करोड़पति।

पूज्य गुरुदेवश्री : करोड़पति अर्थात् करोड़पति। ऐसा कहते हैं। पैसे का पति, ऐसा। आहाहा! पैसे के पति का भाव है, वह अंगारा है, कहते हैं। कठिन, भाई! ऐसा है? परन्तु तुमको तो सब सुखी पैसेवाला कहते हैं। सब कारखाना और ...

मुमुक्षु : ऐसा अनुभव है, वह चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो है न उसमें? क्या कहा?

मुमुक्षु : वह तो किसी समय।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह किसी समय होता है, कहीं सदा होता है?

मुमुक्षु : यह तो चौबीस घण्टे सुख बाकी का...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। चौबीस घण्टे अग्नि सुलगती है। विकल्प की वृत्ति, राग की वृत्तियों का उत्थान, वह सब अंगारा-दु:ख है, भाई! तुम्हें खबर नहीं। उसमें भगवान आत्मा का शान्त-शान्तरस स्वभाव जलता है।

कहते हैं कि कुक्रिया नहीं करना, परन्तु सुक्रिया आत्मा के स्वभाव की, पुण्य-पाप के भाव की वृत्तियोंरहित सुक्रिया अन्दर ज्ञान-दर्शन और आनन्द की करना, कि जो बाह्य वेश को भी सत्यार्थ करती है। नहीं तो वेश निरर्थक जाता है।

गाथा-३

आगे कहते हैं कि जो जिनलिंग निर्ग्रन्थ दिगम्बर रूप को ग्रहण कर कुक्रिया करके हँसी कराते हैं, वे जीव पापबुद्धि हैं –

जो पावमोहिदमदी लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
उवहसदि लिंगिभावं [१]लिंगिम्मिय णारदो लिंगी।।३।।

य: पापमोहितमति: लिंग गृहीत्वा जिनवरेन्द्रानाम्।
उपहसति लिंगिभावं लिंगिषु नारद: लिंगी।।३।।

जो पाप-मोहित-मती जिनवर लिंग-धर लिंगत्व का।
उपहास करता वह विघातक लिंगिओं के लिंग का।।३।।

***अर्थ* – जो जिनवरेन्द्र अर्थात् तीर्थंकर देव के लिंग नग्न दिगम्बररूप को ग्रहण**

१. पाठान्तर: – 'लिंगम्मिय णारदो लिंगी' के स्थान पर 'लिंग णासेदि लिंगीणं'।

करके लिंगीपने के भाव को उपहसता है, हास्यमात्र समझता है, वह लिंगी अर्थात् भेषी जिसकी बुद्धि पाप से मोहित है, वह नारद जैसा है अथवा इस गाथा के चौथे पाद का पाठान्तर ऐसा है – ''लिंग णासेदि लिंगीणं' इसका अर्थह्न– यह लिंगी कोई अन्य जो कई लिंगों के धारक हैं, उनके लिंग को भी नष्ट करता है, ऐसा बताता है कि लिंगी सब ऐसे ही हैं।

भावार्थ – लिंगधारी होकर भी पापबुद्धि से कुछ कुक्रिया करे, तब उसने लिंगीपने को हास्यमात्र समझा, कुछ कार्यकारी नहीं समझा। लिंगीपना तो भावशुद्धि से शोभा पाता है, जब भाव बिगड़े तब बाह्य कुक्रिया करने लग गया, तब इसने इस लिंग को लजाया और अन्य लिंगियों के लिंग को भी कलंक लगाया, लोग कहने लगे कि लिंगी ऐसे ही होते हैं अथवा जैसे नारद का भेष है, उसमें वह अपनी इच्छानुसार स्वच्छंद प्रवर्तता है वैसे ही यह भी भेषी ठहरा इसलिए आचार्य ने ऐसा आशय धारण करके कहा है कि जिनेन्द्र के भेष को लजाना योग्य नहीं है।।३।।

गाथा-३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो जिनलिंग निर्ग्रन्थ दिगम्बरस्वरूप को ग्रहण कर कुक्रिया करके हंसी कराते हैं, वे जीव पापबुद्धि हैं :- मोक्षपाहुड़ की ७८ गाथा में पहले लिया था। ७८। '**पावमोहियमइ लिंगं**'। ७८ गाथा, '**पावमोहियमइ लिंगं**'।

जे पावमोहियमइ लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि॥७८॥

ओहो! **अर्थ :- जो जिनवरेन्द्र...** जिन अर्थात् वीतराग दृष्टिवाले समकिती को भी जिन कहा जाता है। उसके वर-गणधर, उन्हें जिनवर कहा जाता है और तीर्थंकर को जिनवर इन्द्र कहा जाता है। गणधर के भी उत्कृष्ट इन्द्र। जिन-वर-इन्द्र। जिन अर्थात् आत्मा का जिसे पुण्य-पापरहित, विकल्परहित आत्मा, ऐसी जिसे आत्मा की अन्तर सम्यग्दर्शन की दृष्टि, आत्मा का अनुभव हुआ है, उसे जिन कहा जाता है। क्योंकि रागरहित इतनी आत्मा की दृष्टि हुई, इसलिए उसे जिन कहा जाता है। उसके जिनवर-

मुनि-गणधर, जिनकी चारित्रदशा बहुत उत्कृष्ट हुई है, ऐसे जिनवर, उनके भी इन्द्र, वे तीर्थंकर।

जिनवरेन्द्र अर्थात् तीर्थंकरदेव के लिंग नग्न दिगम्बररूप को ग्रहण करके लिंगीपने के भाव को उपहसता है- अर्थात् कि वेश को गिनता नहीं, ऐसा। ऐसा वेश भी गिनता नहीं। **हास्यमात्र समझता है**। वह कैसा है? **वेशी जिसकी बुद्धि पाप से मोहित है, वह नारद जैसा है...** नारद-नारद होते हैं न? नाटक में पहले आता है। नाटक में पहले देखा हुआ, बहुत वर्ष पहले वड़ोदरा में अनुसूईया का नाटक था। अनुसूईया है न वह? नर्मदा, भरुच के किनारे। वे दो बहनें थीं, उनका बड़ा नाटक था विश्वामित्र का। बहुत वर्ष की बात है। (संवत्) १९६४-६५ की। बड़ा नाटक। वहाँ थियेटर है। वहाँ माल लेने गये तो रात्रि में देखने गये। चलो, कहा क्या है यह नाटक। पहले के नाटक तो वैरागी थे, हों! अभी तो सब भ्रष्टाचार सब बदल गया। पहले तो वैरागी मीराबाई का और नरसिंह मेहता का। उसमें नारद पहले आवे। बड़ा पर्दा डाले। 'ब्रह्मा पुत्र मैं नारद कहावुं, जहाँ हो संप, वहाँ कुसंप करावुं।' ऐसा बोले। बड़ी चोटी रखे। हाथ में बड़ा तम्बुरा हो। भाषा बहुत मीठी नहीं ऐसी कोई। सारंग... सारंग। तम्बुरा हल्का नाम है। सारंग रखे। ऐसा बोले। खड़ाऊँ पहनी हो। 'ब्रह्मा पुत्र मैं नारद कहावुं, जहाँ हो संप, वहाँ कुसंप करावुं।'

मुमुक्षु : नारद जगतप्रसिद्ध।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, प्रसिद्ध है न। वहाँ हमने नाटक में भी देखा था वड़ोदरा में। अनुसूईया में आता है और अपने रामचन्द्रजी और लव-कुश। सीताजी के दो पुत्र जन्मे अन्यत्र। वनवास में छोड़ा था न उन्हें? सीताजी को। वनवास में से एक राजा उन्हें बहिनरूप से ले गया। उसके घर में दो पुत्र जन्मे लव-कुश। पश्चात् बहुत वर्ष में खबर पड़ी कि यह हमारी माता यहाँ कैसे? पश्चात् उन्हें खबर पड़ी कि तुम्हारे पिताजी ने ऐसा किया है। उनके साथ युद्ध करना है। उन्हें नारद मिल गये। नारद मिल गये। महा चरमशरीरी जीव है। लव-कुश उस भव में अन्त में मुक्ति है। उन्हें यह भव ही अन्तिम है। ऐसे चरमशरीरी में भी यह क्या? हमारी माता महासती, महापतिव्रता धर्मात्मा ज्ञानी

समकिती थी। उन्हें ऐसा वेश-वनवास! बड़ा युद्ध किया। ... थे। एक ओर राम और लक्ष्मण तथा एक ओर दोनों। ऐसा युद्ध... ऐसा युद्ध... नारद देखे। प्रसन्न हो। बहुत ऐसे हैं, यह तो एक दृष्टान्त।

मुमुक्षु : सीताजी की अग्निपरीक्षा नाटक में देखी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाटक में देखी। ...ज्वाला जलती थी। साथ में गये। लक्ष्मण भी आये, हों! राम को ऐसा हुआ, यह क्या है? यह कौन है? राम और बलदेव कोई दूसरे जगे? दो नहीं होते। भगवान कहते हैं, राम और बलदेव एक ही होते हैं, दो नहीं होते। यह क्या? वहाँ नारद आते हैं। लड़कों को कहते हैं, यह तुम्हारे पिता हैं, जाओ। चरण वन्दन करो। लड़ाई-बड़ाई हो गयी ठीक से। अहो! यह तो पिताजी, हम तो तुम्हारे पुत्र हैं। परन्तु यह तो तुम्हारा जरा बल देखा। लो, ऐसे लड़े और अभी तो ऐसे झगड़ालू होते हैं न, नारद लगता है। नहीं कहते? कलह करके दूर रह जाये। दूर रह जाये। अब तुम सिर फोड़ो। आहाहा! इसी प्रकार यह नारद की भाँति कषाय करे, एक-दूसरे में खटपट करावे। लिंग लजाता है।

अथवा इस गाथा के चौथे पद का पाठान्तर ऐसा है... नारद लिंगी जैसा हो जाये, ऐसा कहते हैं। अर्थात् वेश के प्रमाण में उसकी चेष्टा न हो तो वह तो वेश को भी लजाता है। **इस गाथा के चौथे पद का पाठान्तर ऐसा है 'लिंगं णासेदि लिंगीणा' इसका अर्थ - यह लिंगी अन्य जो कोई लिंगों के धारक है, उनके लिंग को भी नष्ट करता है,...** सब ऐसे ही लगते हैं यह तो। एक वेशधारी को वीतरागभाव को प्रगट न करे और ऐसे कौतुहल करे तो उसके कारण दूसरे धर्मात्मा सच्चे हों, उन्हें भी इसके कारण ऐसा होता है कि सब ऐसे के ऐसे लगते हैं यह। दूसरे सच्चे वेशधारी धर्मात्मा आनन्द के अनुभवी ऐसो को लिंग को भी यह लिंगी लजाता है। समझ में आया? बोले ही ऐसा। संप हो वहाँ कुसंप कराऊँ। द्रोपदी में भी ऐसा किया था। द्रोपदी घर में बैठी थीं और नारद आये। द्रोपदी खड़ी नहीं हुई। ...इन्हें पाँच पाण्डव और अर्जुन का जोर लगता है। अर्जुन थे बाणावली (धनुर्धर)। ...द्रोपदी तो अर्जुन की स्त्री थी न। पाँच की नहीं थी, हों! वे तो लोग सिद्ध करते हैं। सती, महासती है। उन लोगों ने सिद्ध किया है।

महासती अर्जुन को विवाहा था। फिर नारद को वन्दन नहीं किया। नारद कहे, इसका गर्व उतारूँ। वह विवाद करावे। जाकर धातकीखण्ड का एक राजा था। बहुत रानियाँ। महापुण्यवन्त। वहाँ जाकर इस द्रोपदी का चित्र चित्रित कर राजा को बताया। ओहो! कौन है यह ? अरे! तेरी यह सब रानियाँ थोथी (लगे), ऐसी है यह। ऐई! ... ले आओ जहाँ हो वहाँ से। ले आये भाई। देव था देव। देव था उसका उसमें कोई प्रेमी देव होगा। (उससे कहा), जाओ, द्रोपदी को ले आओ। अब ? सवेरे उठे वहाँ द्रोपदी नहीं मिलती। अर्जुन को लगा, अरे! कहाँ गयी ? खोज करने से कहीं हाथ नहीं आवे। करते... करते... करते... कितना समय गया। और नारद आये।

मैं धातकीखण्ड में गया था, तब उसके जैसी कोई थी, ऐसा करके (बात करते हैं)। ऐसे के ऐसे। वहाँ उसको ऐसा कहे कि धातकीखण्ड में मैं एक बार गया था, इसके जैसी है। श्रीकृष्ण को (लगा), सब इसका खेल है। इसका सब लक्षण लगता है। ऐसा कहा, वहाँ भागा। परन्तु पता हाथ लग गया। फिर पाण्डव गये हैं, उसे ले आये, द्रोपदी को ले आये। विवाद में भी यह। ऐसे होते हैं न कितने ही ? घर में भी ऐसे होते हैं, परिवार में भी ऐसे होते हैं, जाति में भी ऐसे होते हैं सब। माणेकलालभाई! ऐसे साधु जहाँ-तहाँ क्लेश करावे, सम्प में कुसम्प डलावे। क्या कहलाता है ? संघ के दो भाग करावे। एक पक्ष मेरा और एक पक्ष तेरा। अरे! क्या है भगवान यह ? गाँव-गाँव में विवाद।

यह लिंगी अन्य जो कोई लिंगों के धारक हैं, उनके लिंग को भी नष्ट करता है, ऐसा बताता है कि लिंगी सब ऐसे ही हैं। ऐसे के ऐसे होंगे सब। भाई! महा धर्मात्मा है। और ऐसे लिंग के कारण सब लिंगियों को ऐसा मनावे, ऐसा है नहीं, भाई! आहाहा!

भावार्थ :- लिंगधारी होकर भी पापबुद्धि से... मिथ्यादृष्टि राग में एकाकार हो गया और बाहर साधु नाम धरावे, नग्न। उसे आत्मा का हित है नहीं। परन्तु अहित करनेवाला है। **लिंगधारी होकर भी पापबुद्धि से कुछ कुक्रिया करे, तब उसने लिंगपने को हास्यपात्र समझा...** साहूकार का बड़ा वेश पहनकर फिर ठग होता है। ठग। अरे! साहूकार को लजाया, ऐसा नहीं कहते ? **कुछ कार्यकारी नहीं समझा।** अरे!

ऐसा लिंग नग्नपना, उसमें ऐसा कलह, क्लेश, वाद-विवाद, तूफान नहीं होता। उसे नहीं होता।

लिंगीपना तो भावशुद्धि से शोभा पाता है,... भावशुद्धि से शोभे, तो शोभे। आहाहा! जिसे बाह्य में वस्त्र का एक धागा नहीं, ऐसी अन्तर में वीतरागी दशा हो तो वह शोभता है। नहीं तो लजाता है। आहाहा! देखो! कुन्दकुन्दाचार्य के समय में भी कोई ऐसे होते हैं। उस समय का यह शास्त्र है। दो हजार वर्ष हुए। दो हजार वर्ष पहले लिखा हुआ। **जब भाव बिगड़े, तब बाह्य कुक्रिया करने लग गया, तब इसने उस लिंग को लजाया और अन्य लिंगियों के लिंग को भी कलंक लगाया,...** ऐसे के ऐसे सब लगते हैं, चल निकले। ऐसा कहते हैं, हों! आहाहा!

लोग कहे कि लिंगी ऐसे ही होते हैं अथवा जैसे नारद का वेश है, उसमें वह अपनी इच्छानुसार स्वच्छन्द प्रवर्तता है, वैसे ही यह भी वेशी ठहरा,... नारद स्वइच्छा से चाहे जहाँ कलह करावे, क्लेश करावे, अन्तःपुर में घुस जाये। ऐसे स्वयं ब्रह्मचारी, हों! परन्तु कलह कराने का भाव बहुत अधिक। बाकी रानियों में जाये... अकेला ऊपर से उतरे, रानियों के अन्तःपुर में। कोई उसे शंका नहीं। क्लेश का भाव। फिर प्रसन्न हो। ऐसा क्लेश हो। पिता-पुत्र लड़े, कुटुम्बी लडे, एक राजा के साथ दूसरा राजा लड़े तो प्रसन्न हो। आहाहा! इसी प्रकार यह कहते हैं कि संघ में भेद पड़ावे और लज्जा आवे नहीं इसे। जहाँ तहाँ क्लेश करावे, ऐसा कहते हैं।

इसलिए आचार्य ने ऐसा आशय धारण करके कहा है कि जिनेन्द्र के वेश को लजाना योग्य नहीं है। वीतरागस्वरूप प्रभु शान्त धाम। जिसे शुभ विकल्प दया, दान का आवे, वह भी जहाँ दुःखरूप लगता है, ऐसी जहाँ दशा, उसे लिंग में दूसरी कुक्रिया... अन्तर का भगवान शान्तस्वभाव, उसमें जहाँ उतरे हैं, उसे ऐसी कुक्रिया राग का भाव किसका हो? ऐसा लजानेयोग्य नहीं है।

गाथा-४

आगे लिंग धारण करके कुक्रिया करे उसको प्रगट कहते हैं –

णच्चदि गायदि तावं वायं वाएदि लिंगरूवेण।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो ।।४।।

नृत्यति गायति तावत् वाद्यं वादयति लिंगरूपेण।
सः पापमोहितमतिः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ।।४।।

जो लिंग-धारी नृत्य गायन वाद्य-वादन को करे।
वह पाप-मोहित-मती तिर्यग्योनि है नहिं श्रमण है।।४।।

अर्थ –ह्वजो लिंगरूप करके नृत्य करता है, गाता है, वादित्र बजाता है, सो पाप से मोहित बुद्धिवाला है, तिर्यंचयोनि है, पशु है, श्रमण नहीं है।

भावार्थ – लिंग धारण करके भाव बिगाड़कर नाचना, गाना, बजाना इत्यादि क्रियायें करता है, वह पापबुद्धि है, पशु है, अज्ञानी है, मनुष्य नहीं है, मनुष्य हो तो श्रमणपना रक्खे। जैसे नारद भेषधारी नाचता है, गाता है, बजाता है वैसे यह भी भेषी हुआ तब उत्तम भेष को लजाया, इसलिए लिंग धारण करके ऐसा होना युक्त नहीं है ।।४।।

गाथा-४ पर प्रवचन

आगे लिंग धारण करके कुक्रिया करे, उसको प्रगट कहते हैं :-

णच्चदि गायदि तावं वायं वाएदि लिंगरूवेण।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो ।।४।।

अर्थ :- जो लिंगरूप करके नृत्य करता है... नाचता है, हें! **गाता है वादित्र बजाता है...** साधु होकर, नग्न होकर। आहाहा! वह कैसा है? **सो पाप से मोहित बुद्धिवाला है,...** वीतरागस्वभाव आत्मा का, ऐसा तो जिसने प्रगट किया नहीं और ऐसे

नाच दुनिया को नाच... नाचना अर्थात् घनघनाहट पैर का ठिकाना नहीं ऐसा। चलते-चलते भी मानो नाचता हो न ऐसे-ऐसे पैर रखे। शान्त... शान्त... चाहिए। उसके बदले नृत्य जैसे पैर करे, गाये, वाजिंत्र बजाये। स्वयं हारमोनियम बजाये। लो! साधु हुआ हो। कण्ठ से गाये। उस वेश को शोभा देता है? ऐसा नग्नपना, ऐसे वाजिंत्र बजाना।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... यह तो सही परन्तु उसे यह शोभे? वीतरागता जहाँ छा गयी होती है। शान्त... शान्तरस जिसका छा गया होता है। उसमें ऐसी क्रिया होती है? कहते हैं कि उसका भान उसे नहीं है। आहाहा!

वह तो **तिर्यंचयोनि है,...** तिर्यंचयोनि है। **पशु है,...** लो! तिर्यंचयोनि का अर्थ पशु किया है। **श्रमण नहीं है।** वह साधु नहीं है। आहाहा!

भावार्थ :- लिंग धारण करके भाव बिगाड़कर नाचना, गाना, बजाना इत्यादि क्रियायें करता है, वह पापबुद्धि है, पशु है, अज्ञानी है,... आहाहा! कठोर भाषा। कहा था न? एक बार ध्रुव का नाटक था। भावनगर। ध्रुव नहीं? ध्रुव और प्रहलाद। ध्रुव का नाटक था। १९६९ का वर्ष होगा? संवत् ६९। ध्रुव का नाटक था। छोटा बालक है। उसके पिता ने नयी से विवाह किया है। वह पुरानी का लड़का था। और अकेला बाबा हो गया। लकड़ी की घोड़ी होती है न, ऐसी। बैठा। छोटी उम्र का आठ वर्ष का। राजा का कुँवर था। दो देवियाँ आयी ऊपर से। नाटक में। आते हैं न वे पैर रखे और डोरी उठे। ऊपर से उतरे। दो ओर से देवियाँ उतरीं... ऐसे बैठा था जंगल में। ऊपर से दो उतरीं। हावभाव चेष्टा बहुत की। अरे! राजकुमार! देखो! हमारा शरीर तो देखो! कोमल शरीर, ऐसी आँख, ऐसे पैर। देखो। एक बार तू देख तो सही हमारे सामने कि यह कौन है? बहुत घनघनाहट होने के पश्चात् ध्रुव इतना बोलता है, माता! तेरे शरीर की कोमलता, सुन्दरता, नरमाई का क्या कहना? परन्तु कदाचित् एकाध भव करना होगा तो तेरे गर्भ में आऊँगा। ले! दूसरा तो कुछ है नहीं। आहाहा! हें!

भावनगर की बात है। थियेटर बनाया था? ६९, संवत् १९६९। कितने वर्ष हुए? ५८। ऐसे तो नाटक प्रदर्शित करे न! ऐसे पर्दे होते हैं न? पूरा पर्दा वापस आधा-आधा

हो हरा। आधा ऐसे, आधा ऐसे। जंगल जैसा दिखाव करे न। ऐसे गहरा-गहरो लगे। उसमें ऊपर से दो देवी आयीं। बहुत चेष्टा करने के पश्चात् इतना बोले, माता! तेरे शरीर की सुन्दरता, कोमलता, नरमाई तू कहती है ऐसी ही है। माता! कदाचित् एकाध देह धारण करना हो, इस भव में मुक्ति न हो तो अवतरित होऊँगा, तेरे गर्भ में आऊँगा। वह तो लज्जित होकर हाय-हाय भागी। पहले के नाटक ऐसे वैरागी प्रदर्शित करते थे, हों! वह तो फिल्म-बिल्म। एक ऐसे आँख करे और एक ऐसे करे। यह बाहर में रखते हैं न फोटो, देखो न, रास्ते में थे बड़े-बड़े।

मुमुक्षु : ऐ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय सिनेमा था ही नहीं। वैराग्य के नाटक। मीराबाई, नरसिंह मेहता, अनुसूइया। एक था, कामकुण्डला, एक नाटक था। सुधरा हुआ... बिगड़ा हुआ जमाना है। आहाहा! पैसा दे परन्तु उसे वैराग्य लेकर आवे अन्दर से।

कहते हैं कि साधु वेश धारण कर ऐसा करे तो **बिगाड़कर नाचना, गाना, बजाना इत्यादि क्रियायें करता है, वह पापबुद्धि है...** वैराग्य नहीं होता, वैराग्य नहीं होता। आहाहा! जिसे इन्द्र के इन्द्रासन भी सड़े हुए तृणवत् लगें। धर्मी की दृष्टि में आत्मा के आनन्द का जहाँ स्वाद है, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के समक्ष, यह चैतन्य का अतीन्द्रिय आनन्द स्वाद है। आहाहा! ऐसा भगवान सहजानन्द प्रभु आत्मा, स्वाभाविक आनन्द की मूर्ति, वह तो है आत्मा। ऐसे आनन्द का जहाँ भान और अनुभव में स्वाद आया है, उसे इन्द्र के इन्द्रासन भी जहर-जहर के टोकरे जैसे लगते हैं। आहाहा! यह ऐसे गाना, नाचना उसे कैसे हो? समझ में आया?

मुनिपना, दिगम्बरपना अर्थात्... ओहोहो! धन्य अवतार! जिन्हें एक वस्त्र का धागा लेने का विकल्प नहीं, इतनी वैराग्य दशा। उनके लिये आहार-पानी बनाया हो तो लेना नहीं। इतनी निस्पृहता। ऐसी दशा जिसे हो, उसे ऐसा नहीं हो सकता। नाचना, गाना, बजाना (नहीं हो सकता)। अज्ञानी है, कहते हैं, पापबुद्धि ऐसा करता है। पशु है। **मनुष्य नहीं है,...** अर्थ किया है कि **मनुष्य हो तो श्रमणपना रखे**। देखी भाषा! आहाहा! मनुष्य हो तो साधुपना रखे, भाव वीतराग रखता है। यह तो मनुष्य नहीं, ढ़ोर है, कहते

हैं। आहाहा! मन्यते इति मनुष्य, ज्ञायते इति मनुष्य। अपने स्वरूप के आनन्द को जाने, उसे मनुष्य कहते हैं। समझ में आया? दूसरे मनुष्य रूपेण मृगा चरंति। मनुष्य के रूप में मृग है। आहाहा!

कहते हैं कि ऐसे मुनि को **जैसे नारद वेशधारी नाचता है, गाता है, बजाता है, वैसे यह भी वेशी हुआ। तब उत्तम वेश को लजाया, इसलिए लिंग धारण करके ऐसा होना युक्त नहीं है।** आहाहा! देखो न! लोक में कैसे सज्जन... नहीं यह चांपावाला की बात की थी? एक चांपावाला हुआ है, सुना है? काठी। जेतपुर में। बहुत पुण्यशाली। छोटी उम्र का, वर्ष, डेढ़ वर्ष का। पुण्यशाली कहीं से लेकर हुआ। आँख ऐसे गम्भीरता... गम्भीरता... झूले में सो रहा है अभी। उसमें उसके पिता ने उसकी माँ की जरा कुछ मस्करी की। ऐसे मुँह कर डाला। ऐसा कोई तेज लेकर आया हुआ पहले से। काठियाणी। चांपावाला। वार्ता आती है। कथा में पहले आता था। कथा क्या, तुम्हारे स्कूल में आता था। उसकी माँ की कुछ मस्करी करते हैं। लड़का वर्ष या डेढ़ वर्ष का। परन्तु तेज इतना और ऐसा था। उसकी माँ को लगा कि अर..र..! इस लड़के ने ऐसा देखा। वह अन्दर जाकर जल गयी। यह जेतपुर काठी का। जलकर मरी। आहाहा! देखो! ऐसे तो लोग लौकिक में सज्जन थे।

फिर कोई बड़ा गाँव था, वहाँ उसे लड़का नहीं था। एक गढवी आया यहाँ चांपा के पिता के पास। स्त्री तो मर गयी। चांपा लड़का होशियार हो गया। चांपा मेरे गाँव में आओ तुम। प्रसन्नता से रहो। बोली बोला। यह गढवी नहीं? वह क्या कहलाता है? बारोट। बारोट-बारोट। बारोट समझते हो? बहुत प्रसन्न हुए। माँग-माँग। माँगो वह दूँ। दरबार! ध्यान रखो, नहीं दिया जा सकेगा। मुश्किल पड़ेगी। मैं मागूँगा तो। माँग, वह था न बड़ा काठी। तुम मेरे घर में आओ मेरे गाँव में। मेरे राजा को पुत्र नहीं है। तुम वहाँ आओ। तुम्हारा काठियाणी से विवाह कराऊँ और चांपा जैसा लड़का हो और मुझे में राज में बैठाना है। हाँ तो किया था, इसलिए साथ तो निकले। चल भाई। हाँ किया, इसलिए फिर वचन तो बदले नहीं। चले। एकाध गोस गये। हे गढवी! तू मुझे वहाँ ले जाता है। परन्तु वह चांपा कहाँ से आयेगा? वह कौन चांपा, वह चांपा और चांपा की माँ कहाँ से होगी वहाँ? जिसने ऐसा चांपा ने किया, वहाँ वह जलकर मर गयी, तो

उसके कूख से चांपा होता है। इसी प्रकार तू काठियाणी जिसे विवाहयेगा, वहाँ चांपा हो, ऐसी काठियाणी नहीं होती। रहने दे, व्यर्थ में हैरान होगा। बापू! जाओ, चांपा जाओ वापस। चांपा वापस गया। यह बोरडी में आम नहीं पकते। वह तो चांपा उसकी माँ के कूख से (जन्मे)। इसे ऐसा जरा हुआ, वहाँ जलकर मर गयी। ऐसी सज्जन महिला। पति को भी बोलते-बोलते ऐसा हो गया कि आहाहा! ...स्त्री! लड़का जरा ऐसे मुँह फेरता है बालक। तथापि उसे इतना सुहाया नहीं। उसकी कूख से चांपा होता है। ऐसे बोरड़ी के कूख से आम नहीं पकते। कहाँ से काठियाणी लायेगा तू? पधारो। उसने वचन दिया था, इसलिए चला तो सही साथ में। वापस आया।

इसी प्रकार पहले लोग ऐसे थे, भाई! सेठ! धर्म नहीं अभी तो। परन्तु ऐसे नैतिक मनुष्य। तो ऐसे वेशधारी को ऐसे आचरण करे, उसे यह शोभे? कहते हैं। जहाँ मोक्ष के मोती और मोक्ष में जाने की जागृतदशा हुई है और नग्न दिगम्बरदशा जहाँ बाहर वर्तती है, उसकी क्या बात करना!

उत्तम वेश को लजाया, इसलिए लिंग धारण करके ऐसा होना युक्त नहीं है। लो! आहाहा! आचार्य को भी जिनवर का दिगम्बर लिंग धारण करके और कहीं भी उसके शरीर के अवयवों में, चेष्टा में कोई विकृत अवयव दिखायी दे तो वह चेष्टा धर्मी को शोभा नहीं देती। आहाहा! आनन्द की क्रीड़ा में मौज मनाते, बाह्यलिंग भले दिगम्बर हो, नग्न हो, माता से जन्मा ऐसा, परन्तु अन्दर में आनन्द की मौज मनाते हैं। उसकी चेष्टा में कितनी अनुकूलता और कितनी सरलता, सादगी और वीतरागता की झाँकी शरीर में दिखती हो। नग्न मुनि अर्थात्... आहाहा! समझ में आया?

आज कोई आये थे दो। चले गये लगते हैं। वे नहीं? ...वे। आये थे आज। मैं जब दर्शन करता था, तब आये थे बराबर। चले गये। आये होंगे। मन्दिर हुआ है और खबर है न सोनगढ़। ... मेरी नजर नहीं थी। परन्तु लोग कहते थे। मैं तो ऐसे अन्दर दर्शन करता था। वे दो आये थे। ...क्या कहलाते हैं वे? सलाल में थे न वे।

गाथा-५

आगे फिर कहते हैं –

सम्मूहदि रक्खेदि य अट्टं झाएदि बहुपयत्तेण।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो ।।५।।

समूहयति रक्षति च आर्त्तं ध्यायति बहुप्रयत्नेन।
सः पापमोहितमतिः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ।।५।।

जो संग्रहे रक्खे बहुत श्रम पूर्वक ध्या आर्त को।
वह पाप–मोहित–मती तिर्यग्योनि है नहिं श्रमण है।।५।।

अर्थ – जो निर्ग्रन्थ लिंग धारण करके परिग्रह को संग्रहरूप करता है अथवा उसकी वांछा चिंतवन ममत्व करता है और उस परिग्रह की रक्षा करता है, उसका बहुत यत्न करता है, उसके लिए आर्त्तध्यान निरंतर ध्याता है, वह पाप से मोहित बुद्धिवाला है, तिर्यंचयोनि है, पशु है, अज्ञानी है, श्रमण तो नहीं है, श्रमणपने को बिगाड़ता है ऐसे जानना ।।५।।

गाथा-५ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं :-

सम्मूहदि रक्खेदि य अट्टं झाएदि बहुपयत्तेण।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो ।।५।।

'**तिरिक्खजोणी**' शब्द प्रयोग किया है। देखा! उसकी उत्पत्ति तिर्यंच में से हुई है। यह तिर्यंच जैसा है। उसे वीतराग की उत्पत्ति हुई नहीं। आत्मा की योनि-स्थान तो आनन्द की उत्पत्ति का स्थान भगवान है। अतीन्द्रिय आनन्द और वीतरागता की उत्पत्ति का स्थान आत्मा है। ऐसा जिसे उत्पन्न हुआ हो और नग्न दिगम्बर वेश हो, तब तो दोनों शोभा देते हैं, कहते हैं। परन्तु अन्तर के आनन्द की योनि उत्पन्न की नहीं। अन्दर में से

आनन्द और वीतरागता की नहीं तो तिर्यंच योनि है, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : भाषा बहुत कड़क है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कड़क है। वस्तु का स्वरूप है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : परिग्रह...

पूज्य गुरुदेवश्री : परिग्रह ऐसा है। उसे बदले क्या हो? उसे नुकसान है परन्तु अब... वस्तु की स्थिति कोई दूसरी है। बापू!

जहाँ सम्यग्दर्शन की दशा भी दूसरी है। साधुपने की, वहाँ क्या बात! आहाहा! धन्य अवतार जिनका! जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द का छलाछल भरपूर भगवान पर्याय में उछल गया है-अवस्था में उछल गया है। आनन्द की मौज माँडनेवाले, वीतरागी सुख के स्वादिया, उन्हें यह ऐसी चेष्टायें नहीं होती। समझ में आया? उनका दिगम्बर वेश शोभता है। बाकी बाहर के वेश लेकर अन्तर का ठिकाना नहीं। लजाते हैं।

अर्थ :- जो निर्ग्रन्थ लिंग धारण करके... भाषा ऐसी लेते हैं न, देखो न! पाठ में ऐसा आया था न? '**जिणवरिंदाणं**' लिंगधारी। ऐसा है न? देखो न! '**लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं**' तीसरी गाथा का पहला पद। जिसने जिनवर का लिंग धारण (किया)। जैसा वीतराग ने लिंग धारण किया था, तीर्थंकरों (ने), ऐसा जिसने लिंग धारण करके ऐसे **परिग्रह को संग्रहरूप...** लो! आहाहा! पैसा रखे, पैसा माँगे। इतना साथ में चाहिए। तीर्थयात्रा करने के लिये। यह शोभा नहीं देता, बापू!

निर्ग्रन्थ लिंग धारण करके... जिसमें एक वस्त्र का धागा नहीं, ऐसा लिंगधारी। **परिग्रह को संग्रहरूप करता है अथवा उसकी वांछा चिन्तवन ममत्व करता है...** ऐसा हो तो ठीक, ऐसा हो तो ठीक। पैसा इकट्ठा करे। देखो न! अभी तो यह सब बहुत चलता है न! **और उस परिग्रह की रक्षा करता है...** देखो! पैसे का ब्याज उपजावे, पैसा इकट्ठा करे। दूसरे के नाम से परन्तु स्वयं उसका रक्षक हो। यह तो वह का वह है। उल में से निकलकर चूल में पड़ा। यह विवाद हुआ सम्मेदशिखर में। साधु को हुआ था। पैसे के लिये। साधु साधु में मोरपिच्छी उड़ी थी।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। क्या हो?

परिग्रह की रक्षा करता है, उसका बहुत यत्न करता है,... पैसा इकट्ठा करावे, माँगे इतने-इतने मन्दिर में चाहिए है, अमुक में चाहिए है, ऐसा करके रखे। अरे! यह तो कुछ धर्मात्मा को शोभा देता है? **उसके लिये आर्तध्यान निरन्तर ध्याता है,...** कहो, परिग्रह रखे, उसकी चिन्ता करे, कोई उसे न ले जाये तो ब्याज उपजे। ऐसा हो, किसी समय दु:ख हो तो काम आवे। धर्म का काम... तेरा रागरहित धर्म है या उसमें क्या धूल में? पैसे से धर्म होता होगा? ... पढ़े, उसमें तुझे क्या है? उसे पढ़ना और उसे ज्ञान उसके कारण से होता है। चिन्ता करे, पाठशाला में इकट्ठा करते हैं न पैसा? पैसा माँगे। ऐसा न कहे परन्तु यह पाठशाला के लिये करो, विद्यार्थियों के लिये करो। यह कहीं साधु का काम है? ओहोहो! आचार्य ने भी बात को बहुत खुल्ली रख दिया है।

उसके लिये आर्तध्यान... चिन्तवना वह रहे। रात्रि में उठे तो चिन्तवना। अरे! उसका करना। यह पाठशाला चलती नहीं। नाम की रखी, बनायी। नाम डाला इसके ऊपर उसका। चलती नहीं। अब इसकी चिन्ता इसे होती है। सेठिया एकाध दो रखो कुछ पाँच-पच्चीस हजार (खर्च करे)। यह सब मूढ़ के ध्यान हैं। इसका काम क्या है? आहाहा! **आर्तध्यान निरन्तर ध्याता है।**

मुमुक्षु : लोगों का भला हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोगों का भला होता है तो इससे होता होगा? यह लोक का भला तो वह स्वयं आत्मा के ऊपर देखे और आत्मा का ध्यान करे तो भला होगा। बाह्य कारण से भला होता होगा?

वह पाप से मोहित बुद्धिवाला है, तिर्यंचयोनि है, पशु है, अज्ञानी है, श्रमण तो नहीं है, श्रमणपने को बिगाड़ता है, ऐसे जानना।

गाथा-६

आगे फिर कहते हैं –

कलहं वादं जूवा णिच्चं बहुमाणगव्विओ लिंगी।
[1]वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण।।६।।

कलहं वादं द्यूतं नित्यं बहुमानगर्वितः लिंगी।
व्रजति नरकं पापः कुर्वाणः लिंगिरूपेण।।६।।

बहु मान गर्वित लिंगि नित लिंग रूप से करता हुआ।
झगड़ा जुआ बहु वाद पाप से नरक में जाता सदा।।६।।

अर्थ – जो लिंगी बहुत मान कषाय से गर्ववान हुआ निरंतर कलह करता है, वाद करता है, द्यूतक्रीड़ा करता है, वह पापी नरक को प्राप्त होता है और पाप से ऐसे ही करता रहता है।

भावार्थ – जो गृहस्थरूप करके ऐसी क्रिया करता है, उसको तो यह उलाहना नहीं है, क्योंकि कदाचित् गृहस्थ तो उपदेशादिक का निमित्त पाकर कुक्रिया करता रह जाय तो नरक न जावे, परन्तु लिंग धारण करके उसरूप से कुक्रिया करता है तो उसको उपदेश भी नहीं लगता है, इससे नरक का ही पात्र होता है।।६।।

गाथा-६ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं :-

कलहं वादं जूवा णिच्चं बहुमाणगव्विओ लिंगी।
वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण।।६।।

भारी कठोर गाथा। नरक में जायेगा, कहते हैं। आहाहा!

१. पाठान्तर – 'वच्च' 'वज्ज'।

अर्थ :- जो लिंगी बहुत मान कषाय से गर्वमान हुआ... अभिमान करके हम साधु हैं, हमको ऐसा करना चाहिए, हमारा यह वचन यह होने का। **निरन्तर कलह करता है,...** जहाँ हो वहाँ क्लेश... क्लेश... क्लेश... आहाहा! **वाद करता है,...** वाद-विवाद के झगड़े खड़े करे। **द्यूतक्रीड़ा करता है...** यह द्यूतक्रीड़ा-द्यूतक्रीड़ा आदि। क्या कहलाता है तुम्हारे? चोपड़। खेलते हैं न? गाय, भैंस, घोड़ा होते हैं न लकड़ी के। शतरंज-शतरंज खेलते हैं। आहाहा! फुरसत हो तो फिर काम क्या हो? **वह पापी नरक को प्राप्त होता है...** ऐसे कठोर उसके पाप के परिणाम रौद्रध्यान के हो जाते हैं। नीचे नरक में जाता है। नारकी होता है, कहते हैं। वहाँ तक ले गये, लो! वहाँ उसे वेश आड़े नहीं आता। बुरे भाव किये हों तो सीधा नरक में जाता है। उसका वेश पड़ा रहे। वेश को क्या है? आहाहा! **पापी नरक को प्राप्त होता है और पाप से ऐसे ही करता रहता है।** लो! ऐसे पाप करके ऐसा वर्तता है। धर्मात्मा को ऐसा नहीं हो सकता।

भावार्थ :- जो गृहस्थरूप करके ऐसी क्रिया करता है... न्याय देते हैं थोड़ा। **गृहस्थरूप करके ऐसी क्रिया करता है, उसको तो यह उलाहना नहीं है,...** उसे उलाहना, यह नहीं। **क्योंकि कदाचित् गृहस्थ तो उपदेशादिक का निमित्त पाकर कुक्रिया करता रह जाय...** उपदेश मिले तो। आहाहा! और यह तो हो गया बहुत बड़ा गुरु। अब इसे उपदेश कौन दे? उल्टी पटरी चढ़ गया हो उसे। **कदाचित् गृहस्थ तो उपदेशादिक...** तो उसे वैराग्य हो जाये उसे स्वयं को। क्योंकि अपने गृहस्थ।

कुक्रिया करता रह जाय तो नरक न जावे, परन्तु लिंग धारण करके उसरूप से कुक्रिया करता है तो उसको उपदेश भी नहीं लगता है,... लो! यह तो उपदेशक स्वयं होता है। इसे दूसरे का उपदेश किसका लगे? हम उपदेशक हैं। हमें कौन सुनावे? वह बुरे परिणाम करे, आर्तध्यान करे, रौद्रध्यान करे, उसे उपदेश भी दूसरे का लगे नहीं। **इससे नरक का ही पात्र होता है।** वह नरक की गति में ही जानेवाला है। इसलिए मुनियों को ऐसा करना नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-७

आगे फिर कहते हैं –

पाओपहदभावो सेवदि य अंबभु लिंगिरूवेण।
सो पावमोहिदमदी हिंडदि संसारकंतारे।।७।।

पापोपहतभावः सेवते च अब्रह्म लिंगिरूपेण।
सः पापमोहितमतिः हिंडते संसारकांतारे।।७।।

जो पाप उपहत भाव सेवे लिंग में अब्रह्म को।
है पाप–मोहित–मती भव–वन में भटकता फिरे वो।।७।।

अर्थ – पाप से उपहत अर्थात् घात किया गया है, आत्मभाव जिसका ऐसा होता हुआ जो लिंगी का रूप करके अब्रह्म का सेवन करता है, वह पाप से मोहित बुद्धिवाला लिंगी संसाररूपी कांतार–वन में भ्रमण करता है।

भावार्थ – पहिले तो लिंग धारण किया और पीछे ऐसा पाप परिणाम हुआ कि व्यभिचार सेवन करने लगा, उसकी पाप बुद्धि का क्या कहना ? उसका संसार में भ्रमण क्यों न हो ? जिसके अमृत भी जहररूप परिणमे उसके रोग जाने की क्या आशा ? वैसे ही यह हुआ, ऐसे का संसार कटना कठिन है।।७।।

प्रवचन-१७७, गाथा-७ से ९, रविवार, पौष कृष्ण ६, दिनांक १७-०१-१९७१

लिंगपाहुड़। सातवाँ पाहुड़ है। छह पाहुड़ पूरे हो गये। आचार्यदेव कुन्दकुन्दाचार्य महाराज (कहते हैं कि) साधुपना, नग्नपना हो और अन्तर में भान न हो, आत्मा का दर्शन वह प्रथम सम्यग्दर्शन धर्म है, ऐसे सम्यग्दर्शन को पाये बिना अर्थात् कि आत्मा का स्वभाव शुद्ध ज्ञान और आनन्द है, ऐसा जिसे अन्तर श्रद्धा में, अनुभव में आया नहीं और ऐसे आत्मा के आत्मज्ञान बिना नग्न साधु हो जाये, वे सब वेश को लजावे और कुक्रिया करे, उसकी बात अभी चलती है। समझ में आया? अधिकार तो बहुत सब आ गया न! यह तो अब अन्तिम लिंग और शील की बात है।

साधुपना नग्नदशा होती है। ओहो! वह आनन्द की दशा। जिस अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव में उसे पूर्ण प्राप्ति की अभिलाषा, पूर्ण आनन्द की मुक्तिदशा, ऐसे जीवों का नग्न वेश शोभता है। परन्तु जिसे ऐसा अन्तर भान नहीं और एकदम बाहर के क्रियाकाण्ड में जुड़े, स्त्री-कुटुम्ब छोड़ दिया परन्तु भाव तो शुद्ध हुआ नहीं। शुद्धभाव जो आत्मा महा सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध स्वभाव का भण्डार, ऐसा शुद्धता का अन्तरभान हुए बिना साधु के लिंग धारण करे, उसे यहाँ निषेध किया है। इसकी अपेक्षा तो गृहस्थाश्रम में भी रहकर आत्मज्ञान और आत्मदर्शन का अनुभव करे तो भी वह धर्म के पन्थ में-मार्ग में है। आत्मा के भान बिना साधु हो, उसकी बात वर्णन करते हैं।

पाओपहदभावो सेवदि य अंबभु लिंगिरूवेण।
सो पावमोहिदमदी हिंडदि संसारकंतारे।।७।।

सातवीं गाथा।

अर्थ :- पाप से उपहत अर्थात् घात किया गया है... आतमभाव। आत्मा का आनन्द, ज्ञानस्वभाव। उसे मिथ्यात्व और अज्ञान द्वारा जिसका घात (किया गया) है। **जिसका ऐसा होता हुआ जो लिंगी का रूप करके...** नग्न रूप धारण करे। अन्दर का तो भान नहीं, इसलिए **अब्रह्म का सेवन करता है...** शान्तिभाई! खबर है या नहीं? नहीं? उस दिन की खबर नहीं? (संवत्) १९८६ के वर्ष।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह। मर गया। खबर है न। वहाँ मिला था। ८६ में मैं वहाँ था भावनगर। और वे आये थे। तीन नग्न साधु थे। परन्तु आत्मा का भान नहीं होता। बाहर का मिथ्या बड़प्पन। वजुभाई वहाँ विनती करने गये पालीताणा। मुझे खबर है यह साधु है। देखें कहा, साधु कैसे थे। सम्प्रदाय में थे न तब ८६ में। ८६ में। कितने वर्ष हुए? ४५ वर्ष पहले की बात है। वहाँ तो कोई ठिकाना नहीं होता। आहाहा!

वस्तु अन्तर आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु है, उसकी अन्तर में दृष्टि, भान और आत्मा के आनन्द का स्वाद जहाँ आया नहीं, ऐसे जीव वेश धारण करे तो उसे अब्रह्म सेवन के भी परिणाम हो जाते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? स्वरूप भगवान आत्मा जिसके

अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए बिल्ली के कलेवर जैसे लगें, ऐसा कहते हैं। ऐसी चीज़ है। आहाहा! इन्द्र के इन्द्रासन और इन्द्राणियों के विषय, जिसे आत्मा का भान होता है सम्यक् अनुभव (होता है), उसे वे सब सड़ा हुआ श्वान हो, ऐसा उसे लगता है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा सत् शाश्वत् चिद् और ज्ञान और आनन्द, वह सच्चिदानन्द, उसका जिसे अन्तर में भान नहीं, वह अन्यत्र ढले बिना नहीं रहता। ऐसा कहते हैं।

जो लिंगी का रूप करके अब्रह्म का सेवन करता है, वह पाप से मोहित बुद्धिवाला... धर्मबुद्धि तो हुई नहीं। बहुत कठिन बात है। चैतन्य का सम्यग्दर्शन, जैसा उसका स्वरूप है, वैसा अन्तर में भान होकर प्रतीति होना, वह तो वस्तु का ख्याल तो आया नहीं। इसलिए कहीं अन्यत्र झुक ही जाता है। आहाहा! और वेग के कारण साधुपना आदि के वेश ले लिये हों। कहते हैं कि ऐसे **पाप से मोहित बुद्धिवाला लिंगी संसाररूपी कांतार-वन में...** संसारवन में घूमते हैं और घूमेंगे। आहाहा! चौरासी के अवतार अनादि के एक-एक... चौरासी लाख योनियाँ हैं न अवतार? एक-एक में अनन्त बार जन्मा है, वह कहीं नयी चीज़ नहीं है। ऐसे आत्मा के भान बिना साधु हो तो भी चौरासी लाख के वन में—कांतार में भटकेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **संसाररूपी कांतार-वन में भ्रमण करता है।** वेश कहीं तारण नहीं होता।

भावार्थ। पहले यह चलता था। यह सम्प्रदाय में चलता था। परन्तु वेश है न! वेश तो है। बाना तो है न भगवान का। प्रकाशदासजी को कण्ठस्थ था। 'बाना देखकर नमना नहीं करणी क्या काम? तरुवर में काटा भया छाया में विश्राम।' ऐसी कड़ी है। सम्प्रदाय में चलती थी। ४०-५० वर्ष पहले की बात है। तरुवर अर्थात् बबूल। बावण समझते हो? बबूल। बबूल में काँटे हों परन्तु छाया तो देता है न? सम्प्रदाय में बहुत चलता था। वेश पहना है न, साधु हुए हैं न, बाहर का है न। लड़कों! सुनने में ध्यान रखना, हों! यहाँ बातें नहीं करना। न समझ में आये तो भी सुनना। लड़के नहीं समझते। यह तो सादी भाषा है। इसमें कुछ... आहाहा!

'बाना देखकर नमना नहीं करणी क्या काम?' बाना देखकर अपने जय नारायण करना। उसकी करणी क्या है और क्या ज्ञान है और श्रद्धा, उसे नहीं परखना। 'जैसे

तरुवर में कांटा भया...' बबूल में कांटे होते हैं परन्तु अपने को छाया का काम देता है। ऐसा एक व्यक्ति ने यहाँ कहा था। तुलसीदास हो गये न, तुलसीदास? यह तुलसीदास के सामने जवाब देते हैं। यह रामायण के कर्ता, तुलसी। 'बाना* देखी नमणा, नहीं करणी क्या काम?' तूने कहा। परन्तु हम कहते (हैं), 'बाना है बहु भात का उसमें है एक नरम। सबही छाया बैठिये पण न बैठिये मीणा हरम।' यह मीणाहरम नाम का एक वृक्ष होता है। मीणाहरम। ऐसा एक वृक्ष होता है। नहीं सुना? यह नहीं सुना। यहाँ तो बहुत पुस्तकें और शास्त्र, हजारों शास्त्र देखे होवे नजर में।

मुमुक्षु : राजकोट दरबार का महल है न, वहाँ व्यक्ति जाये तो उकताये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उकताये। है, यह शास्त्र कहते हैं न।

तुलसीदास ने कहा, ऐसा कहा न। 'बाना है बहु भात का उसमें है एक नरम, सबही छाया बैठिये पर न बैठिये मीणाहरम। मीण पर पक्षी मरे, वांकूं वर्ते केर, तुलसी कहे बाना दिया, बाने-बाने फेर।' ऐसा आता है। हमारे तो बहुत छोटी उम्र में यह बात चली थी। यहाँ तो अभी और यह इकट्ठा मिला, इसलिए याद आया। बाना सब प्रकार का परन्तु ऐसा बहाना धर्म का नाम लेकर गड़बड़ करे, वह बाना तो मीणाहरम जैसा है, कहते हैं। उसकी छाया में बैठनेयोग्य नहीं है। मार डालेगा। 'मीणा पर पक्षी मरे, वांकू वर्ते केर,...' ऊपर फिरे तो मार डाले। नीचे (पड़े) तो भी मर जाये। यह वृक्ष का स्वभाव है। मर जाये। 'तुलसी कहे बाना लिया, बाने-बाने फेर।' बाना संसार के अलग प्रकार के और धर्म के नाम से ऐसे वेश धारण करके गड़बड़ करे, आत्मा का भान न हो। मर जायेगा चौरासी के अवतार में जायेगा। वन में। ऐसा कहा न? वहाँ तुझे बहाना नहीं चलेगा। आहाहा!

भावार्थ :- पहिले तो लिंग धारण किया... वेश ले लिया नग्नपना। **और पीछे ऐसा पाप-परिणाम हुआ कि व्यभिचार सेवन करने लगा,...** विषयसेवन। **उसकी पाप-बुद्धि का क्या कहना?** उसकी पापबुद्धि का क्या कहना? **उसका संसार में भ्रमण क्यों न हो?** न अधिकता है। उसे संसार भ्रमण क्यों नहीं होगा? ऐसा। अर्थात् होगा ही, ऐसा। उसे भ्रमण क्यों नहीं होगा? **जिसके अमृत भी जहररूप परिणमे...** रोग

* बाना अर्थात वेश

हो उसे अमृत दे, उसे जहररूप परिणमे **उनके रोग जाने की क्या आशा ?** अमृत दे अमृत। और जहर हो। अब उसे रोग जाने की आशा क्या ? ऐसे साधु का वेश, उसमें ऐसे मिथ्यात्वभाव, अज्ञानभाव, धर्म के बहाने जगत को ठगना, लोग तो बेचारे साधारण व्यक्ति हों, वह कहे, अपनी से तो ठीक हैं न! ऐसा करके जय नारायण करे।

कहते हैं कि **जिसके अमृत भी जहररूप परिणमे, उनके रोग जाने की क्या आशा ?** चाहे जो दो। उसे अमृत जहाँ पड़े, वहाँ जहर हो। इसी प्रकार जिसे यह ऐसा वेश मिला। नग्न दिगम्बर लिंग... आहाहा! उसमें जिसे मिथ्यात्व और अज्ञान के सेवन और अब्रह्म के सेवन, स्त्री आदि के... आहाहा! उसे वन में जाना कैसे टले उसका, कहते हैं। चौरासी वन में भटकेगा। **वैसे ही यह हुआ, ऐसे का संसार कटना कठिन है।** ऐसे जीव का संसार नाश होना कठिन है। अर्थात् कि संसार नाश नहीं होता। चौरासी के अवतार में, भवजल में डूबता-डूबता चार गति में चला जायेगा। अरे! लोगों को भवजल चौरासी के अवतार क्या है, इसकी खबर नहीं होती। चौरासी के भवजल में डूबता, भटकता, रुलता, क्लेशित होता हुआ भटकता है। उसे कहते हैं कि ऐसे नग्न दिगम्बर जैसे वेश का योग मिला और उसे भी जब यह सुलटा नहीं हुआ तो अब उसे भव संसार नाश होने का दूसरा कोई उपाय नहीं है।

गाथा-८

आगे फिर कहते हैं –

दंसणणाणचरित्ते उवहाणे जइ ण लिंगरूवेण।
अट्टं झायदि झाणं अणंतसंसारिओ होदि।।८।।

दर्शनज्ञानचारित्राणि उपधानानि यदि न लिंगरूपेण।
आर्त्तं ध्यायति ध्यानं अनंतसंसारिकः भवति।।८।।

यदि लिंग रूप से ज्ञान-दर्शन-चरण का धारण नहीं।
तो ध्यान ध्यावे आर्त उससे अमित संसारी वही।।८।।

अर्थ – यदि लिंगरूप करके दर्शन–ज्ञान–चारित्र को तो उपधानरूप नहीं किये (धारण नहीं किये) और आर्त्तध्यान को ध्याता है तो ऐसा लिंगी अनन्त संसारी होता है।

भावार्थ – लिंग धारण करके दर्शन–ज्ञान–चारित्र का सेवन करना था, वह तो नहीं किया और कुटुम्ब आदि विषयों का परिग्रह छोड़ा, उसकी फिर चिंता करके आर्त्तध्यान ध्याने लगा तब अनन्त संसारी क्यों न हो? इसका यह तात्पर्य है कि सम्यग्दर्शनादिरूप भाव तो पहिले हुए नहीं और कुछ कारण पाकर लिंग धारण कर लिया, उसकी अवधि क्या? पहिले भाव शुद्ध करके लिंग धारण करना युक्त है।।८।।

गाथा-८ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं :-

दंसणणाणचरित्ते उवहाणे जइ ण लिंगरूवेण।
अट्टं झायदि झाणं अणंतसंसारिओ होदि।।८।।

अर्थ :- यदि लिंगरूप करके... लिंग तो बाह्य वेश साधु का धारण किया। परन्तु **दर्शन-ज्ञान-चारित्र को तो उपधानरूप नहीं किये...** सम्यग्दर्शन तो धारण नहीं किया, ऐसा कहते हैं, देखो! उपधान शब्द आया है। उपधान—धारण ऐसा अर्थ किया। जैन वेश धारण किया नग्न दिगम्बर मुनि का, परन्तु सम्यग्दर्शन तो धारण नहीं किया। वह प्रथम धर्म का मूल है। शरीर वाणी से भिन्न भगवान। वह तो मिट्टी है। कर्म भी अन्दर बारीक मिट्टी-धूल है, भाग्य। परन्तु पुण्य और पाप शुभ-अशुभभाव वह विकार है, उससे भिन्न भगवान, उसका जिसने अन्तर दर्शन-श्रद्धा-ज्ञान किया नहीं, उसने सम्यग्दर्शन धारण नहीं किया और अकेला लिंग धारण किया। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

'दंसणणाणचरित्ते उवहाणे' सम्यग्दर्शन, यह महा अमूल्य रत्न-चीज कि जिस रत्न से उसे मुक्ति फले, ऐसा सम्यग्दर्शन तो भगवान आत्मा का धारण किया नहीं, कहते हैं। समझ में आया? भगवान चैतन्यस्वरूप चैतन्य रत्नाकर समुद्र है। जिसमें अनन्त आनन्द, शान्ति आदि अनन्त रत्न भरे हैं। ऐसा कल्पवृक्ष भगवान आत्मा, उसका जिसे अन्तर अनुभव करके सम्यग्दर्शन तो धारण नहीं किया और यह वेश धारण किया।

समझ में आया? तिलक और टीका बड़ा करते हैं न बाहर में? मानो बड़ा भगत हो। ऐसे से ऐसे खींचे बड़ा। ऐसा करे और ऐसा करे। वेश धारण करे। परन्तु वस्तु की तो खबर नहीं होती।

यहाँ कहते हैं कि उसने लिंग धारण किया, उसमें क्या हुआ? जो धारने का था, वह तो धारा नहीं। ज्ञान, दर्शन-ज्ञान अर्थात् आत्मा पुण्य-पाप के भावरहित। उसका ज्ञान, हों! ज्ञान अर्थात् यह अकेला जानना-बानना, उसकी बात नहीं है। भगवान आत्मा स्वसंवेदन ज्ञान में इसे आत्मा ज्ञात हो और आत्मा का वेदन हो। अनादि के शुभ और अशुभ पुण्य-पाप के विकल्प बुरे, उसका इसे वेदन अनादि से अज्ञानी को है। यह कहते हैं कि जिसने ज्ञान का वेदन प्रगट नहीं किया (और) वेश धारण कर लिये। अन्तर ज्ञान अर्थात् यह जानना और बोलना, वह नहीं। अन्तर शुद्ध चैतन्य भगवान, अनादि-अनन्त अविनाशी सत्, उसके सन्मुख का वेदन होकर ज्ञान होना, आत्मा का ज्ञान, आत्मज्ञान, आत्मदर्शन, आत्मभान को तो प्रगट किया नहीं और वेश धारण किये। उसमें कुछ नहीं हुआ। समझ में आया?

सम्कय्चारित्र। तीसरा बोल। आत्मा के स्वरूप के भानसहित अन्तर में चरना। चरना अर्थात् आनन्द में रमना। भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द का धाम है। प्रभु स्वयं अतीन्द्रिय आनन्द का स्थान है। उसके भानसहित उसमें रमा नहीं, उसमें चरे नहीं, उसके आनन्द की उग्र दशा को प्रगट करे नहीं, उसे धारे नहीं और लिंग धारे, वेश धारण करे तो उसे आत्मध्यान और धर्मध्यान नहीं हो सकता। ऐसा कहते हैं, देखो!

तत्पश्चात् **चारित्र को तो उपधानरूप नहीं किये...** धारण नहीं किया। समझ में आया? यह तो आचार्य अब षट्पाहुड़ वर्णन करने के बाद यह अन्तिम वर्णन करते हैं न? एक बाईस श्लोक का पाहुड़ है। बाईस श्लोक का। परन्तु उन्हें हेतु यह बतलाना है। साधु होकर बैठा स्त्री-पुत्र, परिवार छोड़कर, वेश लेकर, परन्तु जो करना था वह किया नहीं और नहीं करना, उसे करके बैठा। सेठ! आहाहा! करने का तो प्रभु आत्मा अन्दर है, उसका दर्शन, उसका ज्ञान और उसमें रमणता, यह करने का है। बाकी यह बाह्य क्रियाकाण्ड और वेश तो परवस्तु है, वह तो जड़-मिट्टी-धूल है। आहाहा! थैली

में चिरायता भरा हो और नाम लिखे शक्कर, इससे कहीं चिरायता मीठा हो जाये? इसी प्रकार ऊपर साधु नाम धरावे और अन्दर मिथ्यात्व। पुण्य और पाप की मिठास, राग-द्वेष की मिठास, विषय-वासना की मिठास का जहर वर्तता है। और वेश धारण किया यह। इसमें तेरा क्या हुआ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

(-धारण नहीं किये) और आर्तध्यान को ध्याता है... क्योंकि अन्तर स्वरूप है शुद्ध ज्ञान, आनन्द, उसका भान तो प्रगट हुआ नहीं, इसलिए उसका ध्यान तो है नहीं। इसलिए अब उसे ध्यान में कुछ होवे तो सही न? फिर यह स्त्री-पुत्र छोड़ें हो, उनकी चिन्ता का ध्यान और विकल्प आवे। कैसे होगा उन्हें? आहाहा! मैं निकल गया, उन्हें कोई कमानेवाला नहीं होता। कैसे होता होगा? क्या होता होगा? कुछ चन्दा-बन्दा कर दे तो ठीक हो बेचारों को। यह होली जमी दूसरी वापस यह तो। तूने छोड़ा कहाँ था? पण्डितजी! ऐसा होता है या नहीं? आहाहा!

आर्तध्यान को ध्याता है तो ऐसा लिंगी अनन्त संसारी होता है। आहाहा! अनन्त संसार। चौरासी के अवतार का अन्त नहीं, अन्त नहीं, ऐसे अवतार में भटकेगा। वेश कुछ आड़े नहीं आयेगा वहाँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अन्तर भाव की शुद्धता बिना। यह सिद्ध करना है। शुद्धभाव आत्मा का। पुण्य-पाप के भाव तो ठीक, दोनों मलिन आदि हैं। शुद्धभाव। पुण्य के भाव वे अशुद्ध हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा वह भी अशुद्ध पुण्य है। हिंसा, झूठ, चोरी, कमाना, भोगना, वह पाप के मलिन अशुद्ध परिणाम हैं। उनसे रहित आत्मा के शुद्ध परिणाम प्रगट किये बिना शुद्धभाव को धारण किये बिना, ऐसा यहाँ कहना है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह अन्दर का शुद्धभाव है। उसे धारण किया नहीं और यह धारण किया। तुझे नहीं तारेगा। अनन्त संसारी होगा, कहते हैं। लो। समझ में आया?

उसमें एक कुछ आता है। 'संसारी के टुकड़े नौ-नौ गज के दन्त, भजन करे तो ओघरे नहीं तो काढ़े अन्त।' नवनीतभाई! हमने तो सब बहुत सुना हो न। बहुत मत। दुकान पर कितनी ही पुस्तकें पढ़ते थे। यह कबीर के और सब बहुत पुस्तकें पढ़ी हुई। घर की दुकान थी। बहुत पढ़ा हुआ। अध्यात्म कल्पतरु और बड़ी पुस्तकें। उसमें यह

एक आया था। 'संसारी के टुकड़े नौ-नौ गज के दन्त।' गज समझते हो गज? यह 'भजन करे तो ओघरे नहीं तो काढ़े अन्त।' किसी के ऐसे माल-मलीदा उड़ावे और धर्म का भान न हो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह बेचारे कहे, ओहोहो! महाराज! यह लो, यह लो। अच्छी-अच्छी चीज़ दे। परन्तु जिसने धर्म का आत्मदर्शन, आत्मज्ञान, आत्मा की शान्ति को तो धारण नहीं किया, प्रगट नहीं किया और बाह्य ऐसे वेश में, ऐसे किसी के माल-मलीदा उड़ाते हो। कहते हैं दाँत निकालेगा। तेरे आँतड़िया तोड़ डालेगा। अर्थात् चार गति में भटकना पड़ेगा, ऐसा। समझ में आया? आहाहा! लो!

भावार्थ :- लिंग धारण करके दर्शन-ज्ञान-चारित्र का सेवन करना था... देखो! भावार्थ। अरे! अन्तर स्वरूप भगवान आत्मा के समीप की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र जो प्रगट करने का था। कहो, समझ में आया? तुरन्त ही यहाँ आवाज वह हो जाये। जड़ है न जड़? लिंग धारण करे, जड़ धारण करे, ऐसा कहते हैं। परन्तु शुद्धभाव का तो जिसे भान नहीं। शुद्ध किसे कहना, उसकी खबर भी नहीं होती। समझ में आया? ऐसे शुद्धभाव के धारण बिना **सेवन करना था, वह तो नहीं किया और परिग्रह कुटुम्ब आदि विषयों का परिग्रह छोड़ा, उसकी फिर चिन्ता करके आर्तध्यान ध्याने लगा...** वापस उसे यह चिन्तवना लगी। या तो उसके भक्त हों, उनका क्या होगा? उसे पैसा, चन्दा इकट्ठा करा देना। पैसे का क्या कहलाता है? चन्दा। तेरी होली वह की वह हुई। घर में स्त्री-पुत्र के लिये करता था और यह कर, वह तो आर्तध्यान है। समझ में आया?

यहाँ ध्यान स्वरूप के अन्दर प्रगट नहीं हुआ। शान्ति का सागर भगवान के ध्यान में तो आया नहीं। उसकी शुद्धि तो प्रगट नहीं की। पहला धर्म तो वह है। पश्चात् वेश धारण करने की बात रही। गृहस्थाश्रम में भी पहला धर्म तो यह है। संसार से उभरने का रास्ता, भगवान आत्मा चैतन्य का समुद्र आनन्द आदि स्वभाव का सागर, अरे! कैसे जँचे? ऐसा बड़ा मैं? एक बीड़ी में बिक जाये, तम्बाकू में बिक जाये, घड़ीक में-घड़ीक में तो ऐसे... आहाहा! कहते हैं कि यह वासना... अन्तर स्वभाव की सन्मुख दृष्टि अनुभव की की नहीं। जो करना था, वह किया नहीं और वेश धारण करके बड़ी दीक्षायें, हाथी के होदे दीक्षायें (ली)। लो! हाथी के होदे दीक्षा। क्या होली है परन्तु

उसमें। हाथी के होदे हो या नीचे होदे हो, गधे के होदे हो। वस्तु की तो खबर नहीं। पण्डितजी! आहाहा! जिसकी दीक्षा में दो लाख खर्च किये, पाँच लाख खर्च किये। उसकी... धूल भी नहीं। मिथ्यात्व... का भान नहीं। तेरे वस्त्र बदले, क्या है अब? आहाहा! समझ में आया?

कुन्दकुन्दाचार्य वीतरागी सन्त हैं। एकाध भव करके मुक्ति पाने की तैयारी है। वे लिखते हैं। समझ में आया? अभी स्वर्ग में है। शास्त्र कर्ता। दो हजार वर्ष पहले (हुए)। वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। केवलज्ञान प्राप्त करके परमानन्द की दशा—सादि—अनन्त, अनन्त आनन्द प्रगट होनेवाला, वह अनन्त काल रहेगा, ऐसी मुक्तदशा (जिन्हें प्रगट होनेवाली है), वे यह बात करते हैं, देखो! आहाहा! भाई! यह तू क्या करता है? तुझे क्या करना था? क्या करना था और तूने यह क्या किया? मुनि के वेश को... करुणा से बात करते हैं, हों! तिरस्कार की बात नहीं। भाई! तुझे क्या करना था और तूने यह क्या किया? जन्म, जरा, मरण टालने के लिये तो आत्मा की शरण में जाना था। उसकी श्रद्धा-ज्ञान और रमणता तो यह करनी थी। यह करने का किया नहीं और यह लेकर बैठा। पश्चात्? आर्तध्यान हो। चिन्तवना किया करे। किसी को पत्र लिखना, किसी को यह करना, किसी को यह करना, ऐई! चिमनभाई! साधु को सैकड़ों पत्र आवे। बड़े पत्र। सामने सवेरे में चन्दा हो। अब उसके सामने लेखन (करना)। फुरसत ही नहीं। वह व्यापारी निवृत्त हो बेचारा। १००-२००-२०० पत्र आवे, उन्हें पढ़ना और वापस उनका जवाब देना। यह तो वापस दूसरी होली की। ... आयी। दुकान। अब आर्तध्यान और रौद्रध्यान की ध्यान चलायी। आत्मा का ध्यान करने का था, वह रह गया, पड़ा रहा। आहाहा! वजुभाई! ठीक कहते हैं न? यहाँ हमारे ऊपर बहुत पत्र बहुतों के आते हैं। भाई! हमें पढ़ने का समय कहाँ है। पैसा भेजो। और पैसा भेजो, यह किया करे। कितने ही पत्र... ओहोहो!

मुमुक्षु : गरीब मनुष्य आशा रखे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कितने पत्र यहाँ?

मुमुक्षु : उसे खबर है कितने... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर है। उसे स्वयं को खबर है। कल पत्र आया था। मैंने बहुत लिखे पत्र। पहुँचे होंगे या नहीं? जवाब भी कौन दे? यहाँ कहीं निवृत्त हैं? वह नहीं? तुम्हारे राजकोट आया था वह। गोण्डल का है। डेढ़ सौ भेजे थे। ...भेजे थे तब तो, अब ऐसा चिपटा हुआ है। दूसरे दिन और तीसरे दिन... वह क्या कहलाता है दूसरा?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ऐसा। अब अन्तिम चिट्ठी है। यह कवर पैसा माँगकर लिखता हूँ। ऐसा करके लिखे। भाई! परन्तु हम किसे हम कहते हैं कि इसे ले और दे? यह हमारा काम है? हम तो तत्त्व की बात है, वह मार्ग कहते हैं, बापू! हमारा यह काम है? कहाँ गये तुम्हारे दोशी? गये? तुम्हारा था न दोशी? तुम्हारा है? गया। वह कल मुझे पूछता था कि मैं डॉक्टरी पढ़ता हूँ। मुझे छोड़ने का विचार होता है। आप क्या सलाह देते हो? कल दिशा-जंगल... मैं सलाह दूँ? मेरा काम है इसमें? हम तो यह तत्त्व की बात करते हैं। समझो। यह बात है। यहाँ तो दूसरा तुम्हारा... निवृत्त हो न और कुछ होगा? कल जंगल जाते हुए रास्ते में (पूछा था)। परन्तु उसे ऐसा हो गया है कि यह पढ़ते हैं न, उसमें कुछ माल नहीं है। ऐसा हो गया। यह तो रह जाता है। ऐसा उसे बेचारे को हो गया। जवान है छोटी उम्र का। कल साथ में रास्ते में था। तो ऐसा पूछा। बापू! मैं तो कहीं किसी को कहूँ? सलाह-बलाह मेरी क्या? रामजीभाई की सलाह हो। मैं तो धर्म की सलाह देता हूँ। यह समझो, श्रद्धा करो, पहिचान करो। बापू! यहाँ तो यह सलाह है। और तुम्हें सलाह देकर... मैंने फिर नहीं कहा था। नहीं तो मैं तो कहूँ, तेरा दादा है, वहाँ जा न। रामजीभाई... मुझे इतना रास्ते में कहा था जरा कल। मैंने कहा, बापू! हम क्या कहें? हम तो आत्मा वस्तु क्या, धर्म क्या, इसे समझने का यह प्रसंग आवे तो आवे। बाकी कहीं हमारा काम नहीं है। आओ, जाओ, रहो, मरो। हम किसी को कुछ नहीं कहते। आहाहा! लोगों को हो जाता है कि ऐसा यह सब पठन-बठन तो भटकने का हुआ।

मुमुक्षु : ...हो गया है पक्का?

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गया है उसे। सुना न उस दिन। यह पठन भटकने का

हुआ। भाई! तुम्हारा कहता है न? दिलीप। दिलीप को उसके पिता ने कहा, चल पढ़ने। वह तो पैसेवाला व्यक्ति है, लाखोंपति। गया कल, गया दोपहर में। उसे ब्याज बटाव का धन्धा। कहे, चल पढ़ने। अब पढ़े, उसके पिता को कहता है। यह पठन? यह अनन्त बार पढ़े, वह रहा है कुछ? यह पढ़ाई? रतिभाई! ऐसा लड़का। कल दोपहर में गया। परन्तु बेचारा उदास होकर गया। यहाँ से जाना उसे सुहाता नहीं। क्यों शशीभाई! अन्तिम मांगलिक किया। दिल दु:खी हो गया था। उसे कौन जाने अन्दर से बहुत रस है, हों! नहीं तो अभी बारह वर्ष की उम्र और वह तो गृहस्थ व्यक्ति है, तथापि उसे कौन जाने रस। पठन-पठन। पठन यह किया अनन्त बार पढ़े, है कुछ याद? यह पठन पढ़ना है? सेठ! ऐसा धड़ाकाबन्ध, हों! उसके पिता को और उसके दादा को। उसे विदा करने गये थे दादा को। प्लेन में जानेवाले थे। कलकत्ता प्लेन में ले जा उसे। यहाँ से गये। आहाहा! यह बात तो ऐसी है, हों! यह पठन की होली अकेली। उसमें पढ़ने का यह सब अज्ञान। यह रामजीभाई पढ़े क्या सब? पाप सब। वह तो सुमनभाई को कहा। बेवजह टूट मरने जाता है अमेरिका। आहाहा! बापू!

जिस पठन से भव मिटे, उसका नाम पठन। एक बार कहा था, 'या विद्या सा विमुक्तये।' एक पाठशाला में लिखते हैं। भाई थे न? चन्दुभाई गोंडल के। विद्यार्थी पूरे राज के। बहुत मान था, राज में बहुत मान था। एक बार विद्यालय में ले गये थे। लड़कियाँ-लड़के बहुत हजारों। देखो! यह तुम्हारे विद्यालय में यह लेख लिखा है। 'या विद्या सा विमुक्तये'। इसका अर्थ समझते हो? या विद्या—यह विद्या उसे कहते हैं कि जिससे मुक्ति मिले। उसे विद्या कहते हैं। यह तुम्हारी विद्या से तो बन्धन का लकड़ा होता है सब। ऐई! ऐसा शब्द आता है, हों! उसमें बड़ा विद्यालय होता है न, 'या विद्या सा विमुक्तये'। यह विद्या उसे कहते हैं कि जिससे मुक्ति, शान्ति, आनन्द प्राप्त हो, उसे विद्या कहते हैं। यह सब अविद्या-कुविद्या है।

आठ-आठ वर्ष के राजकुमार छोड़कर चल निकले हैं। अरे रे! हमारी चीज़! उसे हम पढ़े नहीं, समझे नहीं और यह सब बड़ी पढ़ाई। यहाँ यह कहते हैं कि यह साधु होकर बैठा नामधारी और लिंगधारी। और यह आत्मा इसके पठन, इसके ज्ञान, इसकी श्रद्धा तो तूने की नहीं। तूने क्या किया? समझ में आया?

आर्तध्यान ध्याने लगा, तब अनन्त संसारी क्यों न हो ? अनन्त संसारी भटकेगा चार गति में, कहते हैं। आहाहा! तेरा वेश कहीं वहाँ गिरवी नहीं रखा जायेगा। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर आनन्द का नाथ, पुण्य-पाप के विकल्प की वृत्तियों से भिन्न प्रभु विराजता है। उसकी जिसने भेंट नहीं की, उसका ज्ञान नहीं किया, उसमें रमणता नहीं की। रमण अर्थात् चारित्र। रमण शब्द आता है न उसमें? दस बोल नहीं? श्रीमद् की पुस्तक नहीं? उसमें ग्यारह बोल आते हैं। स्वद्रव्य की रमणता, भाई! स्वद्रव्य का रमण शीघ्रता से करो, परद्रव्य का रमण शीघ्रता से तजो। १७ वर्ष में कहा श्रीमद् ने। १७ वर्ष में। समझ में आया? स्वद्रव्य का रक्षक, स्वद्रव्य का रक्षक शीघ्रता से होओ। शीघ्र। स्वद्रव्य का रक्षक, ऐसा कहा। यह स्वद्रव्य अर्थात् भगवान आत्मा। शुद्ध आनन्द का रक्षक हो। पुण्य और पाप विकल्प और पर की रक्षा करके मर गया अनन्त काल से। समझ में आया? यह सुना है न मनसुखभाई? श्रीमद् का। वहाँ कहा था पहले...

मुमुक्षु : आत्मधर्म में।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मधर्म में आ गये। यह अहमदाबाद में व्याख्यान था। अहमदाबाद में एक पुस्तक रख गया और मेरे हाथ में पढ़ा। ओहो! किसका यह लेख भारी सरस! भाई! श्रीमद् का है।

स्वद्रव्य के व्यापक शीघ्रता से होओ। भगवान आनन्द का नाथ, उसमें जो, पसर। यह दया, दान, व्रत के परिणाम विकल्प पुण्य-पाप के वे विकार हैं। स्वद्रव्य के धारक शीघ्रता से होओ। ऐसा तीसरा बोल है। १७ वर्ष में कहते हैं श्रीमद्। स्वद्रव्य के धारक। आत्मा आनन्द और शान्तिस्वरूप है, उसका धारक हो। शान्तिभाई! स्वद्रव्य का रमण शीघ्रता से हो। आत्मा आनन्द है, उसमें रमण करने को तैयार हो। शीघ्रता से हो। उतावल कर। स्वद्रव्य का ग्राहक हो। पुण्य और पाप का ग्राहक छोड़ दे, भगवान! वह तो सब विकार। वस्तु अन्दर है, उसका ग्राहक शीघ्रता से हो। पाँच बोल है।

फिर कहा है, परद्रव्य का धारक शीघ्रता से तजो। परद्रव्य का धारक शीघ्रता से तजो। आहाहा! भाषा देखो न! छोटी उम्र में निकला। कौन जाने हाथ तो अभी आया। अभी आया, फिर पढ़ा। बहुत बड़ी सभा। सात-आठ तो सब जज आते थे। अहमदाबाद

के बड़े-बड़े हाईकोर्ट के जज। सब सामने बैठते। मैंने कहा, यह दूसरा प्रकार है तुम्हारे पठन से। एक तो अपने मोहनभाई राजकोट। ... का पुत्र। एक डाह्याभाई पालनपुरवाले। उन्हें तो बहुत लगन। डाह्याभाई को तो बहुत लगन। जज बड़ा परन्तु... बिल्कुल... काम करने के पश्चात् आत्मा... आत्मा... आत्मा का विचार-मनन। यह सब ऊपर ...भाई! करके वैष्णव है कोई। बड़ा बुद्धिवाला। ...भाई।

मुमुक्षु : अपने जैन हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन है ? हाँ। वांकानेर के।

मुमुक्षु : रायचन्दभाई का दामाद है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह सच्ची बात। वांकानेर के। बहुत बुद्धिवाला गिना जाता है। वह एक बार आया था। सब छह-आठ जज थे। एक बार तो वह भगत है, वह पहले आया था। उस बार पंच कल्याणक में। बड़ा प्रख्यात। परन्तु उसे एक-दो घण्टे में यह सिर डालना कि यह पागल होंगे। ऐसा लगे। है तो वे सब पागल। परन्तु यह...

मुमुक्षु : मुझे मिले थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। आये थे। ऐसे तो नरम सज्जन व्यक्ति। सज्जन व्यक्ति। अरे! भाई! बापू! यह सब अलग प्रकार है। वह सब भटकने के रास्ते हैं। आहाहा!

इसका यह तात्पर्य है कि सम्यग्दर्शनादिरूप भाव तो पहिले हुए नहीं... आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति तो प्रगट की नहीं। **और कुछ कारण पाकर लिंग धारण कर लिया,...** हो जाये बाबा, हो जाये साधु।

मुमुक्षु : साहूकार हो गया...

पूज्य गुरुदेवश्री : भला क्या हुआ साहूकार हुआ उसमें ? गिरवी रखा जाये ऐसा है वह ? दुनिया तो बेचारी साधारण मनुष्य है। राग देखकर जय नारायण करे। उसे कहाँ भान है दुनिया को ? कहो, चिमनभाई! दुनिया को कुछ भान है यह पैसेवाले व्यक्ति हों। जरा त्याग किया हो। आहाहा! अपने से तो अच्छे न! नंगे पैर चलते हैं, गर्म पानी करे, लोच करावे। अरे! धूल में नहीं।

मुमुक्षु : मुनि नहीं और मुनि मनावे, वह बड़ा दोष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मनाते हैं। आत्मा का भान नहीं। देह की क्रिया का करनेवाला मैं हूँ, जड़ का कर्ता मैं हूँ, पुण्य-पाप के परिणाम विकारी, वह मेरा कर्तव्य है। ऐसी तो जिसकी दृष्टि है। वह चैतन्य को हारकर बैठा है। उसका भान नहीं और लेकर बैठा यह। चौरासी के अवतार में अनन्त संसार में चला जायेगा, ऐसा कहते हैं। शान्तिभाई!

भाव तो पहिले हुए नहीं और कुछ कारण पाकर लिंग धारण कर लिया... वैराग्य हो गया ऐसा खोटा। वह क्या कहते हैं? श्मशान वैराग्य। श्मशान वैराग्य। मनुष्य मर गया हो इसलिए ऐसा हो जाये।

मुमुक्षु : लोभ से लालची हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोभ से लालची... बहुत से ऐसे मुँड़ाकर बैठे। चलो बाबा होवें, साधु होवें। अरे! परन्तु बाबा-साधु कहना किसे, भाई! आहाहा! स्वरूप का साधन प्रगट हुए बिना साधु हो, वह सब चार गति में भटक मरे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

उसकी अवधि क्या? अर्थात् उसकी मर्यादा क्या? कहते हैं कि जिसे तो आत्मा क्या चीज है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और पहिचान तो प्रगट की नहीं। उसमें वेश धारण किया, उसकी मर्यादा क्या? कब क्या करेगा और क्या छोड़ेगा? **पहिले भाव शुद्ध करके लिंग धारण करना युक्त है।** शुद्ध। वापस ऐसा शब्द है। दया, दान, व्रत के परिणाम, वे तो शुभ हैं, अशुद्ध हैं। शुभ अशुद्ध हैं। शुद्धभाव धारण करे, ऐसा कहा, देखो! **पहिले भाव शुद्ध करके...** पश्चात् लिंग धारण आवे और स्वरूप की स्थिरता करे। समझ में आया? आचार्य ने तो खुल्ला रख दिया है, भाई! घर के वेशधारी हों तो यह है और खोटे वेशधारी हों तो यह है। मार्ग तो यह है, भाई! आहाहा! **पहिले भाव शुद्ध करके लिंग धारण करना युक्त है।**

गाथा-९

आगे कहते हैं कि यदि भावशुद्धि के बिना गृहस्थपद छोड़े तो यह प्रवृत्ति होती है –

जो जोडेदि विवाहं किसिकम्मवणिज्जजीवघादं च।
वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण।।९।।

यः योजयति विवाहं कृषिकर्मवाणिज्यजीवघातं च।
व्रजति नरकं पापः कुर्वाणः लिंगिरूपेण।।९।।

जोड़े विवाह कृषि करम वाणिज्य जीव–विघात जो।
लिंगिरूप से जाता नरक करता हुआ इन पाप को।।९।।

अर्थ – जो गृहस्थों के परस्पर विवाह जोड़ता है, संबंध करता है, कृषिकार्य–खेती बाहना किसान का कार्य, वाणिज्य व्यापार अर्थात् वैश्य का कार्य और जीवघात अर्थात् वैद्यकर्म के लिए जीवघात करना अथवा धीवरादि के कार्यों को करता है, वह लिंगरूप धारण करके ऐसे पापकार्य करता हुआ पापी नरक को प्राप्त होता है।

भावार्थ – गृहस्थपद छोड़कर शुभभाव बिना लिंगी हुआ था, इससे भाव की वासना मिटी नहीं तब लिंगी का रूप धारण करके भी गृहस्थी के कार्य करने लगा, आप विवाह नहीं करता है तो भी गृहस्थों के संबंध कराकर विवाह कराता है तथा खेती व्यापार जीवहिंसा आप करता है और गृहस्थों को कराता है, तब पापी होकर नरक जाता है। ऐसे भेष धारने से तो गृहस्थ ही भला था, पद का पाप तो नहीं लगता, इसलिए ऐसे भेष धारण करना उचित नहीं है – यह उपदेश है।।९।।

गाथा-९ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि यदि भावशुद्धि के बिना गृहस्थपद छोड़े तो यह प्रवृत्ति होती है :- भावशुद्धि तो हुई नहीं। पुण्य और पाप के भावरहित आत्मा का भान तो प्रगट हुआ नहीं और गृहस्थाचार छोड़े। गृहस्थ का आचार छोड़ दे। वह प्रवृत्ति फिर ऐसी होती है प्रवृत्ति, कहते हैं।

जो जोडेदि विवाहं किसिकम्मवणिज्जजीवघादं च।
वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण।।९।।

अर्थ :- जो गृहस्थों के परस्पर विवाह जोड़ता है... स्वयं विवाह नहीं किया तो पर को जुड़ाता है। तो यह तो वह की वह होली हुई। इसका लड़का अच्छा है और लड़की तुम्हारे योग्य है न। यह तो तेरी वह की वह होली हुई। वह गृहस्थ है, उसके पास पच्चीस-पचास लाख है, लड़का अच्छा है और तुम्हारी लड़की घरयोग्य है। परन्तु होली तूने क्या किया यह? हमारे भगत हैं दोनों। ऐसे के ऐसे पापी, ऐसा काम करे वेश धारण करके। ऐसा होता है, हों! बहुत होता है उसमें। सब सुना है।

गृहस्थों के परस्पर विवाह जोड़ता है-सम्बन्ध कराता है,... सम्बन्ध करावे। इसका यहाँ सम्बन्ध करो। यह तुम्हारे घर के योग्य कन्या है और वर उसके योग्य है। अमुक और होली है यह। आहाहा! घर छोड़कर किया और वापस माँडा तो वह का वह। यह व्यापार दे नहीं? क्या कहलाता है वह? आंकड़ा-आंकड़ा नहीं कहते?

मुमुक्षु : भाव दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव दे। भाव... जाओ करना। ऐई! मगनभाई! आंक फर्क बताओ, बताओ। एकान्त में हमारे पास बहुत आते हैं। अरे! परन्तु क्या यह दुकान में? इस दुकान में तो धर्म है, बापू! तू किस दुकान में आया तुझे खबर नहीं। तू दुकान भूल गया।

मुमुक्षु : आपके पास आते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत आते हैं। अरे, बहुत क्या?

बहुत वर्ष पहले की बात है। ३०-३५ वर्ष पहले की बात है। एक पारसी था। ४०० का वेतन। यहाँ फौजदार है। राजकोट का था। मेरे पास एकान्त में आया। ऐसा हाथ करके बैठे। यह वहाँ मकान की बात करता हूँ। (संवत्) १९९१ में। ९२ या ९१ में। ऐसे लम्बा किया। क्या है भाई? कहा। ...वह यह दुकान नहीं है। यह थोड़े दिन हुए, (फिर) बन्दूक खाकर मर गया। कुछ चाहे जो हुआ होगा उसे। कुछ इसके लिये आया होगा कि महाराज का आशीर्वाद मिले। मर गया बन्दूक खाकर। पारसी था। बहुत

रूपवान लट्ठ जैसा शरीर। खर्च बहुत, पहुँच सके नहीं, बाहर इज्जत नहीं, नाक लम्बा हो, कोट-पतलून पहनना हो सरीखा। उसके प्रमाण में लड़की-लड़के को भी यह सब चाहिए, क्या कहलाता है? तुम्हारे इन्डीपेन, अमुक, अमुक। खर्च का पार नहीं होता। पहुँच सके नहीं (फिर) उलझन में। थोड़े दिन में सुना कि वह पारसी बन्दूक खाकर मर गया। आहाहा!

सम्बन्ध कराता है, कृषिकर्म खेती... खेती-खेती। खेती करो यह जमीन सस्ती है। तुम्हें थोड़े में मिलेगी जाओ।

मुमुक्षु : इस देश में अनाज की कमी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कमी है। थोड़ा अधिक करो तो महँगा हो।

खेती बाहना किसान का कार्य, वाणिज्य व्यापार अर्थात् वैश्य का कार्य... लो! व्यापार करे, व्यापार। सट्टा करे अन्दर में गुप्तरूप से पैसे रखे और यह रखे। समझ में आया? ऐसा काम करे। परन्तु क्या करे? जब अन्दर में सूझ पड़ी नहीं। फिर कुछ प्रवृत्ति तो करनी चाहिए या नहीं? यह प्रवृत्ति करने में रुका है वेश धारण कर। **जीवघात अर्थात् वैद्यकर्म के लिये जीवघात करना...** वैद्यकर्म करे। जंगल में से ले आवे। कन्दमूल और ऐसी बेल और फिर दवायें करे।

मुमुक्षु : वृक्ष में से तोड़-तोड़कर...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं लेने जाये। कल्याणजी को वह करता न बेचारा। देखो न! अभी हो गया पक्षघात। कल्याणभाई को नहीं आते? हाथ ऐसे डालने बेशाखी व्यक्ति साथ में हो, ...बाँधे दो-दो मण लेकर चले जाये वहाँ से। जंगल में जाये। अब अभी पड़े हैं अकेले पक्षघात होकर। आहाहा! ऐसा है। यह दवायें करके क्या हुआ? तुम्हारी तो दवा की नहीं। यह पक्षघात। अरे! यह धन्धे कहीं साधुओं के हैं वेशधारियों के? समझ में आया?

वैद्यकर्म के लिये जीवघात करना... हरितकाय, हरिकाय... आहाहा! एक पत्ते में असंख्य जीव। एक कन्दमूल का टुकड़ा हो तो अनन्त जीव। ऐसे जंगल में काटे कुल्हाड़ा मारकर। उसकी करे दवाईयाँ। उकालकर रस निकाले। रसायन। दुनिया के

गृहस्थ ऐसे आवे। रसायन दे दो पुड़की। पाँच सौ दे, हजार दे तो कहें, लो ओहोहो! वैद्य बहुत अच्छे हैं। रोग मिट गया उन्हें। एक जति था वहाँ वढवाण में। कुछ दवा करता था।

अथवा घीवरादि का कार्य, इन कार्यों को करता है... घीवरादिक का कार्य करे। **वह लिंगरूप धारण करके ऐसे पापकार्य करता हुआ पापी नरक को प्राप्त होता है।** लो! नीचे नरक है नरक। महा वेदना। थोड़े में थोड़े दस हजार वर्ष की स्थिति नीचे पहले नरक में है। अधिक स्थिति... न हो साथ में, हों! सब वस्तु है, नीचे नरक है। दस हजार वर्ष की स्थिति में जाये थोड़े में थोड़े तो अनन्त वेदना है। अनन्त बिच्छू काटे, उसकी जो वेदना (हो), उससे अनन्तगुणी वेदना वहाँ है। ऐसी जगह जीव अनन्त बार गया है। आत्मा के भान बिना, सम्यग्ज्ञान बिना इसमें ऐसे अनन्त भव किये और जहाँ तक नहीं करे, वहाँ का वहाँ है, यह सब। अभी सब लाल-पीला दिखता है परन्तु मरकर सब वहाँ जानेवाले हैं। समझ में आया? आहाहा! नरक की पीड़ा भगवान कहें (और) उसने वेदन की। नरक तक ले गये यहाँ तो, देखो न! नरक, नरक में जायेगा। वेश धारण करके आत्मा का ज्ञान किया नहीं, श्रद्धा की नहीं, पहिचान की नहीं और ऐसे पाप काम में-प्रवृत्ति में... दुनिया तो अच्छा कहे। ओहो! महाराज ने हमें ठीक सम्बन्ध खोज दिया। अच्छा घर खोज दिया। घर अच्छा कहाँ? घर तो अच्छा तेरा है। नवनीतभाई का।

मुमुक्षु : हमारा सबका है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नवनीतभाई का भाग इसमें अधिक है।...

भावार्थ :- गृहस्थपद छोड़कर शुभभाव बिना लिंगी हुआ था,... शुभभाव का ठिकाना नहीं, कहते हैं। शुद्ध तो कहीं नहीं। **इसके भाव की वासना मिटी नहीं।** वह वासना जो थी कमाने की, भोग की, विवाह की और अमुक की, वह तो मिटी नहीं। वासना मिटी नहीं और हो गये साधु। आहाहा! नाड़ी पकड़कर पकड़ा है सबको। **लिंगी का रूप धारण करके भी गृहस्थी के कार्य करने लगा, आप विवाह नहीं करता है तो भी गृहस्थों के सम्बन्ध कराकर विवाह कराता है।** लो! इसे विवाह करावे। समझे न?

तथा खेती, व्यापार जीवहिंसा आप करता है और गृहस्थों को कराता है, तब

पापी होकर नरक जाता है। लो! आहाहा! **ऐसे वेश धारने से तो गृहस्थी ही भला था,...** हों! इसकी अपेक्षा तो गृहस्थाश्रम में रहता हो, भले स्त्री-पुत्र हों, परन्तु श्रद्धा और सम्यग्दर्शन प्रगट करे तो वह गृहस्थाश्रम में भी धर्मी है। सम्यग्दर्शन-आत्मा का भान पहिचान रहे और भले गृहस्थाश्रम में हो। परन्तु ऐसे भान बिना तेरे लेकर बैठा, कहते हैं। इसकी अपेक्षा तो गृहस्थाश्रम अच्छा, ऐसा कहते हैं। **गृहस्थ ही भला था, पद का पाप तो नहीं लगता,...** पदवी नाम धरायी साधु की और काम करना हल्का। उच्च पदवी में नीची पदवी करके नाम उल्टा कराया। साधु नहीं और साधु नाम धराया। वह तो गृहस्थ तो कहे, भाई, हम तो साधु नहीं। हम तो गृहस्थ हैं। हम तो पाप में पड़े हैं। वह तो त्यागी रहे। अब उन्हें तो उपदेश भी लागू नहीं पड़े। हो गये बड़े उपदेशक। चिमनभाई! यहाँ तो सब सम्हाल ली है। सबकी नाड़ियाँ पकड़ी हैं। आहाहा!

पद का पाप तो नहीं लगता; इसलिए ऐसे वेश धारण करना उचित नहीं है... लो! ऐसा वेश धारण करना उचित नहीं। शुद्धभाव धारण करना, वह उचित है, ऐसा कहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१०

आगे फिर कहते हैं -

चोराण [1]लाउराण च जुद्धं विवादं च तिव्वकम्मेहिं।
जंतेण दिव्वमाणो गच्छदि लिंगी णरयवासं।।१०।।

चौराणां लापराणां च युद्धं विवादं च तीव्रकर्मभिः।
यंत्रेण दीव्यमानः गच्छति लिंगी नरकवासं।।१०।।

जो तीव्र कर्मों से विवाद रु युद्ध चोरों झूठ के।
या यन्त्र से क्रीड़ा करे वह लिंगि जाता नरक में।।१०।।

---

१. मुद्रित सटीक संस्कृत प्रति में 'समाएण' ऐसा पाठ है जिसकी छाया में 'मिथ्यात्वावादिनां' इसप्रकार है।

अर्थ – जो लिंगी ऐसे प्रवर्तता है वह नरकवास को प्राप्त होता है जो चोरों के और लापर अर्थात् झूठ बोलनेवालों के युद्ध और विवाद कराता है और तीव्रकर्म जिनमें बहुत पाप उत्पन्न हो, ऐसे तीव्र कषायों के कार्यों से तथा यंत्र अर्थात् चौपड़, शतरंज, पासा, हिंदोला आदि से क्रीड़ा करता रहता है, वह नरक जाता है। यहाँ 'लाउराणं' का पाठान्तर ऐसा भी है 'राउलाणं' इसका अर्थ – रावल अर्थात् राजकार्य करनेवालों के युद्ध विवाद कराता है, ऐसे जानना।

भावार्थ – लिंग धारण करके ऐसे कार्य करे वह तो नरक ही पाता है, इसमें संशय नहीं है।।१०।।

प्रवचन-१७८, गाथा-१० से १४, सोमवार, पौष कृष्ण ७, दिनांक १८-०१-१९७१

अष्टपाहुड़ में सातवाँ पाहुड़। इसकी १०वीं गाथा। आचार्य जरा स्पष्ट करते हैं कि जो लिंग धारण करे नग्न दिगम्बर, तथापि उसके प्रमाण में उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र न हो तो वह सब लिंग ढोंग है। गृहस्थाश्रम में रहकर आत्मज्ञान करके संसार का... और उसके योग्य आचरण न हो तो वह लिंग है। गृहस्थाश्रम में धर्मी जीव को... परन्तु उसकी पदवी अत्यन्त हल्की और नीच है। ऐसा बताते हैं। १०वीं (गाथा)।

चोराण लाउराण च जुद्धं विवादं च तिव्वकम्मेहिं।
जंतेण दिव्वमाणो गच्छदि लिंगी णरयवासं।।१०।।

अर्थ :- जो लिंगी ऐसे प्रवर्तता है... नग्न दिगम्बर मुनि का वेश धारण करके ऐसा प्रवर्ते तो **वह नरकवास को प्राप्त होता है;...** नरक में जाये। **जो चोरों के और लापर अर्थात् झूठ बोलनेवालों के युद्ध और विवाद कराता है और तीव्रकर्म जिनमें बहुत पाप उत्पन्न हो, ऐसे तीव्र कषायों के कार्यों से तथा यन्त्र अर्थात् चौपड़, शतरंज, पासा, हिण्डोला आदि से क्रीड़ा करता रहता है, वह नरक जाता है।** ऐसा कहते हैं। आचार्य की तो सख्त बात है।

मुनि पद तो आत्मा आनन्दस्वरूप, ऐसा तो प्रथम भान हुआ हो। तदुपरान्त अन्दर रमणता, शान्ति की वीतरागता की अलौकिक स्वच्छता जिसे अन्तर प्रगटी हो, उसे नग्न

दिगम्बर मुद्रा का धारण करना शोभता है। परन्तु मुद्रा धारण करके अन्दर का ठिकाना नहीं। कषाय करके एक-दूसरे को झगड़ा करावे, वाद-विवाद करावे, नारद की भाँति युद्ध करावे। ऐसा वर्तता हुआ, **वह नरक जाता है।** '**लाउराण**' शब्द है न? **पाठान्तर ऐसा भी है इसका अर्थ - रावल अर्थात् राजकार्य करनेवालों के युद्ध विवाद कराता है।** साधु होकर भी कोई ऐसे बड़े राज में जाकर एक-दूसरे को युद्ध करावे, खटपट करावे। वे सब पदवी को शोभते नहीं, ऐसे काम करे। नीचे नरक का स्थान है, वहाँ जाते हैं, ऐसी यहाँ सीधी बात करते हैं। माँस खानेवाले, शराब पीनेवाले, शिकार करनेवाले जैसे मरकर नरक में जाते हैं। नीचे नरक में उनके स्थान हैं। सब राजा, महाराजा बड़े होते हैं न? माँस खाये, शराब पीवे, शिकार करे, मछलियाँ खाये। वे सब नीचे जानेवाले हैं। नरक के स्थान। ऐसे अनन्त भव प्रत्येक प्राणी ने किये हैं। उसमें कुछ नया किया है अनादि का है न। वर्तमान है, उसमें भूतकाल भूलकर वर्तमान को याद रखता है। अनन्त-अनन्त काल में ऐसे पाप किये। साधु होकर यदि ऐसा करे तो वह नरक में ही जाता है। कहो, पण्डितजी! ऐसी पदवी के योग्य नहीं है ... पदवी है दिगम्बर। आहाहा! धन्य अवतार! जिन्हें अन्तर आनन्द का ऊफान आता है, अतीन्द्रिय आनन्द की जिसे दशा प्रगटी है। जिसे उग्ररूप से आत्मा के आनन्द का वेदन है। उसे ऐसी दिगम्बर नग्नदशा शोभती है। बाकी नग्नपना धारण करके ऐसे वाद और विवाद और झगड़ा आदि करावे, वह नरक में जाता है।

अथवा **राजकार्य करनेवालों के युद्ध विवाद कराता है,...** ऐसा। '**लाउराण**' का अर्थ यह किया। इसका अर्थ किया है। '**समाएण' ऐसा पाठ है जिसकी छाया में 'मिथ्यात्वादिना'** ऐसा। झूठ बोलनेवाले, झूठी श्रद्धा करनेवाले। वास्तविक आत्मा का तत्त्व भगवान परमेश्वर ने कहा, ऐसा नहीं माननेवाले, उल्टा माननेवाले, वे सब नरक में जाते हैं, नरक में कहते हैं। क्रम-क्रम से नरक में जाते हैं भले परन्तु वे (जाये सही)। आहाहा!

भावार्थ :- लिंग धारण करे, ऐसे कार्य करे तो नरक ही पाता है, इसमें संशय नहीं है। यह २००० वर्ष पहले की बात है। अन्दर में घोटाला था न! श्वेताम्बर निकल चुके थे न उसमें से। उस समय श्वेताम्बर तो निकल चुके थे। बहुत बात तो उनसे सम्बन्धित है। वेशधारण करके ऐसे झगड़े-तूफान, राज में पड़ते थे न कितने ही साधु?

गाथा-११

आगे कहते हैं कि जो लिंग धारण करके लिंगयोग्य कार्य करता हुआ, दु:खी रहता है, उन कार्यों का आदर नहीं करता है, वह भी नरक में जाता है –

दंसणणाणचरित्ते तवसंजमणियमणिच्चकम्मम्मि।
पीडयदि वट्टमाणो पावदि लिंगी णरयवासं।।११।।

दर्शनज्ञान चारित्रेषु तपः संयमनियमनित्यकर्मसु।
पीडयते वर्त्तमानः प्राप्नोति लिंगी नरकवासम्।।११।।

दृग ज्ञान चारित्र नियम संयम तपादि नित्य कर्म में।
जो वर्तते पीड़ा करे वह लिंगि जाता नरक में।।११।।

अर्थ – जो लिंग धारण करके इन क्रियाओं को करता हुआ, बाध्यमान होकर पीड़ा पाता है, दु:खी होता है, वह लिंगी नरकवास को पाता है। वे क्रियायें क्या हैं? प्रथम तो दर्शन ज्ञान चारित्र में इनका निश्चय व्यवहाररूप धारण करना, तप-अनशनादिक बारह प्रकार, शक्ति के अनुसार करना, संयम-इन्द्रियों को और मन को वश में करना तथा जीवों की रक्षा करना, नियम अर्थात् नित्य कुछ त्याग करना और नित्यकर्म अर्थात् आवश्यक आदि क्रियाओं को नियत समय पर नित्य करना, ये लिंग के योग्य क्रियायें हैं, इन क्रियाओं को करता हुआ दु:खी होता है वह नरक पाता है। (''आतम हित हेतु विराग ज्ञान सो लखै आपको कष्टदान'' मुनिपद=मोक्षमार्ग, उसको तो वह कष्टदाता मानता है, अत: वह मिथ्या रुचिवान है।)

भावार्थ – लिंग धारण करके ये कार्य करने थे, इनका तो निरादर करे और प्रमाद सेवे, लिंग के योग्य कार्य करता हुआ दु:खी हो तब जानो कि इसके भावशुद्धिपूर्वक लिंगग्रहण नहीं हुआ और भाव बिगड़ने पर तो उसका फल नरक ही होता है, इस प्रकार जानना।।११।।

गाथा-११ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो लिंग धारण करके लिंगयोग्य कार्य करता हुआ दु:खी रहता है, उन कार्यों का आदर नहीं करता है, वह भी नरक में जाता है :- साधु के योग्य कार्य जो है, उसमें उसे ठीक नहीं लगता, खेद लगता है, दु:ख लगता है। जबरदस्ती हठ से करना पड़ता है। तो वह भी कहते हैं, बड़ी पदवी नाम धराया है और ऐसे काम करे, वह भी नीचे जाता है। लो! ....खानेवाले नरक में जाते हैं, वैसे यह भी नरक में जाता है। वस्तु ऐसी है, भाई! किसी का वहाँ कुछ न्याय की वस्तु की स्थिति सहज ऐसी है, तत्प्रमाण धर्म आदि न करे तो मरकर नरक में जाये। यह भी कुदरत का स्वभाव है।

दंसणणाणचरित्ते तवसंजमणियमणिच्चकम्मम्मि।
पीडयदि वट्टमाणो पावदि लिंगी णरयवासं।।११।।

अर्थ :- जो लिंग धारण करके इन क्रियाओं को करता हुआ... उसकी क्रिया में, ऐसा। साधु के योग्य जो क्रिया चाहिए। समता, सामायिक, वन्दन, स्तुति इत्यादि। और आत्मज्ञान-ध्यान इत्यादि। उसकी अपेक्षा **बाध्यमान होकर...** दु:ख लगे। जबरदस्ती बेगार करनी पड़ती हो नहीं, जैसे बेगारी करे। वेठ समझते हो? भाररूप। हमारे यहाँ वेठ कहते हैं। फौजदार और उसका हुक्म आवे कि दो गाड़ा जोड़ना। भार। भार अर्थात् बिना पैसे जाना पड़े। बेगार। इसी प्रकार मानो क्रिया करनी पड़ती हो, वह भार लगे। साधु की क्रिया समता, विनय, वन्दन, आत्मध्यान, ज्ञान, श्रवण, वांचन।

एक व्यक्ति कहता था। यहाँ एक ब्रह्मचारी था। हमारा सुना सब बहुत। फिर बेचारे ने कहा, मुझे चाहे जैसे हो, यह पढ़ने से उकताहट आती है। शास्त्र पढ़ने में उकताहट आती है। यह क्या है? कहो अब। घर की बहियाँ पढ़नी हो पाप की, उसमें उकताहट आती है? चाहे जो हो मुझे कहे अन्दर... वह बेचारा चार-छह महीने साथ में रहा, ऐसी एक बार खुल्ली बात कह दी। वह क्या नाम, भूल गये? ...सेठी। दो-तीन महीने रहा। ब्रह्मचारी। वाँचन, शास्त्र जहाँ लेता हूँ, पढ़ता हूँ। रस नहीं आता। उकताहट आती है। कहो, इस प्रकार की योग्यता होती है उसे।

कहते हैं कि जो उसे क्रियायोग्य हो, उसकी उसे उकताहट लगे, पीड़ा लगे, भार

लगे, दु:खी हो। **वह लिंगी नरकवास को पाता है।** उसकी पदवी के योग्य क्रिया जो व्यवहार की है, वह करने में भी उसे भार लगे, दु:खी हो तो नरक में जाता है। आहाहा! **वे क्रियायें क्या हैं?** वह क्रिया कौन सी? **प्रथम तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र में इनका निश्चय-व्यवहाररूप धारण करना,...** देखो! यह क्रिया। हों! भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द और ज्ञानघन आत्मा है। उसकी अन्तर की सम्यग्दर्शन-सम्यग्दर्शन निर्विकल्प प्रतीति करना, यह उसे उकताहट लगे, दु:ख लगे। आहाहा! यह प्रथम में प्रथम जन्म-मरण के उद्धार के लिये पहला यह रास्ता कि भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन सच्चिदानन्द स्वरूप, अनन्त-अनन्त गुण के साम्राज्य का राजा स्वयं। आहाहा! उसके अन्तर में स्वसन्मुख होकर राग के अवलम्बन को छोड़कर अकेला आत्मा परमानन्द की मूर्ति का आलम्बन लेकर सम्यक् प्रतीति करना, वह उसे उकताहट लगे कि यह क्या ऐसा? समझ में आया? जो साधु का तो मूल कर्तव्य है। आहाहा!

प्रभु आत्मा अनन्त गुणरूपी जिसमें समाज पड़ा है, ऐसा भगवान एक वस्तु अपनी, उसके सन्मुख होकर और दुनिया से विमुख होकर, रागादि विकल्प से विमुख होकर, स्वभाव के सन्मुख होकर स्वभाव की श्रद्धा प्रगट करना, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन कहते हैं। सच्ची प्रतीति और सच्चा दर्शन। जैसा है आत्मा, वैसा दर्शन। यह करने में उसे कण्टाला लगता है, दु:ख लगता है, खेद लगता है। अन्तर में ध्यान करने में मन स्थिर नहीं होता। और दूसरी विकथाओं में मन रंजायमान होता है। कहते हैं कि वे सब लक्षण नरक में जाने के हैं। आहाहा!

अपना आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी अन्तर में दृष्टि करना, उसके सन्मुख होकर, यह उसे ठीक नहीं लगता और बाहर की बातें, विकथायें करना उसे ठीक लगता है। दो-दो चार-चार घण्टे... विकथायें... आहाहा! क्या उसके लक्षण। पदवी नाम धराकर कहते हैं कि ऐसे तेरे लक्षण? नरक में जाने के लक्षण हैं। आहाहा! निश्चय समकित। ऐसे निश्चय ज्ञान। यह... बात है न दो?

निश्चयज्ञान अर्थात् आत्मा का ज्ञान। पूरा आत्मा महाप्रभु पूर्ण स्वरूप उसका। उसका ज्ञान करने में उकताहट लगे। समझ में आया? उसमें मन रोक सके नहीं और भय पावे। भय पावे कि आहा! उसमें कैसे जाया जायेगा? बाहर में भटका करे, ऐसे

साधु का जो आचरण है, उसे करता नहीं। आत्मा का सम्यग्ज्ञान करता नहीं, ऐसा कहते हैं। और सम्यक्चारित्र। स्वरूप में रमना। भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दघन में रमना, उसमें लीन होना, उसका नाम चारित्र है। उस चारित्र को तो करता नहीं। यह तीन निश्चय हुए।

अब व्यवहार। व्यवहार समकित। निश्चय ऐसा हो, वहाँ व्यवहार सच्चे अरिहन्त, देव, गुरु, शास्त्र। पवित्र प्रभु परमात्मा, गुरु निर्ग्रन्थ, शास्त्र अनेकान्त सिद्ध, उनकी श्रद्धा, वह शुभराग है। वह व्यवहार है। निश्चय सम्यग्दर्शन आत्मा का हो, वहाँ ऐसा व्यवहार समकित का भाव देव, गुरु, शास्त्र सच्चे, उनकी श्रद्धा का राग उसे होता है। ऐसी श्रद्धा करने में उसे उकताहट लगे और दूसरी चीज़ को रमने में... क्या कहलाता है तुम्हारे? चौपड़ को। वह साधु होकर खेले फुरसत हो वह। आहाहा! उसमें उसे रस लगता है, कहते हैं। व्यवहार ज्ञान। शास्त्र का वाँचन करना, विचारना, वह सब व्यवहार ज्ञान है। आत्मज्ञान वह निश्चय है, शास्त्र का वाँचन आदि करके ज्ञान करना, वह व्यवहार है। उस व्यवहारज्ञान में भी जिसे उकताहट आती है, उस साधु पदवी के योग्य में उसे दु:ख होता है कि इतना करना पड़ेगा। सवेरे स्वाध्याय, फिर ध्यान, फिर यह। यह लप।

मुमुक्षु : आफत समझे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आफत समझे। बस यह।

व्यवहारचारित्र पंच महाव्रत। कोई भी प्राणी एकेन्द्रिय से हरितकाय से लेकर किसी भी प्राणी को दु:ख न देने का भाव। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य व्यवहार। शरीर से ब्रह्मचर्य। और अपरिग्रह-लंगोटी भी नहीं। ऐसे पंच महाव्रत की व्यवहार चारित्र क्रिया। उसमें भी उसे रुचि नहीं रहती। उकताहट लगती है। यह निश्चय और व्यवहार दो हुए।

प्रथम तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र में इनका निश्चय-व्यवहाररूप... अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-निश्चय, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र व्यवहार। यह दो प्रकार कहे वे। यह **धारण करना,...** उसे उकताहट लगती है। और **तप-अनशनादिक बारह प्रकार के शक्ति के अनुसार करना,...** शक्ति अनुसार अर्थात् शक्ति के प्रमाण में। शरीर की शक्ति

हो, वीर्य की शक्ति-बल हो उसके प्रमाण में अनशन—आहार छोड़ना, ऊनोदरी करना, रस छोड़ना ऐसा उसके योग्य चाहिए, वह योग्य करता न हो और करने में उसे खेद लगता हो। आफत लगे, भाई! कहते हैं ठीक है। ऐसी आफत आयी सिर पर। करना पड़ेगा। बेगारी। यह कहते हैं कि उसकी पदवी के योग्य नहीं करता तो वह भी नरक योनि में जानेवाला है।

संयम-इन्द्रियों को और मन को वश में करना... पाँच इन्द्रियाँ और छठा मन। छह को वश करना। यह वश करने में उसे खेद लगे, दुःख लगे। **जीवों की रक्षा करना,...** लो! किसी जीव को दुःख देना नहीं, ऐसा। रक्षा अर्थात्। हरितकाय जीव है यह वनस्पति। एकेन्द्रिय पृथ्वी, पानी / जल, अग्नि, वायु उस किसी भी प्राणी को दुःख देने का भाव न हो। उसके बदले उसे उकताहट आवे। यह एकेन्द्रिय है। ऐसे सब कोई अपने से कहीं पालन नहीं किया जा सकता। भाई! लो! ऐसा करके दुःख लगे।

नियम अर्थात् नित्य कुछ त्याग करना... हमेशा कुछ नियम लेना कि यह कच्चा नहीं खाना अथवा अथाणां नहीं लेना। इत्यादि। इसमें उसे खेद लगे, दुःख लगे तो वह भी मुनि के आचरण से विरुद्ध है। **नित्यकर्म अर्थात् आवश्यक आदि...** सामायिक, चौविसंथो, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान छह प्रकार के आवश्यक हैं। उसमें भी उसे खेद-दुःख लगता है। **क्रियाओं को नियत समय पर नित्य करना,...** हमेशा सवेरे-शाम जो काल दोपहर में भी सामायिक आदि करना चाहिए, उसे नहीं करता और खेद लगता है। **ये लिंग के योग्य क्रियायें हैं,...** लो! वह लिंग के योग्य किया है। **इन क्रियाओं को करता हुआ दुःखी होता है...** दुःखी होता है, ऐसा लिखा है। **वह नरक पाता है।**

भावार्थ :- लिंग धारण करके ये कार्य करने थे, इनका तो निरादर करे... दिगम्बर लिंग धारण करके, वेश धारण करके करना तो यह था। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, इन्द्रियदमन, जीव की रक्षा, आवश्यक आदि क्रिया, उसका तो निरादर करे। आदर करे नहीं **और प्रमाद सेवे, लिंग के योग्य कार्य करता हुआ दुःखी हो,...** लिंग के योग्य कार्य करने में उसे खेद लगता है। **तब जानो कि इसके भावशुद्धिपूर्वक लिंगग्रहण नहीं हुआ...** भाव के भानपूर्वक उसने यह

वेश लिया नहीं है। वेश से वेश लिया है। सबके साथ लेने से, चलो, अपन भी मुंडाये साथ में। आत्मा का भान-ज्ञान, व्यवहार-निश्चय करने की उसे दरकार नहीं है। **भावशुद्धिपूर्वक लिंग ग्रहण नहीं हुआ।**

भाव बिगड़ने पर तो उसका फल नरक ही होता है,... कहते हैं, बेचारा माँस खाये नहीं, शराब पीये नहीं। परन्तु वह अन्त में वहाँ जायेगा, ऐसा कहते हैं। भाव बिगड़े हैं, फिर उसका ठिकाना क्या?

गाथा-१२

आगे कहते हैं कि जो भोजन में भी रसों का लोलुपी होता है, वह भी लिंग को लजाता है –

कंदप्पाइय वट्टइ करमाणो भोयणेसु रसगिद्धिं।
मायी लिंगविवाई तिरिक्खजोणी ण सो समणो।।१२।।

कंदर्पादिषु वर्त्तते कुर्वाण: भोजनेषु रसगृद्धिम्।
मायावी लिंगव्यवायी तिर्यग्योनि: न स: श्रमण:।।१२।।

आहार में रस गृद्धि करता वर्तता कन्दर्प में।
मायावि लिंग-विनाशि वह तिर्यंच योनि न श्रमण है।।१२।।

अर्थ – जो लिंग धारण करके भोजन में भी रस की गृद्धि अर्थात् अति आसक्तता को करता रहता है, वह कंदर्प आदिक में वर्तता है, उसके काम सेवन की वांछा तथा प्रमाद निद्रादिक प्रचुर मात्रा में बढ़ जाते हैं तब 'लिंगव्यवायी' अर्थात् व्यभिचारी होता है, मायावी अर्थात् कामसेवन के लिए अनेक छल करना विचारता है, जो ऐसा होता है वह तिर्यंचयोनि है, पशुतुल्य है, मनुष्य नहीं है, इसलिए श्रमण भी नहीं है।

भावार्थ – गृहस्थपद छोड़कर आहार में लोलुपता करने लगा तो गृहस्थपद में अनेक रसीले भोजन मिलते थे, उनको क्यों छोड़े? इसलिए ज्ञात होता है कि आत्मभावना के रस को पहिचाना ही नहीं है, इसलिए विषयसुख की ही चाह रही तब भोजन के रस

की, साथ के अन्य भी विषयों की चाह होती है तब व्यभिचार आदि में प्रवर्त कर लिंग को लजाता है, ऐसे लिंग से तो गृहस्थपद ही श्रेष्ठ है, ऐसे जानना ।।१२।।

गाथा-१२ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो भोजन में भी रसों का लोलुपी होता है, वह भी लिंग को लजाता है :-

कंदप्पाइय वट्टइ करमाणो भोयणेसु रसगिद्धिं।
मायी लिंगविवाई तिरिक्खजोणी ण सो समणो ।।१२।।

तिर्यंच योनि डालते हैं बहुत जगह।

अर्थ :- जो लिंग धारण करके भोजन में भी रस की गृद्धि... दिगम्बर लिंग धारण करे या कोई भी साधु का वेश लो। ऐसी समुच्चय है न बात? गृद्धि। रस में गृद्धि। जिस जगह अच्छा रस मिलता हो, वहाँ लेने जाये। आम का रस। समझ में आया? ऐसा गृद्धि होकर, कहते हैं कि वे सब ठिकाने ढोर के हैं। क्योंकि खाने की गृद्धि तो ढोर को होती है। ऐसा कहते हैं। तिर्यंच योनि कहा है न? देखो न! पूरे दिन पशु खाया ही करते हैं। क्योंकि उन्हें आहारसंज्ञा बहुत होती है जाति में। पशु को आहारसंज्ञा बहुत होती है। मनुष्य को मैथुनसंज्ञा बहुत होती है। नारकी को भयसंज्ञा बहुत होती है, देव को परिग्रहसंज्ञा बहुत होती है। यह तिर्यंच खाने की बारम्बार गृद्धि कहते हैं। तिर्यंच है, ऐसा कहते हैं। देखो न! पशु को चाहे जितना डालो तो वापस खाया ही करे, पूरे दिन खाया ही करे। चरा ही करे। क्योंकि उसे आहार की गृद्धि बहुत है। आहारसंज्ञा है न! ऐसे माया है।

चार संज्ञा में आहारसंज्ञा है और क्रोध, मान, माया, लोभ। उसमें माया-कपट तिर्यंच को अधिक होती है। नारकी को भय होता है। भयसंज्ञा। ऐसे क्रोध हो। मनुष्य को मैथुन होता है, मान होता है। चार कषाय में उसे मान अधिक (होता है)। मान। सत्ताप्रिय कोई ऐसे अकड़ करे, ऐसा अभिमान उसे अधिक (होता है) और उसे विषय

की वासना। देव को परिग्रहसंज्ञा और लोभ। तिर्यंच को माया और आहार। यह भेद है चार बोल। आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा। क्रोध, मान, माया और लोभ यह चार विभाजित किया होता है। सुना है या नहीं? है न, शास्त्र में है। इससे यहाँ तिर्यंच लिया है।

भोजन में भी रस की गृद्धि अर्थात् आसक्तता को करता रहता है, वह कन्दर्प आदिक में वर्तता है,... शरीर की ऐसी चेष्टायें आदि। **उसके काम-सेवन की वांछा तथा प्रमाद निद्रादिक प्रचुर मात्रा में बढ़ जाते हैं,...** खाये और फिर प्रमाद और निद्रा करे आठ-आठ, दस-दस घण्टे तक। **तब लिंगव्यवायी अर्थात् व्यभिचारी होता है,...** लो! आहाहा! जिसे सच्चा मुनिपना प्रगट हुआ हो, उसे तो निद्रा भी पौन सेकेण्ड के अन्दर की होती है। उसकी ऐसी ही दशा है। समझ में आया? सच्चे भावलिंगी साधु हों, उन्हें आत्मज्ञान उपरान्त चारित्रदशा प्रगटी होती है। ऐसे साधु को रात्रि में पौन सेकेण्ड के अन्दर निद्रा आती है। एक सेकेण्ड भी निद्रा नहीं आती। इतनी जागृतदशा हो गयी होती है। तुरन्त जागृत हो जाते हैं। आहाहा! आत्मा के स्वभाव में बहुत सावधानी, बहुत सावधानी हो गयी है न, इसलिए निद्रा बहुत ही अल्पकाल आती है। यह कहते हैं, आठ-आठ, दस-दस घण्टे तक घोरे (गहरे नींद सोये)। शाम के नौ बजे सोये और सवेरे छह बजे उठे। नौ-नौ घण्टे। आहाहा!

तब लिंगव्यवायी अर्थात् व्यभिचारी होता है,... लिंग की शोभा उसमें है नहीं। उसके योग्य नहीं किया। व्यभिचार किया सब, ऐसा कहते हैं। लिंग का यह व्यभिचार। **मायावी अर्थात् कामसेवन के लिये अनेक छल करना विचारता है,...** विषय की वासना के लिये अनेक प्रकार की माया, कपट, कुटिलता, दम, वक्रता सेवन करता है। खोजता है किस प्रकार मिले। **जो ऐसा होता है, वह तिर्यंचयोनि है,...** यह तो पशु की योनि है। ढोर में अवतरित है, कहते हैं। वह तो ढोर की योनि है। **पशुतुल्य है, मनुष्य नहीं है, इसलिए श्रमण भी नहीं है।** इसलिए मनुष्यपना नहीं, वहाँ और साधुपना कहाँ से आया, कहते हैं। मनुष्य के योग्य जो मनुष्यपना चाहिए, उसका भी ठिकाना नहीं। पशु जैसे आचरण करे।

भावार्थ :- गृहस्थपद छोड़कर आहार में लोलुपता करने लगा... गृहस्थपना छोड़कर आहार में लोलुपी हुआ। अच्छा-अच्छा आहार मिले। मौसम्बी, आम। क्या कहलाता है तुम्हारे? द्राक्ष। क्या कहलाता है उसका दूसरा नाम? द्राक्ष। अंगूर। ऐसे अंगूर आते हैं न बड़े-बड़े इतने-इतने काबुली। एक काबुली आते हैं। एक दूसरे देश के आते हैं। सीधे आते हैं मुम्बई। प्लेन में आते हैं न।

मुमुक्षु : चमना।

पूज्य गुरुदेवश्री : चमना। तुमको खबर है न सब। वहाँ से सीधा आवे। ऐसे रेल में नहीं आते। बिगड़ जाये न, इसलिए सीधे आवे। छोटे। अन्दर बीज नहीं होते। यह गृद्धि।

एक बार यहाँ बात हुई थी। वहाँ... ऐसी द्राक्ष थी न द्राक्ष। कोई गरीब व्यक्ति आया होगा। भाई! वह द्राक्ष खाओ न इतनी। परन्तु भाई तुझे द्राक्ष है। यहाँ हमारे द्राक्ष कहाँ थी? क्योंकि वे सब भेजे मक्खन चुपड़नेवाले बहुत होते हैं न। उसके द्राक्ष आवे, वे टोकरे आवें। वहाँ भी अपने आते थे, नहीं? भोपाल। भोपाल नहीं? अपने कैसे? मिश्रीलालजी भोपाल के गंगवाल। बड़े। उनके यहाँ उतरे न, भोपाल गये थे तब। वे बड़े आते हैं पीच-पीच। पीच आवे। ऊपर काँटे हों और अन्दर मिठास हो। पीच-पीच। टोकरे-टोकरे के पड़े हों उनके। लोग भेजें। ऐसी बात मैंने सुनी थी। कितने ही आये। कि खाना क्या? कहे, यह द्राक्ष खाओ न, अंगूर खाओ अंगूर। बहुत पके हैं देखो यहाँ! परन्तु यह तुम्हारे यहाँ। हमारे यहाँ रोटी मिलती नहीं, वहाँ अंगूर कहाँ से लाना? खाओ खाजा। किसका खाजा खाये?

ऐसा कहते हैं कि **गृहस्थपद में अनेक रसीले भोजन मिलते थे, उनको क्यों छोड़े? इसलिए ज्ञात होता है कि आत्मभावना के रस को पहिचाना ही नहीं है...** आहाहा! आत्मा के आनन्द के रस की उसे खबर नहीं। इसलिए रस का गृद्धि हो गया, ऐसा कहते हैं। सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा का आनन्दरस। आत्मरस। शान्त निर्विकारी अनुभव का आत्मा का आनन्दरस, उसकी उसे खबर नहीं। **आत्मभावना के रस को पहिचाना ही नहीं है...** देखो! यह आत्मस्वभाव का रस। आत्मा पवित्र शुद्ध आनन्द,

उसकी भावना करने से, एकाग्रता होने से आत्मा के आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! वह कैसा? समझ में आया? ऐसे रस को तो जाना नहीं। यह जड़ के रस में गृद्धि होकर... समझ में आया? वहाँ अपने गये थे, नहीं? क्या कहलाता है? श्रवणबेलगोला? उतरे थे। नहीं? थाल भर-भरकर आये ऊपर से। आम और वह सब। यह मांगरोल है न? मांगरोर्ल। मूड़बिद्री। वहाँ वह नळिया बहुत होते हैं। मेंगलोर बड़ा है। वहाँ आगे महाराज आये, ऐसा कहकर फिर बेचारे थाल के थाल भरकर लावे। आम और वह सब। भाई! यहाँ कुछ खाते नहीं। हम तो यह रोटी खाते हैं। उसका बहुत पाक है उस ओर। क्या कहा यह?

मुमुक्षु : मेंगलोर।

पूज्य गुरुदेवश्री : मेंगलोर। हम मूड़बिद्री थे। महाराष्ट्र। लोग बहुत आवे न चारों ओर से। फिर उसमें गृद्धि हो। मर जाये। आहाहा! लोग तो बेचारे अच्छी चीज़ हो, वह आमन्त्रित करे परन्तु वेशवाले को भान नहीं होता और गृद्धि हो जाती है तो मर जाता है, कहते हैं - ऐसा कहते हैं। यहाँ।

विषयसुख की चाह रही... देखो! क्या कहा? अरे! धर्मी को तो आत्मा के आनन्द के रस की चाहना होती है, ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! धर्मी तो उसे कहते हैं कि जिसे आत्मा के आनन्द के रस की भावना होती है। आनन्दरस, निजरस, निर्विकल्प आत्मरस, सुधारस। धर्मी जीव उसे कहते हैं और उसे आनन्द के रस की भावना होती है। ऐसे रस को जाना नहीं, इसलिए इस रस में गृद्धि हो गया। पारस्परिक बात ली है। समझ में आया? ऐसे भोजन रसीला छोड़कर... क्यों छोड़े? और यहाँ वापस उसका यह गृद्धि हो गया, कहते हैं। इससे जाना कि **आत्मभावना के रस को पहिचाना ही नहीं है; इसलिए विषयसुख की ही चाह रही...** भोग। राग... राग... राग... आहाहा! माँसमंथन यह रहा इसे। राग का रस। भगवान आत्मा के रस के आनन्द का भान नहीं होता। समझ में आया? आहाहा!

भोजन के रस की, साथ के अन्य भी विषयों की चाह होती है... भोजन और दूसरे भी अनेक प्रकार के अच्छे सुनना, गायन सुनना, हारमोनियम, बाजा, सितार।

आहाहा! **तब व्यभिचार आदि में प्रवर्तकर लिंग को लजाता है, ऐसे लिंग से तो गृहस्थपद ही श्रेष्ठ है,...** ऐसे लिंग से तो गृहस्थाश्रम में आत्मा का भान करके रहे। भले कोई ऐसे पाप के भाव हों, परन्तु उसे अन्दर में रस नहीं होता। रस नहीं होता। गृहस्थाश्रम में मुनि हुआ न हो, भले त्यागी-दिगम्बर न हो परन्तु गृहस्थाश्रम में आत्मा के धर्म का रस लेकर, आत्मा के रस की रुचि-दृष्टि करके रहे तो उसे संसार में कहीं रस की रुचि नहीं होती। तब तो ऐसे साधु से तो गृहस्थाश्रम अच्छा। कौन सा गृहस्थाश्रम? आत्मा के रस के लेनेवाले का। भले त्यागी नहीं, चारित्र नहीं, मुनि नहीं। समझ में आया?

रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आता है न? मोही अणगार संसारमार्गी है। मिथ्यादृष्टि, आत्मा के रस की खबर नहीं होती और ऐसे रस में रहा हुआ अणगार मोही मिथ्यादृष्टि संसारमार्गी है। गृहस्थाश्रम में भी आत्मा का रस और भान हुआ है, उस रस के समक्ष पूरी दुनिया के राग का रस जिसे अन्तर से छूट गया है। आसक्ति है। आसक्ति है परन्तु रस नहीं। समझ में आया? तो ऐसे मुनि से तो कहते हैं, ऐसे गृहस्थ अच्छे। पदवी का तो पाप नहीं और उसके योग्य पाप के परिणाम हों परन्तु उसे रुचि और रस नहीं होता। गृहस्थाश्रम की बात है।

गाथा-१३

आगे फिर इसी को विशेषरूप से कहते हैं -

धावदि पिंडणिमित्तं कलहं काऊण भुञ्जदे पिंडं।
अवरपरूई संतो जिणमग्गि ण होइ सो समणो ।।१३।।

धावति पिंडनिमित्तं कलहं कृत्वा भुंक्ते पिंडम्।
अपरप्ररूपी सन् जिनमार्गी न भवति सः श्रमणः ।।१३।।

आहार-हेतु दौड़ता कर कलह भोजन को करे।
इस हेतु ईर्ष्यालु परस्पर श्रमण नहिं जिनमार्ग में।।१३।।

अर्थ – जो लिंगधारी पिंड अर्थात् आहार के निमित्त दौड़ता है, आहार के निमित्त कलह करके आहार को भोगता है, खाता है और उसके निमित्त अन्य से परस्पर ईर्ष्या करता है, वह श्रमण जिनमार्गी नहीं है।

भावार्थ – इस काल में जिनलिंग से भ्रष्ट होकर पहिले अर्द्धफालक हुए, पीछे उनमें श्वेताम्बरादिक संघ हुए, उन्होंने शिथिलाचार पुष्ट कर लिंग की प्रवृत्ति बिगाड़ी, उनका यह निषेध है। इनमें अब भी कई ऐसे देखे जाते हैं जो आहार के लिए शीघ्र दौड़ते हैं, ईर्यापथ की सुध नहीं है और आहार गृहस्थ के घर से लाकर दो चार शामिल बैठकर खाते हैं, उसमें बंटवारे में सरस, नीरस आवे तब परस्पर कलह करते हैं और उसके निमित्त परस्पर ईर्ष्या करते हैं, इस प्रकार की प्रवृत्ति करें तब कैसे श्रमण हुए ? वे जिनमार्गी तो हैं नहीं, कलिकाल के भेषी हैं। इनको साधु मानते हैं वे भी अज्ञानी हैं।।१३।।

गाथा-१३ पर प्रवचन

आगे फिर इसी को विशेषरूप कहते हैं :-

धावदि पिंडणिमित्तं कलहं काऊण भुञ्जदे पिंडं।
अवरपरूई संतो जिणमग्गि ण होइ सो समणो।।१३।।

अर्थ :- जो लिंगधारी पिण्ड अर्थात् आहार के निमित्त दौड़ता है,... है, यह बात तो बनती है अभी यह साधु श्वेताम्बर के। समिति बिना, देखे बिना चलते हैं। झोली लेकर दौड़े। झट इस घर में जाये और झट इस घर में जाये। नीचे चींटी-मकोड़ा मरे, उसका भी ठिकाना नहीं होता। और **आहार के निमित्त कलह करे...** खाते-खाते समरूप भाग न करे। यह तो सब देखा हुआ है। आहार में कलह करे। मैं इतना लाया और मुझे क्यों नहीं दिया थोड़ा? यह भाग मुझे क्यों नहीं किया? समविभाग करना चाहिए। आहाहा!

आहार को भोगता है, खाता है,... क्लेश करे। **उसके निमित्त अन्य से परस्पर ईर्ष्या करता है...** दूसरे के साथ ईर्ष्या करे कि तू बराबर मुझे देता नहीं। तू उसे देता है, तू बीच में पड़कर समान नहीं दिलाता, अमुक को अच्छा देता है, हमको नहीं। बाँटनेवाला

तुझे कहाँ से दिया ? साधु इकट्ठे होकर बाँटते हैं। यह ले आवे न आहार, श्वेताम्बर। और यह डालते हैं।

मुमुक्षु : परस्पर में विवाद करते हैं। विवाद हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो जाये। बहुत होता है न, बहुत सब देखा है। एक बार मुझे कहना पड़ा था कि ऐ... परन्तु यह तुम्हें इसमें दीक्षा तुम्हें किसने दी ? (संवत्) १९७७ की बात है। यह क्या करते हो तुम यह ? आहार बाँटने के लिये विवाद, यह क्लेश, क्या करते हो तुम यह ? अपने तो भाई मध्यस्थ। हम कहें, नहीं आना चाहिए। खीझ जाये थोड़ी देर। खीझे तो खीझे, परन्तु बापू! तुम यह करते हो, वह अपने को ठीक नहीं लगता। आहार का बँटवारा करे और उसमें सरीखा न ले तो यह... विवाद, क्लेश। उपाश्रय के दरवाजे बन्द करना पड़े। कोई देख लेगा। हमारे हीराजी महाराज बेचारे...

मुमुक्षु : हीराजी महाराज स्वयं उठकर दरवाजा बन्द कर दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दरवाजा बन्द कर दे। बहुत नरम... बहुत नरम... बहुत नरम... आंकड़िया में पहला विवाद हुआ तो दरवाजा बन्द कर आये। उपाश्रय है न। उपाश्रय तुमने नहीं देखा। ९६ में उपाश्रय में उतरे थे। उस ओर से आये थे न जब गिरनार से ? सम्प्रदाय में तो सब उपाश्रय में उतरते। दोनों को विवाद हुआ तो हीराजी महाराज दरवाजा बन्द कर आये बेचारे। आहाहा ! ऐसे सज्जन व्यक्ति थे बेचारे। अपने इस साधुवेश में यह विवाद, यह क्लेश। हमारे सम्प्रदाय के गुरु बहुत नरम-बहुत नरम। परन्तु दूसरे दो थे, वे विवाद करे। बहुत देखा है।

भावार्थ :- इस काल में जिनलिंग से भ्रष्ट होकर... अनादि सनातन दिगम्बरमार्ग था। वीतराग का मार्ग अनादि आत्मज्ञान-ध्यानसहित मुनि दिगम्बर नग्न रहते थे। अनादि का यह मार्ग था। उसमें से इस काल में अर्थात् दो हजार वर्ष पहले **जिनलिंग से भ्रष्ट होकर...** दिगम्बरलिंग से भ्रष्ट हो गये। **पहले अर्धफालक हुए,...** अर्ध टुकड़ा रखा इतना आड़ा। टुकड़ा। अर्धफालक अर्थात् आधा टुकड़ा रखा। साफा। **पीछे उनमें श्वेताम्बरादिक संघ हुए,...** उसमें से यह श्वेताम्बर और स्थानकवासी और उसमें से सब निकले हैं। बात तो ऐसी है, भाई ! सत्य तो सत्य हो, वह (रहेगा)। श्वेताम्बर यह

स्थानकवासी, यह तेरापन्थी वे सब पहले दिगम्बर मुनि में से भ्रष्ट होकर निकले हुए हैं। अनादि सनातन मार्ग आत्मा में मस्त। आनन्द की मस्ती। इससे दिगम्बर वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं। ऐसी मुनि की अनादि दशा थी। उसमें से भ्रष्ट हुए। श्वेताम्बर आदि-स्थानकवासी इत्यादि, तेरापन्थी इत्यादि। **संघ हुए,....**

उन्होंने शिथिलाचार पुष्ट कर... ढीला आचार, **लिंग की प्रवृत्ति बिगाड़ी,...** साधु की जो लिंग की प्रवृत्ति (उसे) बिगाड़ा है। **उनका यह निषेध है।** लो! उसका यह स्पष्टीकरण किया, पण्डित जयचन्द्रजी ने। उसका यह निषेध है। **इनमें अब भी कई ऐसे देखे जाते हैं जो आहार के लिये शीघ्र दौड़ते हैं,...** आहार के लिये एकदम जाते हैं। और अपने भगत का न हो और विरोधी का हो तो बायकाट, और ऐसा बोले। वहाँ नहीं जाया जाता। क्या है परन्तु अब। तुम्हारे यह होली क्या? यह सब सुना हुआ है, हों! उसके माननेवाले न हों और विरोधी हो गाँव में घर। होता है न? यहाँ आओ नहीं... क्या है परन्तु तुझे?

मुमुक्षु : अच्छा-अच्छा माल हो वहाँ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : विरोधी हुए हों, वहाँ न जाना, ऐसा कहे। एक साधु तो बोला था। सुना था। आहाहा! यह, वह लक्षण है। कहते हैं। भाई! गृहस्थाश्रम के सज्जन जीव भी ऐसे होते हैं कि जिन्हें क्लेश, विवाद आदि नहीं होता। गृहस्थाश्रम के सज्जन, जिसकी नीति, न्याय सज्जन ऐसे होते हैं। आहाहा! लज्जित हो। अरे! यह आहार के लिये। लज्जित हो। अर..र..! ऐसा हो? ऐसा गृहस्थाश्रम में नहीं होता। साधु को क्या कहना? उसमें ऐसे लड़े, शीघ्र दौड़े।

ईर्यापथ की सुध नहीं है... नीचे देखने का ठिकाना नहीं। कौन कीड़ी मरे, मकोड़ा मरे। अरे! भाई! एक आहार की गृद्धि के लिये नीचे कौन मरता है? पंचेन्द्रिय मर जायें नीचे। अण्डे बारीक हो। छिपकली के अण्डे बहुत होते हैं। छिपकली होती है न, उसका इतना छोटा अण्डा होता है। पंचेन्द्रिय हो, हों! वह तो ऐसे पाककर रख जाये। उसे आदत होती है। यह छिपकली होती है न? छिपकली को क्या कहते हैं? तुम्हारे दूसरा कहते हैं।

मुमुक्षु : छिपकली तो... पंचेन्द्रिय नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचेन्द्रिय है। वह छिपकली नहीं होती ? वह पंचेन्द्रिय है। यह जीव नहीं खाती ऊपर ? दीपक के समय खावे न ? दीयाबत्ती के समय जीव खाती है, ऐसे। वह पंचेन्द्रिय है। गर्भज है। मनवाली है। पाँच इन्द्रियाँ और छठवाँ मन है। उसे सब है। वह खाती है। उसके बच्चे हों। छोटे अण्डे रखे ऐसे मूँग के दाने जैसे। हमने तो सब बहुत देखा है न! हमारे तो कितने वर्ष से नजर से देखा है। बहुत रख जाये। यहाँ पाट के ऊपर रख जाये। नीचे रखकर चली जाये। ध्यान रखना चाहिए। पंचेन्द्रिय जीव घात न हो। वह पंचेन्द्रिय है, अण्डा इतना छोटा। कहीं नजर ही नहीं होती, वह ईर्या शोध ही नहीं होती। चले जायें, कहते हैं। लो!

आहार गृहस्थ के घर से लाकर दो-चार शामिल बैठकर खाते... इकट्ठे खाये। दो-चार व्यक्ति साधु। आहार को मिलावे न वे श्वेताम्बर लोग। **इसमें बंटवारे में, सरस, नीरस आवे...** बँटवारे में सरस, नीरस कोई आ जाये **तब परस्पर कलह करते हैं...** यह डाकू होते हैं न ? यह बँटवारा करे तब विवाद नहीं करते। पच्चीस-पचास हजार का ले आये हों, लाख-दो लाख का और रातों-रातों बँटवारा करना हो होवे सात-आठ-दस व्यक्ति। वे कहीं तौलकर बँटवारा करते हैं वहाँ ? एक को यह गहना दे, एक को यह दे। ऐसा करके वे विवाद नहीं करते परस्पर। यह दृष्टान्त मैं तो देता था, हों! (संवत्) १९८० में। ऐई... कहा यह डाकू भी रात्रि में बाँटते हुए समान आता है या नहीं, उसमें कलह नहीं करते और यह साधु होकर क्या क्लेश करे ? वे लोग बँटवारा करे। वहाँ कहाँ उनके पास ऐसा काँटा था। दोबारा आओगे तब तुमको अधिक दूँगा, जाओ। लाख-दो लाख का ले आये हों, डाकू। रात की रात में बाँटकर चले जायें, दबा डाले कहीं एक जगह खड्डा करके। कोई पकड़ने आये तो पकड़ में नहीं आवे। फिर महीने, दो महीने में, चार महीने में दबाया हो वहाँ से ले आवे। ऐसे बहुत प्रकार हैं दुनिया के।

यहाँ चोरा नहीं था ? यहाँ गाँधी का। वे वाघरी लोग बाबा होकर आये थे। बाबा देख लो वह तो। वाघरी थे न! सामने मकान नहीं तुम्हारा ? तुम्हारा मकान, सामने। रायचन्द गाँधी। तुम्हारा मकान। उनका मकान नहीं। ऊपर से छिद्र पाड़कर गये। सत्रह बाबा थे।

वाघरी, हों ! सब। फिर उनको पकड़ा। दबाया था वृक्ष के नीचे। तुरन्त के तुरन्त रात्रि में बँटवारा कर डाला। वृक्ष के नीचे खड्डा करके दबाया था। सब निकलवाया... लेकर। वे सब ऐसे। यह तो कहे, खुल्ला हो चोर। वे गुप्त चोर। आहाहा!

बंटवारे में सरस, नीरस आवे तब परस्पर कलह करते हैं और उसके निमित्त परस्पर ईर्ष्या करते हैं,... लो ! परस्पर में ईर्ष्या करे कि तू उसका कुछ लगता है, इसलिए ऐसा है और वैसा है और अमुक है। उसे क्यों अच्छा दिया ? **इस प्रकार की प्रवृत्ति करें तब कैसे श्रमण हुए ?** ऐसे साधु किसे कहना ? **वे जिनमार्गी तो हैं नहीं,...** वीतरागमार्ग में ऐसे होते नहीं। **कलिकाल के वेशी हैं।** कलिकाल-कलियुग के वेशी हैं। **इनको साधु मानते हैं, वे भी मूढ़-अज्ञानी हैं।** ऐसे को साधु नहीं माना जाता, ऐसे को भान नहीं होता। आहाहा!

गाथा-१४

आगे फिर कहते हैं -

गिण्हदि अदत्तदाणं परणिंदा वि य परोक्खदूसेहिं।
जिणलिंगं धारंतो चोरेण व होइ सो समणो ।।१४।।

गृह्णाति अदत्तदानं परनिंदामपि च परोक्षदूषणैः।
जिनलिंग धारयन् चौरेणेव भवति सः श्रमणः ।।१४।।

अदत्त-दान-ग्रहण परोक्षी दोष से पर-निंदता।
जिन-लिंग धरता वह श्रमण है चोर-वत् नित जानना।।१४।।

अर्थ - **जो बिना दिया तो दान लेता है और परोक्ष पर के दूषणों से पर की निंदा करता है, वह जिनलिंग को धारण करता हुआ भी चोर के समान श्रमण है।**

भावार्थ - **जो जिनलिंग धारण करके बिना दिये आहार आदि को ग्रहण करता है, पर के देने की इच्छा नहीं है, परन्तु कुछ भयादिक उत्पन्न करके लेना तथा निरादर**

से लेना, छिपकर कार्य करना – ये तो चोर के कार्य हैं। यह भेष धारण करके ऐसे करने लगा तब चोर ही ठहरा, इसलिए ऐसा भेषी होना योग्य नहीं है।।१४।।

गाथा-१४ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं :- जो बात समझानी हो, वह तो बात तो समझाने में बात तो सब आवे। कुन्दकुन्दाचार्य यह तो वीतरागी मुनि हैं। क्षण में और पल में जिन्हें सातवाँ गुणस्थान आता है। आनन्द... आनन्द... आनन्द... एक क्षण में विकल्प है, वृत्ति उठती है... दूसरे क्षण में वृत्ति टूटकर आनन्द में समा जाती है। ऐसी जिनकी दशा है, वे यह लिखनेवाले कुन्दकुन्द मुनि हैं स्वयं आचार्य। एक क्षण में सप्तम गुणस्थान अप्रमत्त आनन्द में झूलते हैं। लिखते-लिखते आनन्द में आ जाते हैं, बोलते-बोलते आनन्द में आ जाते हैं। ऐसी दशा होती है मुनि की। वे मुनि ऐसी बात जरा करुणा से करते हैं, हों! समझ में आया? भाई! वीतराग का मुनिपना अलग होता है। बाह्य दिगम्बरदशा होती है, वह बराबर है। परन्तु अकेली दिगम्बरदशा धारण करे परन्तु अन्दर का ठिकाना नहीं होता तो वह तो सब पदवी को लजाते हैं।

गिण्हदि अदत्तदाणं परणिंदा वि य परोक्खदूसेहिं।
जिणलिंगं धारंतो चोरेण व होइ सो समणो।।१४।।

अर्थ :- जो बिना दिया तो दान लेता है... अर्थात् कि जहाँ जा चढ़े, वहाँ जबरदस्ती दबाव से उसको आहार देना पड़े, ऐसा। साधु का तो ऐसा रिवाज है न यह श्वेताम्बर का? साधु जा चढ़े वापस अनजाने। यह श्वेताम्बर और स्थानकवासी।

मुमुक्षु : बहुत-बहुत तो पालीताणा में... होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। परन्तु यह तो उन गाँवों में साधु जायें। स्थानकवासी के अधिक होते हैं। उन्हें ऐसी जगह मिले नहीं, इसलिए जहाँ-तहाँ काठी हो वहाँ जा चढ़े। उसे देना ही पड़े। महाराज आये हैं, इसलिए इतना दबाव हुआ कहलाये न! उसने कुछ कहा नहीं कि पधारो... पधारो... पधारो... हमारे यहाँ। ऐसा कुछ कहा नहीं। और साथ

में बनिया हो एकाध-दो, इसलिए उसको आहार देना ही पड़े। इतना भी प्राण दबाया न उसने। ऐसा मार्ग नहीं होता। हैं सब बातें जरा...

मुमुक्षु : जबरदस्ती ले?

पूज्य गुरुदेवश्री : जबरदस्ती का अर्थ यह। देना पड़े उसको। भिक्षा को जाये। हाथ में झोली लेकर भिक्षा को जाये। गाँव में बनिया के घर दो-तीन-चार हों। साधु आये हों छह-सात-आठ। अब पानी और आहार चाहिए हो तो कहाँ जाये? अन्यमति में जाये। भावसार हो, काठी हो, जमींदार हो, किसान हो, वहाँ जाये तो उसको देना पड़े।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ यह। यह तो सब हमारे हो गया है। वह जबरदस्ती जाये, इसलिए उसको देना ही पड़े। पूछे। साधु पूछे कैसे भाई! आहार निर्दोष है? सूझता है? ऐसा पूछे। कुछ भाव देने का? ऐसा। देने का भाव है? बेचारा अन्यमति जैसा हो साधारण। उसे तो कुछ खबर भी नहीं होती। दोगे? ऐसा कहे। फिर दे आधी रोटी। यह सब न्याय से विरुद्ध है, ऐसा कहते हैं। दिगम्बर साधु तो निकले हों और तब वह गृहस्थ तिष्ठ... तिष्ठ... तिष्ठ... पधारो... पधारो... पधारो... ऐसी विधि होवे तो जाये। नहीं तो जाये नहीं। यह तो सब बदल गया है। समझ में आया?

बिना दिया तो दान लेता है और परोक्ष पर के दूषणों से पर की निन्दा करता है... एक-दूसरे की। वह उसकी निन्दा करे, वह उसकी निन्दा करे। परस्पर साधु, साधु को सुमेल न हो। एक ही वाड़ावाले को सुमेल न हो। **वह जिनलिंग को धारण करता हुआ भी चोर के समान श्रमण है।** चोर जैसा है, कहते हैं। एक साधु दूसरे को कहे, यह बैल जैसा कहे, दूसरा उसे कहता है कि यह नमकहराम है, ऐसा कहे। हाय... हाय..! यह सब सुना हुआ, हों! साथ बैठकर। अरे! क्या लगायी है यह, कहा? लौकिक सज्जनता चाहिए। अर र! एक-दूसरे की ईर्ष्या। वह मानो वह बढ़ जायेगा, यह मानो वह बढ़ जायेगा। कथा करते हैं न कथा? कथा जिसे आती हो, उसके अधिक लोग इकट्ठे होते हैं। जिसे कथा न आती हो, उसमें लोग इकट्ठे नहीं होते। ऐई! एक-दूसरे को ईर्ष्या।

मुमुक्षु : इस भाव में वैराग्य का छाँटा भी नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! वैराग्य कैसा? बहुत अधिक देखे हैं। बापू! आहाहा! बेचारे लिखते हैं, आचार्य बराबर लिखते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : कथा...

पूज्य गुरुदेवश्री : कथायें छहढाला होती है। कृष्ण और रुक्मणी की एक ढाल है बड़ी। जिसे ढाल सागर कहते हैं। बड़ा ग्रन्थ है। वह दोपहर में पढ़े कथा बड़ी। लोग इकट्ठे हों। उसमें विकथायें बहुत होती है। इकट्ठे हों। यह विकथायें सब। लोग इकट्ठे हों। धर्म की कथा ऐसी सूक्ष्म बात होती है, उसमें कौन इकट्ठा होता था? यह क्या कहते हैं, यह इसे समझ में नहीं आता। यह आत्मा ऐसा है और आनन्द है।

कल एक लड़का कहता था, वह परेश है न छोटा? पाँच वर्ष का। काल शाम को बैठा था। ऐ... आत्मा? कहा, आत्मा हो न? कहाँ दिखता है, कहे। ठीक बापू! पाँच वर्ष का है। विपिन का छोटा भाई है। कहा, ऐ आत्मा है या नहीं अन्दर? कहाँ दिखता है, कहे। कहा, अच्छी बात, बापू! कहाँ दिखता है, इतना तो आया। उसे कहा, वह तो समझ सकता है बेचारा। कहा, दिखता नहीं, ऐसा निर्णय किसने किया? वह कौन है? दिखता नहीं, ऐसा जाननेवाला कौन है? परन्तु वह तो बालक है, बेचारा पकड़ नहीं सकता। उसके पहले आठ वर्ष पहले हुआ था। वह भी परेश था। भाई! उसका नाम परेश। इसका नाम भी परेश है। वह सात वर्ष पहले परेश था। उसने प्रश्न किया। सात वर्ष की उम्र थी। जामनगर। उसने ऐसा प्रश्न किया, महाराज! आत्मा देखो... आत्मा देखो... करते हो परन्तु आत्मा... खड़ा हो गया सभा में। सात वर्ष का। अभी पन्द्रह वर्ष का है। यह बाहर का देखे तो यह दिखता है। आँख बन्द करें तो अन्धेरा दिखता है। कहाँ देखना हमें आत्मा को? भारी भाई! कहा। नवनीतभाई! परेश लड़का। अब तो बहुत चर्चा करता है। ... यह तो आठ वर्ष पहले की बात है। ऐसे देखें तो दिखता है, आँख बन्द करें तो अन्धेरा दिखता है।

भाई! अन्धकार को देखनेवाला अन्धकाररूप नहीं है। अन्धकार को देखनेवाला उजालेरूप-चैतन्यप्रकाशरूप है, वह आत्मा। वह लड़का होशियार था तो थोड़ा पकड़ता

था। यह तो मस्तिष्क चाहिए न वापस। अन्धेरा है यह ? यह अन्धेरा ज्ञात कहाँ होता है ? किसमें ? अन्धेरे में ? अन्धेरा अन्धेरे में ज्ञात होता है ? अन्धेरा काला दिखता है, उसे जाननेवाला चैतन्य काला नहीं है। वह चैतन्य के प्रकाश का नूर है, उसमें यह अन्धकार दिखता है। परन्तु कहाँ दरकार है दुनिया को। आत्मा क्या और धर्म क्या ? हें ! आहाहा ! ऐसा मनुष्यदेह मिला, उसमें क्या करने का है, वह करे नहीं और आड़ा-टेढ़ा करके चला जायेगा, आँखें मींचकर।

भाई ! यह अन्धेरा है। काला दिखता है और बहुत आँख ऐसे मींचे तो वे दिखते हैं सब टिपके जैसा सब। परन्तु भाई ! दिखते हैं, वह देखनेवाला कौन ? यह तो दिखते हैं। देखनेवाला कौन ? जिसमें दिखते हैं... जिसमें दिखते हैं, वह काला नहीं। जिसमें दिखते हैं, वह अन्धेरा नहीं। अन्धेरे को देखनेवाला अन्धेरे से भिन्न है। चैतन्य के प्रकाश की सत्ता में अन्धेरा ज्ञात होता है। पण्डितजी ! इस लड़के को कैसा जवाब दिया ? छोटा बालक है। सात वर्ष का लड़का था, लो। सभा में खड़ा हो गया। आत्मा देखो... आत्मा देखो... महाराज ! आप कहते हो। कहाँ देखना हमारे ? यह वह लड़का कल कहे कि दिखता नहीं। ठीक भाई ! दिखता नहीं तो तुझे कहना ? दिखता नहीं, यह किसने जाना ? दिखता नहीं, किसने निर्णय किया ? यह निर्णय करनेवाला ही आत्मा है। परन्तु अनादि से अज्ञानी, आत्मा क्या है, उसे जाने बिना चलो, करो धर्म, यह करो, धूल करो। मर गया बेचारा। चौरासी के अवतार में हैरान-हैरान हो गया।

यहाँ कहते हैं, अरे ! **भावार्थ :- जो जिनलिंग धारण करके बिना दिये आहार आदि को ग्रहण करता है, पर के देने की इच्छा नहीं है...** पर को देखने की इच्छा नहीं। **परन्तु कुछ भयादिक उत्पन्न करके लेना...** भयादिक अर्थात् कि साधु आवे; इसलिए अपने को देना तो पड़ेगा। साथ में बनिया हो। महाराज को आहार देना-देना।

मुमुक्षु : गाँव में फिर हल्कापन हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : गाँव में हल्कापना हो, उसे न शोभे। आहाहा ! पानाचन्दभाई ! है इसमें ? देखो ! क्या ? पर को देने की इच्छा न हो, वहाँ लेने जाये। तुम्हारे गाँव में घर है परन्तु न हो, वहाँ दो घर हो वहाँ जाना पड़े अन्यत्र। काठियों में और उन किसानों में। न इच्छा हो तो देना पड़े।

मुमुक्षु : परन्तु बहुत तो किसान उत्साहित होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो होते हैं। बहुत होते हैं। यह तो होता है। यह तो एक...

मुमुक्षु : उन्हें ऐसा कि ओहो! अपने...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ऐसे भी होते हैं न! हमने तो सब देखा है न। परन्तु कितनों को तो जबरदस्ती देना पड़े। यह कहते हैं।

भयादिक उत्पन्न करके लेना... साथ में श्रावक को रखे। **तथा निरादर से लेना,...** आदर बिना लेना। वह तो पधारो... पधारो... पधारो... ओहो! हमारे यहाँ! ऐसा हो। यह तो उसे कुछ नहीं। अन्दर घर में घुस जाये और लाओ।... **छिपकर कार्य करना ये तो चोर के कार्य हैं।** ऐसा गाँव में होता है।

मुमुक्षु : ऐसा भी होता है और ऐसा भी होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो है उसकी बात नहीं लेने की।

मुमुक्षु : आपके लाभ से हमें यह लाभ मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है। यह तो है, वह तो खबर है न। वह तो अच्छा... ले। गाँव में सेठिया है तो हमको यह लाभ मिले। नहीं तो कहाँ से मिले? यह तो जहाँ नहीं उसकी बात अभी है। दूसरे पहलू की बात लेनी है न! उस पहलू की कहाँ लेनी है अभी?

यह वेश धारण करके ऐसे करने लगा, तब चोर ही ठहरा, इसलिए ऐसा वेशी होना योग्य नहीं है। ऐसा वेश धारण करना और ऐसा करना, वह उचित नहीं है। इसकी अपेक्षा तो गृहस्थाश्रम में भी समकितसहित धर्म करे। हो सकता है। परन्तु वेश धारण करके ऐसे आचरण करना, वह धर्म को लजाने का कारण है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१५

आगे कहते हैं कि जो लिंग धारण करके ऐसे प्रवर्तते हैं, वे श्रमण नहीं हैं –

उप्पडदि पडदि धावदि पुढवीओ खणदि लिंगरूवेण।
इरियावहं धारंतो तिरिक्खजोणी ण सो समणो।।१५।।

उत्पतति पतति धावति पृथिवीं खनति लिंगरूपेण।
ईर्यापथं धारयन् तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः।।१५।।

लिंगात्म ईर्या समिति–धारक कूदता पड़ दौड़ता।
भू खोदता तिर्यंच योनि है नहीं है श्रमणता।।१५।।

अर्थ **– जो लिंग धारण करके ईर्यापथ सोधकर चलना था उसमें सोधकर नहीं चले, दौड़कर चलता हुआ उछले, गिर पड़े, फिर उठकर दौड़े और पृथ्वी को खोदे, चलते हुए ऐसे पैर पटके जो उससे पृथ्वी खुद जाय, इस प्रकार से चले सो तिर्यंचयोनि है, पशु है, अज्ञानी है, मनुष्य नहीं है।।१५।।**

प्रवचन-१७९, गाथा-१५ से २२, बुधवार, पौष कृष्ण ९, दिनांक २०-०१-१९७१

लिंगपाहुड़ १४ गाथा हुई। १५वीं। **आगे कहते हैं कि जो लिंग धारण करके ऐसे प्रवर्तते हैं, वे श्रमण नहीं हैं :–** साधु का लिंग तो दिगम्बर नग्न होता है। ऐसा लिंग धारण करके भी जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की अन्तर अनुभव, प्रतीति और लीनता नहीं है, ऐसे सब दूसरे रास्ते चढ़ जाते हैं अन्दर... वे सब साधु नहीं हैं, ऐसा कहते हैं।

उप्पडदि पडदि धावदि पुढवीओ खणदि लिंगरूवेण।
इरियावहं धारंतो तिरिक्खजोणी ण सो समणो।।१५।।

तिर्यंच योनि ही कहते हैं यहाँ तो।

अर्थ :– जो लिंग धारण करके ईर्यापथ शोधकर चलना था... देखकर चलना,

शान्ति से, धीमे से ऐसा चाहिए। उसके बदले **उसमें शोधकर नहीं चले,...** अन्दर एकेन्द्रिय आदि जीव हों रास्ते में, उन्हें न देखे, **दौड़ता चलता हुआ उछले,...** उतावला चले उतावला। दौड़ता हुआ अर्थात्। यह उतावला चले, वह दौड़ता चले कहलाता है। बहुत उतावल से चले। चलते हुए उछले। शरीर उछले—ऐसे ऊँचा हो और गिर जाये, पैर नम जाये। **गिर पड़े, फिर उठकर दौड़े और पृथ्वी को खोदे,...** रास्ते में एकेन्द्रिय पृथ्वी जीव हो, उनका घात हो जाये। उसकी भी इसे खबर नहीं। वे सब तिर्यंच योनि हैं, ऐसा कहते हैं।

ऐसे पैर पटके जो उसमें पृथ्वी खुद जाये,... पैर ऐसा जोरदार ऐसा चले कि पृथ्वी नीचे एकेन्द्रिय जीव है, वह पड उखड़े, पट उखड़ जाये उसका। पैर पटके। पैर पटके—ऐसा मारे। **पृथ्वी खुद जाये, इस प्रकार चले, सो तिर्यंचयोनि है,...** लो! वर्तमान तिर्यंच योनि और उसके फल में वह निगोद जानेवाला, ऐसा कहते हैं मूल। निगोद में जानेवाले तिर्यंच योनि। ऐसा कहते हैं मूल। **मनुष्य नहीं है।** लो ठीक! मनुष्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। और उसके अर्थ में कहा। तिर्यंच योनि है अर्थात् मनुष्य नहीं है, ऐसा। मनुष्य के योग्य आचरण चाहिए, उसका ठिकाना नहीं। जैसे ढोर को कोई ठिकाना नहीं होता, वैसा आचरण करे, मरकर ढोर हो, निगोद में जाये, वर्तमान भी ढोर जैसी अवस्था धारण करे।

गाथा-१६

आगे कहते हैं कि जो वनस्पति आदि स्थावरजीवों की हिंसा से कर्मबंध होता है उसको न गिनता स्वच्छंद होकर प्रवर्तता है, वह श्रमण नहीं है –

बंधो णिरओ संतो सस्सं खंडेदि तह य वसुहं पि।
छिंददि तरुगण बहुसो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ।।१६।।

बंध नीरजाः सन् सस्यं खंडयति तथा च वसुधामपि।
छिनत्ति तरुगणं बहुशः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ।।१६।।

इस बंध को नहिं मान कूटे धान वसुधा खोदता।
बहुश: तरु-गण छेदता तिर्यंच है नहिं श्रमणता।।१६।।

अर्थ – जो लिंग धारण करके वनस्पति आदि की हिंसा से बंध होता है, उसको दोष न मानकर बंध को नहीं गिनता हुआ सस्य अर्थात् अनाज को कूटता है और वैसे ही वसुधा अर्थात् पृथ्वी को खोदता है तथा बारबार तरुगण अर्थात् वृक्षों के समूह को छेदता है, ऐसा लिंगी तिर्यंच-योनि है, पशु है, अज्ञानी है, श्रमण नहीं है।

भावार्थ – वनस्पति आदि स्थावर जीव जिनसूत्र में कहे हैं और इनकी हिंसा से कर्मबंध होना भी कहा है उसको निर्दोष समझता हुआ कहता है कि इसमें क्या दोष है? क्या बंध है? इस प्रकार मानता हुआ तथा वैद्य कर्मादिक के निमित्त औषधादिक को, धान्य को, पृथ्वी को तथा वृक्षों को खंडता है, खोदता है, छेदता है वह अज्ञानी पशु है, लिंग धारण करके श्रमण कहलाता है, वह श्रमण नहीं है।।१६।।

गाथा-१६ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो वनस्पति आदि स्थावर जीवों की हिंसा से कर्मबन्ध होता है, उसको न गिनता स्वच्छन्द होकर प्रवर्तता है, वह श्रमण नहीं है :-

बंधो णिरओ संतो सस्सं खंडेदि तह य वसुहं पि।
छिंददि तरुगण बहुसो तिरिक्खजोणी ण सो समणो।।१६।।

अर्थ :- जो लिंग (साधुवेश) धारण करके वनस्पति आदि की हिंसा से बन्ध होता है, उसको दोष न मानकर,... गिने नहीं। जंगल जाये तो वनस्पति में जाये, चले तो नीचे नीम के कोर होते हैं न? फूल। नीम के फूल। अनन्त काय-अनन्त काय कुचले, चले। कुछ ठिकाना नहीं। ईर्यासमिति से नीचे कोई हरितकाय का जीव हो, एक भी दाना हो, वह न कुचल जाये, ऐसे चलना चाहिए। उसके बदले कुछ खबर नहीं।

बन्ध को नहीं गिनता... बन्ध को गिनता नहीं। हम नग्न हुए हैं, अब हमारे क्या है, ऐसा। वनस्पति घात हो, हरितकाय घात हो। नीचे चातुर्मास में हरितकाय बहुत उगी हो। बहुत। चातुर्मास में हरितकाय बहुत होती है। घास बहुत होती है। उसे गिने नहीं।

जहाँ-तहाँ चले, कुचले, वनस्पति को रौंधे। वह पाप को गिनता नहीं तो वह पापी है। तिर्यंचयोनि है, ऐसा कहते हैं, लो। ढोर जैसा है, कहते हैं। आहाहा! देखो! यह कहते हैं कि मैंने नहीं कहा, हों! सब बुद्धै, ऐसा आगे कहेंगे। सर्वज्ञदेव और गणधरों ने कहा, वह मैं कहता हूँ, ऐसा कहेंगे। लिंगपाहुड़ पूरा करते हुए २२ में है न? '**बुद्धेहिं देसियं धम्मं**।' २२ में है अन्तिम (शब्द)। '**इय लिंगपाहुडमिणं सव्वंबुद्धेहिं देसियं धम्मं**' पाहुड़ है न, २२, अन्तिम गाथा? सब गणधरों ने यह कहा है। मैं कहीं अकेला नहीं कहता, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : वे कहें तो भी भगवान है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे कहाँ परन्तु यह तो भी दृष्टान्त तो यह देते हैं। '**सव्वंबुद्धेहिं**' अनन्त ज्ञानी, गणधर, सन्त, मुनियों ने इस प्रकार कहा है। किसी को कठोर लगे इसमें, वह नरक में जाये और ऐसा (कहा है), तो कहते हैं, वह तो आचार्यों ने और सन्तों ने वर्णन किया है, ऐसा वर्णन यहाँ चलता है। साधु अर्थात् क्या? भगवान परमेष्ठी। और ऐसे आचरण का ठिकाना नहीं होता।

कहते हैं, **सस्य अर्थात् अनाज को कूटता है,...** नीचे बाजरा हो, ज्वार हो, गेहूँ, तिल उसके ऊपर फुदके, पैर जाये, एकेन्द्रिय पाप को गिने नहीं। **और वैसे ही वसुधा अर्थात् पृथ्वी को खोदता है...** पृथ्वी ऊपर ऐसा जोर दे तो पृथ्वी का पड उखड़ जाये। एकेन्द्रिय जीव है। **तथा बारम्बार तरुगण अर्थात् वृक्षों के समूह को छेदता है,...** वैद्य आदि काम में कोई ऐसा बता दे दूसरे को कि ऐसा करो, ऐसा करो। वनस्पति की दवा और अमुक, अमुक। **तरुगण अर्थात् वृक्षों के समूह को छेदता है, ऐसा लिंगी तिर्यंचयोनि है, पशु है, अज्ञानी है,...** इतने शब्द प्रयोग किये हैं। **श्रमण नहीं है।** वह साधु नहीं है।

भावार्थ :- वनस्पति आदि स्थावर जीव जिनसूत्र में कहे हैं... वीतराग के सिद्धान्त में पृथ्वी आदि वनस्पति को जीव कहा है और है। **और इनकी हिंसा से कर्मबन्ध होना भी कहा है...** उनकी हिंसा द्वारा कर्मबन्धन होता है। **उसको निर्दोष समझता हुआ कहता है कि - इसमें क्या दोष है?** स्थावर को गिने नहीं। सब बन गये हैं दृष्टान्त, हों! सब

दृष्टान्त हैं। यह तो वर्तमान में सब दृष्टान्त ऐसे हैं। गिनते ही नहीं जीव को। वह जीव कैसा? क्या होगा?

क्या दोष है? क्या बन्ध है? इस प्रकार मानता हुआ तथा वैद्य-कर्मादिक के निमित्त... लो, वैद्य के कार्य करे। औषध बनावे, रसायन बनावे, भस्म बनावे **औषधादिक को, धान्य को,...** औषध को, अनाज को **पृथ्वी को तथा वृक्षों को खण्डता है, खोदता है, छेदता है, वह अज्ञानी पशु है,...** नवनीतभाई गये हैं या नहीं? भावनगर। आये नहीं अभी, विदा करने गये होंगे। **वह अज्ञानी पशु है, लिंग धारण करके श्रमण कहलाता है, वह श्रमण नहीं है।** ऐसा वेश भगवान का, जो तीर्थंकरों ने भी नग्नपना अंगीकार किया, गणधरों ने किया, ऐसा वेश धारण कर उसकी कोपी करके भी वापस अन्दर माल नहीं होता। वे सब तिर्यंच में ढोर जैसे हैं। आहाहा!

गाथा-१७

आगे कहते हैं कि जो लिंग धारण करके स्त्रियों से राग करता है वह पर को दूषण देता है, वह श्रमण नहीं है –

रागं करेदि णिच्चं महिलावग्गं परं च दूसेदि।
दंसणणाणविहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ।।१७।।

रागं करोति नित्यं महिलावर्गं परं च दूषयति।
दर्शनज्ञानविहीनः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ।।१७।।

नित राग करता स्त्रियों पर दूसरों को दोष दे।
दृग-ज्ञान-विरहित है तिर्यग्योनि, नहीं वह श्रमण है।।१७।।

अर्थ **– जो लिंग धारण करके स्त्रियों के समूह के प्रति जो निरंतर राग-प्रीति करता है और पर को (कोई अन्य निर्दोष हैं उनको) दोष लगाता है, वह दर्शनज्ञान रहित है, ऐसी लिंगी तिर्यंचयोनि है, पशु समान है, अज्ञानी है, श्रमण नहीं है।**

_भावार्थ_ – लिंग धारण करनेवाले के सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है और परद्रव्यों से रागद्वेष नहीं करनेवाला चारित्र होता है। वहाँ जो स्त्रीसमूह से तो राग-प्रीति करता है और अन्य के दोष लगाकर द्वेष करता है व्यभिचारी का सा स्वभाव है तो उसके कैसा दर्शन-ज्ञान? और कैसा चारित्र? लिंग धारण करके लिंग के योग्य आचरण करना था वह नहीं किया, तब अज्ञानी पशु समान ही है, श्रमण कहलाता है, वह आप (स्वयं) भी मिथ्यादृष्टि है और अन्य को भी मिथ्यादृष्टि करनेवाला है, ऐसे का प्रसंग भी युक्त नहीं है।।१७।।

गाथा-१७ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो लिंग धारण करके स्त्रियों से राग करता है और पर को दूषण देता है, वह श्रमण नहीं है :- यह कहते हैं। आहाहा!

रागं करेदि णिच्चं महिलावग्गं परं च दूसेदि।
दंसणणाणविहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो।।१७।।

भगवान का दिगम्बर **लिंग धारण करके स्त्रियों के समूह के प्रति तो निरन्तर राग-प्रीति करता है...** स्त्रियों के झुण्ड में बैठे, उन्हें समझावे और राग का पोषण करे। और बाहर में ऐसा कहे कि हम तो उन्हें समझाते हैं, शिक्षा देते हैं। सम्यग्दर्शन की बात करते हैं और पोषता हो राग। साधु, नग्न मुनि स्त्रियों के समूह में शोभेगा? स्त्रियों का झुण्ड इकट्ठा करके उसमें **निरन्तर राग-प्रीति करता है और पर जो कोई अन्य निर्दोष हैं, उनको दोष लगाता है...** दूसरे निर्दोष हों, उन्हें दूषण दे। तुमको कहाँ भान है, इस शास्त्र को पढ़ाना, उसका ज्ञान हो दूसरे को, लाभ हो, ऐसा करके दूसरों को दोष दे। अच्छे को दूषण दे और खोटा अपना पोषण करे। वह कैसा है? कि **दर्शन-ज्ञानरहित है,...** लो! सम्यग्दर्शन और ज्ञान से तो वह हीन है। भान नहीं। जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो, वह ऐसे आचरण में नहीं हो सकता। मुनि को स्त्रियों का संग और परिवार, उसका परिचय नहीं होता। ब्रह्मचारी को नहीं होता तो मुनि की तो बात क्या करना? स्त्री का झुण्ड बैठा हो और बात में ऐई! गप्पगोला मारे, चिंगारी लगावे, वे सब साधु नहीं हैं, कहते हैं। ढोर जैसे हैं।

मुमुक्षु : यहाँ तो ढोर ही कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट ढोर ही कहा है। तिर्यंचयोनि। दोनों बात है। अभी तिर्यंचयोनि है और वस्तु नहीं और माया-कपट से ऐसे सब वेश को धारण रखता है। वह भविष्य में तिर्यंच होगा-निगोद। एक वस्त्र का धागा रखकर मुनिपना माने तो निगोद में जाये, ऐसा कहा। हों! एक वस्त्र का धागा रखकर, टुकड़ा रखकर भी हम साधु हैं, ऐसा माने, मनावे, माननेवाले को भला जाने तो निगोद में जायेगा, ऐसा स्पष्ट कहा है। निगोद की खान भी बहुत बड़ी।

दर्शन-ज्ञानरहित है, ऐसा लिंगी तिर्यंचयोनि है,... स्वयं। वर्तमान ही, ऐसा कह दिया। पशु जैसा है। **पशु समान है,...** देखो न, है न? **अज्ञानी है, श्रमण नहीं है।** उसे साधु नहीं कहा जाता। आहाहा! जिसे इन्द्र नमन करे, गणधर जिसे नमे, ऐसा साधुपद वह कैसा होगा!

भावार्थ :- लिंग धारण करनेवाले के सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है... वह लिंग धारण कर, ऐसा कहते हैं। जिसे आत्मदर्शन, आत्मज्ञान, आत्मअनुभव हो, वह फिर साधु हो, लिंग धारण करे। ऐसा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना लिंग धारण करे तो भ्रष्ट आचार में वर्ते। **परद्रव्यों से राग-द्वेष नहीं करनेवाला चारित्र होता है।** एक तो लिंग धारण करे, उसमें पहला तो ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। आत्मा का दर्शन। शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु, निर्मल आनन्द की खान ऐसा प्रथम जिसे अनुभव होकर प्रतीति तो हुई हो। उसका-आत्मा का ज्ञान हो और चारित्र में **परद्रव्यों से राग-द्वेष नहीं करनेवाला चारित्र होता है।** अनुकूल-प्रतिकूल में जिसे राग-द्वेष नहीं। वीतराग... वीतराग... वीतरागता वर्तती है।

वहाँ जो स्त्रीसमूह से तो राग-प्रीति करता है... यह तो वापस राग आया। राग-द्वेष रहित चारित्र होता है। **राग-प्रीति करता है और अन्य के दोष लगाकर द्वेष करता है,...** दूसरे को दूषण लगावे (कि) तुम्हें कहाँ आचरण की पड़ी है? धर्म प्रभावना करनी चाहिए, स्त्रियों को समझाना चाहिए। ऐसा है, वैसा है, अमुक है, अमुक है। ऐसा करके जो स्त्रियों का परिचय न करता हो, उसके दोष निकाले। हम तो स्त्रियों को धर्म समझाते हैं और धर्म की प्रभावना करते हैं। तुमको कहाँ धर्म की प्रभावना आती

है ? तुम तो जहाँ-तहाँ हमारा दोष निकालते हो, परन्तु तुम्हारा दोष है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अन्य के दोष लगाकर द्वेष करता है,... आया न राग और द्वेष दोनों ? चारित्र तो राग-द्वेष न करना, यह होता है। आया न इसमें ? यह स्त्री के समूह में प्रीति करे और उससे विरुद्ध हो, उसका द्वेष करे। ऐसा साधु को नहीं होता स्त्रियों के झुण्ड में समझाना। नग्न मुनि होकर ऐसा होगा ? स्त्रियों के झुण्ड में बैठना और समझाना ? नहीं-नहीं। तुम ही खोटे हो। हम तो धर्म प्रभावना करते हैं। ऐसा करके सामनेवाले को दोष लगाता है।

व्यभिचारी का सा स्वभाव है,... लो! यह तो व्यभिचारी जैसा उसका स्वभाव है। **तो उसके कैसा दर्शन-ज्ञान ?** उसे कहाँ से सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो ? **और कैसा चारित्र ?** यह पहले तीन लिये थे न ? पाठ में है सही, देखो! '**दंसणणाणविहीणो**' आहाहा! **लिंग धारण करके लिंग के योग्य आचरण करना था, वह नहीं किया...** साधुपद धारण करके करना तो अन्तर में दर्शन-ज्ञान-चारित्र यह करने का था। लिंग में क्या है ? लिंग में है कुछ धर्म ? नग्नपना धारण करे। **नहीं किया तब अज्ञानी पशु समान ही है,...** पशु समान अज्ञानी है। **श्रमण कहलाता है, वह आप भी मिथ्यादृष्टि है...** लो! अब श्रमण मनवाता है। **अन्य को भी मिथ्यादृष्टि करनेवाला है,...** वह उल्टी श्रद्धा करानेवाला है। दूसरे को भी मिथ्यादृष्टिपना करता है। कठिन बात ली है लिंग की। गाथा थोड़ी ली परन्तु कड़क ली है। **ऐसे का प्रसंग भी युक्त नहीं है।** लो! ऐसे का प्रसंग, उसका संग नहीं करना, ऐसा हो उसका। ऐसा कहते हैं। भारी काम!

गाथा-१८

आगे फिर कहते हैं –

पव्वज्जहीणगहिणं णेहं सीसम्मि वट्टदे बहुसो।
आयारविणयहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो।।१८।।

प्रव्रज्याहीनगृहिणि स्नेहं शिष्ये वर्त्तते बहुशः।
आचारविनयहीनः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः।।१८।।

दीक्षा–विहीन गृहस्थ शिष्यों पर बहुत प्रीति करे।
आचार–विनय–विहीन तिर्यग्योनि वह नहिं श्रमण है।।१८।।

अर्थ – जिस लिंगी 'प्रव्रज्या हीन' अर्थात् दीक्षा रहित गृहस्थों पर और शिष्यों में बहुत स्नेह रखता है और आचार अर्थात् मुनियों की क्रिया और गुरुओं के विनय से रहित होता है वह तिर्यंचयोनि है, पशु है, अज्ञानी है, श्रमण नहीं है।

भावार्थ – गृहस्थों से तो बारम्बार लालपाल रक्खे और शिष्यों से बहुत स्नेह रक्खे तथा मुनि की प्रवृत्ति आवश्यक आदि कुछ करे नहीं, गुरुओं के प्रतिकूल रहे, विनयादिक करे नहीं, ऐसा लिंगी पशु समान है, उसको साधु नहीं कहते हैं।।१८।।

गाथा-१८ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं :-

पव्वज्जहीणगहिणं णेहं सीसम्मि वट्टदे बहुसो।
आयारविणयहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो।।१८।।

अर्थ :- जो लिंगी प्रव्रज्या-हीन अर्थात् दीक्षा-रहित... है। जिसे दीक्षा नहीं, ऐसा गृहस्थ आदि। **गृहस्थों पर और शिष्यों में बहुत स्नेह रखता है...** ऐसा। जिस साधु को नग्नपना है, वे जीव, जिन्हें साधुपना नहीं ऐसे गृहस्थ में बहुत प्रवर्ते। गृहस्थ की पूरी आल-पाल, लाल-पाल बहुत करे। है न? '**पव्वज्जहीणगहिणं णेहं**' प्रव्रज्याहीन गृहस्थों

को। ऐसा। जिन्हें प्रव्रज्या नहीं, ऐसे गृहस्थों को '**णेहं**' स्नेह करे। उनके साथ लाल-पाल करे। और '**णेहं सीसम्मि वट्टदे बहुसो**' अपने शिष्य के साथ पुत्रवत् वर्ते। लाल-पाल। खाने-पीने का पोषण। **बहुत स्नेह रखता है...**

आचार्य अर्थात् मुनियों की क्रिया और गुरुओं के विनय से रहित होता है... उसमें प्रवर्ते परन्तु यह न प्रवर्ते, ऐसा कहते हैं। गृहस्थ, जो साधु नहीं, प्रव्रज्यारहित है, उनके साथ बहुत परिचय, बहुत लाल-पाल और बहुत संग और बहुत संसर्ग महा भ्रष्ट होने का कारण है। और अपने शिष्य में बहुत लाल-पाल (करे)। उसमें जुड़े। गुरु का विनय करना, उसमें नहीं। धर्मात्मा हो, उनका विनय, बहुमान (करे नहीं और) यह सब बहुमान गृहस्थ और शिष्यों को दे। ऐसा न दे, ऐसा कहते हैं। **वह तिर्यंचयोनि है,...** लो! **पशु है, अज्ञानी है, श्रमण नहीं है।**

भावार्थ :- गृहस्थों से तो बारम्बार लालपाल रखे और शिष्यों से बहुत स्नेह रखे, तथा मुनि की प्रवृत्ति आवश्यक आदि कुछ करे नहीं,... अपने को करनेयोग्य है, वह तो करे नहीं। नहीं करनेयोग्य में जुड़े। **आवश्यक आदि...** है न? सामायिक, चोविसंथो, वन्दन आदि जो सवेरे-शाम, वह तो करे नहीं। **गुरुओं के प्रतिकूल रहे,...** अपने बड़े हों साधु आदि, उनसे विरुद्ध रहे। **विनयादिक करे नहीं, ऐसा लिंगी पशु समान है, उसको साधु नहीं कहते हैं।**

गाथा-१९

आगे कहते हैं कि जो लिंग धारण करके पूर्वोक्त प्रकार प्रवर्तता है, वह श्रमण नहीं है, ऐसा संक्षेप में कहते हैं -

एवं सहिओ मुणिवर संजदमज्झम्मि वट्टदे णिच्चं।
बहुलं पि जाणमाणो भावविणट्ठो ण सो समणो ।।१९।।

एवं सहितः मुनिवर ! संयतमध्ये वर्त्तते नित्यम्।
बहुलमपि जानन् भावविनष्टः न सः श्रमणः ।।१९।।

इन सहित मुनिवर संयतों के मध्य वर्ते सदा ही।
बहु जानकार तथापि भाव–विनष्ट है नहिं श्रमण ही।।१९।।

अर्थ – एवं अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार प्रवृत्ति सहित जो वर्तता है, वह हे मुनिवर ! जो ऐसा लिंग धारी संयमी मुनियों के मध्य भी निरन्तर रहता है और बहुत शास्त्रों को भी जानता है तो भी भावों से नष्ट है, श्रमण नहीं है।

भावार्थ – ऐसा पूर्वोक्त प्रकार का लिंगी जो सदा मुनियों में रहता है और बहुत शास्त्रों को जानता है तो भी भाव अर्थात् शुद्ध दर्शन ज्ञान चारित्ररूप परिणाम से रहित है, इसलिए मुनि नहीं है, भ्रष्ट है, अन्य मुनियों के भाव बिगाड़नेवाला है।।१९।।

गाथा–१९ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो लिंग धारण करके पूर्वोक्त प्रकार प्रवर्तता है, वह श्रमण नहीं है, ऐसा संक्षेप से कहते हैं :-

एवं सहिओ मुणिवर संजदमज्झम्मि वट्टदे णिच्चं।
बहुलं पि जाणमाणो भावविणट्ठो ण सो समणो।।१९।।

अर्थ :- एवं अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार प्रवृत्तिसहित जो वर्तता है वह, हे मुनिवर! यदि ऐसा लिंगधारी संयमी मुनियों के मध्य भी निरन्तर रहता है... अच्छे धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि ज्ञानी चारित्रवन्त के मध्य में ही रहे। कोई बाहर में ऐसा आ जाये और आ गये। **संयमी मुनियों के मध्य भी निरन्तर रहता है और बहुत शास्त्रों को भी जानता है...** शास्त्र को बहुत पढ़ा हो। **तो भी भावों से नष्ट हैं,...** अच्छे साधु में रहा हो, अच्छा पठन बहुत शास्त्र का हो। परन्तु भाव से तो भ्रष्ट है। सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र वीतरागता चाहिए, वह तो है नहीं। **श्रमण नहीं है।** लो! इतना यहाँ आया। '**ण सो समणो**' ऐसा। उसमें तिर्यंचयोनि–तिर्यंचयोनि आता था।

भावार्थ :- ऐसा पूर्वोक्त प्रकार लिंगी जो सदा मुनियों में रहता है... मुनि रखे किसलिए? परन्तु यह तो थोड़ा समय उसमें रहा तो रहे। **और बहुत शास्त्रों को जानता है तो भी भाव अर्थात् शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणाम...** सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र,

जो मोक्ष का मार्ग, वीतरागी प्रतीति ज्ञान और आनन्द की रमणता, उसे तो करता नहीं। उससे तो रहित है। और ऐसे प्रकार के उल्टे आचरण से सहित है, ऐसा। **इसलिए मुनि नहीं है, भ्रष्ट है, अन्य मुनियों के भाव बिगाड़नेवाला है**। दूसरे साधु के भी भाव बिगाड़ने में निमित्त होता है। यहाँ तो व्यवहार की बात है न। देखो! उसके कारण से बिगड़ते हैं या नहीं ? बिगाड़नेवाला लिखा है न। व्यवहार की बात ऐसी ही होती है न। स्वयं भ्रष्ट है और दूसरे को भ्रष्ट होने का कारण होता है, ऐसा। इसमें भी उसे मान मिलता है न, चलो।

गाथा-२०

आगे फिर कहते हैं कि जो स्त्रियों का संसर्ग बहुत रखता है वह भी श्रमण नहीं है –

दंसणणाणचरित्ते महिलावग्गम्मि देदि वीसट्ठो।
पासत्थ वि हु णियट्ठो भावविणट्ठो ण सो समणो ।।२०।।

दर्शनज्ञानचारित्राणि महिलावर्गे ददाति विश्वस्तः।
पार्श्वस्थादपि स्फुटं विनष्टः भावविनष्टः न सः श्रमणः ।।२०।।

विश्वस्त होकर स्त्रियों में ज्ञान दर्शन चरित्र दे।
पार्श्वस्थ से भी हीन भाव-विनष्ट है नहिं श्रमण है।।२०।।

_अर्थ_ – जो लिंग धारण करके स्त्रियों के समूह में उनका विश्वास करके और उनको विश्वास उत्पन्न कराके दर्शन-ज्ञान-चारित्र को देता है, उनको सम्यक्त्व बताता है, पढ़ना-पढ़ाना, ज्ञान देता है, दीक्षा देता है, प्रवृत्ति सिखाता है, इस प्रकार विश्वास उत्पन्न कराके उनमें प्रवर्तता है, वह ऐसा लिंगी तो पार्श्वस्थ से भी निकृष्ट है, प्रगट भाव से विनष्ट है, श्रमण नहीं है।

_भावार्थ_ – लिंग धारण करके स्त्रियों को विश्वास उत्पन्न कराकर उनसे निरंतर पढ़ना, पढ़ाना, लालपाल रखना, उसको जानो कि इसका भाव खोटा है। पार्श्वस्थ तो भ्रष्ट मुनि को कहते हैं, उससे भी यह निकृष्ट है, ऐसे को साधु नहीं कहते हैं।।२०।।

गाथा-२० पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं कि जो स्त्रियों का संसर्ग बहुत रखता है, वह भी श्रमण नहीं है :- लो! स्त्रियों का परिचय बहुत रखे, वह साधु नहीं है। मुनि तो जंगल में ध्यान में बसते हैं, आनन्द में, वनवास में। मनुष्यों का पगरव भी जहाँ आगे न हो। उन्हें ऐसे स्त्री के परिचय में रहना, यह कहीं मार्ग होगा?

दंसणणाणचरित्ते महिलावग्गम्मि देदि वीसट्ठो।
पासत्थ वि हु णियट्ठो भावविणट्ठो ण सो समणो।।२०।।

अर्थ :- जो लिंग धारण करके स्त्रियों के समूह में उसका विश्वास करके... विश्वास उपजाने के लिये। राग करके विश्वास उपजावे और बढ़ावे, समकित दे, यह सब कर, ऐसा कहे। '**वीसट्ठो**' है न? **विश्वास उत्पन्न कराके दर्शन-ज्ञान-चारित्र देता है...** समकित ऐसा कहलाता है, ज्ञान ऐसा कहलाता है, चारित्र ऐसा कहलाता है। ऐसा करके विश्वास उपजावे और राग करे, ऐसा कहते हैं। **उनको सम्यक्त्व बताता है, पढ़ना-पढ़ाना ज्ञान देता है,...** साधु तो भी उसका काम है दूसरे को पढ़ाना। क्या पढ़ाना काम? उसे तो अपने में अन्दर आत्मा में रहना, वह काम है।

सम्यक्त्व बताता है, पढ़ना-पढ़ाना, ज्ञान देता है, दीक्षा देता है,... चलो भाई अपने यह... ऐसा करके राग पोषता है, ऐसा कहते हैं। विश्वास उपजाकर राग पोषता है। **प्रवृत्ति सिखाता है,...** ऐसे चलना, ऐसे अमुक, ऐसे बोलना, ऐसे पढ़ना, ऐसा। **इस प्रकार विश्वास उत्पन्न करके उनमें प्रवर्तता है...** ऐसा कहना है। उन्हें विश्वास उपजाकर कि यह तो अपने को पढ़ाते हैं, यह तो अपने को सिखाते हैं। ऐसा करके विश्वास उपजाकर खोटे आचरण में-राग में जुड़ जाये। **ऐसा लिंगी पार्श्वस्थ से भी निकृष्ट है,...** पार्श्वस्थ साधु कहलाये, उससे तो यह भ्रष्ट है, ऐसा कहते हैं। पार्श्वस्थ साधु है, वह तो भ्रष्ट है परन्तु उसमें भी यह भ्रष्ट है। **प्रगट भाव से विनष्ट है, श्रमण नहीं है।** लो! '**पासत्थ वि हु णियट्ठो भावविणट्ठो ण सो समणो**' भाव से तो भ्रष्ट है, लो! **पार्श्वस्थ से भी निकृष्ट है, प्रगट भाव से विनष्ट है,...** गुप्त भाव में तो हो, यह तो प्रगट भाव आचरण बाहर में खोटा, ऐसा कहते हैं। स्त्री का परिचय, उसका संग, पढ़ाना, गुनाना और

विश्वास दिलाकर समूह में बैठे। यह काम है कहीं? ब्रह्मचारी का काम नहीं तो फिर साधु का काम है यह? नौ बाड़ से ब्रह्मचर्य चाहिए। स्त्री का संग नहीं चाहिए, परिचय नहीं चाहिए। उसके बदले यह झुण्ड में (रहे)।

मुमुक्षु : पार्श्वस्थ साधु से निकृष्ट।

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे उत्कृष्ट।

मुमुक्षु : पास में रहनेवाले मुनि...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। पार्श्वस्थ अर्थात् भ्रष्ट। पार्श्वस्थ का अर्थ ही भ्रष्ट है। उसमें से भ्रष्ट। पार्श्वस्थ, कुशीलिया ऐसे भ्रष्ट साधु हैं। पार्श्वस्थ, कुशीलिया... ऐसे साधु के नाम हैं। वे भ्रष्ट हैं। उनमें भी यह भ्रष्ट है। पास में रहनेवाला, ऐसा नहीं। भ्रष्ट है। पार्श्वस्थ। पार्श्व अर्थात् साथ में पक्ष में रहे, ऐसा नहीं। साधु की क्रियाओं से भ्रष्ट है। पार्श्वस्थ हल्के शिथिल आचार्य, उन्हें यहाँ पार्श्वस्थ कहा। **भी निकृष्ट है,...** उससे भी यह हल्का है, ऐसा कहते हैं। पाठ में है न। **प्रगट भाव से विनष्ट है, श्रमण नहीं है**। लो!

भावार्थ :- जो लिंग धारण करके स्त्रियों को विश्वास उत्पन्न कराकर उनसे निरन्तर पढ़ना,... उन्हें सिखावे, पढ़ावे। **निरन्तर पढ़ना,...** पढ़े स्वयं और दूसरे को पढ़ावे। सुनो! मैं वाणी बोलूँ, वह सुनो अथवा पढ़ावे। **लालपाल रखना, उसको जानो कि इसका भाव खोटा है**। अन्दर उल्टा भाव है। स्त्री का परिचय बहुत करे और लालपाल करे, उसका भाव ही उल्टा है। **पार्श्वस्थ तो भ्रष्ट मुनि को कहते हैं...** देखो! नीचे अर्थ में है। **पार्श्वस्थ तो भ्रष्ट मुनि को कहते हैं...** लिखा है। **पार्श्वस्थ तो भ्रष्ट मुनि को कहते हैं, उसमें भी यह निकृष्ट है,...** ऐसे समय में भी कुछ होंगे। आहाहा! श्वेताम्बर पन्थ निकल चुका था। सौ वर्ष हो गये हैं। फिर यह हुआ। **लिंग धारण करके स्त्रियों के विश्वास उत्पन्न कराकर उनसे निरन्तर पढ़ना, पढ़ाना, लालपाल रखना, उसको जानो कि इसका भाव खोटा है।**

गाथा-२१

आगे फिर कहते हैं –

पुंच्छलिघरि जो भुञ्जइ णिच्चं संथुणदि पोसए पिंडं।
पावदि बालसहावं भावविणट्ठो ण सो सवणो ।।२१।।

पुंश्चलीगृहे यः भुंक्ते नित्यं संस्तौति पुष्णाति पिंडं।
प्राप्नोति बालस्वभावं भावविनष्टः न सः श्रमणः ।।२१।।

आहार लें पुंश्चली घर स्तुति करें तन पोषते।
वे प्राप्त बाल–स्वभाव भाव–विनष्ट हैं नहिं श्रमण वे।।२१।।

अर्थ – जो लिंगधारी पुंश्चली अर्थात् व्यभिचारिणी स्त्री के घर पर भोजन लेता है, आहार करता है और नित्य उसकी स्तुति करता है कि यह बड़ी धर्मात्मा है, इसके साधुओं की बड़ी भक्ति है, इस प्रकार से नित्य उसकी प्रशंसा करता है, इस प्रकार पिंड को (शरीर को) पालता है, वह ऐसा लिंगी बालस्वभाव को प्राप्त होता है, अज्ञानी है, भाव से विनष्ट है, वह श्रमण नहीं है।

भावार्थ – जो लिंग धारण करके व्यभिचारिणी का आहार खाकर पिंड पालता है, उसकी नित्य प्रशंसा करता है, तब जानो कि यह भी व्यभिचारी है, अज्ञानी है, उसको लज्जा भी नहीं आती है, इस प्रकार वह भाव से विनष्ट है, मुनित्व के भाव नहीं हैं, तब मुनि कैसे ?।।२१।।

गाथा-२१ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं :-

पुंच्छलिघरि जो भुञ्जइ णिच्चं संथुणदि पोसए पिंडं।
पावदि बालसहावं भावविणट्ठो ण सो सवणो ।।२१।।

अर्थ :- जो लिंगधारी पुंश्चली अर्थात् व्यभिचारिणी स्त्री के घर भोजन लेता

है,... जो व्यभिचारिणी स्त्री हो, जगत में खोटी छाप हो, उसके यहाँ आहार ले, वह लिंगधारी वेशधारी है। **आहार करता है और नित्य उसकी स्तुति करता है...** बहुत धर्मात्मा है, यह तो। ओहोहो! ऐसा है और वैसा है। अपने को आहार-पानी ठीक से देती हो। हो व्यभिचारिणी। उसके यहाँ आहार ले, स्तुति करे **कि यह बड़ी धर्मात्मा है, इसके साधुओं की बड़ी भक्ति है,...** लो! उसकी महिमा करे। **इस प्रकार से नित्य उसकी प्रशंसा करता है...** हमेशा उसकी महिमा करे। **इस प्रकार पिण्ड को (शरीर को) पालता है...** और ऐसा करके शरीर को पाले, ऐसा कहते हैं। ऐसे आहार-पानी लेकर उसके लिये बनाये हुए हों, किये हुए हों। **पिण्ड को पालता है, वह ऐसा लिंगी बालस्वभाव को प्राप्त होता है,...** वह तो बालअज्ञानी है, बालस्वभाव को प्राप्त है। आहाहा! देखो न, बहुत लिखा। उस समय तो काल बहुत अच्छा था। यह तो दो हजार वर्ष पहले की बात है।

मुमुक्षु : अच्छे काल में भी ऐसे तो होते हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे न, कोई-कोई हो और भविष्य में होंगे। ऐसा है न वापस। सब ऐसा होगा, बिगड़ेंगे सब।

अज्ञानी है, भाव से विनष्ट है, वह श्रमण नहीं है। देखो! यह स्त्री के वर्ग की बहुत बात की। साधु स्त्री के समूह में नहीं होता, वह पढ़ता नहीं, पढ़ाता नहीं, उसके साथ परिचय करता नहीं। पढ़ाने के बहाने भी इकट्ठे नहीं करे। होवे नहीं उसका क्या? ऐसा इसे भान नहीं और ऐसे झुण्ड इकट्ठे करके पक्ष मांडे, पक्ष मांडे, वह सब साधु नहीं है। अन्दर में बालस्वभाव है, कहते हैं। मूर्खता जैसा स्वभाव है, उसका-मूर्ख का। अज्ञानी है। **वह श्रमण नहीं है।**

भावार्थ :- जो लिंग धारण करके व्यभिचारिणी का आहार खाकर पिण्ड पालता है,.... लो! व्यभिचारी स्त्री हो, उसके घर से आहार ले और पिण्ड को-शरीर को पालन करे। **उसकी नित्य प्रशंसा करता है,...** प्रशंसा करे प्रशंसा। **तब जानो कि यह भी व्यभिचारी है, अज्ञानी है,...** वह भी उसके जैसा लगता है वहाँ। **उसको लज्जा भी नहीं आती है,...** मैं किसकी प्रशंसा करता हूँ और कहाँ आहार लेने जाता हूँ, इसकी खबर भी नहीं उसे। **इस प्रकार वह भाव से विनष्ट है, मुनित्व के भाव नहीं है,...** उसे मुनित्व का

भाव नहीं है। **तब मुनि कैसे ?** भाव नहीं, वहाँ मुनि कैसा ? कहते हैं। बाह्यलिंग धारण किया, उसमें क्या है ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं। वह तुम्हारे कहते हैं मक्खनलालजी। मक्खनलालजी हैं न ? वे कहते हैं कि अभी के साधु चौथे काल के साधु से अच्छे हैं। क्योंकि चौथे काल के साधु उपवास करने में शिथिल थे और अभी अपवास बहुत करते हैं। ठीक ! ऐसा समाचार-पत्र में आया है। अरे ! चौथे काल के साधु, बापू ! अरे ! तुझे गन्ध भी नहीं उसकी। वह तो महाप्रभु है। उपवास ऐसा कि इतने सब नहीं करते थे और अभी के साधु उपवास बहुत करते हैं। कहो, ठीक ! चौथे काल के शिथिल थे और अभी के अच्छे हैं, ऐसा लिखते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वे ऐसा कहते हैं कि शिथिल थे। अभी तो अपवास बहुत करते हैं, तपस्या बहुत करते हैं। उग्र पुरुषार्थ है। ऐसा। अपवास करे नग्न होकर। दो-दो, चार-चार, आठ-आठ। आहाहा ! क्या हो ? वाड वेल को खाये। पण्डित खाये।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा लिखा है। समाचार-पत्र में आया था। ऐसी प्रशंसा वर्तमान साधु की महिमा करते थे।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किसका ? ऐसे ? अरे ! कहीं श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता, आचरण का, द्रव्यलिंग का ठिकाना नहीं होता। उसके लिये भोजन बनावे, चौका करे, उसका बचाव करे। अभी बहुत बचाव करते हैं।

मुनित्व के भाव नहीं है, तब मुनि कैसे ? लो !

गाथा-२२

आगे इस लिंगपाहुड को सम्पूर्ण करते हैं और कहते हैं कि जो धर्म का यथार्थरूप से पालन करता है, वह उत्तम सुख पाता है –

इय लिंगपाहुडमिणं सव्वंबुद्धेहिं देसियं धम्मं।
पालेइ कट्ठसहियं सो गाहदि उत्तमं ठाणं।।२२।।

इति लिंगप्राभृतमिदं सर्वं बुद्धैः देशितं धर्मम्।
पालयति कष्टसहितं सः गाहते उत्तमं स्थानम्।।२२।।

सर्वज्ञ–देशित लिंग पाहुड़ जान पाले धर्म को।
जो कष्ट पूर्वक प्राप्त करता वही परम स्थान को।।२२।।

अर्थ – इस प्रकार इस लिंगपाहुड शास्त्र का–सर्वबुद्ध जो ज्ञानी गणधरादि उन्होंने उपदेश दिया है, उसको जानकर जो मुनि धर्म को कष्टसहित बड़े यत्न से पालता है, रक्षा करता है, वह उत्तमस्थान मोक्ष को पाता है।

भावार्थ – यह मुनि का लिंग है वह बड़े पुण्य के उदय से प्राप्त होता है, उसे प्राप्त करके भी फिर खोटे कारण मिलाकर उसको बिगाड़ता है तो जानो कि यह बड़ा ही अभागा है–चिंतामणि रत्न पाकर कौड़ी के बदले में नष्ट करता है, इसीलिए आचार्य ने उपदेश दिया है कि ऐसा पद पाकर इसकी बड़े यत्न से रक्षा करना, कुसंगति करके बिगाड़ेगा तो जैसे पहिले संसार भ्रमण था, वैसे ही फिर संसार में अनन्त काल भ्रमण होगा और यत्नपूर्वक मुनित्व का पालन करेगा तो शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करेगा, इसलिए जिसको मोक्ष चाहिए, वह मुनिधर्म को प्राप्त करके यत्नसहित पालन करो, परीषह का, उपसर्ग का उपद्रव आवे तो भी चलायमान मत होओ, यह श्री सर्वज्ञदेव का उपदेश है।।२२।।

इस प्रकार यह लिंगपाहुड़ ग्रंथ पूर्ण किया। इसका संक्षेप इस प्रकार है कि इस पंचम काल में जिनलिंग धारण करके फिर दुर्भिक्ष के निमित्त से भ्रष्ट हुए, भेष बिगाड़ दिया वे अर्द्धफालक कहलाये, इनमें से फिर श्वेताम्बर हुए, इनमें से भी यापनीय हुए,

इत्यादि होकर के शिथिलाचार को पुष्ट करने के शास्त्र रचकर स्वच्छंद हो गये, इनमें से कितने ही निपट-बिल्कुल निंद्य प्रवृत्ति करने लगे, इनका निषेध करने के लिए तथा सबको सत्य उपदेश देने के लिए यह ग्रंथ है, इसको समझकर श्रद्धान करना। इस प्रकार निंद्य आचरणवालों को साधु-मोक्षमार्गी न मानना, इनकी वंदना व पूजा न करना - यह उपदेश है।

(छप्पय)

लिंग मुनी को धारि पाप जो भाव बिगाड़ै।
वह निंदाकूं पाय आपको अहित विथारै।।
ताकूं पूजै थुवै वंदना करै जु कोई।
वे भी तैसे होइ साथि दुरगतिकूं लेई।।
इससे जे सांचे मुनि भये भाव शुद्धि में थिर रहे।
तिनि उपदेश्या मारग लगे ते सांचे ज्ञानी कहे।।१।।

(दोहा)

अंतर बाह्य जु शुद्ध जे जिनमुद्राकूं धारि।
भये सिद्ध आनंदमय वंदूं जोग सँवारि।।२।।

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित श्री लिंगप्राभृत शास्त्र की
जयपुरनिवासी पण्डित जयचन्द्रजी छाबड़ाकृत देशभाषामयवचनिका का
हिन्दी भाषानुवाद समाप्त।।७।।

गाथा-२२ पर प्रवचन

आगे इस लिंगपाहुड़ को सम्पूर्ण करते हैं और कहते हैं कि जो धर्म का यथार्थरूप से पालन करता है, वह उत्तम सुख पाता है :- लो!

इय लिंगपाहुडमिणं सव्वंबुद्धेहिं देसियं धम्मं।
पालेइ कट्ठसहियं सो गाहदि उत्तमं ठाणं।।२२।।

अर्थ :- इस प्रकार ही लिंगपाहुड़ शास्त्र का—सर्व बुद्ध जो ज्ञानी गणधरादि

उन्होंने उपदेश दिया है,... मेरे घर का अकेला नहीं है, ऐसा कहते हैं। गणधरादि सन्तों ने यह लिंगपाहुड़ का उपदेश किया है। लो, ठीक! आधार दिया। **उसको जानकर जो मुनि धर्म को कष्टसहित बड़े यत्न से पालता है,...** देखो! कष्ट की व्याख्या यह है। कष्ट कहीं दु:ख हो, ऐसा नहीं है। दु:ख हो, वह तो आर्तध्यान है। **बड़े यत्न से पालता है,...** महापुरुषार्थ-पुरुषार्थ। स्वरूप की सावधानी, सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र का आराधन, वीतरागता की रमणता में जो तल्लीन होता है, ऐसा बहुत यत्न करके चारित्र को पालन करता है। वीतरागता को रखता है।

वह उत्तमस्थान-मोक्ष को पाता है। लो! उसको तिर्यंचयोनि और हल्का कहा था न? नरक में जाता है और यह जायेगा। ऐसा पालन करेगा तो मोक्ष में जायेगा, ऐसा कहते हैं। सामने लिया है। आहाहा! वह तिर्यंचयोनि, नरक में जायेगा, ऐसा कहा। जो कोई आत्मा का दर्शन-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र ऐसी वीतरागता महायत्न से पालन करेगा, महापुरुषार्थ करके, देखो! वहाँ पुरुषार्थ है। कहते हैं न कि क्रमबद्ध में कहाँ पुरुषार्थ आया? यह पुरुषार्थ है, स्वभाव सन्मुख होना, इसमें पुरुषार्थ है। समझ में आया? पुरुषार्थ बिना कौन सा गुण प्रगट होगा? अवगुण भी पुरुषार्थ बिना कहाँ प्रगट होता है?

मुमुक्षु : उल्टा पुरुषार्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उल्टा पुरुषार्थ है, यहाँ सुलटा पुरुषार्थ है। आत्मा का वीर्य आत्मज्ञान दर्शन चारित्र में स्फुरित करता है, (वह) महापुरुषार्थ है। पुरुषार्थ से वह मुक्ति होती है, पुरुषार्थ से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ पर्याय भी अन्तर में ढलती है न? भले पर्याय हो। त्रिकाल पर ढलती है। ध्रुव-ध्रुव ध्येय। ध्रुव ध्येय कहाँ आया था? तुम्हारे शब्द थे कहीं। कल थे। उसमें कहीं आया था। ध्रुव को ध्येय बतावे।

मुमुक्षु : सिखावे....

पूज्य गुरुदेवश्री : सिखावे। हाँ, वह ध्रुव ध्येय सिखावे। ऐई! मानस्तम्भ स्तुति

में। ध्रुव को ध्येय सिखावे। ऐसा आया था। यह स्तुति है न पूजा में, वह न? पूजा में स्तुति है या मानस्तम्भ की?

मुमुक्षु : मानस्तम्भ की स्तुति। ...मानस्तम्भ की...

पूज्य गुरुदेवश्री : चौदह माला में से। ध्रुव का ध्येय सिखावे, ध्रुव का ध्येय सिखावे। ध्रुव ध्येय सिखावे। पण्डितजी ने ऐसा डाला है। है खबर या नहीं? ऐई!

यहाँ तो कष्टसहित का अर्थ यत्नादि, हों! दूसरी जगह आया लगता है। ३३१ पृष्ठ। ३३१ पृष्ठ। ठीक, वह दुःख का... वहाँ दुःख, ऐसा है न? '**दुक्खे णज्जइ अप्पा अप्पा णाऊण भावणा दुक्खं।**' ३३१ है। ६५ गाथा। वहाँ दुःख शब्द प्रयोग किया है। **प्रथम तो आत्मा को जानते हैं, वह दुःख से जाना जाता है,...** दुःख का अर्थ महापुरुषार्थ लेना। वहाँ आता है। भावपाहुड़ में। आत्मा को जाने, वह महापुरुषार्थ से जाने। **आत्मा को जानकर भी भावना करना, फिर-फिर इसी का अनुभव करना दुःख से होता है,...** दुःख से अर्थात् महापुरुषार्थ से, ऐसा। ६५ गाथा है, मोक्षपाहुड़ की।

और **कदाचित् भावना भी किसी प्रकार हो जावे तो भायी है जिनभावना जिसने ऐसा पुरुष विषयों से विरक्त बड़े दुःख से होता है।** ६५ गाथा है। मोक्षपाहुड़। उसमें दुःख शब्द प्रयोग किया है। '**दुक्खे णज्जइ अप्पा**' ऐसा। अर्थात् उसका अर्थ यह न समझना कि दुःख से अर्थात् कष्ट से लेना। पुरुषार्थ से, महापुरुषार्थ से, यत्न से। ऐसा उसका अर्थ है। यह बाद में आयेगा। ३८६। यह शीलपाहुड़ में आयेगा। देखो! ८६। वहाँ भी है, देखो! ३८६। '**दुक्खे णज्जदि णाणं णाणं णाऊण भावणा दुक्खं। भावियमई व जीवो विसयेसु विरज्जए दुक्खं॥**' वहाँ उसमें दुःख लिया, यहाँ कष्ट लिया। दुःख का अर्थ ऐसा नहीं। तब तो फिर उसमें आता नहीं छहढाला में? 'ज्ञान, वैराग्य को...' क्या कहा? कष्ट गिने। कष्टदायी माने। वह तो दोष है। ३८६ पृष्ठ। तीसरी गाथा। उसमें -मोक्षपाहुड़ की वह। और यह कष्ट। दो जगह दुःख (आया)। वह यहाँ कष्ट की व्याख्या समझाने को कही। वापस कोई कहे कि कठिन है और महाकष्ट सहन करना पड़े, भाई! कष्ट क्या सहन करे?

मुमुक्षु : लोहे के चने चबाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। मुनिपना पालना चारित्र (पालना) महा लोहे के चने चबाना दूध के दाँत से। दु:ख होगा वह? चारित्र तो आनन्द है। आहाहा! 'ज्ञान वैराग्य दु:ख लहे...' क्या आता है? नहीं? छहढाला में। ज्ञान वैराग्य को दु:ख गिने। छहढाला में (आता है)।

मुमुक्षु : आतमहित (हेतु) विराग ज्ञान...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह। आत्मा का हित ज्ञान और वैराग्य, उसे आप लखे कष्टदान। वह दु:ख है। यह तो मूढ़ है। ज्ञान-वैराग्य में कष्ट कैसा? यह छहढाला में आता है, पण्डितजी!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कष्टदान। कष्ट माने, वह तो मूढ़ है। वह तो दु:ख माने। ज्ञान, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तो आनन्द है, दु:ख कैसा? आत्मा में दु:ख है ही कहाँ? दु:ख तो खड़ा किया हुआ कृत्रिम विकार है। स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र, वह तो उसमें सहज आनन्द है। प्रयत्न की उग्रता है। पुरुषार्थ की उग्रता को यहाँ कष्ट और दु:ख कहा जाता है। दु:ख और कष्ट है नहीं, उसमें जरा भी। शब्द को पकड़े कि यहाँ ऐसा कहा है आचार्य ने। उसमें ऐसा कहा। सब कहा है। सुन न!

सर्व बुद्ध जो ज्ञानी गणधरादि उन्होंने-उपदेश दिया है, उसको जानकर जो मुनि धर्म को कष्टसहित पड़े यत्न से पालता है,... जानकर। सम्यग्ज्ञान-दर्शनसहित, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **वह उत्तमस्थान-मोक्ष को पाता है।** उसको तिर्यंच और नरक कहा था। इसको मोक्ष जाता है, ऐसा कहा। जो आत्मा के दर्शन-ज्ञानसहित चारित्रसहित उत्तम मोक्षमार्ग आराधे, वह मोक्ष का उत्तम स्थान पाता है। उसे हल्का स्थान नहीं होता।

भावार्थ :- यह मुनि का लिंग है, वह बड़े पुण्य के उदय से प्राप्त होता है,... स्पष्टीकरण जरा भावार्थ में किया है। इतना जरा नग्नपना ऐसा भाव तो हुआ न थोड़ा? ऐसा कहते हैं। **उसे प्राप्त करके भी फिर खोटे कारण मिलाकर उसको बिगाड़ता है...** बिगाड़ता है। खोटा कारण मिलकर बिगाड़ता है। **तो जानो कि यह बड़ा ही अभागा**

है... आहाहा! **चिन्तामणि रत्न पाकर कौड़ी के बदले में नष्ट करता है,...** चिन्तामणि रत्न मिला परन्तु वह कौडी के लिये (खोटा है)। वह कौडी लाओ... कौडी लाओ... चिन्तामणि दूँ, कौडी लाओ। आहाहा!

इसलिए आचार्य ने उपदेश दिया है कि ऐसा पद पाकर इसकी बड़े यत्न से रक्षा करना,... महापुरुषार्थ। सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित जिसे बाह्यलिंग आया और चारित्र अन्दर है तो महायत्न से रखे। ओहो! ऐसा चिन्तामणिरत्न! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कब प्राप्त हो? इसलिए मिला है, उसे धारणा-चिन्तवन से बराबर रखना, ऐसा कहते हैं। गँवाना नहीं। **ऐसा पद पाकर इसकी बड़े यत्न से रक्षा करना,...** देखो! यत्न से रखना, ऐसा कहा न? वह कष्ट था न वह। **कुसंगति करके बिगाड़ेगा तो...** कुसंगति करके बिगाड़ेगा। **तो जैसे पहिले संसार-भ्रमण था, वैसे ही फिर संसार में अनन्त काल भ्रमण होगा...** ओहोहो!

यत्नपूर्वक मुनित्व का पालन करेगा तो शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करेगा,... देखो! स्वरूप की रमणता के आराधन में अल्प काल में केवलज्ञान है। आहाहा! देखो! यह स्वरूप का आराधन अन्तर, हों! विकल्प और महाव्रत की यहाँ बात भी नहीं ली। स्वरूप दर्शन-ज्ञान और चारित्र। उसे जो यत्न से करेगा, शीघ्र मोक्ष जायेगा। लो! शीघ्र मोक्ष जायेगा। शीघ्र मोक्ष जायेगा। मोक्ष तो शीघ्र तो जाये नहीं। जिस समय में जाने का हो, वह होगा। परन्तु इसका अर्थ ऐसा हुआ कि ऐसा जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र पालन करे, उसे अल्पकाल में ही केवलज्ञान का प्रसंग होता है। अल्प काल में ही केवलज्ञान क्रमबद्ध में आनेवाला हो उसे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसे स्वरूप आत्मा आनन्दमूर्ति अनन्त गुण का समाज, उसका जिसे भान और ज्ञान और रमणता (हुए), इसका अर्थ ही यह है कि उसे अल्प काल में केवलज्ञान होनेवाला है। सिद्ध होने के लिये तैयारी हो गयी है। वह शीघ्र अर्थात् अल्प काल में, ऐसा कहना है। अब उसे लम्बा काल नहीं होता। समझ में आया?

शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करेगा, इसलिए जिसको मोक्ष चाहिए,... इसलिए जिसे मोक्ष अर्थात् पूर्ण आनन्द चाहिए। मोक्ष का अर्थ यह। **वह मुनिधर्म को प्राप्त करके...** चारित्र बिना तो मुनिपना केवलज्ञान होता नहीं कभी तीन काल में। अकेले सम्यग्दर्शन-

ज्ञान से कहीं चारित्र बिना केवल(ज्ञान) नहीं होता, मुक्ति नहीं होती। **जिसको मोक्ष चाहिए, वह मुनिधर्म को प्राप्त करके...** मुनिधर्म को प्राप्त करे। श्रावकधर्म को, वह भी नहीं। **यत्नसहित पालन करो। परीषह का, उपसर्ग का उपद्रव आवे...** परीषह और उपसर्ग क्षुधा-तृषादि का। वह परीषह कहलाता है। और उपसर्ग मनुष्य और देव तथा अचेतन कृत। **तो भी चलायमान मत होओ, यह श्री सर्वज्ञदेव का उद्देश्य है।** लिंगपाहुड़ में '**सव्वंबुद्धेहिं**' कहा था न? '**सव्वंबुद्धेहिं देसियं धम्मं**' यह तीर्थंकर सर्वज्ञदेव का ऐसा उपदेश है। '**धम्मं**' है न? '**सव्वंबुद्धेहिं देसियं धम्मं**' भगवान ने जो यह धर्म कहा चारित्र। यह जो बराबर यत्न से पालन करेगा तो अल्प काल में मुक्ति होगी।

इस प्रकार यह लिंगपाहुड़ ग्रन्थ पूर्ण किया। इसका संक्षेप इस प्रकार है... अब पण्डित जयचन्द्रजी थोड़ा इसका सार कहते हैं। **पंचम काल में जिनलिंग धारण करके फिर दुर्भिक्ष के निमित्त से भ्रष्ट हुए, वेश बिगाड़ दिया वे अर्धफालक कहलाये,...** दिगम्बर धर्म पहला दिगम्बरपना अंगीकार तो किया था परन्तु दुर्भिक्ष के काल में, बारह वर्ष का दुर्भिक्ष पड़ा, उसमें स्वयं भ्रष्ट हुए थे। और वेश बिगाड़ा और आधा टुकड़ा साफा का लिया, वह श्वेताम्बरमत यहाँ से उत्पन्न हुआ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वेश बिगाड़ा, भाव बिगाड़े, सब बिगाड़ा। यह जरा कठिन लगे, हों! ऐसा है?

पंचम काल में जिनलिंग धारण करके... पहला नग्नपना तो धारण किया था। **फिर दुर्भिक्ष के निमित्त से भ्रष्ट हुए...** ...नहीं लिखा। **अर्धफालक कहलाये...** टुकड़ा कपड़े का थोड़ा आड़े रखते। **इनमें से फिर श्वेताम्बर हुए,...** लो! उसमें श्वेताम्बर हुए। यहाँ से शुरुआत हुई। लोगों को कठिन लगे, हों! सम्प्रदाय को। मार्ग तो यह है, भाई! सत्य तो यह है। अनादि सनातन वीतराग दिगम्बर मार्ग था, उसमें दीक्षा तो ले ली थी, कहते हैं, परन्तु काल के कारण निभ नहीं सके। थोड़ा टुकड़ा लिया। सच्चे मुनि थे, वे दक्षिण में चले गये थे। यहाँ रहे। वे फिर धीरे... धीरे... धीरे... बिगड़ गये।

इनमें से फिर श्वेताम्बर हुए, इनमें से भी यापनीय हुए,... यापनीय पन्थ है। जो श्वेताम्बर के शास्त्र मानते हैं। रहते हैं नग्न। वे सब उसमें से हुए हैं। कहते हैं। **इत्यादि हो करके शिथिलाचार को पुष्ट करने के शास्त्र रचकर...** लो! मुनि को इतने कपड़े चलते हैं, इतने जोड़ी चलते हैं। ऐसा सब बड़ा लेखन है। सब कल्पित शास्त्र बनाये हुए

हैं। यह अर्थ नहीं किया यहाँ। गाथा के अर्थ भरे हैं न अगासवालों ने। यह नहीं लिखे। **शास्त्र रचकर स्वच्छन्द हो गये,...** वस्त्र, पात्र स्थापित किये। लकड़ी का बड़ा दण्ड स्थापित किया इत्यादि-इत्यादि कितने देखो न! अभी एक साधु है न श्वेताम्बर? वहाँ जूनागढ़ में है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ... वहाँ मिले थे। उसमें बेचारे ने लिखा है कि पहले अर्धफालक थे। उसमें से १०८ उपकरण अभी साधु को है। सेठ! १०८। सेठ को तो सब हो। यह तो बड़ा गृहस्थ। परन्तु यह तो साधु को कुछ नहीं था, उसके बदले १०८। एक बार आया था न? वह लिस्ट आयी थी। अर्धफालक में से विकृत विकार। श्वेताम्बर साधु में लिखा है, हों! यहाँ का वाँचन है। ...सब आधा उसमें। अर्धभद्र।

मुमुक्षु : कहाँ जाकर अटकेगा....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वह। कहाँ जाकर... १०८ उपकरण है। सुई रखे और यह क्या कहलाता है? पैन रखे, अमुक रखे, अमुक रखे, डिब्बी रखे, ऐसा सब बहुत। शीशपेन रखे। यह सब बहुत खूब लिखे हैं। १०८। पुस्तक यहाँ है।

मुमुक्षु : १०८ उपकरण।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। १०८ उपकरण। श्वेताम्बर साधु को ऐसा है। उसका लेख आया है। कहीं है, पड़ा होगा कहीं।

शिथिलाचार को पुष्ट करने के शास्त्र रचकर स्वच्छन्द हो गये, इनमें से कितने ही निपट-बिल्कुल निंद्य प्रवृत्ति करने लगे,... ऐसा कहा है। बहुत लिखा है न उसमें? कितने ही तो एकदम हल्के **निंद्य प्रवृत्ति करने लगे, इनका निषेध करने के लिये...** उसके निषेध का बहाना करके **सबको सत्य उपदेश देने के लिये यह ग्रन्थ है, इसको समझकर...**

मुमुक्षु : सबको लागू पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको लागू पड़े। यह कहीं....

समझकर श्रद्धान करना। इस प्रकार निंद्य आचरणवालों को साधु-मोक्षमार्गी

न मानना,... आहाहा! मार्ग तो ऐसा है परन्तु भारी काम। उसे निह्नव ठहराया। दिगम्बर को निह्नव ठहराया। यह तो अनादि सनातन मार्ग है, भाई! वीतराग जैन परमेश्वर ने कहा हुआ। **इनकी वन्दना व पूजा न करना...** ऐसे साधु को मानकर... ऐई! जयन्तीभाई! ऐसा है यह तो। **इनकी वन्दना व पूजा न करना, यह उपदेश है।** लो!

(छप्पय)

लिंग मुनी को धारि पाप जो भाव बिगाड़ै।
वह निंदाकूं पाय आपको अहित विथारै॥
ताकूं पूजै थुवै वंदना करै जु कोई।
वे भी तैसे होइ साथि दुरगतिकूं लेई॥

सब यह है। उसके पोषण करनेवाले-माननेवाले सब साथ में जायें चलो। अकेले न जायें।

इससे जे सांचे मुनि भये भाव शुद्धि में थिर रहे।
तिनि उपदेश्या मारग लगे ते सांचे ज्ञानी कहे॥१॥

'**लिंग मुनी को धारि पाप जो भाव बिगाड़ै। वह निंदाकूं पाय आपको अहित विथारै॥**' अपने अहित का विस्तार करे। '**ताकूं पूजै...**' उसे माने। साधु माने, आचार्य माने, पूजे, स्तवन करे, वन्दना करे '**वे भी तैसे होइ साथि दुरगतिकूं लेई।**' दुर्गति जाये दोनों इकट्ठे होकर। यजमान को भी साथ में लेता जाये। '**इससे जे सांचे मुनि भये भाव शुद्धि में थिर रहे।**' उसके मार्ग में चले उसे ज्ञानी कहा जाता है। '**अंतर बाह्य जु शुद्ध जे जिनमुद्राकूं धारि।**' अभ्यन्तर ज्ञान, दर्शन और चारित्र, बाह्य नग्न - ऐसी शुद्ध जिनमुद्रा को धारकर। '**भये सिद्ध आनंदमय वंदूं जोग सँवारि।**' लो! ऐसे को मैं सिद्ध परमात्मा हुए। तो कैसे सिद्ध? आनन्दमय। जिनमुद्रा धारण करके अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित जो सिद्ध हुए '**वंदूं जोग सँवारि।**' लो!

इति श्री कुन्दकुन्दाचार्यस्वामी विरचित श्री लिंगप्राभृत शास्त्र की जयपुरनिवासी पण्डित जयचन्द्रजी छाबड़ाकृत देशभाषामयवचनिका का हिन्दी भाषानुवाद समाप्त। लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

शीलपाहुड़

-८-

अब शीलपाहुड ग्रंथ की देशभाषामयवचनिका का हिन्दी भाषानुवाद लिखते हैं–

(दोहा)

भव की प्रकृति निवारिकै, प्रगट किये निजभाव।
ह्वै अरहंत जु सिद्ध फुनि, वंदूं तिनि धरि चाव।।१।।

गाथा–१

इस प्रकार इष्ट के नमस्काररूप मंगल करके शीलपाहुड नामक ग्रंथ श्रीकुन्दकुन्दाचार्य कृत प्राकृत गाथाबंध की देशभाषामय वचनिका का हिन्दी भाषानुवाद लिखते हैं। प्रथम श्रीकुन्दकुन्दाचार्य ग्रंथ की आदि में इष्ट को नमस्काररूप मंगल करके ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा करते हैं –

वीरं विसालणयणं रत्तुप्पलकोमलस्समप्पायं।
तिविहेण पणमिऊण सीलगुणाणं णिसामेह।।१।।

वीरं विशालनयनं रक्तोत्पलकोमलसमपादम्।
त्रिविधेन प्रणम्य शीलगुणान् निशाम्यामि।।१।।

विस्तीर्ण–नयनी रक्त–कज–कोमल सुपद श्री वीर को।
त्रिविधा नमन कर कहूँगा मैं शील के गुण–गणों को।।१।।

अर्थ – आचार्य कहते हैं कि मैं वीर अर्थात् अंतिम तीर्थंकर श्रीवर्द्धमानस्वामी परम भट्टारक को मन–वचन–काय से नमस्कार करके शील अर्थात् निजभावरूप प्रकृति उसके गुणों को अथवा शील और सम्यग्दर्शनादिक गुणों को कहूँगा, कैसे हैं श्री वर्द्धमानस्वामी – विशालनयन हैं, उनके बाह्य में तो पदार्थों को देखने को नेत्र विशाल हैं, विस्तीर्ण हैं, सुन्दर हैं और अंतरंग में केवलदर्शन केवलज्ञानरूप नेत्र समस्त पदार्थों

को देखनेवाले हैं और वे कैसे हैं – 'रक्तोत्पलकोमलसमपादं' अर्थात् उनके चरण रक्त कमल के समान कोमल हैं, ऐसे अन्य के नहीं हैं, इसलिए सबसे प्रशंसा करने के योग्य हैं, पूजने योग्य हैं। इसका दूसरा अर्थ ऐसा भी होता है कि रक्त अर्थात् रागरूप आत्मा का भाव, उत्पल अर्थात् दूर करने में कोमल अर्थात् कठोरतादि दोष रहित और सम अर्थात् रागद्वेष रहित, पाद अर्थात् जिनके वाणी के पद हैं, जिनके वचन कोमल हितमित मधुर राग द्वेषरहित प्रवर्तते हैं, उनसे सबका कल्याण होता है।

***भावार्थ* – इस प्रकार वर्द्धमान स्वामी को नमस्काररूप मंगल करके आचार्य ने शीलपाहुड ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा की है।।१।।**

प्रवचन-१८०, गाथा-१-२, गुरुवार, पौष कृष्ण १०, दिनांक २१-०१-१९७१

अब शीलपाहुड़ ग्रन्थ की देशभाषामय वचनिका का हिन्दी भाषानुवाद लिखते हैं :-

दोहा

भव की प्रकृति निवारिकै, प्रगट किये निजभाव।
ह्वै अरहंत जु सिद्ध फुनि, वंदूं तिनि धरि चाव॥१॥

चाहना करके। **भव की प्रकृति निवारिकै...** क्या कहते हैं? आत्मा में जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष है, वह भव की प्रकृति है। आत्मा ज्ञायक आनन्दस्वरूप, उसकी दृष्टि से विपरीत दृष्टि—मिथ्यात्व और राग और द्वेष, वह भव प्रकृति-भव का स्वभाव-भव करने की खान है वह। **भव की प्रकृति निवारिकै...** जिसने अपने में भव का स्वभाव छोड़कर, **प्रगट किये निजभाव...** अपना निजभाव केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि जिसने प्रगट किया। **ह्वै अरहंत जु सिद्ध...** वे अरिहन्त हुए। यहाँ अरहन्त शब्द प्रयोग किया है। **ह्वै अरहंत जु सिद्ध फुनि, वंदूं तिनि धरि चाव**। उसकी चाहना करके। भव प्रकृति का नाशकर स्वभाव प्रकृति जिसने प्रगट की। स्वभाव प्रकृति का अर्थ-अपना स्वभाव ज्ञान, दर्शन और आनन्द है, वह जिसने प्रगट किया, वह अरिहन्त और सिद्ध है। उनको नमस्कार करके मैं शीलपाहुड़ कहता हूँ, ऐसा कहते हैं।

इस प्रकार इष्ट के नमस्काररूप मंगल करके... अपना इष्ट जो अरिहन्त और सिद्ध परमात्मा, उनको नमस्कार कर, **मंगल करके शीलपाहुड़ नाम ग्रन्थ श्री कुन्दकुन्दाचार्यकृत प्राकृत गाथाबद्ध की...** प्राकृत गाथायें हैं। **देशभाषामय वचनिका...** चलती भाषा में मैं लिखता हूँ। **प्रथम ही कुन्दकुन्दाचार्य ग्रन्थ की आदि में इष्ट को नमस्काररूप मंगल करके ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा करते हैं :-** कुन्दकुन्दाचार्य महाराज भगवान को नमस्कार करके प्रथम ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा करते हैं। पहली गाथा।

वीरं विसालणयणं रत्तुप्पलकोमलस्समप्पायं।
तिविहेण पणमिऊण सीलगुणाणं णिसामेह।।१।।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, **आचार्य कहते हैं कि मैं वीर अर्थात् अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्धमानस्वामी परम भट्टारक...** परम सूर्य उन्हें **मन-वचन-काय से नमस्कार करके...** मैं नमस्कार करके **शील अर्थात् निजभावरूप प्रकृति...** देखो! निजभाव। वह भवप्रकृति थी-मिथ्यात्व और राग-द्वेष भवप्रकृति थी और सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और चारित्र... है न? ये निजभाव प्रकृति है। निज-अपने भावरूप स्वभाव। **शील अर्थात् निजभावरूप प्रकृति...** शील की यह व्याख्या की। निजभाव-शुद्ध आनन्द, ज्ञानस्वभाव। अपना जो अनादि अविनाशी स्वभाव। उसका प्रगट करना। निज स्वभाव का प्रगट करना, सो निजभाव प्रकृति।

शुद्ध चैतन्य द्रव्यस्वभाव है, उसकी पर्याय में सम्यग्दर्शनसहित स्थिरता का अंश प्रगट करना, उसका नाम शील कहने में आता है। कहो, समझ में आया? **शील अर्थात् निजभावरूप प्रकृति...** अपना निज स्वभाव-ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, उसका नाम प्रकृति। उसकी पर्याय प्रगट करना, वह शील है। अपने स्वभाव में सम्यग्दर्शन और अनन्तानुबन्धी का अभाव करके, जो भवप्रकृति थी, उसका अभाव करके, सम्यग्दर्शन और स्वरूप में आंशिक स्थिरता का भाव प्रगट करना, उसका नाम शील कहने में आता है। उसका नाम निजभाव प्रकृति कहने में आती है। कहो, समझ में आया?

शील अर्थात् निजभावरूप प्रकृति उसके गुणों को... ऐसा जो आत्मा का स्वभाव, उसका गुण। **अथवा शील और सम्यग्दर्शनादिक गुणों को...** दो को कहेंगे। शील को कहेंगे अथवा शील के गुणों को कहेंगे। शील के गुण को कहेंगे **अथवा शील और**

सम्यग्दर्शनादिक गुणों को... दोनों साथ में लिया। वह दूसरा बोल है। पहले बोल में ऐसा लिया कि **शील अर्थात् निजभावरूप प्रकृति उसके गुणों को...** उसके गुण को। शील को और उसके गुण को कहूँगा, ऐसा कहते हैं। और बाद में कहा कि **शील और सम्यग्दर्शनादिक गुणों को कहूँगा...** समझ में आया?

पहले में ऐसा कहा कि आत्मा का स्वभाव शुद्ध आनन्द-ज्ञान स्वभाव प्रगट करना सो शील। उसका गुण-सम्यग्दर्शनादिक, उसको कहूँगा। दूसरे में कहा, शील और सम्यग्दर्शनादिक गुण तीन को कहूँगा। **कैसे हैं श्री वर्धमानस्वामी...** ये दो समझ में आया? पुण्य-पाप का भाव जो है, वह निजभाव नहीं। आहा! और पुण्य-पाप का भाव मेरा है, ऐसी मिथ्याप्रकृति भी निजभाव नहीं। मिथ्याप्रकृति अर्थात् मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेषभाव, उसको भवप्रकृति कहते हैं। संसारप्रकृति, संसारस्वभाव, संसारस्वभाव। उसका नाश करने को शील कहते हैं। शील अर्थात् निज स्वभाव। शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र अपने निज स्वभाव के सन्मुख होकर, त्रिकाली अविनाशी ज्ञानानन्दस्वभाव के सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पर्याय प्रगट करना, उसका नाम शील कहने में आता है। उसका नाम निजभाव कहने में आता है। समझ में आया?

कैसे हैं (भगवान) श्री वर्धमानस्वामी-विशाल नयन हैं,... वह अर्थ बाहर का किया-शरीर का किया। **उनके बाह्य में तो पदार्थों को देखने का नेत्र विशाल हैं,...** पहले छद्मस्थ अवस्था में ... पुण्यवन्त प्राणी हैं और तीर्थंकर हैं। तीर्थंकर हैं तो उनकी आँखें ऐसी जैसे कमल खिला हो वैसी बड़ी पुण्यवन्त होती है। विशाल नयन। **उनके बाह्य में तो पदार्थों को देखने का नेत्र विशाल हैं, विस्तीर्ण हैं, सुन्दर है...** वह तो बाह्य की बात की। **अन्तरंग में केवलदर्शन केवलज्ञानरूप नेत्र...** वर्धमान भगवान को अन्तर में शुद्धस्वरूप का आश्रय करके जो केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रगट हुआ, वह विशाल नयन है। **समस्त पदार्थों को देखनेवाले हैं...** लो। ऐसे वर्धमानस्वामी को मैं पहचानकर उनको वन्दन, नमस्कार करता हूँ। ऐसे आचार्य महाराज कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

और वे कैसे हैं-'रक्तोत्पलकोमलसमपादम्' अर्थात् उनके चरण रक्त कमल के समान कोमल हैं,.... वर्धमान परमात्मा पुण्यवन्त प्राणी तीर्थंकर हैं न। परम औदारिक शरीर है। इन्द्र भी जिनको हजार नेत्र से देखते हैं तो भी तृप्ति नहीं होती। ऐसी तो शरीर

की कोमलता और सुन्दरता है। जिनके चरण कोमल हैं। **ऐसे अन्य के नहीं है, इसलिए सबसे प्रशंसा करने के योग्य हैं...** सर्व जीव से वे अनुमोदन प्रशंसा करनेयोग्य है और **पूजने योग्य हैं**। दो बात।

इसका दूसरा अर्थ ऐसा भी होता है कि रक्त अर्थात् रागरूप आत्मा का भाव,... राग है न? राग। विकारी भाव। पुण्य-पाप का विकल्प जो रागभाव। **उत्पल अर्थात् दूर करने में, कोमल...** जिसको विकार भाव को दूर करना है, **कोमल अर्थात् कठोरादि दोष रहित और सम अर्थात् राग-द्वेष रहित, पाद...** जिसकी वाणी में राग-द्वेष रहितता आती है, ऐसा कहते हैं। वाणी का पाद है। पहले चरण लिये थे, अब वाणी का पद। वह चरण और यह पद। भगवान की वाणी के वाक्य ऐसे होते हैं कि जिसमें कठोरतादि दोष रहित, कोमल सम्यग्दर्शन, ज्ञान सिद्ध करने का शब्द है। राग-द्वेष की वाणी भगवान की वाणी में आती नहीं। समझ में आया? **सम अर्थात् राग-द्वेष रहित, पाद अर्थात् जिनके वाणी के पद हैं,...** लो। वाणी के पद में वीतराग की वाणी ऐसी होती है, जिससे समभाव... समभाव वीतरागभाव प्रगट हो, ऐसा वाणी में आता है। वीतराग की वाणी वीतरागभाव प्रगट करने को बताती है। आत्मा जैसा अनादि-अनन्त वीतराग स्वभाव है, उसको प्रगट करने की वाणी में-पद में-वाक्य में-ऐसा ही भाव आता है। वीतरागभाव प्रगट करो, वीतरागभाव ही धर्म है, वीतरागभाव ही मोक्ष का मार्ग है। पुण्य-पाप का भाव बन्ध का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया?

जिनके वचन कोमल... कैसी वाणी है भगवान की? कोमल-नरम। हितकारी-सर्व प्राणी को हितकर है। वीतरागभाव बताती है न। तो सर्व प्राणी को हितकर है। मित-मर्यादी है। वाणी में मर्यादित है। मधुर है। मीठी वाणी है। वाणी तो जड़ है। परन्तु उसमें वीतरागभाव बताते हैं, वह मीठा है। धर्म बताते हैं, वीतरागभाव ही धर्म है। आहाहा! देह, वाणी, मन से भिन्न और पुण्य-पाप के राग से भिन्न अपना स्वभाव, उसका श्रद्धा-ज्ञान करना, वह धर्म है। वीतराग की वाणी में ऐसा आता है। पण्डितजी! पुण्य में धर्म है, ऐसा नहीं बताते हैं। ऐसा कहते हैं।

कोमल, हित, मधुर और राग-द्वेषरहित। देखो! वाणी में राग करना अथवा द्वेष करना, यह बात आती ही नहीं। सम्यग्दृष्टि कराने में राग-द्वेष से होता है, ऐसी बात नहीं

(आती)। सम्यग्दर्शन, जो धर्म की पहली सीढ़ी, वह आत्मा के स्वभाव के आश्रय से होता है। ऐसी मीठी, मधुर राग-द्वेष रहित वीतराग की वाणी है। सेठ! राग करना, ऐसा नहीं बताते, कहते हैं। आता है तो जानने में आता है, वह दूसरी बात है। परन्तु करना तो आत्मा का स्वभाव शुद्ध। 'शुद्धता विचारे ध्यावे, शुद्धता में केलि करे' आता है न? 'शुद्धता में मगन रहे, अमृतधारा बरसे।' आत्मा शुद्ध, पुण्य-पाप रहित ऐसे स्वभाव की दृष्टि और ज्ञान, वह शुद्धता। उस शुद्धता में रमण करना, ऐसी बात वीतराग की वाणी में आती है। शुद्धता में रमण करने से आत्मा की अमृतधारा, अतीन्द्रिय अमृत का अनुभव होता है। आहा! बड़ा कठिन मार्ग। गृहस्थाश्रम में भी यह है, ऐसा कहते हैं।

अपना निज स्वरूप 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन'। उसमें एकाग्र होकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति का प्रगट करना, ऐसी वाणी में ऐसा भाव आता है। समझ में आया? **उनसे सबका कल्याण होता है।** उनसे सबका कल्याण होता है। आत्मा का स्वभाव शील बताना है न? शील। आत्मा का स्वभाव जो शुद्ध त्रिकाल है, उसकी प्रकृति अर्थात् निर्मल दशा प्रगट करना, शुद्धता प्रगट करनी, उसे ही शील कहने में आता है। और वह शील सर्व प्राणी को कल्याण करनेवाला है। कठिन बात। समझ में आया?

भावार्थ :- इस प्रकार वर्धमान स्वामी को नमस्काररूप मंगल करके आचार्य ने... मांगलिक किया, आचार्यदेव ने। **आचार्य ने शीलपाहुड़ ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा की है।**

गाथा-२

आगे शील का रूप तथा इससे (ज्ञान) गुण होता है, वह कहते हैं -

सीलस्स य णाणस्स य णत्थि विरोहो बुधेहिं णिद्दिट्ठो।
णवरि य सीलेण विणा विसया णाणं विणासंति ।।२।।

शीलस्य च ज्ञानस्य च नास्ति विरोधो बुधैः निर्दिष्टः।
केवलं च शीलेन विना विषयाः ज्ञानं विनाशयंति ।।२।।

है शील के अरु ज्ञान के अविरोध ज्ञानी जन कहें।
इस शील–विरहित ज्ञान को अक्षार्थ करते नष्ट हैं।।२।।

अर्थ – शील के और ज्ञान के ज्ञानियों ने विरोध नहीं कहा है। ऐसा नहीं है कि जहाँ शील हो वहाँ ज्ञान न हो और ज्ञान हो वहाँ शील न हो। यहाँ णवरि अर्थात् विशेष है वह कहते हैं – शील के बिना विषय अर्थात् इन्द्रियों के विषय हैं, वह ज्ञान को नष्ट करते हैं–ज्ञान को मिथ्यात्व रागद्वेषमय अज्ञानरूप करते हैं।

यहाँ ऐसा जानना कि शील नाम स्वभाव का प्रकृति का प्रसिद्ध है, आत्मा का सामान्यरूप से ज्ञान स्वभाव है। इस ज्ञानस्वभाव में अनादि कर्मसंयोग से (पर संग करने की प्रवृत्ति से) मिथ्यात्व रागद्वेषरूप परिणाम होता है, इसलिए यह ज्ञान की प्रकृति कुशील नाम को प्राप्त करती है, इससे संसार बनता है, इसलिए इसको संसार प्रकृति कहते हैं, इस प्रकृति को अज्ञानरूप कहते हैं, इस कुशील–प्रकृति से संसार पर्याय में अपनत्व मानता है तथा परद्रव्यों में इष्ट अनिष्ट बुद्धि करता है।

यह प्रकृति पलटे तब मिथ्यात्व का अभाव कहा जाय, तब फिर न संसार पर्याय में अपनत्व मानता है, न परद्रव्यों में इष्ट–अनिष्ट बुद्धि होती है और (पद–अनुसार अर्थात्) इस भाव की पूर्णता न हो तबतक चारित्रमोह के उदय से (उदय में युक्त होने से) कुछ रागद्वेष कषाय परिणाम उत्पन्न होते हैं, उनको कर्म का उदय जाने, उन भावों को त्यागने योग्य जाने, त्यागना चाहे ऐसी प्रकृति हो, तब सम्यग्दर्शनरूप भाव कहते हैं, इस सम्यग्दर्शन भाव से ज्ञान भी सम्यक् नाम पाता है और पद के अनुसार चारित्र की प्रवृत्ति होती है, जितने अंश रागद्वेष घटता है, उतने अंश चारित्र कहते हैं ऐसी प्रकृति को सुशील कहते हैं, इस प्रकार कुशील व सुशील शब्द का सामान्य अर्थ है।

सामान्यरूप से विचारे तो ज्ञान ही कुशील है और ज्ञान ही सुशील है, इसलिए इस प्रकार कहा है कि ज्ञान के और शील के विरोध नहीं है, जब संसार प्रकृति पलट कर मोक्ष सन्मुख प्रकृति हो तब सुशील कहते हैं, इसलिए ज्ञान में और शील में विशेष नहीं कहा है यदि ज्ञान में सुशील न आवे तो ज्ञान को इन्द्रियों के विषय नष्ट करते हैं, ज्ञान को अज्ञान करते हैं तब कुशील नाम पाता है।

यहाँ कोई पूछे – गाथा में ज्ञान अज्ञान का तथा सुशील कुशील का नाम तो नहीं कहा, ज्ञान और शील ऐसा ही कहा है, इसका समाधान – पहिले गाथा में ऐसी प्रतिज्ञा

की है कि मैं शील के गुणों को कहूँगा। अत: इस प्रकार जाना जाता है कि आचार्य के आशय में सुशील ही के कहने का प्रयोजन है, सुशील ही को शीलनाम से कहते हैं, शील बिना कुशील कहते हैं।

यहाँ गुणशब्द उपकारवाचक लेना तथा विशेषवाचक लेना, शील से उपकार होता है तथा शील के विशेष गुण हैं, वह कहेंगे। इस प्रकार ज्ञान में जो शील न आवे तो कुशील होता है, इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति होती है, तब वह ज्ञान नाम नहीं प्राप्त करता, इस प्रकार जानना चाहिए। व्यवहार में शील का अर्थ स्त्री संसर्ग वर्जन करने का भी है, अत: विषय-सेवन का ही निषेध है। परद्रव्यमात्र का संसर्ग छोड़ना, आत्मा में लीन होना वह परमब्रह्मचर्य है। इस प्रकार ये शील ही के नामान्तर जानना।।२।।

गाथा-२ पर प्रवचन

आगे शील का रूप तथा इससे (ज्ञान) गुण होता है, यह कहते हैं :- शील का स्वरूप और उससे गुण होता है, यह कहते हैं। शील का स्वरूप और उसका गुण कहते हैं।

सीलस्स य णाणस्स य णत्थि विरोहो बुधेहिं णिद्दिट्ठो।
णवरि य सीलेण विणा विसया णाणं विणासंति।।२।।

अर्थ :- शील के और ज्ञान के ज्ञानियों ने विरोध नहीं कहा है। क्या कहते हैं? आत्मा का सम्यग्दर्शन, ज्ञान और एकाग्रता, वह शील है और ज्ञान, इन दोनों में विरोध नहीं है। ज्ञान है, वहाँ शील है और शील है, वहाँ ज्ञान है। शील अर्थात् अकेले काया के ब्रह्मचर्य की बात नहीं है। अतीन्द्रिय आत्मा का ब्रह्मानन्दस्वरूप, ऐसा अतीन्द्रिय ब्रह्म आनन्द प्रगट करना, उस ज्ञान में और शील में विरोध नहीं है। अकेला ज्ञान नहीं है, ऐसा कहते हैं। मात्र जानपना हो परन्तु शील नहीं हो तो वह ज्ञान को नाश करता है। शील अर्थात् सम्यग्दर्शन और विषय की विरक्तता दृष्टि में न हो तो ज्ञान को अज्ञान कर देता है। समझ में आया? **शील के और ज्ञान के ज्ञानियों ने...** सर्वज्ञ परमात्मा ने विरोध नहीं कहा है।

ऐसा नहीं है कि जहाँ शील हो वहाँ ज्ञान न हो... देखो! शील अर्थात् आत्मा का सम्यग्दर्शन और अनन्तानुबन्धी का अभाव, ऐसा जो आत्मा का शील। सूक्ष्म बात है। शील हो, वहाँ ज्ञान न हो, ऐसा नहीं है। अर्थात् जहाँ आत्मा का शुद्ध स्वरूप, उसके अनुभव की प्रतीति ऐसा शील (हो), वहाँ ज्ञान न हो—सम्यग्ज्ञान न हो, ऐसा नहीं है। वहाँ सम्यग्ज्ञान होता ही है। और जहाँ ज्ञान हो, वहाँ शील न हो—ऐसा नहीं है। क्या कहते हैं? ज्ञान है और अनन्तानुबन्धी का अभाव का ब्रह्म की लीनता का शीलस्वभाव न हो, ज्ञान हो और सम्यग्दर्शन एवं अन्दर स्थिरता का अंश न हो, ऐसे होता नहीं। समझ में आया? यहाँ तो शील तो नरक में भी कहेंगे। शील नरक में भी है, नारकी में भी शील है, ऐसा कहेंगे। क्योंकि शील का अर्थ सम्यग्दर्शन और स्वरूप की स्थिरता अनन्तानुबन्धी के अभाव की। बस, उसको यहाँ शील कहने में आता है। नरक में भी है, ऐसा शील नारकी को भी है। आगे आयेगा। समझ में आया?

कहते हैं, शील हो और ज्ञान न हो, ऐसा नहीं होता; और ज्ञान हो और शील न हो अर्थात् जानपना है और शील न हो, ऐसा नहीं होता। ज्ञान और शील दोनों साथ ही होते हैं। सम्यग्ज्ञान के साथ सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शन के साथ शान्ति के अंश की स्थिरता, विषय की रुचि का अभाव और विषय की रुचि के अभावरूप परिणमन, ऐसा ज्ञान हो, वहाँ ऐसा शील होता ही है। समझ में आया? आठवाँ पाहुड़ है न? शील की व्याख्या ऐसी की। कोई मात्र जानपना अर्थात् धारण करे और शील न हो, ऐसा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। उसको ही ज्ञान कहते हैं कि जहाँ आत्मा का सम्यग्ज्ञान हुआ, वहाँ साथ में सम्यग्दर्शन और स्वरूप की शान्ति के अंश की स्थिरता होती ही है। नहीं तो उसको ज्ञान कहने में आता नहीं। समझ में आया?

यहाँ णवरि अर्थात् विशेष है वह कहते हैं—शील के बिना विषय अर्थात् इन्द्रियों के विषय हैं, वह ज्ञान को नष्ट करते हैं... देखो! क्या कहते हैं? जिसे विषय की रुचि है, पाँच इन्द्रिय के भोग की, उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है। समझ में आया? **शील के बिना विषय अर्थात् इन्द्रियों के विषय हैं, वह ज्ञान को नष्ट करते हैं...** ज्ञान को बिगाड़ते हैं **ज्ञान को मिथ्यात्व राग-द्वेषमय अज्ञानरूप करते हैं।** क्या कहते हैं? शील बिना अर्थात् स्वरूप की सम्यग्दृष्टि और स्वरूप में आचरणरूपी आंशिक चारित्र-स्थिरता,

ऐसा शील न हो तो ज्ञान को विषय की रुचि से बिगाड़ देता है। समझ में आया?

शील... है न? देखो! **शील के बिना...** शील की व्याख्या वह कि आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति, उसकी अन्तर्मुख दृष्टि और उसके साथ अनन्तानुबन्धी के अभाव की शान्ति और स्थिरता, ऐसा यदि न हो तो **इन्द्रियों के विषय हैं, वह ज्ञान को नष्ट करते हैं...** ज्ञान, यदि सम्यग्दर्शन न हो और स्वरूप में स्थिरता न हो तो ज्ञान विषय की रुचि करता है, भोग की रुचि करता है, मिठास मानकर ज्ञान को बिगाड़ देता है, मिथ्यात्व हो जाता है। समझ में आया? विषय की रुचि, पाँच इन्द्रियों के विषय के भोग की रुचि-प्रेम-वह ज्ञान को बिगाड़कर मिथ्यात्व कर देता है। आहाहा! समझ में आया? बाहर से पाँच इन्द्रियों के विषयों के त्याग की बात यहाँ नहीं है। अन्तर में जिसको ज्ञान है, परन्तु शील न हो तो ज्ञान को बिगाड़ देगा। क्योंकि ज्ञान का अकेला विकास हुआ परन्तु शील नहीं है, तो विषय की रुचि हटी नहीं। सम्यग्दर्शन बिना विषय की रुचि हटती नहीं। समझ में आया? आहाहा! सम्यग्दर्शन में पाँच इन्द्रिय के विषय की रुचि हट जाती है। भले थोड़ी आसक्ति हो, रागादि हो, परन्तु उसको प्रेम नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

दूसरे तरीके से लिखावट है। **शील के बिना विषय अर्थात् इन्द्रियों के विषय हैं, वह ज्ञान को नष्ट करते हैं...** कोई भी पाँच इन्द्रिय के विषय में प्रीति, रुचि (है तो) शील नहीं है अर्थात् प्रीति-रुचि है, वहाँ शील नहीं है, उससे दूर नहीं हटा। इसलिए उसके ज्ञान को बिगाड़ता है। आहा!

फिर से, कहते हैं, शील के बिना-भगवान आत्मा की रुचि के प्रेम और सम्यग्दर्शन बिना और आत्मा के सम्यग्दर्शन के साथ अनन्तानुबन्धी के अभाव की शान्ति के अंशरूप चारित्र बिना विषय अर्थात् इन्द्रियों के विषय ज्ञान को नष्ट करते हैं। उसे पर के ऊपर प्रेम हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? पाँच इन्द्रिय के विषय में प्रेम हुआ, उसने ज्ञान को बिगाड़ा, मिथ्यात्व हुआ। आहाहा!

सम्यग्दर्शन में विषय की रुचि नाश हो गयी है। विषय हो, परन्तु रुचि का नाश हो गया है। प्रेम नहीं है। सुख है, विषय में सुख है, इस बुद्धि का नाश हो गया है। समझ में आया? चेतनजी! ये बात है। ऐसे बाह्य विषय का त्याग हो और अन्तर ज्ञान-दर्शन न हो तो वह झूठा है और अन्तर में ज्ञान कहे और विषय की रुचि है, वह ज्ञान झूठा है, वह ज्ञान ही नहीं है। समझ में आया?

ज्ञान तो उसको कहे कि जिसको सारी दुनिया पाँच इन्द्रिय के विषय में रुचि का नाश हो गया है। सम्यग्दर्शन होने पर विषय की रुचि का नाश हुआ है। समझ में आया? और विषय की रुचि में मिठास है, भले विषयसेवन नहीं हो, परन्तु विषय में प्रेम है (तो) ज्ञान को बिगाड़ दिया-मिथ्यात्व हो गया। ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अलौकिक बात है, भैया! यह तो वीतराग मार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर... आत्मा अपना निज स्वरूप का ज्ञान हो तो ज्ञान के साथ विषय की रुचि हटकर आत्मा के आनन्द की रुचि हो गयी है। और ज्ञान हो और विषय की रुचि न हटे तो ज्ञान को मिथ्यात्व कर देता है। ज्ञान में भ्रमणा हो जाती है। आहा! क्या कहा समझ में आया?

यहाँ शीलपाहुड़ ऐसे लिया है कि भगवान आत्मा अपना ब्रह्मानन्दस्वरूप, अपना अतीन्द्रियस्वरूप, उसकी दृष्टि करके उसमें लीनता और उसका ज्ञान, उसका नाम शील कहने में आता है। तो कहते हैं कि अकेला ज्ञान हो और शील न हो तो ज्ञान को मिथ्यात्व कर देता है। जानपना हो, ग्यारह अंग नौ पूर्व का, लो। समझ में आया? अन्दर में पाँच इन्द्रिय का स्पर्श का, रूप का, गन्ध का, रस का प्रेम है, रुचि है। अनीन्द्रिय भगवान आत्मा की रुचि नहीं है और ज्ञान कहना, वह ज्ञान ही नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहा! समझ में आया?

चक्रवर्ती है न तीर्थंकर। ९६ हजार स्त्रियाँ थी। चक्रवर्ती तीर्थंकर और भरत चक्रवर्ती इत्यादि। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ को ९६ हजार स्त्रियां थीं। तो क्या उन्हें विषय की रुचि थी? नहीं। शील था। विषय की रुचि नहीं थी। आसक्ति, पर उपाधि जानकर उसे दृष्टि में से छोड़ देते हैं। पण्डितजी! ऐसी बात है। अनन्त बार नौवीं ग्रैवेयक जैन साधु होकर गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पै आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' छहढाला में आता है। बाह्य से त्याग हुआ परन्तु अन्दर राग की पुण्य की रुचि है। पुण्य के भाव में प्रेम है तो उसको विषय की रुचि है। परविषय की रुचि है, स्वविषय की रुचि नहीं है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

शील के बिना विषय अर्थात् इन्द्रियों के विषय... अनुकूलता में उसे प्रेम हो जाये, वह ज्ञान को बिगाड़ देता है। आहाहा! शशीभाई! कठिन बात शीलपाहुड़ की। लिंगपाहुड़ की खबर ली है बराबर, अब शीलपाहुड़ की। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की

कथनी ही अलौकिक! कहते हैं कि **ज्ञान को मिथ्यात्व राग-द्वेषमय अज्ञानरूप करते हैं।** जिस ज्ञान में विषय अर्थात् पूरी दुनिया, स्व विषय की प्रीति-रुचि नहीं हुई और परविषय में रुचि है, वह ज्ञान को मिथ्यात्व और राग-द्वेषमय अज्ञान कर देते हैं। वाह! समझ में आया? कैसे बात रखी है! **ज्ञान को मिथ्यात्व, राग-द्वेषमय अज्ञानरूप करते हैं।**

यहाँ ऐसा जानना कि शील नाम स्वभाव का-प्रकृति का प्रसिद्ध है,... ऐसा कहकर अब शील का थोड़ा स्पष्टीकरण करते हैं। **शील नाम स्वभाव का-प्रकृति का प्रसिद्ध है,...** आत्मा का स्वभाव। वह कहते हैं, देखो! **आत्मा का सामान्यरूप से ज्ञानस्वभाव है।** देखो! भगवान स्वभाव तो आत्मा का ज्ञान है। राग-द्वेष, पुण्य-पाप कोई स्वभाव नहीं। भगवान आत्मा स्वभाव तो जानन... जानन... ज्ञानस्वभाव है। अब उसमें शील लगाते हैं। **इस ज्ञानस्वभाव में अनादि कर्मसंयोग से...** ज्ञानस्वभाव जो अपना निज स्वभाव है, उसमें **अनादि कर्मसंयोग से (परसंग करने की प्रवृत्ति से) मिथ्यात्व राग-द्वेषरूप परिणाम होता है...** ज्ञानस्वभाव में अनादि कर्मसंयोग में दृष्टि होने से मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप परिणाम होता है। वह भवप्रकृति है, अशील स्वभाव है। समझ में आया? **इसलिए यह ज्ञान प्रकृति कुशील नाम को प्राप्त करती है,...** जो ज्ञानस्वभाव है, आत्मा का स्वभाव तो ज्ञान है। अब वह ज्ञान परपदार्थ में रुचि करके मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप परिणमता है। तो वह ज्ञान तो कुशील है। समझ में आया?

आत्मा का स्वभाव तो ज्ञान है। चैतन्यपुंज सो आत्मा। अब उसको कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में पर प्रति की रुचि से मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव होता है, वह ज्ञानस्वभाव को कुशील करता है। कहो, समझ में आया? **कुशील नाम को प्राप्त करती है...** किसको कुशील कहा? अपना ज्ञानस्वभाव वस्तु चैतन्यबिम्ब प्रभु चैतन्य पुंज है, उसमें कर्म दूसरी चीज़ है। दूसरी चीज़ के सम्बन्ध में पर में जो प्रेम होता है, विषयों में कोई भी चीज़ में प्रेम हुआ कि यह ठीक है, ऐसी रुचि हुई, वह ज्ञान को मिथ्यात्व करके कुशील कर देता है। आहाहा! समझ में आया? बहुत सरस बात है, सेठ! **ज्ञान की प्रकृति कुशील नाम को प्राप्त करती है...** ज्ञान का स्वभाव, प्रकृति अर्थात्। वह तो कुशील है। जिस ज्ञान में अपने स्वभाव का आश्रय करके शुद्धता प्रगट हुई नहीं, वह ज्ञान अपना निज स्वभाव की रुचि छोड़कर, पुण्य के विकल्प से लेकर दूसरी सब चीज़,

उसमें प्रेम करता है तो मिथ्यात्व होता है, राग-द्वेष होता है, वह ज्ञान कुशील नाम प्राप्त करता है, वह कुशील नाम संसार प्रकृति है।

इससे संसार बनता है,... देखो! आहाहा! है? क्या कहा? भगवान आत्मा चैतन्यस्वभावी वस्तु, ज्ञानभावी वस्तु, ज्ञानस्वभावी वस्तु, उसमें परकर्म के निमित्त के संयोग में संयोगी चीज़ की प्रीति की रुचि में अपने ज्ञानस्वभाव में मिथ्यात्व और राग-द्वेष होता है, वह ज्ञान कुशील नाम को प्राप्त होता है। उससे संसार उत्पन्न होता है। कहो, ...भाई! देखो! कैसी शैली ली है! ओहोहो! मूल में प्रहार किया है, मूल पर। इस ओर प्रीति है, इसलिए यहाँ प्रीति नहीं है, ऐसे बात पलटा मारती है, बस, इतनी बात है। विषय अर्थात् स्वविषय छोड़कर, मूल में ऐसा कहते हैं। स्वविषय छोड़कर परवस्तु चाहे तो दया, दान, व्रत परिणाम आदि हो, परन्तु उसमें यदि रुचि है तो परविषय है तो ज्ञान को मिथ्यात्व और राग-द्वेषमय करके कुशील करता है। संसार उत्पन्न होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शान्तिभाई! समझ में आया? मात्र शरीर से ब्रह्मचर्य पाले वह नहीं।

आत्मा में राग को विषय बनाकर 'ठीक बुद्धि' करके मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप परिणमता है, वही अब्रह्म और वही कुशील है। कठिन व्याख्या, भाई! आठों पाहुड़ में एक-एक बात अलौकिक! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली ही कोई अलौकिक बात! केवलज्ञान के पथानुगामी। बात को मूल में से उखाड़ते हैं।

भगवान आत्मा, उसका स्वभाव तो ज्ञान है न, भगवान! तो ज्ञानस्वभाव का विषय तो ज्ञान होता है। उसका विषय, उसका प्रेम उसमें होता है। उसका प्रेम छोड़कर आत्मा के स्वभाव के अतिरिक्त कोई भी विकल्प का रागादि, शरीर, वाणी, मन, इन्द्रिय भोग विषय, इज्जत, कीर्ति आदि कहीं भी पर में रुचि और प्रेम है तो वह ज्ञान मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप परिणमित हुआ है। वह कुशील है और उससे संसार उत्पन्न हुआ है। संसारप्रकृति उसे उत्पन्न हुई। आहाहा! समझ में आया? पाँच इन्द्रिय का विषय। चाहे तो रूप हो। सुन्दर रूप में रुचि हुई (तो) ज्ञान को कुशील कर दिया। अपना शुद्ध स्वरूप चैतन्य की रुचि छोड़कर, सुन्दर रूप, स्वरूप की रुचि छोड़कर पर रूप की रुचि हुई (तो) ज्ञान को कुशील करके संसार उत्पन्न हुआ। समझ में आया?

ऐसे शब्द। सुन्दर शब्द सुनकर, सुनकर मिठास आयी, मिठास... आहाहा! कोई प्रशंसा करे, मिठास (लगी) तो कहते हैं कि विषय की मिठास में उसका ज्ञान कुशील हुआ। मिथ्यात्व और राग-द्वेष सहित मैला हुआ। वह संसार उत्पन्न हुआ। ओहो! नवनीतभाई!

मुमुक्षु : सावधानी...

पूज्य गुरुदेवश्री : सावधानी और वस्तु का स्वरूप ऐसा है। ऐसा कहते हैं, बहुत सावधानी...

यहाँ तो प्रीति-अप्रीति की ही बात है पूरी। आहाहा! और न्याय से भी समझ में आता है या नहीं? पहले कहा न? शील नाम स्वभाव का अर्थात् प्रकृति का प्रसिद्ध है। उतनी बात की। प्रसिद्ध है। शील अर्थात् प्रकृति स्वभाव। इसका ये स्वभाव, इसका ये स्वभाव, ऐसा कहते हैं न? आत्मा का सामान्य स्वभाव क्या? ज्ञानस्वभाव है। ज्ञानस्वरूपी चैतन्यबिम्ब प्रभु आत्मा तो है।

इस ज्ञानस्वभाव में... अब कर्म संयोग आया। **कर्मसंयोग से मिथ्यात्व राग-द्वेषरूप परिणाम होता है...** क्योंकि संयोग में रुचि होने से, संयोगी चीज़ में रुचि होने से। कर्म के निमित्त से संयोग की रुचि हुई। चाहे तो शुभ-अशुभभाव वह संयोगी भाव है। समझ में आया? वह संयोग तो द्रव्यकर्म का कहा। परन्तु अन्दर में पुण्य और पापभाव उत्पन्न हुआ, वह संयोगी भाव है। उसमें रुचि हुई तो ज्ञान में कुशीलपना हुआ। ज्ञान कुशील हो गया, उसके अपने स्वभाव में न रहा। आहाहा! जैसे व्यभिचारी आदमी दूसरे के साथ व्यभिचार करे, उसे कुशीलिया कहते हैं। ऐसे आत्मा अपने ज्ञानस्वभाव का प्रेम और रुचि का आश्रय छोड़कर, कोई भी राग के एक कण में और पर में कहीं रुचि और प्रेम करे तो कहते हैं कि वह ज्ञान कुशील हो गया। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान में मिथ्यात्व आया। झूठी रुचि हुई। राग की रुचि (हुई)।

स्वभाव भगवान आत्मा ज्ञान (स्व)भावी प्रभु, उसकी रुचि की भावना न रही और राग की रुचि और उसकी भावना हो गयी। ये हो तो अच्छा, भोग हो तो अच्छा, चेन हो तो अच्छा। सुगन्ध... सुगन्ध गजरा-बजरा आदि। वहाँ उसका विषय हो गया,

उसकी रुचि वहाँ गयी। ऐसे खाने बैठा हो, उसमें ऊँचे-ऊँचे जामनगर के पेड़े, जामनगर का मैसूख, जामनगर में एक हलवाई है। बहुत ऊँची मिठाई बनाता है। कड़ाही एकदम साफ उसकी। बहुत महंगा देता है। बहुत वर्ष पहले आता था। लीलाधरभाई वकील कहते थे। बहुत वर्ष पहले। डेढ़ रुपये का एक सेर पेड़ा। उन दिनों में। बहुत साल पहले की बात है। पहले, हाँ! जब चार आना, आठ आना के पेड़ा मिलता था।, उन दिनों में डेढ़ रुपये का एक सेर पेड़ा देता था। वह पेड़ा खाये और कैसी मिठास आये! जामनगर ... ऊँचा माल होता है न, ऊँचा। जामनगर में खास होता है। किसी से सुना है, कोई कहता था। कोई कहता था, चन्द्रकान्त लानेवाला है। ऐई! आपके भाई के दोस्त है न। कुछ कहता था, कोई कहता था। लड़के का सुनते है न। रविवार को भोजन है न। पंचमी का। मजा आये। मैसूर जलीवाला। चार सेर घी से बनाया हुआ। एक सेर आटा और चार सेर घी, उसका मैसूर (बनाते हैं)। मैसूर बनाते हैं न? उसमें उसकी प्रीति गयी, रुचि हुई तो ज्ञान कुशील हो गया, ऐसा कहते हैं। न्याय से अपने स्वभाव में नहीं रहा, विषय बनाया उसको। यहाँ विषय बनाना चाहिए, उसके बदले बनाया वहाँ। आहाहा! ऐई! चन्दुभाई! ऐसा यह मार्ग है। लड्डू खाना और मोक्ष जाना, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : लोग कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग तो बोले बेचारे, (उन्हें) खबर नहीं है। बापू! अन्तर की रुचि पलटे कैसे? लड्डू खाता हो। लड्डू खाये कौन? वह तो आनन्द को-अपने भाव को खाता है। आहाहा! वह तो खाये उसे जानता है। आहाहा! कहो, पण्डितजी! ऐसा मार्ग है, भैया! मार्ग तो ऐसा ही है। है न, वस्तु दूसरी कहाँ से हो?

जो भगवान आत्मा... पहले तो कहा, स्वभाव का अर्थ तो प्रकृति प्रसिद्ध है। आत्मा की प्रकृति क्या? आत्मा तो ज्ञानप्रकृति स्वभाव है, जानना स्वभाव है। जानना छोड़कर परविषय में कोई भी शब्द में, रूप में, रस में, गन्ध में, स्पर्श में। स्पर्श में मुलायम लगे, मक्खन जैसा शरीर, उसमें प्रीति हो, रुचि हो, ज्ञान कुशील हो गया। आहाहा! ज्ञान में व्यभिचार हो गया। अपने ज्ञान का प्रेम न रहा, व्यभिचारी हो गया, कुशील हो गया। आहाहा! समझ में आया? देखो! प्रभु का मार्ग! प्रभु अर्थात् आत्मा। ऐसा मार्ग है। लोगों को श्रद्धा और श्रद्धा की विपरीतता का पता नहीं है। विपरीतता श्रद्धा में कैसे होती

है और अविपरीतता कैसी होती है, उसकी क्या कीमत है, खबर नहीं। बाहर में क्रियाकाण्ड करना और ये करना। जीवन चला जाता है, भाई!

कहते हैं, आहाहा! बड़ी कठिन बात! अर्थकार ने कितना अच्छा लिखा है, देखो न! अर्थकार का कहा, क्या कहते हैं? पण्डितजी-पण्डित जयचन्द्रजी। बहुत अच्छा। **शील नाम स्वभाव का-प्रकृति का...** स्वभाव अर्थात् प्रकृति का **प्रसिद्ध है,...** जीव की प्रकृति क्या, कर्म की प्रकृति क्या, विकार की प्रकृति क्या? वह सब स्वभाव है, प्रसिद्ध है। **आत्मा का सामान्यरूप से ज्ञानस्वभाव है।** सामान्य अर्थात् संक्षेप में। वैसे तो आनन्दादि अनेक स्वभाव है, परन्तु संक्षेप में कहना हो तो ज्ञानमूर्ति प्रभु। चैतन्य के नूर का तेज इतना आत्मा, बस। ऐसा जो ज्ञान अपना विषय छोड़कर, अपने में नहीं, ऐसा शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप , शरीर, वाणी, मन, इन्द्र का इन्द्रासन, स्त्री, कुटुम्ब, सुन्दर इज्जत, कीर्ति, शरीर, मकान में कहीं भी यदि प्रेम हुआ, रुचि हुई, दृष्टि हुई, वहाँ एकाग्र हुआ (तो) ज्ञान कुशील हुआ। समझ में आया?

मुमुक्षु : बात तो बड़ी सूक्ष्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ी सूक्ष्मता है? है या नहीं उसमें? भैया! है या नहीं? उसमें अर्थ है कि नहीं? तुम्हारे में नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वसन्मुख का पुरुषार्थ चाहिए। कहो, समझ में आया?

ज्ञानस्वभाव में अनादि कर्मसंयोग से... (ऐसा पढ़कर) कर्म के कारण होता है, ऐसा लगा देते हैं। यहाँ तो कर्म अर्थात् परद्रव्य है, ऐसा बताना है। तो परद्रव्य को विषय बनाया, स्वद्रव्य का विषय छोड़ दिया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **ज्ञानस्वभाव में अनादि कर्मसंयोग से मिथ्यात्व राग-द्वेषरूप परिणाम होता है...** लो। कर्म के कारण मिथ्यात्व, राग-द्वेष परिणाम होता है, ऐसा उसमें लिखा है। परन्तु उसका अर्थ (यह कि) स्वद्रव्य को विषय न बनाकर, परद्रव्य कर्म को विषय बनाया। कर्म को बनाया तो उसमें प्रीति हुई, राग-द्वेष उत्पन्न हुआ, वह मिथ्यात्व है। पर में प्रेम हुआ, परद्रव्य की रुचि हुई, वही मिथ्यात्व है। समझ में आया? स्वद्रव्य की अन्तर में दृष्टि होना, वही सम्यग्दर्शन है। बहुत सुन्दर अर्थ किया है। पाठ है न?

'सीलस्स य णाणस्स य णत्थि विरोहो बुधेहिं णिद्दिट्ठो' ऐसा है न? गणधरों ने ऐसा कहा है। **'णवरि य सीलेण विणा विसया णाणं विणासंति'**। शील बिना अर्थात् आत्मा के ज्ञानस्वभाव की-अपनी दृष्टि किये बिना, स्वविषय बनाये बिना ज्ञान पर में प्रेम करके नाश होता है। समझ में आया? **'विसया णाणं विणासंति'** लो। ऐसा है न? पाठ तो है न? **राग-द्वेषरूप परिणाम होता है, इसलिए यह ज्ञान की प्रकृति कुशील नाम को प्राप्त करती है...** लो, **इससे संसार बनता है, इसलिए इसको संसार प्रकृति कहते हैं...** आहाहा! कहते हैं कि संसार किसको कहना? संसार प्रकृति, लो ठीक। आहाहा! अपना आत्मा आनन्द, ज्ञानस्वभावी वस्तु वह प्रकृति का स्वभाव अथवा स्वभावरूप प्रकृति अपनी, उसका विषय छोड़कर, उसकी अन्तर्मुख दृष्टि, रुचि हटाकर अनादि से पर में प्रेम है, राग में, पुण्य में, संयोगी भाव में (प्रेम है), संयोगी भाव का प्रेम है वही मिथ्यात्वभाव है। **इससे संसार बनता है, इसलिए इसको संसार प्रकृति कहते हैं, इस प्रकृति को अज्ञानरूप कहते हैं...** लो। उसे अज्ञानरूप कहते हैं, ज्ञान नहीं। पण्डितजी! अच्छा लिया। वह ज्ञान न रहा। अज्ञान हो गया। आहाहा! दृष्टि की धारा पर पूरी बात है।

जो अपना स्वभाव पर का विषय करे और उसमें राग-द्वेष करे, बनाये वह तो मिथ्यात्व प्रकृति है, संसार प्रकृति है। उसे अज्ञानरूप कहते हैं। उस ज्ञान को अज्ञान कहते हैं। कुशील कहते हैं, अज्ञान कहते हैं, संसार प्रकृति कहते हैं, संसार उत्पन्न होता है कहते हैं। **इस कुशील-प्रकृति से संसार-पर्याय में अपनत्व मानता है...** लो देखो! इस कारण से संसारपर्याय में-रागादि पर्याय में अपनत्व मानता है। समझ में आया? **तथा परद्रव्यों में इष्ट-अनिष्टबुद्धि करता है।** क्या कहा? यह प्रकृति जो अज्ञान स्वभाव थी, संसार-पर्याय में अपनत्व मानता है। यहाँ मानना छोड़कर (पर में) मानता है। यह मैं, यह मैं, राग मैं, राग मैं, राग मैं। **परद्रव्यों में इष्ट-अनिष्ट बुद्धि करता है।** मिथ्यात्व हुआ और ज्ञेय के दो भाग कर दिये-इष्ट-अनिष्ट। आहाहा!

यह प्रकृति पलटे... यह प्रकृति पलटे, **तब मिथ्यात्व का अभाव कहा जाये,...** लो। पलटे अर्थात् अपने आप पलटे ऐसा नहीं। ये तो कोई ऐसा ले ले कि प्रकृति पलट जाये। वह प्रकृति को पलटावे, अन्दर में दृष्टि फिरावे **तब मिथ्यात्व का अभाव कहा**

जाये, तब फिर न संसारपर्याय में अपनवत्व मानता है,... संसारपर्याय, उदयभाव रागादि विकल्प, शरीर, वाणी, मन कहीं भी अपनत्व मानता है। अर्थात् पर में कहीं भी रुचि रहे नहीं, पर में कहीं भी सुखबुद्धि रहे नहीं। पर में अपनत्व मानता रहे नहीं। संसारपर्याय में... ओहो! अपनत्व मानता नहीं।

न परद्रव्यों में इष्ट-अनिष्ट बुद्धि होती है... लो! **इस भाव की पूर्णता न हो तब तक चारित्रमोह के उदय से (-उदय में युक्त होने से) कुछ राग-द्वेष कषाय परिणाम उत्पन्न होते हैं...** पूर्णता जब तक नहीं हो, फिर भी इष्ट-अनिष्ट बुद्धि नहीं है। इष्ट-अनिष्ट बुद्धि नहीं है, पर में अपनत्व मानता नहीं। परन्तु **चारित्रमोह के उदय से कुछ राग-द्वेष कषाय परिणाम उत्पन्न होते हैं, उनको कर्म का उदय माने...** मेरी चीज़ नहीं है। उपाधि भाव है, मैल, दुःख है। आहाहा! धर्म मार्ग अलौकिक है। ऐसी कोई चीज़ नहीं है कि बाहर से समझ में आयो, मान ली जाये। समझ में आया? फिर कहे, छोड़ो विषय। विषय है, उसे छोड़ो। उसे छोड़ने की कहाँ बात है। राग को विषय बनाया है, पर ऊपर लक्ष्य किया है उसे छोड़, ऐसा कहते हैं। बाहर के विषय छोड़े, इसलिए विषय छूट गये, ऐसा किसने कहा? समझ में आया? आत्मा अन्तर ज्ञानानन्दस्वभाव को ध्येय बनाकर, पर की रुचि का विषय छोड़े तो विषय छूटा कहा जाये। नहीं तो विषय छूटा कहाँ आया? छूटे कहाँ से? समझ में आया?

न संसार पर्याय में अपनत्व मानता है... पहले स्वयं मानता था। **न परद्रव्यों में इष्ट-अनिष्ट बुद्धि होती है, इस भाव की पूर्णता न हो...** जब तक पूर्ण दशा प्रगट न हो, वहाँ चारित्रमोह के उदय से राग-द्वेषभाव कषाय परिणाम उत्पन्न होते हैं, होते हैं, परन्तु **उनको कर्म का उदय जाने...** वह कर्म का कार्य है, मेरा नहीं। लो! मेरा कार्य तो जानना-देखना और आनन्द है। समझ में आया? बहुत अच्छी बात। अच्छी बात आ गयी। लिंग (पाहुड़) में तो बहुत नहीं चला, परन्तु उसमें बहुत चला।

उन भावों को त्यागनेयोग्य जाने,... देखो! सम्यग्दृष्टि अर्थात् शीलवान राग को त्यागनेयोग्य माने, हेय माने, ये नहीं, ये नहीं। दुःखरूप लगता है, ये नहीं। अज्ञानी को उसमें सुखरूप लगता है, ये होओ। इतना अन्तर है। अज्ञानी को राग ठीक, मिठास, ठीक-ठीक लगता है, वह ज्ञान कुशील हो गया है। ज्ञानी को राग ठीक नहीं लगता,

दु:ख लगता है। दु:ख लगता है तो त्यागनेयोग्य मानते हैं। चाहे जो शुभ-अशुभ हो, परन्तु उसे त्यागनेयोग्य मानते हैं। आहाहा! आया तो सही, हुआ तो सही, राग हुआ परन्तु त्यागनेयोग्य मानते हैं। आदरणीय, उपादेय और अपना ऐसे मानते नहीं। समझ में आया?

त्यागना चाहे... उसे छोड़ना चाहता है, रखना नहीं चाहता। अज्ञानी तो राग आया उसे रखना चाहता है। ये हो, ये हो। मिठास... मिठास (लगती है)। **त्यागना चाहे, ऐसी प्रकृति हो,** देखो! **तब सम्यग्दर्शनरूप भाव कहते हैं,...** देखो! ठीक! यहाँ तो यह लेना है। पहले में मिथ्यात्व लिया था, यह सम्यग्दर्शन (लिया)। सम्यग्दर्शन है, वही शील है। आहाहा! समझ में आया? **उन भावों को त्यागनेयोग्य जाने, त्यागना चाहे ऐसी प्रकृति हो...** देखो! वह स्वभाव आत्मा का ज्ञानमय हो, **तब सम्यग्दर्शनरूप भाव कहते हैं,...** तब उसको सम्यग्दर्शनरूप भाव कहते हैं। आहाहा! कितना स्पष्ट किया है। शशीभाई! स्व और पर, बस दो। भिन्न करके भिन्न का उदय रहा, उसमें रुचि रही नहीं। त्यागनेयोग्य मानते हैं। अज्ञानी संयोगी भाव की रुचि करते हैं और आदरणीय मानते हैं। ठीक हुआ, ठीक हुआ। समझ में आया?

ऐसा आत्मा का स्वभाव ऐसे जाने तो सम्यग्दर्शन भाव कहते हैं। लो। देखो! भाव शब्द प्रयोग किया है। है पर्याय। सम्यग्दर्शनरूप पर्याय कहते हैं। **इस सम्यग्दर्शन भाव से ज्ञान भी सम्यक् नाम पाता है...** देखो! तब वह ज्ञान सम्यक् नाम पाता है। नहीं तो ज्ञान राग में प्रीति, रुचि करे तो वह ज्ञान अज्ञानरूप नाम पावे। समझ में आया? आहाहा! अरे! ऐसा मार्ग सुनने मिले नहीं, वह विचार कब करे? ऐई! चन्दुभाई! गप्प-गप्प में जीवन चला जाता है। धर्म करते हैं, धर्म करते हैं। धूल में भी कुछ नहीं है। धर्म तेरा स्वभाव क्या है और राग का स्वभाव क्या है, दोनों की भिन्नता के भान बिना धर्म कहाँ से आया? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **और पद के अनुसार चारित्र की प्रवृत्ति होती है,...** देखो भाई! इसमें लिया है। चतुर्थ गुणस्थान में आंशिक चारित्र है। वह ना कहता है न। यहाँ तो अभी उसका सिद्धान्त कहा है कि ऐसे मिथ्यात्व होता है, राग-द्वेष होता है। सम्यग्दर्शन हो तो स्थिरता होती है। ऐसा कहते हैं। विशेष आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१८१, गाथा- २ से ४, शुक्रवार, पौष कृष्ण ११, दिनांक २२-०१-१९७१

अष्टपाहुड़ में अन्तिम पाहुड़। दूसरी गाथा का भावार्थ चलता है। यहाँ आया है अन्दर, देखो! **सुशील शब्द का सामान्य अर्थ है।** वहाँ आया है। है न बीच में?

यहाँ तो कहते हैं कि जितने अंश में अन्तर सम्यग्ज्ञान होता है, उसमें इतने अंश में सुशीलपना प्रगट होता है। ज्ञान और शील को विरोध नहीं है। ऐसा चलता है न? ज्ञान उसे कहते हैं कि रागरहित आत्मा का भान होना, ऐसा जो ज्ञान, उस रागरहित आंशिक स्थिरता, ऐसी सुशीलता साथ में है। ज्ञान सुशील है और अज्ञान कुशील है, यह दो व्याख्या इसमें है। कहते हैं, देखो!

सामान्यरूप से विचारे तो अज्ञान ही कुशील है... आत्मा शुद्ध चैतन्य की दृष्टि नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ विषय की रुचि छूटी नहीं। समझ में आया? आत्मा की दृष्टि-रुचि आनन्द की शुद्ध की हुई नहीं, वहाँ विषय की रुचि छूटी नहीं और जहाँ विषय की रुचि छूटती है, वहाँ आत्मा के आनन्द की रुचि होती ही है। आत्मा के आनन्द की रुचि, ऐसा जो ज्ञान, उसे विषय की रुचि के अभावरूप शीलपना साथ में होता है। उसे सुशील कहते हैं। समझ में आया इसमें? **अज्ञान ही कुशील है और ज्ञान ही सुशील है,...** आत्मा का स्वभाव चैतन्यमूर्ति आनन्द का जहाँ अनुभव नहीं, उसे सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ उस ज्ञान को, साथ में राग की एकता का परविषय का विकार, उसकी एकताबुद्धि है; इसलिए उस ज्ञान को अज्ञान और कुशील कहते हैं। पण्डितजी!

विचारे तो अज्ञान ही... यह ज्ञान में 'अ' पड़ा रहा है। **कुशील है और ज्ञान ही सुशील है,...** आत्मा का स्वभाव आनन्द और अतीन्द्रिय शान्तरस ऐसा जो आत्मा, उसका जिसे ज्ञान अन्तर की सम्यग्दर्शन की रुचिपूर्वक होता है, उसे अन्तर में कुशीलपना टल गया होता है। कुशीलपना अर्थात्? उसे राग का रस छूट गया हो। समझ में आया? गजब। राग का रस छूट गया हो, इससे उस ज्ञान को सुशील कहते हैं। और जिसे राग का रस है और ज्ञान है तो वह ज्ञान ही नहीं है। वह अज्ञान है, कुशील है। समझ में आया?

इसलिए इस प्रकार कहा कि ज्ञान के और शील के विरोध नहीं है,... इसलिए

ऐसा कहा कि ज्ञान और शील में विरोध नहीं है। जहाँ ज्ञान है, वहाँ शील है; जहाँ शील है, वहाँ ज्ञान है। शील बिना का ज्ञान नहीं होता और ज्ञान बिना का शील नहीं होता, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो पूरा वजन देना है। जानपना हो, उघाड़ ग्यारह अंग नौ पूर्व का, दृष्टान्त देंगे। उसे इतने पूर्व का ज्ञान था, तथापि विषय की एकताबुद्धि छूटी नहीं थी। वह नरक में गया। परविषय की एकताबुद्धि छूटी नहीं थी और जानपना नौ पूर्व का था। सम्यग्दर्शन नहीं था। आत्मा अनुभव आनन्द की रुचि चैतन्य का ज्ञान नहीं था। अकेला ज्ञान ग्यारह अंग और नौ पूर्व का था। आगे दृष्टान्त देंगे। कितनी गाथा है ? ...का दृष्टान्त देंगे। लो, यह आ गया। ३०वाँ। ३०वीं गाथा। है ?

जइ विसयलोलएहिं णाणीहि हविज्ज साहिदो मोक्खो।
तो सो सच्चइपुत्तो दसपुव्वीओ वि किं गदो णरयं॥३०॥

नरक में भी वापस ऐसा। आहाहा! क्या कहते हैं ? **जो विषयों में लोल अर्थात् लोलुप-आसक्त...** रुचि है अन्दर, हों! अन्दर राग की रुचि है। है पुस्तक ? नहीं ? गाथा है, गाथा हों! गाथा है। **विषयों में लोल अर्थात् लोलुप-आसक्त...** यहाँ एकताबुद्धि लेना है। पाठ है न ? '**विसयलोलएहिं**' ३० के पीछे... ३०। शीलपाहुड़। '**जइ विसयलोलएहिं**' शब्द है। लाओ निकाल दें। **विषयों में लोल अर्थात् लोलुप-आसक्त और ज्ञानसहित...** उघाड़ तो है, जानपना है, ऐसा कहते हैं। वह ज्ञान कैसा ? अनुभव का ज्ञान सम्यग्दर्शन का नहीं। जानपने का भाव उघाड़ है। **मोक्ष साधा हो तो दश पूर्व को जाननेवाला रुद्र नरक को क्यों गया ?** देखो! भावार्थ में भी आयेगा। इसमें है, हों!

भावार्थ :- शुष्क कोरे ज्ञान ही से मोक्ष किसी ने साधा कहें... अकेले जानपने द्वारा, सम्यग्दर्शन बिना, विषय की रुचि के त्याग बिना, आत्मा के अनुभव की रुचि बिना कोई अकेले ज्ञान से मोक्ष साधा हो **तो दस पूर्व का पाठी रुद्र नरक क्यों गया ?** ऐई! चेतनजी! है या नहीं इसमें ? लिखा है ?

मुमुक्षु : पहले दस पूर्वी थे, फिर गिर गये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दस पूर्वी गिर ही गया है। दस पूर्व नाम दिया है। पूरा नहीं था। तुम्हारे समझ लेना। अधिक था, ऐसा कहना है। दस पूर्व जितना ज्ञान। ऐसा।

शील के बिना केवल ज्ञान ही से मोक्ष नहीं है... देखो! अन्तर स्वरूप के आनन्द के आचरण बिना और राग की रुचि के आचरण छूटे बिना अकेले ज्ञान से मोक्ष हो तो उसका मोक्ष होना चाहिए। दस पूर्व पाठी का। समझ में आया? **रुद्र कुशील सेवन करनेवाला हुआ, मुनिपद से भ्रष्ट होकर कुशील सेवन किया, इसलिए नरक में गया, यह कथा पुराणों में प्रसिद्ध है।** पुराण में यह कथा प्रसिद्ध है। अन्तिम भाव ऐसा उठाया।

जब संसार-प्रकृति पलटकर... चलता अधिकार। संसार प्रकृति पलटकर, अर्थात्? परसन्मुख की रुचि राग की और पर्यायबुद्धि जहाँ टली, अनादि से परराग का और एक समय की पर्याय की रुचि, वह विषयबुद्धि है। परविषय की बुद्धि हुई न वह? स्वविषय की बुद्धि नहीं हुई। चाहे तो विषय शब्द, रूप चाहे जो हो। वह कोई प्रश्न नहीं। स्व चैतन्यस्वरूप का ध्येय, उसे चूककर जिसने राग और एक समय की पर्याय का विषय बनाया, वह विषय की रुचिवाला है अर्थात् कि पर की रुचिवाला है। विषय बिना का आत्मा, उसकी रुचिवाला वह है नहीं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात डाली है अन्दर।

संसार-प्रकृति पलटकर... संसार प्रकृति अर्थात्? पहले कह गये हैं वह। उसे **संसार बनता है, इसलिए इसको संसार-प्रकृति कहते हैं।** इस ओर पृष्ठ पर है। **ज्ञानस्वभाव में अनादि कर्मसंयोग से मिथ्यात्व राग-द्वेषरूप परिणाम होता है, इसलिए यह ज्ञान की प्रकृति कुशील नाम को प्राप्त करती है...** इस ओर है। यह दूसरा है। **इससे संसार बनता है, इसलिए इसको संसार-प्रकृति कहते हैं, इस प्रकृति को अज्ञानरूप कहते हैं...** लो! समझ में आया? भगवान आत्मा... आहाहा! वाह! शान्त अनाकुल आनन्द का रस प्रभु, कहते हैं कि उसे जिसने विषय बनाया नहीं, उसे जिसने ध्येय बनाया नहीं, उसका ध्येय तो राग और विकल्प और एक समय की पर्याय, वह ध्येय है। समझ में आया? वह संसार प्रकृति है। पण्डितजी! गजब बात, भाई! भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का धाम प्रभु, वह आत्मा। उसे जिसने विषय / ध्येय बनाया नहीं, उसकी रुचि की नहीं, उसे पुण्य और पाप के विकल्प की रुचि है, वह वास्तव में उसे भोग की ही रुचि है। समझ में आया? अथवा उस राग की रुचिवाला वह कुशीली है। वह संसार प्रकृतिवाला है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

संसार-प्रकृति पलटकर... अब उसे पलटकर कहा। वह संसार, वह पर विषय, एक विकल्प से लेकर पूरी दुनिया, उसके विषय की रुचि, परवस्तु के विषय की रुचि पलटकर स्वस्वभाव की रुचि जिसने की। जिसकी रुचि में पोसाण-पोसाण... पोसाण समझ में आता है ? पोसाता है। आत्मा आनन्द का भाव जिसकी रुचि में पोसाता है। कोई दूसरी चीज़ पोसाती नहीं। गजब मार्ग भाई! समझ में आया ?

कहते हैं कि **मोक्षसन्मुख प्रकृति हो...** देखो! आत्मा शुद्ध परमानन्द के सन्मुख भाव हो तो वह मोक्षसन्मुख प्रकृति हुई। पहली संसार सन्मुख प्रकृति थी, वह गुलाँट खा गयी। आहाहा! दृष्टि का विषय जिसने पर को बनाया, वह संसारप्रकृति है। जिसने दृष्टि में आत्मा विषय बनाया, वह मोक्षसन्मुख प्रकृति है। कहो, कान्तिभाई! आहाहा! एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। भगवान आत्मा निर्विकल्प आनन्द का धाम, ऐसा स्वविषय जिसने बनाया, उसे संसार की प्रकृति का नाश हो गया। ऐसा कहते हैं। अज्ञानभाव राग का प्रेम जो गहरे-गहरे था। वैसे तो त्यागी हुआ था, मुनि हुआ था, तब बाहर के विषय तो नहीं थे। समझ में आया ? तथापि उसे यहाँ कुशील कहा अथवा अज्ञान कहा। क्योंकि जहाँ भगवान आत्मा सिद्धसमान आनन्द की मूर्ति, उसकी जिसे अन्तर स्वविषय की, स्व अर्थात् द्रव्य का विषय करके रुचि की नहीं, उसे संसारप्रकृति खड़ी है। आहाहा! चाहे तो त्यागी-मुनि हुआ हो, दिगम्बर साधु (हुआ हो), परन्तु कहते हैं कि अन्तर के ध्येय के ध्यान बिना बाहर का राग का ध्येय जिसे पड़ा है, वह सब अज्ञानी कुशीली है। ओहोहो! चिमनभाई! देखो तो सही बात!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : किया कहाँ है ? यह कुशील ही किया है। बात सच्ची। ऐसा कहते हैं तो अभी तक क्या किया ? भाई ऐसा कहते हैं। यही किया है। चन्दुभाई! आहाहा! ऐसा अधिकार लिया है, हों! शीलपाहुड़। यह शील तो समकिती को होता है, नरक में भी होता है। यह आगे दृष्टान्त देंगे नरक का। शील नरक में होता है, सातवें नरक में होता है।

मुमुक्षु : ज्ञान को और उसे विरोध नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान भी वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान कैसा ? कि जिसमें रुचि दृष्टि हुई

है ऐसा। ऐसा। तब उसे ज्ञान कहा जाये न ? ज्ञान उसे कैसा ? कि जिसे आत्मा की दृष्टि हुई है ऐसा। अज्ञान कैसा ? कि जिसे राग की रुचि हुई है ऐसा। समझ में आया ? आहाहा ! वापस आगे तो यह गाथा लेंगे। वहाँ है न कि विषय में लोलुपी है तथापि वह... बतायेंगे मार्ग। तो वह मार्ग में है। ऐसा है कहीं। तथापि वह सच्चा मार्ग बताते हैं, श्रद्धा होती है। ऐसा वह कहीं है, हों ! बहुत गाथायें हैं, नहीं ? क्या कहा ? विषय... प्ररूपणा।

मुमुक्षु : १३वीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : १३वीं, देखो ! १३वीं है, देखो !

विसएसु मोहिदाणं कहियं मग्गं पि इट्ठदरिसीणं।
उम्मग्गं दरिसीणं णाणं पि णिरत्थयं तेसिं ॥१३॥

अर्थ :- जो पुरुष इष्ट मार्ग को दिखानेवाला ज्ञानी हैं... मार्ग तो रुचि स्व की करना और दृष्टि अनुभव करना, वह मार्ग है, ऐसा बतावे। **और विषयों से विमोहित हैं...** पहले विषय की आसक्ति छूटी नहीं **तो भी उनको मार्ग की प्राप्ति कही है,...** उसे मार्ग प्राप्त होगा। समझ में आया ? है या नहीं इसमें ? क्या है ? '**विसएसु मोहिदाणं**' मूल तो विषय की आसक्ति छूटी नहीं। '**कहियं मग्गं पि इट्ठदरिसीणं**' मार्ग तो यह है, भाई ! राग को छोड़ना। विषय का भाव है उसे, परन्तु श्रद्धा में, प्ररूपणा में बिल्कुल राग का विषय करना, वह मिथ्यात्व है, ऐसा (होता है)। समझ में आया ? राग को विषय बनाना, वह मिथ्यात्व है, ऐसी जिसकी श्रद्धा और प्ररूपणा है, तो उसे मार्ग की प्राप्ति कही है। उसे मार्ग मिलेगा। यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान होकर चारित्र प्राप्त करेगा। परन्तु जिसकी श्रद्धा में ही है कि विषय का राग है, वह ठीक है। समझ में आया ? विषय का वह राग जो है, विषय अर्थात् पर, वह ठीक है, ऐसी जिसकी दृष्टि है, वह अत्यन्त कुशीली अज्ञानी है—ऐसा कहते हैं। वह धर्म को प्राप्त करने के योग्य नहीं है, ऐसा कहा। आहाहा ! समझ में आया ?

'**विसएसु मोहिदाणं**' शब्द पड़ा है। '**मोहिदाणं**' है न ? सावधान है, इस ओर, विषय की वृत्तियाँ होती हैं। तथापि श्रद्धा में-प्ररूपणा में / कथन में (ऐसा होता है कि) वह दोष है, वह दुःख है, वह टालनेयोग्य है, जहर है। ऐसी श्रद्धा है, वह मार्ग को प्राप्त

करेगा। समझ में आया? आहाहा! परन्तु उसमें मजा है, ऐसा माननेवाला राग में भी मजा है, ऐसा माननेवाले मार्ग से भ्रष्ट कुशील अज्ञानी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा मार्ग भाई! कल सवेरे नहीं आये थे, नहीं? दोपहर में आये थे। **तब सुशील नाम पाता है।**

मोक्षसन्मुख प्रकृति हो तब सुशील कहते हैं,... मोक्ष अर्थात् आत्मा का पूर्ण निर्मल स्वभाव, उस ओर का झुकाव दृष्टि हुई है, ऐसे ज्ञान को सुशील अथवा ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? पुस्तक-बुस्तक है या नहीं? ऐई! गाथा है। गाथा तो देखी जाये। अक्षर तो आवे। अक्षर उसमें बहुत नहीं होते। थोड़े-थोड़े अर्थ होंगे। यह सब अर्थ उसमें नहीं हैं, हों! यह तो सब लम्बा अर्थ है। गाथा है न इसमें, देखो न!

सीलस्स य णाणस्स य णत्थि विरोहो बुधेहिं णिद्दिट्ठो।
णवरि य सीलेण विणा विसया णाणं विणासंति।।२।।

यह दूसरी गाथा। शीलपाहुड़ की दूसरी गाथा। आया?

इसलिए ज्ञान में और शील में विशेष नहीं कहा है,... है? इसलिए ज्ञान में और शील में भिन्नता नहीं कही। **यदि ज्ञान में सुशील न आवे तो ज्ञान को इन्द्रियों के विषय नष्ट करते हैं,...** गाथा का अर्थ है। **यदि ज्ञान में सुशील न आवे...** अर्थात्? कि राग की एकता न टूटे, परविषय की एकता न टूटे **तो ज्ञान को इन्द्रियों के विषय नष्ट करते हैं,...** तो राग की एकता से सम्यग्ज्ञान का नाश होता है। अज्ञान होता है। समझ में आया? अरे! कठिन बात! अभी यह तो वह कहे, शुभराग करना। शुभराग करनेयोग्य है। वह सब राग की-विषय की रुचि है, ऐसा कहते हैं। हों! वह सब भोग का मार्ग है। राग का प्रेम, वह तो भोग का मार्ग है। चाहे तो शुभराग हो। परन्तु उसकी रुचि है और उससे कल्याण होता है, ऐसा मानता है, उसका ज्ञान कुशीली, वह अज्ञान-कुशील है। संसार प्रकृति है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान को इन्द्रियों के विषय नष्ट करते हैं, ज्ञान को अज्ञान करते हैं, तब कुशील नाम पाता है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वभावी आनन्दस्वरूपी। देखो! ज्ञानस्वभावी आनन्दस्वरूपी। ऐई! तीनों लिये हैं। ज्ञान अर्थात् चेतन आ गया न उसमें? कहो, चेतन

आनन्दस्वरूपी है आत्मा तो। उसकी जिसे अन्तर में दृष्टि नहीं, उसे राग के प्रेम के कारण उस ज्ञान को अज्ञान और कुशीली कहा है। आहाहा! और **यहाँ कोई पूछे**- यहाँ कोई पूछे। आहाहा! गजब! यहाँ तो भगवान की-परमात्मा की भक्ति, ऐसा जो राग, उस राग की भी जिसे रुचि है, वह कुशील है। समझ में आया? पंचास्तिकाय में आया है न यह? १७० गाथा। तीर्थंकर कहते हैं, हमारे प्रति की रुचि, नौ तत्त्व की रुचि और सूत्र के प्रेम की रुचि जब तक है, तब तक उसकी मुक्ति नहीं होगी। समझ में आया? पंचास्तिकाय है न? आत्मा की रुचि है न, इसलिए वह याद आया।

मुमुक्षु : चारित्र...

पूज्य गुरुदेवश्री : तथापि... रुचि है मिथ्यादृष्टि भी लिया है न इकट्ठा। आसक्ति... कितना है?

'**सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स।**' उसकी जो अत्यन्त रुचि ही हो अकेली, तब तो मिथ्यात्वी है। परन्तु आसक्ति हो, तब तक उसे मुक्ति नहीं है। '**दूरतरं णिव्वाणं संजमतवसंपउत्तस्स॥**' लो, ठीक! इतना भी राग है न? और यदि अन्दर रुचि हो जाये और वह लाभदायक है, (ऐसा लगे), तब तो मिथ्यात्व हो जाये। यह जयसेनाचार्य में डाला है। समझ में आया? (जैसी) दृष्टि वैसी सृष्टि, ऐसा कहते हैं। जिसकी दृष्टि स्वभाव शुद्ध पर है, उसकी सृष्टि सब निर्मल उत्पन्न होती है। उसके स्वभाव का जन्म निर्मल का है। और जिसे दृष्टि राग की रुचि है, उसकी पूरी सृष्टि मिथ्यात्व और कुशील की उत्पत्ति होती है। समझ में आया? ऐसे कथन की खबर नहीं होती और मार्ग को बाहर से कुछ का कुछ करके मनावे कि ऐसा करो, वैसा करो, ध्यान करो। किसका ध्यान? वस्तु क्या है, वस्तु का स्वभाव क्या है? अनादि की विरोधता कैसे खड़ी हुई है? यह विकल्प भी जो है, वह निर्विकल्प चैतन्यस्वभाव से विरुद्ध भाववाला भाव है। उसका जिसे अन्तर रुचि का प्रेम है, उस पर बात है न! अज्ञान कुशील कहा जाता है उसे।

यहाँ कोई पूछे-गाथा में ज्ञान-अज्ञान का तथा सुशील-कुशील का नाम तो नहीं कहा,... तुमने यह कहाँ से निकाला? ऐसा कहते हैं। गाथा में तो ज्ञान-अज्ञान और सुशील-कुशील ऐसा नाम भी नहीं कहा। **ज्ञान और शील ऐसा ही कहा है,...** पाठ में तो ज्ञान और शील दो शब्द प्रयोग किये हैं। कहो, समझ में आया? **इसका समाधान**- क्या

पूछा ? स्वयं और स्वयं ने प्रश्न उठाया है कि तुम यह अज्ञान और ज्ञान, कुशील और सुशील ऐसे दो नाम कहाँ से निकाले तुमने ? पाठ में तो ज्ञान और शील दो है। ज्ञान और शील। और तुमने उसमें से कुशील और सुशील, अज्ञान और ज्ञान, ऐसे दो-दो नाम निकाले। तो किस प्रकार से निकाले ?

पहली गाथा में ऐसी प्रतिज्ञा की है कि मैं शील के गुणों को कहूँगा... ऐसा है न पहली गाथा में ? '**सीलगुणाणं णिसामेह**' पहली गाथा का चौथा पद है। '**सीलगुणाणं णिसामेह**'। शील के गुण को मैं कहूँगा। सम्यग्दर्शन आदि गुण तो कहूँगा, ऐसा है न इसमें ? अर्थ में कहा है। **मैं शील के गुणों को कहूँगा। अतः इस प्रकार जाना जाता है कि आचार्य के आशय में सुशील ही के कहने का प्रयोजन है,...** क्या कहा ? हम ज्ञान के गुण को कहेंगे। ऐसा आया न ? शील के गुण को कहूँगा। शील के गुण को कहूँगा। इसका अर्थ आ गया है। शील के गुण को कहूँगा अर्थात् **आचार्य के आशय में सुशील ही के कहने का प्रयोजन है,...** शील के गुण। शील के गुण कहने की जो प्रतिज्ञा है, वह सुशील कहने का आशय है। शील का गुण अर्थात् सुशील, ऐसा। सम्यग्दर्शनसहित ऐसा जो सम्यक् शान्तिसहित उसे यहाँ सुशील कहना चाहते हैं। इस ज्ञान के गुण को कहूँगा, ऐसा कहने से सुशील कहना चाहते हैं। क्या कहते हैं, समझ में आया इसमें ?

पाठ में तो ऐसा कहते हैं कि दूसरी गाथा में शीलस और णाणस, ऐसा आया। और उसमें से फिर कुशील और सुशील, अज्ञान और अज्ञान निकाला। क्यों ? कि भाई ! पहले से कहा है। शील के गुण को कहूँगा। इसका अर्थ कि शील का गुण, वह सुशील और शील का गुण नहीं, वह कुशील अर्थात् अज्ञान। शील का गुण अर्थात् ज्ञान। ज्ञान, वह सुशील; अज्ञान, वह कुशील, इसमें आ जाता है। ठीक मिलाया है। आहाहा ! **मैं शील के गुणों को कहूँगा। अतः इस प्रकार जाना जाता है कि आचार्य के आशय में सुशील ही के कहे का प्रयोजन है,...** शील के गुण को कहूँगा, ऐसा कहा न ? अर्थात् सुशील हो गया, ऐसा। सुशील। शील है। गुण को कहते हैं, सुशील हो गया। इसका नाम सुशील। इसके विरुद्ध का नाम कुशील, इसके विरुद्ध का नाम अज्ञान। अज्ञान का गुण कुशील, ज्ञान का गुण सुशील। शील का गुण सुशील, ऐसा। **सुशील ही को शील नाम से कहते हैं, शील बिना कुशील कहते हैं।** यह शील जो शब्द पड़ा है दूसरी गाथा

में पहला, उस सुशील के अर्थ में ही शील है, कहते हैं। **सुशील ही को शील नाम से कहते हैं, शील बिना कुशील कहते हैं।** और ऐसा शील का गुण जहाँ नहीं, वह सुशील नहीं है, वह कुशील है।

यहाँ गुण शब्द उपकारवाचक लेना... उपकार लेना। शील का गुण अर्थात् उपकार, विशेष। ऐसा। और उसकी दूसरी भाषा ली है। उपकार वाचक विशेष बात ली है, उसमें। शील का गुण... शील का गुण विशेष, ऐसा। शील का गुण विशेष वाचक है। **शील से उपकार होता है...** लो! आत्मा के सम्यग्ज्ञान और श्रद्धा-ज्ञान में एकाग्र होने से जीव को उपकार होता है, मुक्ति होती है, शर्म होती है। **शील के विशेष गुण हैं, वह कहेंगे।** शील विशेष गुण कहेंगे। विशेष है न वह ? पहले उपकार का अर्थ किया। गुण शब्द से उपकार वाचक लेना और विशेष वाचक अब लेते हैं।

इस प्रकार ज्ञान में जो शील न आवे तो कुशील होता है,... आहाहा! कितना इनने भी डाला है, देखो न परन्तु। पहले के पण्डित भी ऐसे थे, ऐई! पण्डितजी! गृहस्थाश्रम में रहे होने पर भी, देखो! यह पाठ में से न्याय निकालकर सामनेवाले को न्याय लगे, इस प्रकार से अर्थ निकाले हैं। लो! यहाँ तो हो उसमें उल्टा करते हैं। **शील के विशेष गुण हैं, वह कहेंगे। इस प्रकार ज्ञान में जो शील न आवे तो कुशील होता है, इन्द्रियों के विषयों से आसक्ति होती है...** आसक्ति का अर्थ यहाँ रुचि है, हों! आसक्ति दो अर्थ में प्रयुक्त होती है। एक रुचि के अर्थ में और एक अस्थिरता के अर्थ में। यहाँ रुचि के अर्थ में है।

इन्द्रियों के विषयों से आसक्ति होती है, तब वह ज्ञान नाम नहीं प्राप्त करता,... क्या कहते हैं ? जिसे पाँच इन्द्रियों के विषयों का राग, ऐसे राग का जिसे प्रेम है, उसे ज्ञान नाम नहीं प्राप्त होता। उसे ज्ञान नहीं कहते। पाँच इन्द्रिय के विषय, उनका राग और उस राग का राग। रुचि है, राग की रुचि है तो उसे ज्ञान नाम प्राप्त नहीं होता। आहाहा! गजब बात, भाई! छियानवें हजार स्त्रियों के विषय में पड़ा हो तो भी उसे राग की रुचि नहीं, ऐसा कहते हैं। अन्दर निषेध / नकार आता है कि यह नहीं... यह नहीं... अज्ञानी को छोटे में छोटे प्रसंग में किंचित् सुखबुद्धि, प्रसन्नबुद्धि, हितबुद्धि हो जाती है तो कहते हैं कि वह ज्ञान अज्ञान होकर कुशील हो जाता है। ऐसा मार्ग है। आहाहा! मार्ग नहीं

और यह सब हैरान-हैरान हो जाते हैं, देखो! यह चौरासी के अवतार। **इस प्रकार जानना चाहिए**। लो, ऐसा जानना।

और, **व्यवहार में शील का अर्थ स्त्री-संसर्ग वर्जन करने का भी है,...** लो! यह डाला है। **अत: विषय-सेवन का ही निषेध है**। यह भी निषेध है। स्त्री के विषय का भी यहाँ आसक्ति का भी निषेध है, ऐसा। रुचि का तो निषेध है परन्तु आसक्ति का भी निषेध है। **पर-द्रव्यमात्र का संसर्ग छोड़ना,...** लो! संक्षिप्त किया वापस। आत्मा के स्वद्रव्य के अतिरिक्त, परद्रव्य मात्र का संसर्ग, परिचय, एकताबुद्धि छोड़ना और **आत्मा में लीन होना...** लो! आहाहा! दया, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य का विकल्प समस्त ही, कहते हैं कि परद्रव्य का संसर्ग है। परद्रव्यमात्र का संसर्ग छोड़ना। **आत्मा में लीन होना...** यहाँ तो दो ही बात की। इस ओर की दृष्टि छोड़कर इस ओर में लीन होना। आत्मा में। **वह परमब्रह्मचर्य है**। परमब्रह्मचर्य है। स्त्री की आसक्ति का जरा कहा था न! यह परमब्रह्मचर्य आत्मा के आनन्द में ब्रह्मानन्द ऐसा ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसका जो आनन्द, उसमें लीन होना, वह ब्रह्मचर्य है। वह परमब्रह्मचर्य उसे कहते हैं। आहाहा!

इस प्रकार ये शील ही के नामान्तर जानना। लो! यह शील के सब नामान्तर हैं। क्या? यह परमब्रह्मचर्य, स्त्री के विषय की आसक्ति का त्याग, पर की एकताबुद्धि का त्याग, वह सब शील के नामान्तर जानना। शील के अनेक नामों में यह भी सब नाम जानना। लो। यह आया। यह गाथा पूरी हुई।

गाथा-३

आगे कहते हैं कि ज्ञान होने पर भी ज्ञान की भावना करना और विषयों से विरक्त होना कठिन है (दुर्लभ है) –

[१]दुक्खे णज्जदि णाणं णाणं णाऊण भावणा दुक्खं।
भावियमई व जीवो विसयेसु विरज्जए दुक्खं ।।३।।

१. पाठान्तरः – दु:खे णज्जदि।

[१]दु:खेनेयते ज्ञानं ज्ञानं ज्ञात्वा भावना दु:खम्।
भावितमतिश्च जीव: विषयेषु विरज्यति दुक्खम्।।३।।

बहु कष्ट से हो ज्ञान ज्ञान सुजान भावना कष्ट–कर।
भावित–मति भवि की विरक्ति विषय में है कष्ट–कर।।३।।

अर्थ – प्रथम तो ज्ञान ही दु:ख से प्राप्त होता है, कदाचित् ज्ञान भी प्राप्त करे तो उसको जानकर उसकी भावना करना, बारंबार अनुभव करना दु:ख से (दृढ़तर सम्यक् पुरुषार्थ से) होता है और कदाचित् ज्ञान की भावनासहित भी जीव हो जावे तो विषयों को दु:ख से त्यागता है।

भावार्थ – ज्ञान की प्राप्ति करना, फिर उसकी भावना करना, फिर विषयों का त्याग करना ये उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं और विषयों का त्याग किये बिना प्रकृति पलटी नहीं जाती है, इसलिए पहिले ऐसा कहा है कि विषय ज्ञान को बिगाड़ते हैं, अत: विषयों को त्यागना ही सुशील है।।३।।

गाथा–३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि ज्ञान होने पर भी ज्ञान की भावना करना और विषयों से विरक्त होना कठिन है (दुर्लभ है) :-

दुक्खे णज्जदि णाणं णाणं णाऊण भावणा दुक्खं।
भावियमई व जीवो विसयेसु विरज्जए दुक्खं।।३।।

आसक्ति भी साथ में छुड़ाने के लिये। मोक्षपाहुड़ की ६५वीं गाथा है। मोक्षपाहुड़ है न? ६५ गाथा है। यह शब्द है। यह तो '**दुक्खे णज्जइ अप्पा**' ऐसा शब्दार्थ है न यहाँ? '**दुक्खे णज्जदि णाणं**' वहाँ '**अप्पा**' इतना शब्द है। ६५ (गाथा)। '**दुक्खे णज्जइ अप्पा अप्पा णाऊण भावणा दुक्खं**' वहाँ ज्ञान है, यहाँ आत्मा, इतना अन्तर है। '**भावियसहाव-पुरिसो विसयेसु विरज्जए दुक्खं**' ६५ गाथा है। मोक्षपाहुड़। आया? '**दुक्खे णज्जइ**

---

१. पाठान्तर: – दु:खेन ज्ञायते।

अप्पा'। यहाँ '**दुक्खे णज्जदि णाणं**' इतना अन्तर है। यहाँ '**णाणं**' है, वहाँ दु:ख है। वह आत्मा है। वहाँ आत्मा है और ज्ञान है, बस इतना। '**णाऊण भावणा दुक्खं**' वहाँ '**अप्पा णाऊण भावणा दुक्खं**' '**भावियसहावपुरिसो**' '**भावियमई व जीवो विसयेसु विरज्जए दुक्खं**॥' लो! वहाँ दु:ख और... दो... प्रयोग किये हैं, ऐसा कहना है।

अर्थ :- प्रथम तो ज्ञान ही दु:ख से प्राप्त होता है,... महाप्रयत्न से। दु:ख अर्थात् महापुरुषार्थ से। दु:ख अर्थात् दु:ख नहीं। महापुरुषार्थ, अनन्त पुरुषार्थ होता है, तब ज्ञान प्राप्त होता है। '**दुक्खे णज्जइ**' प्राप्त होता है। **कदाचित् ज्ञान भी प्राप्त करे तो उसको जानकर उसकी भावना करना, बारम्बार अनुभव करना...** ज्ञान को बारम्बार आत्मा की ओर झुकाना। वह महापुरुषार्थ है। पहला तो सम्यग्ज्ञान होना दुर्लभ है, और ज्ञान होकर भी अन्तर में, अनुभव में बारम्बार आत्मा की ओर का अनुभव करना, वह भी महा दुर्लभ है। **उसको जानकर उसकी भावना करना, बारम्बार अनुभव करना...** यह महापुरुषार्थ से होता है। दु:ख कहो, कष्ट कहो, पुरुषार्थ कहो। वे शब्द पकड़े। लो, यह दु:ख से होता है, कष्ट से होता है। वह तो महापुरुषार्थ है, भाई! ओहोहो! आत्मा का अनन्त पुरुषार्थ आत्मा के ज्ञान के लिये, सम्यग्ज्ञान के लिये और फिर बारम्बार उसका अनुभव होना, वह महादुर्लभ है।

और कदाचित् ज्ञान की भावनासहित भी जीव हो जावे तो विषयों को दु:ख से त्यागता है। आसक्ति छूटकर, विषय की आसक्ति-एकता छूटी परन्तु आसक्ति छूटना, वह महापुरुषार्थ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्षायिक समकिती को भी आसक्ति तो होती है। छियानवें हजार स्त्रियों की, विषय की आसक्ति छूटना महादुर्लभ पुरुषार्थ है। अनन्त पुरुषार्थ है, ऐसा कहते हैं। परद्रव्य की विषय की एकता छूटना, वह ज्ञान होना, वह महादुर्लभ और ज्ञान होकर उसका उस ओर का बारम्बार चिन्तवन-मनन उसका ही रहना, महादुर्लभ। और उससे विषय की आसक्ति छूटना, वह महादुर्लभ। इन चीजों को दुर्लभ नहीं कहा कि यह पैसा मिलना दुर्लभ है या निरोगी रहना दुर्लभ है। वह तो जड़ की अवस्था है। वह कहाँ इसकी है। ऐई! चन्दुभाई! अच्छे लड़के मिलना दुर्लभ है, अच्छी स्त्री मिलना दुर्लभ है, ऐसा यहाँ नहीं कहा। वह तो अनन्त बार मिलते हैं और जाते हैं, उसमें-धूल में क्या है? आहाहा!

पहले तो सम्यग्ज्ञान होना, वही महापुरुषार्थ है। वह ज्ञान कैसा? अन्दर एकाग्रवाला। समझ में आया? वह होकर भी आत्मा में... यहाँ तो एक नौकरी जहाँ पाँच सौ के वेतन की हो और आठ सौ का हो तो प्रसन्न हो जाये। आहाहा! करो आज लापसी का आंधण। लापसी समझते हो? लापसी नहीं समझते? कैसे यह लापसी करते हैं न? क्या कहते हैं? कंसार। कंसार कहो, लापसी कहो। लापसी नहीं कहते तुम्हारे में? तीन सौ वेतन बढ़ा महीने का। सेठ ने बढ़ा दिया। पाँच सौ के आठ सौ। लो! ऐई! शान्तिभाई ने तो यह छोड़ दिया। पन्द्रह सौ का वेतन। कहो, समझ में आया? धूल में भी नहीं कहीं कुछ? वह कोई दुर्लभ चीज़ नहीं। वह तो अनन्त बार मिली और अनन्त बार गई। दुर्लभ में दुर्लभ सम्यग्ज्ञान और आत्मा को बारम्बार उस ओर का अनुभव होना वह और पश्चात् विषय की आसक्ति छूटना वह। यह दुर्लभ है। आहाहा!

कदाचित् ज्ञान की भावनासहित भी जीव हो जावे तो विषयों को दुःख से त्यागता है। महापुरुषार्थ से विषय छूटते हैं, कहते हैं। आहाहा! आसक्ति, हों! रुचि तो छूट गयी है। विषय के रस का प्रेम है, वह छूट गया है परन्तु आसक्ति अभी अन्दर रही है। वह आसक्ति छूटकर मुनिपना हो चारित्र वीतरागदशा... आहाहा! वह तो महादुर्लभ... दुर्लभ... दुर्लभ। इस काल में तो महादुर्लभ। ओहोहो!

भावार्थ :- ज्ञान की प्राप्ति करना, फिर उसकी भावना करना, फिर विषयों का त्याग करना... तीन बोल लिये हैं। उत्तरोत्तर एक के बाद एक दुर्लभ है। सम्यग्ज्ञान होना, ज्ञान ही उसे कहा न? सुशीलपना, उसे ही ज्ञान कहा। यहाँ, हों! वहाँ फिर दूसरा होगा। जानपना। जिस जगह जो अपेक्षा हो, वह समझना। **ज्ञान की प्राप्ति करना, फिर उसकी भावना...** अन्तर में आनन्द की ओर में बारम्बार निजधाम में जाने के लिये बारम्बार प्रयत्न महादुर्लभ है। **विषयों का त्याग करना...** और यह आत्मभान होने पर भी, सम्यक् होने पर भी विषय की आसक्ति छोड़ना, वीतरागता लाना, वह महापुरुषार्थ है... महापुरुषार्थ है। समझ में आया?

विषयों का त्याग किये बिना प्रकृति पलटी नहीं जाती है, इसलिए पहिले ऐसा कहा है कि विषय ज्ञान को बिगाड़ते हैं... वहाँ एकता ली है। **विषयों का त्याग किये बिना...** जो पर का विषय दृष्टि में से छूटे बिना **प्रकृति पलटी नहीं जाती है,...** स्वभाव

सन्मुख की प्रकृति नहीं होती। समझ में आया? यह तो किसी समय पढ़ा जाता है, इसलिए नया-नया लगता है। समयसार तो बहुत बार वाँचन हो गया न? सोलह बार वाँचन हो गया। यह तो किसी समय पढ़ा जाता है। ऐसे तो वाँचन हो गया है दो-तीन बार। गुजराती होकर वाँचन होगा। होता ही नहीं अब यह तो। ऐसा पढ़ा। पहले पढ़ा तब ऐसा होता था, अपने यहाँ पढ़ो अर्थात् तैयार होगा। यह एक बार पढ़ता हूँ। वहाँ का वहाँ खड़ा है। होने का काल हो तब हो न। वह अक्षर भी किसी के करने से होते हैं कहीं?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...यह ऐसा कहते हैं कि इसमें कुछ हो जाये तो अपने पढ़ेंगे न, हो जाये, फिर पढ़ेंगे, ऐसा तब विकल्प हुआ था, हों! पहले पढ़ा तब, हों! इसके पहले पढ़ा तब। यह तब से लगाया है न यह तो अष्टपाहुड़। पूरा होगा वहाँ आगे वह हो जायेगा। छह महीने, बारह महीने में। वह पढ़ूँगा। बात तो ऐसी है। बात तो यह है। अक्षर पढ़ना, न पढ़ना, यह कहीं किसी का काम है? यह होना हो तब होगा। परन्तु यह अभी काम नहीं कहलाता। बनाना हो उसमें ऐसा कहलाये? ऐई!

अतः विषयों का त्यागना ही सुशील है। लो! यहाँ तो एकताबुद्धि छोड़े वह सुशील है, ऐसा कहना है। ज्ञान सुशील कहना है न?

गाथा-४

आगे कहते हैं कि यह जीव जबतक विषयों में प्रवर्तता है, तबतक ज्ञान को नहीं जानता है और ज्ञान को जाने बिना विषयों से विरक्त हो तो भी कर्मों का क्षय नहीं करता है –

तावण जाणदि णाणं विसयबलो जाव वट्टए जीवो।
विसए विरत्तमेत्तो ण खवेइ पुराइयं कम्मं।।४।।

तावत् न जानाति ज्ञानं विषयबलः यावत् वर्त्तते जीवः।
विषये विरक्तमात्रः न क्षिपते पुरातनं कर्मं।।४।।

नहिं जानता है ज्ञान जब तक विषय–बल से वर्तता।
केवल विरक्ति विषय में नहिं पूर्व कर्म विनाशता।।४।।

_अर्थ_ – जबतक यह जीव विषयबल अर्थात् विषयों के वशीभूत रहता है, तबतक ज्ञान को नहीं जानता है और ज्ञान को जाने बिना केवल विषयों में विरक्तमात्र ही से पहिले बाँधे हुए कर्मों का क्षय नहीं करता है।

_भावार्थ_ – जीव का उपयोग क्रमवर्ती है और स्वस्थ (स्वच्छत्व) स्वभाव है, अत: जैसे ज्ञेय को जानता है, उस समय उससे तन्मय होकर वर्तता है, अत: जबतक विषयों में आसक्त होकर वर्तता है, तबतक ज्ञान का अनुभव नहीं होता है, इष्ट अनिष्ट भाव ही रहते हैं और ज्ञान का अनुभव किये बिना कदाचित् विषयों को त्यागे तो वर्तमान विषयों को छोड़े, परन्तु पूर्व कर्म बाँधे थे उनका तो ज्ञान का अनुभव किये बिना क्षय नहीं होता है, पूर्व कर्म के बन्ध का क्षय करने में (स्वसन्मुख) ज्ञान ही का सामर्थ्य है इसलिए ज्ञानसहित होकर विषय त्यागना श्रेष्ठ है, विषयों को त्यागकर ज्ञान की ही भावना करना यही सुशील है।।४।।

गाथा–४ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि यह जीव जब तक विषयों में प्रवर्तताा है, तब तक ज्ञान को नहीं जानता है... विषय का अर्थ इस राग की रुचि में एकाकार है। रुचि में, हों! **ज्ञान को जाने बिना विषयों से विरक्त हो तो भी कर्मों का क्षय नहीं करता है :-** बाहर से विषय छोड़े हों। विषय में प्रवर्ते परन्तु अन्दर राग में तो एकाकार है। बाहर में विषय छोड़े हों। **जीव जब तक विषयों में प्रवर्तता है, तब तक ज्ञान को नहीं जानता है...** ऐसा लेना है न? सम्यग्ज्ञान है ही नहीं वहाँ। आत्मा के स्वद्रव्य के अतिरिक्त एक ओर पूरा गाँव। राम यहाँ गाँव। विकल्प में जब तक प्रवर्तता है, तब तक निर्विकल्प आत्मा का उसे ज्ञान नहीं है। समझ में आया? **और ज्ञान को जाने बिना विषयों से विरक्त हो तो...** बाहर का विषय लिया। बाहर का विषय छूट गया हो। ... आदि बाहर के न हों परन्तु अन्दर में राग के प्रेम में पड़ा है, इसलिए वह ज्ञान कुशीलपने को पाता है। उसमें

सुशीलपना नहीं आया। आहाहा! गजब! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली अलौकिक बात है! यह तो अकेला बस, भक्ति करो, पूजा करो, भगवान का स्मरण करो, स्तुति करो, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा।

मुमुक्षु : ...आवे तो सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे तो किस अपेक्षा से? यह तो दृष्टिसहित हो, उसका आरोप आता है। आरोपित कथन को यथार्थ मान ले। क्या हो? मार्ग तो वीतराग स्वभाव है। ज्ञानस्वभाव। जिसमें एक विकल्प का कण भी चुभे। चुभे ऐसा है। आहाहा! चुभे उसकी रुचि, चुभे उसका ज्ञान कुशील है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा क्या धर्म? वह तो दया पालना, व्रत पालना, जाओ। भक्ति करना, दया पालना, व्रत पालना, तप करना, ऐई! चिमनभाई! या गुरु मिले तो गुरु की भक्ति करना, जाओ। गुरु की भक्ति से मुक्ति होगी। नहीं आता? हमारे तो मुक्ति से भक्ति प्रिय है। आता है? किसमें?

मुमुक्षु : श्रीमद् में।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। अपने स्तुति में आता है।

मुमुक्षु : भक्ति दोपहर में बुलाते हैं, उसमें आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें आता है, बस। बुलाते हैं उसमें आता है। स्तवन मंजीरी में आता है या किसी में आता है। हमारे तो मुक्ति की अपेक्षा भी भक्ति हमें तो ऐसा। यह तो एक व्यवहार का वचन है। भक्ति आत्मा की, हों! ऐसा कथन आता है। ऐई! वजुभाई! खबर नहीं। खबर नहीं। तुम्हें खबर है न या नहीं? यह तो भक्तों के वीतराग के प्रेम के सब गीत हैं। व्यवहार के गीत, उसे परमार्थ में खतौनी कर डाली।

कहते हैं, लो! **ज्ञान को जाने बिना विषयों से विरक्त हो तो भी कर्मों का क्षय नहीं करता है :-** क्या कहते हैं? ऐसी वापस भाषा ऐसी ली, देखो! पाठ है, हों! सब यह। '**ण खवेइ पुराइयं।**' व्रत अर्थात् बाहर से विषय छूट गया है, ऐसा। परन्तु अन्दर में परद्रव्य के विषय की रुचि छोड़ी नहीं। बाहर का विषय छोड़ा। यह तो अपने चलता है न। प्रवचनसार में नहीं आता? छह काय की हिंसा से रहित है। २३६ गाथा। भाई!

कषाय और काया की जहाँ एकत्वबुद्धि है... ओहो! कषाय और काया। कषाय शब्द से आस्रव, काया शब्द से अजीव। बस। हो गया। सब आ गया। काया और आस्रव में एकताबुद्धि है। चाहे तो बाहर से त्यागी हो तो भी वह छहकाय की हिंसा से छूटा नहीं है। आता है? प्रवचनसार। प्रवचनसार में आता है। २३६ है। यह ३६ नहीं, हों! वह यह... का अर्थ है। बराबर।

आगमपुव्वा दिट्ठी ण भवदि जस्सेह न संजमो तस्स।
णत्थीदि भणदि सुत्तं असंजदो होदि किध समणो॥२३६॥

तत्त्वार्थ श्रद्धानलक्षणवाली=तत्वार्थ का श्रद्धान जिसका लक्षण है ऐसी। (सम्यग्दर्शन का लक्षण तत्त्वार्थश्रद्धान है। वह आगमपूर्वक होता है।) जिस जीव को स्व-पर का भेदज्ञान नहीं है, उसे भले कदाचित् पाँच इन्द्रियों के विषयों का संयोग न दिखाई देता हो... देखो! संयोग। यह विषय.. **छह जीवनिकाय की द्रव्यहिंसा न दिखती हो और इस प्रकार से संयोग की निवृत्ति दिखती हो...** यह विषय विरक्त... **तो भी काया और कषायों के साथ एकता माननेवाले उन जीवों को वास्तव में पाँच इन्द्रिय के विषयों की अभिलाषा का निरोध नहीं है, हिंसा का जरा भी अभाव नहीं है और इस प्रकार परभाव से बिल्कुल निवृत्ति नहीं है।** २३६।

यहाँ कहते हैं कि....

ताव ण जाणदि णाणं विसयबलो जाव वट्टए जीवो।
विसए विरत्तमेत्तो ण खवेइ पुराइयं कम्मं।।४।।

दो को इकट्ठा करते हैं।

अर्थ :- जब तक यह जीव विषयबल अर्थात् विषयों के वशीभूत... बल है न उसका जोर। इसका परविषय में बल गया है। राग में एकाकार। **जब तक यह जीव विषयबल अर्थात् विषयों के वशीभूत रहता है, तब तक ज्ञान को नहीं जानता है...** विषय में एकाकार होनेवाले आत्मा के ज्ञान में स्वभाव को जानता नहीं। इसलिए फिर वह लोग ऐसा कहे न कि विषय छोड़ो, स्त्री छोड़ो, पुत्र छोड़ो, विषय छोड़ो।

मुमुक्षु : उसका तो जवाब दिया...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा कि **ज्ञान को जाने बिना केवल विषयों में विरक्तिमात्र ही से पहिले बाँधे हुए कर्मों का क्षय नहीं करता है।** आत्मा के अनुभव के सम्यग्दर्शन और ज्ञान बिना बाहर के अकेले विषय का त्याग हो, तो भी उसे कर्म का क्षय किंचित् भी नहीं होता। समझ में आया? यह विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१८२, गाथा- ४ से ६, शनिवार, पौष कृष्ण १२, दिनांक २३-०१-१९७१

गाथा ४, शीलपाहुड़। अर्थ फिर से। देखो! अर्थ हो गया है।

अर्थ :- जब तक यह जीव विषयबल अर्थात् विषयों के वशीभूत रहता है, तब तक ज्ञान को नहीं जानता है... चौथी गाथा, शीलपाहुड़। क्या कहा? आत्मा में जब तक विषय का बल है, पाँच इन्द्रिय के विषय के प्रति का जोर और प्रेम है, तब तक उसे सच्चा ज्ञान नहीं होता। क्योंकि जो विषय है, वह तो परवस्तु है और उसका राग भी विकार है। उसमें जिसे प्रेम है, उसे रागरहित ज्ञान का भान नहीं है। **वशीभूत रहता है,...** ज्ञानी विषय के वशीभूत नहीं है। समझ में आया? उसे जरा अस्थिरता होती है, परन्तु उसके वश नहीं है। धर्मी तो आत्मा के आनन्द के वश है। अज्ञानी को विषय का बल है। धर्मी को आत्मा का बल है। सम्यग्दृष्टि धर्मी होने से अपना आत्मा आनन्द अतीन्द्रिय शुद्ध चैतन्य का ज्ञानी को बल और जोर है। अज्ञानी को विषय का बल है। राग और पर विषय में प्रेम वर्ते, **तब तक ज्ञान को नहीं जानता है...** वह आत्मा का स्वभाव नहीं जानता।

और ज्ञान को जाने बिना... आत्मा शुद्ध आनन्द है, उसके भान—अनुभव बिना **केवल विषयों में विरक्तमात्र ही से...** विरक्त भाव करे तो भी वह कर्म की निर्जरा नहीं करता; बन्धन करता है। आत्मज्ञान बिना आत्मा पुण्य-पाप से रहित, ऐसे अनुभव बिना विषय को छोड़े, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार भोग को (छोड़े), तथापि वह कर्मबन्धन को नहीं छोड़ सकता। समझ में आया?

भावार्थ :- जीव का उपयोग क्रमवर्ती है... जीव का उपयोग क्रम-क्रम से एक-एक ज्ञेय को जाने, ऐसा है। **स्वस्थ (-स्वच्छत्व) स्वभाव है...** और निर्मल स्वभाव है। आत्मा का स्वभाव स्वस्थ अर्थात् निर्मल है, शुद्ध है, पवित्र है। **अतः जैसे ज्ञेय को जानता है...** क्रमवर्ती उपयोग और निर्मल स्वभाव। अब क्रम में जो कुछ उसके उपयोग में पहली चीज़ आवे, **उस समय उससे तन्मय होकर वर्तता है,...** उसमें रागादि, पुण्यादि, पापादि बाह्य विषय छोड़े परन्तु वह ख्याल में आया, उसमें आत्मा का भान नहीं, इसलिए वह क्रम-क्रम से जो ज्ञेय लक्ष्य में आया, उसके वश वर्तता है। तन्मय हो जाता है। बहुत सूक्ष्म बात है। शील का अधिकार... आत्मा आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्य है, उसका अनुभव नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं, उसे आत्मबल नहीं। उसे पुण्य-पाप के विकल्प राग, विषय का राग, उसमें वह तल्लीन-तन्मय हो जाता है। इसलिए वह मिथ्यादृष्टि है।

जब तक विषयों में आसक्त होकर वर्तता है... आसक्त का अर्थ यहाँ रुचिपूर्वक की आसक्ति है। विषय में एकपने की बुद्धि-सुखबुद्धि से वर्ते, ऐसा कहना है। विषय में सुखबुद्धि से वर्ते **तब तक ज्ञान का अनुभव नहीं होता है,...** तब तक आत्मा के आनन्द का—जिसका स्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा का, उसका उसे अनुभव नहीं होता। समझ में आया? शील में बहुत सरस बात ली है। आहाहा! **विषयों में आसक्त होकर वर्तता है...** अर्थात् कि पाँच इन्द्रिय के विषयों की ओर के झुकाव में जहाँ वर्ते, उसे आत्मा का ज्ञान नहीं, अर्थात् कि उसे आत्मा के स्वभाव का अनुभव नहीं। अनुभव तो अकेला विकार का रहा। समझ में आया?

इष्ट-अनिष्ट भाव ही रहते हैं... अनुभव, आत्मा आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यद्रव्य, उसका अनुभव नहीं, आनन्द का वेदन नहीं, उसे तो परपदार्थ में इष्ट-अनिष्टबुद्धि ही रहती है। समझ में आया? आहाहा! **इष्ट-अनिष्ट भाव ही रहते हैं...** अर्थात् मिथ्यात्वभाव है। परपदार्थ इष्ट और परपदार्थ अनिष्ट। खाना, पीना, भोग, विषय, रूप इष्ट लगे। राग हो। खराब चीज़ प्रतिकूल। मार, प्रहार, अग्नि, बिच्छू आदि अनिष्ट लगे, (इसलिए) द्वेष हो। क्योंकि वस्तु स्वयं आनन्दस्वरूप अखण्ड ज्ञायक है, उसका तो अन्तर में अनुभव और भान नहीं, इसलिए उसे परपदार्थ के प्रति दो भाग पड़ जाते हैं। ...स्वद्रव्य में नहीं। ज्ञाता-दृष्टा के अनुभव और सम्यक् में नहीं, इसलिए उसे परद्रव्य में दो भाग

पड़ गये—राग और द्वेष, इष्ट अनिष्ट लगे। आहाहा! शरीर की निरोगता हो, वह इष्ट लगे। सरोगता हो तो अनिष्ट लगे। लो! यह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? शरीर में अनुकूलता कुछ भी, मकान की, रहने की, खाने की, पीने की, सुनने की अनुकूलता हो, वहाँ उसे इष्टपना लगे। आत्मा इष्ट आनन्दस्वरूप है, उसका तो अनुभव नहीं, उसकी तो दृष्टि नहीं। पण्डितजी! बहुत सूक्ष्म बात है। सूक्ष्म है। दो टुकड़े कर डाले हैं।

जिसे सम्यग्दर्शन नहीं अर्थात् कि शील नहीं, चैतन्यस्वरूप आनन्द है, उसका भान नहीं और उसमें शील नहीं–एकाग्रता नहीं, उसे तो परपदार्थ के ऊपर उसका लक्ष्य है। यह लक्ष्य तो है नहीं। स्व दृष्टि तो है नहीं। इसलिए उसे परपदार्थ में दो भाग पड़ गये। यह अनुकूल, वह ठीक और प्रतिकूल, वह अठीक। बस, राग-द्वेष करना, यही उसका भाव है। आहाहा! वाह! कैसी शैली प्रयोग की! कथनी भी कैसी! हें! ओहोहो!

और ज्ञान का अनुभव हुए बिना... पहली बात तो यह की है कि और ज्ञान का अनुभव नहीं है। **कदाचित् विषयों को त्यागे...** स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, भोग, विषय छोड़ दे। परन्तु अन्तर आनन्दस्वरूप क्या है, आनन्दस्वरूप क्या है, उसका भान नहीं; इसलिए वह त्याग भी निरर्थक है। वह **वर्तमान विषयों को तो छोड़े परन्तु पूर्वकर्म बाँधे थे, उनका तो ज्ञान का अनुभव हुए बिना क्षय नहीं होता है,...** अर्थात् क्या कहा? कि वर्तमान में ऐसा जाने नहीं भोग ऐसा। परन्तु पूर्व कर्म का उदय आवे, उसमें जुड़ जाता है। क्योंकि आत्मा में जुड़ान नहीं है।

मुमुक्षु : आत्मा में...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। इसके लिये तो यह बात करते हैं। आहाहा!

त्रिकाली भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द की मूर्ति ऐसे स्वरूप का अनुभव नहीं; इसलिए वह फिर विषय का वर्तमान त्याग करता है न ऐसे? वर्तमान यह छोड़ा, ऐसा कहते हैं। यह छोड़ी, स्त्री छोड़ी, कुटुम्ब छोड़ा, राज छोड़, ऐसा। परन्तु उसने कुछ नहीं छोड़ा। क्योंकि उसे तो पहले राग-प्रेम था। पश्चात् द्वेष हुआ। छोड़! वे कहते हैं कितने ही कि परिवार के ऊपर ऐसा द्वेष करना कि फिर से राग न हो। ऐई! चेतनजी! सुना है या नहीं? तुम्हारे उपदेश चलता है उसमें। स्त्री, पुत्र, परिवार के ऊपर

ऐसा द्वेष करना कि राग न हो। छोड़ो, छोड़ो। क्या है? परद्रव्य में अनिष्ट माना, वह मिथ्यात्वभाव है। परपदार्थ अनिष्ट कहाँ है?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो उसमें आया। यह तो बाहर में ऐसा उपदेश दे तुम्हारे।

मुमुक्षु : द्वेष...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। द्वेष अर्थात् कैसा द्वेष करना? कि फिर से प्रेम न हो। ऐसी भाषा चलती है। ऐसी प्ररूपणा चलती है। ऐसा कहते हैं कि छोड़ो, स्त्री-पुत्र छोड़ो। यह सपोलिया है। ये खा जायेंगे, मार डालेंगे। वे बेचारे परद्रव्य हैं। वे तुझे क्या नुकसान करते हैं? परद्रव्य का प्रेम जो तुझे है, वह नुकसान करता है। उसके बदले संसार को छोड़ने के लिये पर की इतनी अरुचि करना कि फिर प्रेम न हो, इसलिए छूट जाये स्त्री-पुत्र, जाओ। संसार तुमको प्रिय है? ऐसा पूछे। तो कहे, नहीं। तो छोड़। वह स्त्री-पुत्र छोड़। स्त्री-पुत्र कब संसार थे? संसार तो तेरा मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष, वह संसार है। स्त्री-परिवार संसार है? वह तो परद्रव्य है। कहते हैं कि **ज्ञान का अनुभव हुए बिना...** यह तो धीरज का काम है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। कक्का सब। धूल भी सब परद्रव्य है। उसमें तुझे क्या है? तेरे साथ सम्बन्ध भी क्या है? ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है। तू जाननेवाला और वे ज्ञात होनेयोग्य, इतना। उसमें वे मेरे, ऐसा है कहाँ? आहाहा!

कहते हैं, जिसे भगवान आत्मा आनन्दघन चैतन्यपिण्ड प्रभु का जिसे अन्तर पुण्य-पाप के रागरहित होकर अनुभवदृष्टि नहीं, उसका विषय का त्याग, वह त्याग ही नहीं। समझ में आया? क्योंकि उसका लक्ष्य ही अकेला पर के ऊपर है। स्वदृष्टि तो है नहीं। पर के ऊपर लक्ष्य है, वहाँ पर के ऊपर लक्ष्य है और उसका त्याग (किया), उसका अर्थ क्या? समझ में आया? पर के ऊपर ही उसका ध्येय-लक्ष्य है। अब उसे छोड़ना। छोड़ना अर्थात् क्या? जिसका ध्येय है, उसे छोड़ना अर्थात् क्या? वह त्याग ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जिसे आत्मदर्शन (नहीं हुआ), चैतन्य भगवान आत्मा आनन्द की रुचि और भान नहीं, वह बाहर के त्याग करे, वे सब निरर्थक हैं, कहते हैं। उसमें उसे कर्म का क्षय नहीं। सिद्धान्त इतना कहा कि यह वर्तमान छूटे, ऐसा। बाहर, हों! परन्तु वस्तु जो है अन्दर कर्म का बन्धन, उसका उदय होने पर उसमें जुड़ जाता है। क्योंकि लक्ष्य बाहर है, यहाँ तो है नहीं। इसलिए उसे कर्मबन्धन छूटना है नहीं। समझ में आया? कर्म वस्तु है, उसका जहाँ उदय आवे अर्थात् आत्मा की ओर वस्तु है, उसकी तो दृष्टि नहीं, इसलिए उदय में उसका जुड़ान-लक्ष्य है। इसलिए कर्म का नाश होना तो उसे है नहीं। उसे तो जुड़ान होकर नया कर्मबन्धन होगा। फिर विषय का त्याग रहा कहाँ उसे? ऐसा कहते हैं। देखो न! अर्थ भी कैसे सरस किये हैं, हों! पण्डित जयचन्द्रजी (ने)। मूल में चोट है यहाँ तो।

जिसे आत्मा अकेला अकषाय शान्तरस का स्वरूप है, उसकी दृष्टि और अनुभव नहीं, उसे परपदार्थ में त्याग किस प्रकार कहना? कहते हैं। परपदार्थ की तो रुचि है। राग की रुचि है, उदय की रुचि है। रुचि है, उसका त्याग किस प्रकार करना? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसी रुचि नहीं और ऐसे रुचि है। अब रुचि है, उसका त्याग उसे किस प्रकार हुआ?

मुमुक्षु : रुचि और त्याग दोनों एक समय साथ में कहा...

पूज्य गुरुदेवश्री : सब एक साथ है न। रुचि है और कहता है, मैं छोड़ूँ। परन्तु प्रेम तो है, वहाँ छोड़ा कहाँ से आया? समझ में आया? आहाहा! '**विसयबलो**' शब्द था न? '**विसए विरत्तमेत्तो ण खवेइ पुराइयं कम्मं**' अर्थात् '**पुराइयं कम्मं**' का अर्थ कि वर्तमान में ही उसकी दृष्टि पर के ऊपर है। कर्म के उदय पर दृष्टि है, पर के ऊपर दृष्टि है। इसलिए वर्तमान में ही कर्म का छूटना दृष्टि में से नहीं हुआ। राग से रहित, कर्म से रहित, ऐसा चैतन्यद्रव्य—ऐसा जिसे वर्तमान में भान नहीं, वे जीव बाह्य त्याग मुनि-साधु होकर बैठे, वे मिथ्यादृष्टि हैं। ऐसा कहते हैं। कठिन काम। कहो, समझ में आया? वीतरागमार्ग समझना जगत को कठिन है। ऐसा का ऐसा ऊपर से हम जैन हैं, हम जैन वीतराग को मानते हैं। समझ में आया? यह कहीं जैनपना ऐसे नहीं आ जाता।

कहते हैं, अन्दर में जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप की दृष्टि होकर राग की एकता

टूटी नहीं अर्थात् राग को जीता नहीं, मिथ्यात्वरूपी राग, हों! उसके बाह्य के त्याग जो स्त्री-पुत्र छोड़कर बाहर साधु हुए और त्यागी हैं। बिल्कुल नहीं। वर्तमान में उसका बाह्य संयोग का त्याग दिखाई दे, परन्तु अन्दर में पूर्व के बाँधे हुए कर्म के साथ वर्तमान जुड़ान है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भाई! क्या कहा, समझ में आया? यह त्याग दिखता है परन्तु अन्दर कर्म का उदय है, उसके साथ जुड़ान है। उसके साथ तो त्याग नहीं। ऐसी दृष्टि हो तो उसका त्याग हो। आहाहा! समझ में आया? उसकी तो खबर नहीं होती।

वस्तुस्वरूप, ओहो! गजब बात की, हों! '**ताव ण जाणदि णाणं विसयबलो जाव वट्टए जीवो विसए विरत्तमेत्तो**' विरक्तमात्र से, ऐसा कहते हैं। विषय के विरक्तमात्र से '**ण खवेइ पुराइयं कम्मं**' बाहर के संयोग स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, राज छोड़ा, इससे उसे कर्मबन्धन मिटे, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्योंकि कर्मबन्धनरहित और रागरहित ऐसा आत्मा, उसकी तो रुचि और प्रेम हुआ नहीं। उसका प्रेम वहाँ कर्म के उदय के राग में ही वर्त रहा है। वर्तमान में ही राग में वर्त रहा है, ऐसा कहते हैं। शान्तिभाई! ऐसा स्वरूप है। गजब बात। आहाहा!

परन्तु पूर्वकर्म बाँधे थे, उनका तो-ज्ञान का अनुभव हुए बिना... देखो! क्या कहते हैं? वस्तु भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब प्रकाश आनन्द का धाम, उसके अनुभव बिना, उसकी ओर के झुकाव बिना कर्म के उदय की ओर का झुकाव और जुड़ान है। क्षय नहीं होता, वह उदय नहीं टलता; इसलिए वर्तमान भी उदय के राग में एकाकार होता है, भविष्य में नया कर्म बाँधता है। समझ में आया? धर्मी को वर्तमान में ही राग और उदय से निवृत्ति है। और आत्मा में ज्ञान और आनन्द में जिसकी प्रवृत्ति है इसलिए वह निवृत्त हुआ है, विषय से निवृत्त है। समझ में आया?

ज्ञान का अनुभव हुए बिना... वस्तु आत्मद्रव्य, चैतन्य महाप्रभु की प्रभुताई के अनुभव बिना दूसरे में प्रभुताई इसकी रुचि में पड़ी है। भले बाहर छूटा हो, बाहर का त्याग (किया हो) परन्तु अभ्यन्तर में राग की एकता का त्याग नहीं है। सब ही भोग पड़ा है। आहाहा! **पूर्वकर्म बन्ध को क्षय करने में (स्वसन्मुख) ज्ञान ही की सामर्थ्य है...** इसका अर्थ वर्तमान में कर्म का नाश होने में पूर्व का भी कर्म... नाश तो वर्तमान

होगा न? वह वर्तमान पूर्व के कर्म के अभाव का कारण आत्मा का अनुभव, वह एक ही कारण है। आहाहा! ज्ञानस्वभाव चैतन्य आनन्द, उसका अनुभव एक ही कर्मबन्धन छूटने का कारण है। बाह्य त्याग, वह कर्मबन्ध छूटने का कारण नहीं। क्योंकि वर्तमान में ही उसे कर्म की ओर के झुकाववाला रुचि का भाव है। त्याग तो वर्तमान में राग का त्याग नहीं, तो फिर भविष्य में राग का त्याग होकर बन्धन अटके, ऐसा कुछ है नहीं। गजब बात, भाई! भिन्न-भिन्न शास्त्रों में भिन्न-भिन्न पद्धति। गजब! दिगम्बर सन्तों ने तो गजब काम किया है! आहाहा! केवलज्ञानी का पेट (अभिप्राय) खोला है। इसे स्वयं को ऐसा लगाना चाहिए न कुछ कि यह वह... आहाहा!

धर्मी को बाह्य के विषय का संयोग का संयोग हो, तथापि दृष्टि में उसे संयोग का त्याग है और दृष्टि में स्वभाव का आदर है। समझ में आया? अज्ञानी को दृष्टि में स्वभाव का अनादर है और उसका ग्रहण है। ग्रहण है, वहाँ त्याग किस प्रकार होगा, ऐसा कहते हैं। लो! हमारे पण्डितजी प्रसन्न हुए। बात तो ऐसी है। आहाहा!

कैसा न्याय रखा है, देखो न! '**विसए विरत्तमेत्तो**' वापस ऐसा उसका वजन विषय से विरक्तमात्र से। अर्थात् वजन कुछ नहीं, ऐसा। बाहर से राज, कुटुम्ब छोड़ा, सब छोड़ा, इससे क्या? '**ण खवेइ पुराइयं कम्मं**' इसका अर्थ कि वर्तमान में कर्म का नाश नहीं। अर्थात् वर्तमान में मिथ्यात्व से कर्म का बन्धन है। आहाहा! समझ में आया? कर्म क्षय करने में तो ज्ञान का सामर्थ्य (चाहिए)। कौन सा ज्ञान? यह जानपना अकेला, वह नहीं। उसके लिये तो पूरी वस्तु अभी बहुत लेंगे।

ज्ञान तो उसे कहते हैं कि जो आत्मा को विषय बनाकर स्वरूप में स्थिर हो और आत्मानुभव करे, वह ज्ञान। सम्यग्दृष्टि का ज्ञान और सम्यग्दृष्टि की श्रद्धा और सम्यग्दृष्टि का आचरण, वह ज्ञान। कहो, समझ में आया? आहाहा! दृष्टि बदलने से संसार और दृष्टि बदलने से मोक्ष। ऐसा कहते हैं। जिसकी दृष्टि भगवान आत्मा के स्वीकार और सत्कार में गयी नहीं अर्थात् कि उसका अनुभव नहीं, उसे तो विषय का बाह्य का त्याग बिल्कुल है ही नहीं। क्योंकि वर्तमान में ही कर्म के उदय में जिसका जुड़ान है, स्वभाव का जुड़ान नहीं। परद्रव्य के फल में जिसका जुड़ान है। त्याग कहाँ आया उसे? मिथ्यात्वभाव तो पड़ा है। पर को ग्रहण करना, ऐसा तो भाव मिथ्यात्व

का है। और उसे छोड़ना बाहर को। यह दोनों मिथ्यात्व है। समझ में आया? भारी वीतरागमार्ग, भाई!

यह तो सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव का मार्ग है। लोगों को सुनने को मिलता नहीं। क्या हो? जीवन ऐसा का ऐसा जाता है। समझने का-करने का क्या है, उसकी इसे खबर नहीं होती। बिना भान के मानकर हमने त्याग किया, व्रत लिये, तपस्या की, उपवास किये। भाई! क्या तूने किया है? भाई! जिसका तू त्याग करता है, वह चीज़ तुझमें नहीं। और जिसका तू त्याग करने का विकल्प करता है, वह विकल्प भी तुझमें नहीं। ऐसे आत्मा के भान बिना तेरे त्याग को बन्धन का कारण कहते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कर्म छूटने का कारण वह है नहीं। यह तो आत्मा के हित की बात है, भाई! समझ में आया? हित का स्वरूप ऐसा है। कोई व्यक्ति कैसे करता है और कैसे नहीं, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। मार्ग ऐसा है। आहाहा!

इसलिए ज्ञानसहित होकर विषय त्यागना श्रेष्ठ है,... लो! भगवान आत्मा अपने स्वरूप की दृष्टि और भानवाला (हो),... फिर कहेंगे कि राग घटे और विषय छूटे, वह ठीक है। परन्तु जब तक अभी राग की एकताबुद्धि है, तब तक राग छूटे, ऐसा तो हो नहीं सकता। आहाहा! **विषयों का त्यागकर ज्ञान की भावना करना...** राग की एकता तोड़कर, पर के लक्ष्य को छोड़कर, स्व के आश्रय से अपनी भावना करना। आहाहा! उसको तो यह भावना रहा करे कि यह हो... यह हो... यह हो। ऐसा होवे तो ठीक, परद्रव्य ऐसा होवे तो ठीक, परद्रव्य ऐसा न हो तो ठीक। परद्रव्य ऐसा न हो तो ठीक, इसलिए छोड़। परद्रव्य ऐसा हो शरीर अनुकूल, देव-गुरु अनुकूल हो तो ठीक। यह सब मिथ्याबुद्धि है। आहाहा! सूक्ष्म मिथ्यात्व का शल्य कैसे रहता है, उसका स्पष्टीकरण करते हैं। समझ में आया?

विषयों का त्यागकर... अर्थात्? परसन्मुख के ध्येय को छोड़कर स्व चैतन्य के ध्येय में आकर अपने स्वरूप आनन्द की एकाग्रता की भावना करना, इसका नाम सुशील है। इसका नाम सुशील है। कहो, समझ में आया इसमें? लोगों को कठिन लगे। अरे! देखो, यह रजोहरण। चारित्र है, यह रजोहरण। वह कहे, मोरपिच्छी चारित्र है। लिंग, वह चारित्र है। देखो! लिंग चारित्र का निमित्त है तो वह निमित्त भी चारित्र है।

आहाहा! उसके कपाल में... देवलोक तो दो घड़ी आवे ही। कपाल में देवलोक है न-गति? कपाल में गति है न। अगति नहीं न। हो गया तब। आहाहा! यह (संवत्) २००० में कहते थे। राजकोट में चातुर्मास था न, १९९९ का। २००० में वापस गये थे न। दो लड़कियों ने दीक्षा ली थी न। मनसुखभाई की लड़की। ...मोदी। तब २००० में सुना था। एक-दो घड़ी की दीक्षा (ले), उसके कपाल में देवलोक। यहाँ कहते हैं कि चारों ही गति जिसे दु:खरूप न लगे, उसकी दृष्टि ही मिथ्यात्व है। ऐई! जयन्तीभाई! क्या कहते थे सवेरे कुछ तुम्हारे घर से? उपवास करके फिर साधुपना लेना, ऐसा था? फिर दीक्षा ले लेना।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ऐसा का ऐसा करते-करते सब छोड़ना। सवेरे बात करते थे तुम्हारे। ऐसा कर-करके मर गये। ऐसा करना था। अरे! क्या करना, बापू! पूरा ग्रहण चैतन्य भगवान है, उसे ग्रहण करना है। और राग तो उसमें छूट जाता है। छोड़ना भी नहीं। आहाहा! उसे पर के त्याग से धर्म मानना, (वह) मिथ्यात्व का पोषण है, कहते हैं।

इसलिए ज्ञानसहित होकर विषय त्यागना श्रेष्ठ है, विषयों को त्यागकर... पर का ध्येय छोड़कर, ज्ञान की स्व के ध्येय की बारम्बार एकाग्रता करना। **यही सुशील है।** लो! यह सुशील है।

गाथा-५

आगे ज्ञान का, लिंगग्रहण का तथा तप का अनुक्रम कहते हैं -

णाणं चरित्तहीणं लिंगग्गहणं च दंसणविहूणं।
संजमहीणो य तवो जइ चरइ णिरत्थयं सव्व ।।५।।

ज्ञानं चारित्रहीनं लिंगग्रहणं च दर्शनविहीनं।
संयमहीनं च तपः यदि चरति निरर्थकं सर्वम् ।।५।।

चारित्र–विरहित ज्ञान दर्शन–हीन लिंग–ग्रहण तथा।
संयम–रहित तप निरर्थक यों व्यर्थ हैं सब सर्वदा।।५।।

अर्थ **– ज्ञान यदि चारित्ररहित हो तो वह निरर्थक है और लिंग का ग्रहण यदि दर्शनरहित हो तो वह भी निरर्थक है तथा संयमरहित तप भी निरर्थक है, इस प्रकार ये आचरण करे तो सब निरर्थक है।**

भावार्थ **– हेय उपादेय का ज्ञान तो हो और त्याग ग्रहण न करे तो ज्ञान निष्फल है, यथार्थ श्रद्धान के बिना भेष ले तो वह भी निष्फल है (स्वात्मानुभूति के बल द्वारा) इन्द्रियों को वश में करना, जीवों की दया करना यह संयम है, इसके बिना कुछ तप करे तो अहिंसादिक विपर्यय हो, तब तप भी निष्फल हो, इस प्रकार से इनका आचरण निष्फल होता है।।५।।**

गाथा–५ पर प्रवचन

आगे ज्ञान का, लिंगग्रहण का तथा तप का अनुक्रम कहते हैं :-

णाणं चरित्तहीणं लिंगग्गहणं च दंसणविहूणं।
संजमहीणो य तवो जइ चरइ णिरत्थयं सव्व।।५।।

अर्थ :- ज्ञान यदि चारित्ररहित हो... कहते हैं कि ज्ञान में एकाग्रता हुई नहीं, ऐसा चारित्र अनन्तानुबन्धी का जो ऐसे **वह निरर्थक है...** आहाहा! वे क्या कहते हैं कि चारित्र ले यह बाह्य का, तब ज्ञान सार्थक है। इसमें से ऐसा निकालते हैं। उसकी बात तो ऊपर कह गये, बाह्य के त्याग की तो। आहाहा! ज्ञान तो चारित्ररहित हो, स्वरूप में स्थिरता न हो, वस्तु भगवान आत्मा का ज्ञान और उसमें स्थिरता न हो तो वह ज्ञान ही नहीं है। समझ में आया? स्वसन्मुख का ज्ञान हुआ, वहाँ स्वसन्मुख की एकाग्रता का चारित्र तो उसे होता ही है। आहाहा! स्वरूपाचरण तो नहीं, चारित्र नहीं... चारित्र नहीं। वह तो उस व्रत के संयम की अपेक्षा का चारित्र नहीं, भाई! यहाँ तो समकिती को सुशील कहा है। नारकी के जीव को। वहाँ कहाँ आया चारित्र? सुशीलपना क्या आया वहाँ? स्वरूप का अनुभव और स्थिरता जो है अनन्तानुबन्धी के अभाव की, वह सुशीलपना वहाँ है– नारकी में भी। आहाहा!

चारित्ररहित हो तो वह निरर्थक है... ज्ञान, अर्थात्? जो ज्ञान, ज्ञान में स्व ध्येय करके स्थिर हुआ नहीं, वह ज्ञान चारित्र बिना का अर्थात् स्वरूप की एकाग्रता बिना का निरर्थक है। **और लिंग का ग्रहण यदि दर्शनरहित हो...** नग्नपना (ले), अट्ठाईस मूलगुण ग्रहण करे, परन्तु सम्यग्दर्शन बिना वह सब निरर्थक है। समझ में आया? बाहर के लिंग ग्रहण करे, साधु का लिंग तो नग्न हो। वह लिंग, हों! यह वस्त्र-पात्रवाला, वह लिंग ही नहीं है, वह तो कुलिंग है। वीतराग का लिंग है ही नहीं। जैनमार्ग का द्रव्यलिंग भी नहीं। लिंग तो नग्नदशा, अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रतादि के विकल्प, वह सब लिंग होने पर भी **दर्शनरहित हो...** स्वस्वभाव का अनुभव नहीं, स्वस्वभाव का दर्शन-देखना हुआ नहीं, स्वस्वभाव की सन्मुखता प्रगटी नहीं, वह सब उसका लिंग निरर्थक है। वह अट्ठाईस मूलगुण का पालन-फालन, वह सब निरर्थक है, ऐसा कहते हैं। पंच महाव्रत के विकल्प, वह तो राग है। वह सब आत्मा के स्वभाव के अनुभव और समकित स्वसन्मुख बिना सब निरर्थक है। समझ में आया? उसमें भी वापस कहे, देखो! अनन्त बार ऐसे ओघा मुँहपत्ती लिया। अनन्त बार ऐसे लिंग लिये, इसलिए लिंग की कोई आवश्यकता नहीं। और ऐसा उसमें से निकाले। यह तो ऐसा कि एक बार हुआ तो अनन्त बार हुआ होगा न! ऐसा।

कहते हैं कि परन्तु वह लिंग तो कोई भी हो वह लिंग मुक्ति का कारण नहीं है। परन्तु मुक्ति का कारण जब प्रगट हुआ, तब लिंग तो यह एक ही होता है। आहाहा! लिंग मुक्ति का कारण नहीं है। लिंग निरर्थक है अर्थात् इसका ऐसा अर्थ नहीं है कि आत्मा का दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुआ और लिंग चाहे जिस प्रकार का हो। वस्त्र न हो, स्त्री का लिंग हो, गृहस्थ का लिंग हो और चारित्र हो, ऐसा नहीं है। भाई! यह तो मार्ग (में) खींचतान कर डाली। ...भाई! वे कहे, लिंग नहीं न आवश्यक, इसलिए चाहे जैसा लिंग हो। ऐई! चेतनजी! क्या कहा? निमित्त चाहे जैसा हो। यह ... ऐसे-ऐसे नहीं किया था? केशवलालजी। समझ में आया? दृष्टि मिथ्यात्व है, वहाँ उसे ऐसा मानता है। चाहे जैसा लिंग हो। अपने को चारित्र का भाव प्रगट हुआ, फिर लिंग चाहे जैसा हो। यह बात ही मिथ्या है। उसे दूसरा लिंग होता ही नहीं। और दूसरा लिंग हो और चारित्र हो, ऐसा नहीं होता। परन्तु दूसरा लिंग नहीं होता और यह लिंग हो, वह मुक्ति का कारण

है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! भारी कठिन बात। वे कहे, पन्द्रह भेद से शुद्ध न माने, वह अनन्त संसारी है। जिसे जैसे ठीक पड़े, वैसे मारता है। यहाँ तो पन्द्रह भेद से सिद्ध माने, वह अनन्त संसारी है। सुन! ऐई! चेतनजी! आहाहा! वह हम्पीवाले गुजर गये न, वे ऐसा कहते थे। वह तो भाई ऐसा कहते, लालनजी। समाधिशतक में आता है न? समाधिशतक में आता है। जिसे किसी लिंग का आग्रह हो, वह आगम को नहीं जानता। आग्रह का अर्थ कि यह लिंग है, वह मुक्ति का कारण है, ऐसा आग्रह। अर्थ भी कैसे करे! लालन ऐसा कहते कि आचार्य ने लिंग का इंकार किया है। लिंग मुक्ति के लिये आगम में ऐसा आग्रह होना नहीं चाहिए कि ऐसा लिंग हो। और वे ऐसा अर्थ करते। आग्रह नहीं परन्तु वस्तु ऐसी ही होती है।

जहाँ मुनिपना आत्मा के आनन्द का भानसहित चारित्र की जो वीतरागदशा आयी, उसका लिंग तो नग्न मुनि पंच महाव्रत का भी लिंग होता है। दूसरा लिंग नहीं हो सकता। आहाहा! तथा वह लिंग मुक्ति का कारण नहीं। सेठ! लिंग मुक्ति का कारण नहीं। भाव हो तो लिंग निमित्त ऐसा होता है। आहाहा! परन्तु गजब भाई! अपना पक्ष करने को खींचतान की। गुड़ के गोदड़े श्वान लगे तो नोंच डाल। डाघा समझते हो? मोटा कुत्ता। गुड़ का गोदड़ा होता है न? समझते हो गोदड़ुं। रजाई। गुड़ का रस। रुई की गद्दी होती है न, रजाई? तो गुड़ का रवा होता है न? गद्दा नीचे पड़ा होगा। उसमें गर्मी लगी तो गुड़ के रवा में से गुड़ निकला प्रवाही। तो गद्दा-रुई की रजाई ने चूस लिया। फिर डाला धूप में। मोटा कुत्ता आया। गुड़ खाने के लिये, काट डाला सब। रजाई तोड़ डाली। गुड़ चूस-चूसकर। इसी प्रकार अज्ञानी कोई-कोई श्वान ऐसा लगा कि सत्य को तोड़-तोड़कर ऐसा नहीं होता, ऐसा होता है। अरे! भगवान! सत्य तो सत्य रहेगा, बापू! हों!

लिंग का ग्रहण यदि दर्शनरहित हो तो वह भी निरर्थक है... जाओ! साधुपने की क्रियायें बाहर पंच महाव्रत की वह सब बाह्य लिंग है, वह तो बन्ध का कारण है। उसमें सम्यग्दर्शन, आत्मा महाव्रत के विकल्प से भिन्न और निर्विकल्प स्वभाव से अभिन्न, ऐसा सम्यग्दर्शन के भान बिना यह तेरे सब लिंग निरर्थक हैं। सार्थक है, संसारमार्ग के भ्रमण के लिये करना। मोक्ष के लिये निरर्थक है। समझ में आया? बहुत से ऐसा कहते

हैं कि इन्हें तो एक पक्ष ही हो गया है। दिगम्बर का पक्ष। पक्ष नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप है। एक ही खींचे, दूसरा नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है, भाई! वस्तु के भान बिना लिंग निरर्थक, ऐसे वस्तु के भान और चारित्रसहित हो तो लिंग उसका निमित्त,... यह पहले आ गया है, तो उस लिंग को सफल कहा जाता है। निमित्तरूप से। आ गया है। लिंगपाहुड़ में आ गया है। अरे! किसका मार्ग? किसके लिये आग्रह करके... आहाहा!

वोरा का दृष्टान्त देते हैं न, दो वोरा निकले थे। एक खेत था, खेत कृषिकार का। एक वोरा कहे कि उसमें पाँच खांडी अनाज पकेगा। दूसरा कहे पाँच खांडी नहीं, चार खांडी पकेगा। दोनों की हुई लड़ाई। करते-करते कहे, एक बुरो न छंडुं। एक बुरो कम नहीं कहूं। पाँच खांडी के अतिरिक्त एक दाना कम न कहूँ। चढ़ बैठा उसके सिर पर। परन्तु किसका खेत... तुझे क्या लेना देना? खेत का पकेगा और पकनेवाला पकेगा। कहे, नहीं पाँच खांडी। एक बुरो न छंडी। परन्तु कहाँ तेरे घर में बुरो था? बुरो अर्थात् एक... एक दाना। एक दाना भी कम न कहूँ। पाँच खांडी-पाँच खांडी। वह कहे कि नहीं। कहो, सेठ! ऐसा विवाद उठे। एक बुरो न छंडी। बराबर है, भाई! परन्तु तुझे कहाँ है? खेत किसी का, दाने किसी के। इसी प्रकार मार्ग किसी वीतराग ने कहा उसमें तू कहाँ लगा बीच में? कहे, नहीं। जरा भी कम न मानूं। पन्द्रह भेद से सिद्ध मैं तो मानूं। ठीक भाई!

मुमुक्षु : लिंग की बात है क्या?...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। कोई भी लिंग हो तो मोक्ष होता है। स्त्रीलिंग भी हो, पुरुषलिंग हो, गृहस्थलिंग हो, बाबा का लिंग हो। केवल(ज्ञान) होता है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : पन्द्रह भेद हैं, उसके पन्द्रह भेद। ऐसे पन्द्रह भेद हैं। तीर्थ शील, अतीर्थ शील, तीर्थंकर शील, अतीर्थंकर शील, स्त्रीलिंग, पुरुषलिंग, नपुंसकलिंग ऐसे पन्द्रह भेद हैं।

दो बोल हुए। ज्ञान तो चारित्ररहित निरर्थक है। यह ज्ञान भी कैसा? वह वापस क्या कहे? चारित्र अर्थात् यह चारित्र अंगीकार करे, तब वह ज्ञान सफल हो। यह

चारित्र अर्थात् बाह्य। उसकी यहाँ बात नहीं है। आहाहा! रतनचन्दजी यह कहते हैं न? ७२ गाथा का अर्थ ऐसा करते हैं। बहुत अर्थ फेर, ओहोहो! सम्यग्दर्शन की प्रतीति का अनुभव अर्थात् क्या चीज़ है, उसमें क्या कीमत है! पूरा मोक्षमार्ग शुरु हो गया, उसकी इसे खबर नहीं। समझ में आया?

तथा संयमरहित... दया, छह काय की दया का भान नहीं होता। इन्द्रिय का संयम नहीं होता और तप करे अपवास आदि। महीने-महीने के, पन्द्रह-पन्द्रह दिन के अपवास। परन्तु छह काय की दया नहीं होती और इन्द्रिय का दमन नहीं होता। इसके बिना तेरा तप सब निरर्थक है। समझ में आया? **इस प्रकार ये आचरण करे तो सब निरर्थक है।** तीनों निरर्थक हैं।

भावार्थ :- हेय-उपादेय का ज्ञान तो हो और त्याग-ग्रहण न करे... ऐसा कहते हैं। स्वरूप को ग्रहे नहीं और राग का त्याग करे नहीं। **तो ज्ञान निष्फल है,...** वह ज्ञान, हों! है न? वह तो बड़ा अज्ञान है। यहाँ तो जानपना हुआ, परन्तु वह जानपना मात्र उघाड़ हुआ। वह कहीं ज्ञान नहीं है। ज्ञान हेय-उपादेय का ज्ञान तो हो, परन्तु त्याग-ग्रहण न करे। वह ज्ञान का फल स्वभाव का आदर और राग का आदर नहीं—ऐसा जो ज्ञान का स्वरूप है, वह तो करे नहीं। तो वह ज्ञान निष्फल है। लो! उसका नाम चारित्र। वस्तु का स्वभाव आनन्दस्वरूप को ग्रहे नहीं, राग को छोड़े नहीं, तो वह ज्ञान निरर्थक है, ऐसा। यह चारित्र आया। समझ में आया?

अन्तर की अध्यात्म की बात पूरी ऐसी बारीक और सूक्ष्म है कि उसे पहुँचते-पहुँचते इसे अनन्त पुरुषार्थ चाहिए। दूसरा सब विषय आदि छूटे बाहर की आसक्ति, अविरति सम्यग्दृष्टि को तो पूरा राज चक्रवर्ती का हो। वह तो अल्प दोष चारित्र का है। महादोष जो यह है कि राग का आदर और स्वभाव का अनादर। समझ में आया? इसकी तो खबर नहीं होती और बाहर से मानकर बैठे कि हमने त्याग किया और यह किया।

यथार्थ श्रद्धान के बिना वेश ले तो वह भी निष्फल है। लो! कितने ही कहें, हमने यह त्यागा होगा, वह श्रद्धा बिना छोड़ा होगा? और ऐसा कहे। श्रद्धा कौन सी? उस प्रकार की श्रद्धा सही तेरी मिथ्यात्व कि यह छोड़ता हूँ। ऐसा कि यह छोड़कर बैठे, अपवास करके बैठे महीने-महीने के अपवास करे, वह समकित-श्रद्धा बिना करते

होंगे? परन्तु श्रद्धा अर्थात् क्या? सम्यग्दर्शन की श्रद्धा बिना, ऐसा अनन्त बार किया। उसकी श्रद्धा यह कि यह मैं छोड़ता हूँ। यह श्रद्धा। यह तो मिथ्यात्व श्रद्धा है। आहाहा!

श्रद्धान के बिना वेश ले तो वह भी निष्फल है। इन्द्रियों को वश में करना,... लो! संयम बिना तप। इन्द्रिय वश करना। अतीन्द्रिय आनन्द में आना और जीव की दया—किसी भी प्राणी को मारने का भाव नहीं, ऐसा संयम **इसके बिना कुछ तप करे...** तपस्या करे महीने-महीने के। यह देखो न वर्षीतप करे। अन्दर में कुछ नहीं होता। यह अपवास कौन सा? बारह महीने में लंघन कर डाला। एक दिन अपवास और एक दिन खाना, एक दिन अपवास और एक दिन खाना... ऐई! जादवजीभाई! क्या वर्षीतप किया होगा न कभी? नहीं।

बिना कुछ तप करे... इसके बिना ऐसा। अहिंसा स्वभाव दया, और अणीन्द्रिय का आनन्द ऐसा प्रगट हुए बिना अकेला तप करे। ऐसा कहते हैं। अपवास, दो अपवास, आठ अपवास, अट्ठाई, देखो न यह पर्यूषण में चलता है, बड़े आँकड़े आते हैं। इतनी अठ्ठाई की, इतने पन्द्रह दिन किये, इतने मासखमण किये। सब निरर्थक है, कहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के भान बिना और पर अनन्त प्राणियों की दया के भाव की अहिंसा के भाव बिना, यह सब बाह्य तप जो है, वे सब निरर्थक हैं।

इस प्रकार से इनका आचरण निष्फल होता है। लो! इस प्रकार उसका आचरण निष्फल है।

गाथा-६

आगे इसीलिए कहते हैं कि ऐसा करके थोड़ा भी करे तो बड़ा फल होता है -

णाणं चरित्तसुद्धं लिंगग्गहणं च दंसणविसुद्धं।
संजमसहिदो य तवो थोओ वि महाफलो होइ।।६।।

ज्ञान चारित्रशुद्धं लिंगग्रहणं च दर्शनविशुद्धम्।
संयमसहितं च तपः स्तोकमपि महाफलं भवति।।६।।

हो ज्ञान चारित्र-शुद्ध दर्शन-शुद्ध लिंग-ग्रहण तथा।
संयम-सहित तप अल्प भी वह महा फल-दायी कहा।।६।।

अर्थ **– ज्ञान तो चारित्र से शुद्ध और लिंग का ग्रहण दर्शन से शुद्ध तथा संयम सहित तप ऐसे थोड़ा भी आचरण करे तो महाफलरूप होता है।**

भावार्थ **– ज्ञान थोड़ा भी हो और आचरण शुद्ध करे तो बड़ा फल हो और यथार्थ श्रद्धापूर्वक भेष ले तो बड़ा फल करे जैसे सम्यग्दर्शनसहित श्रावक ही हो तो श्रेष्ठ और उसके बिना मुनि का भेष भी श्रेष्ठ नहीं है, इन्द्रियसंयम प्राणीसंयम सहित उपवासादिक तप थोड़ा भी करे तो बड़ा फल होता है और विषयाभिलाष तथा दयारहित बड़े कष्ट सहित तप करे तो भी फल नहीं होता है, ऐसे जानना।।६।।**

गाथा-६ पर प्रवचन

आगे इसीलिए कहते हैं कि ऐसा करके थोड़ा भी करे तो बड़ा फल होता है :-

णाणं चरित्तसुद्धं लिंगग्गहणं च दंसणविसुद्धं।
संजमसहिदो य तवो थोओ वि महाफलो होइ।।६।।

इसके सामने है। यह नास्ति था, यह अस्ति से।

अर्थ :- ज्ञान तो चारित्र से शुद्ध... अर्थात्? स्वरूप का अन्दर ग्रहण हुआ है और राग का त्याग है, वह चारित्र। ऐसा। वह ज्ञान चारित्र से शुद्ध है। स्वसन्मुख की एकाग्रता हुई है, पर की एकाग्रता गयी है, ऐसा जो ज्ञान, ऐसे त्यागग्रहणवाला। स्वरूप का ग्रहण और राग का त्याग, ऐसा जो चारित्र। वह ज्ञान **चारित्र से शुद्ध...** है। ऐसा ज्ञान, वह ऐसा चारित्रसहित है, ऐसा। **लिंग का ग्रहण दर्शन से शुद्ध...** है। लिंग का ग्रहण होता है, देखो! लिंग तो बराबर मुनि का जो हो, वह होता है परन्तु सम्यग्दर्शन होवे तो वह सफल। सम्यग्दर्शन बिना वह लिंग, लिंग को निमित्तरूप से नहीं कहा जाता, ऐसा कहते हैं।

सम्यग्दर्शन अर्थात् क्या, इसकी खबर नहीं होती। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, नव तत्त्व की श्रद्धा करना, वह समकित। लो, ठीक! '**जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं**' समयसार १५५ गाथा में आता है न? समयसार की १५५ गाथा। '**जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं**'

कहते हैं, **संयमसहित तप, ऐसे थोड़ा भी आचरण करे...** लो, संयमसहित। अन्तर में स्वभाव का भान, अनुभव उपरान्त इन्द्रिय का दमन अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का विकास और अहिंसाभाव। राग बिना की अहिंसा दशा प्रगटी है तो ऐसे जो संयमसहित जो तप हो, तब तो ठीक। अन्तर में ऐसा संयम नहीं और अकेला लंघन तप का करे तो सब निरर्थक है। इसमें कठिन लगे। महिलायें बेचारी अपवास करती हों, वर्षीतप करे। कोई और दूसरा बहुत ठिकाना न मिले अन्दर। अपवास करके बैठे। एक महिला को आठ अपवास थे। लड़का जरा तूफान करता था। अरे... परन्तु मुख से आहार नहीं लेना है, इतनी तुझे खबर नहीं ? लड़के को ऐसा कहती है। मुख से आहार नहीं लेना है। ऐसा कहे, यह मुख से आहार नहीं लेना है और तू यह तूफान करता है। लड़के को कहते हैं। ऐसा सुना था। कुछ खबर नहीं होती। मात्र यह पर्यूषण है, अपन आठ अपवास करें, बाहर में प्रसिद्ध हों, लोग माने कि इसने आठ किये, इसने ग्यारह किये। और घर के लोग उपहार-भेंद दें। आहाहा!

कहते हैं कि यदि सम्यग्ज्ञान में सम्यक्चारित्र का अंश हो तो वह ज्ञान सफल। लिंग में सम्यग्दर्शन हो तो वह लिंग सफल। है न ? तो शुद्ध कहलाये। और तप में संयम हो अन्दर। अन्तर सन्मुख में अतीन्द्रिय आनन्द और इन्द्रिय का दमन और यह अहिंसा। अहिंसारूप भाव। रागरहित अहिंसा का भाव हुआ है, तब तो उसका तप है। यह कहते हैं, ठीक है। बड़ा फल हो, लो! **महाफलरूप होता है।** देखो! महाफल होता है।

भावार्थ :- ज्ञान थोड़ा भी हो आचरण शुद्ध करे... भले थोड़ा ज्ञान हो। विशेष की इसमें कुछ आवश्यकता नहीं। आत्मा का ज्ञान, आत्मा की ओर के झुकाववाला स्वसंवेदन ज्ञान, उसमें आचरण शुद्ध ही होता है। एकाग्रता है। भले ज्ञान थोड़ा है परन्तु आचरण शुद्ध है। स्वरूप सन्मुख की एकाग्रता है। **तो बड़ा फल हो...** बड़ा फल हो, लो। ज्ञान थोड़ा सा हो, परन्तु सम्यग्दर्शनसहित हो और सम्यग्दर्शन में आचरण शुद्धता इकट्ठी आ जाती है। तो उस ज्ञान को सुशील कहा जाता है और उस ज्ञान में बड़ा फल है, ऐसा कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। महाफल कहा न ? महाफल है, देखो!

यथार्थ श्रद्धानपूर्वक वेश ले तो बड़ा फल करे;... देखो! वास्तविक

सम्यग्दर्शनपूर्वक वेश ले, नग्न मुनि दिगम्बर लिंग, तो **बड़ा फल करे;...** महाफल। स्वरूप में रमणता करके आगे बढ़ जायेगा। समझ में आया? **जैसे सम्यग्दर्शनसहित श्रावक ही हो तो श्रेष्ठ...** देखो! वह सम्यग्दर्शनसहित श्रावक हो तो श्रेष्ठ। आत्मा के भानवाला भले गृहस्थाश्रम में हो समकिती, तो भी वह श्रेष्ठ है। **उसके बिना मुनि का वेश भी श्रेष्ठ नहीं है,...** गृहस्थों रत्नकरण्ड श्रावकाचार में है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...मिथ्यादृष्टि है। राग को अपना स्वरूप मानता है। राग से लाभ माने, क्रियाकाण्ड से लाभ माने। मिथ्यादृष्टि है, वह मुनि भी मोही अज्ञानी है। और सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में। सम्यग्दृष्टि हो और उसके प्रमाण में उसे यह राजपाट आदि हो, विषयादि हो तो भी वह श्रेष्ठ है, सम्यग्दर्शनसहित है इसलिए (श्रेष्ठ है)। समझ में आया?

उसके बिना मुनि का वेश भी श्रेष्ठ नहीं है, इन्दियसंयम प्राणसंयम सहित उपवासादिक तप थोड़ा भी करे तो बड़ा फल होता है... इन्द्रियसंयम तो समकिती को ही होता है, अणीन्द्रिय की ओर का भान है, इसलिए। प्राणसंयम। उसे अहिंसा प्रगटी है, समकिती को। ऐसे जीव को उपवास एक-दो आदि हो थोड़ा, (तो उसका) बड़ा फल है। **विषयाभिलाष तथा दयारहित बड़े कष्टसहित तप करे तो भी फल नहीं होता है...** लो! जिसे अन्दर विषय की अभिलाषा का प्रेम रहा है। अभिलाषा है, देखो! भले विषय छोड़े परन्तु अन्दर अभिलाषा है, ऐसा। और दयारहित है। जिसे अन्दर अहिंसा का भाव नहीं है। **बड़े कष्टसहित तप करे तो भी फल नहीं होता है, ऐसा जानना।** लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-७

आगे कहते हैं कि यदि कोई ज्ञान को जानकर भी विषयासक्त रहते हैं, वे संसार ही में भ्रमण करते हैं –

णाणं णाऊण णरा केई विसयाइभावसंसत्ता।
हिंडंति चादुरगदिं विसएसु विमोहिया मूढ़ा।।७।।

ज्ञानं ज्ञात्वा नरा: केचित् विषयादिभावसंसक्ता: ।
हिंडंते चतुर्गतिं विषयेषु विमोहितां मूढ़ा: ।।७।।

यों जानकर भी ज्ञान कितने मनुज विषयासक्ति–वश।
हो विषय–मोहित मूढ़ बन करते चतुर्गति परिभ्रमण।।७।।

अर्थ – कई मूढ़ मोही पुरुष ज्ञान को जानकर भी विषयरूप भावों में आसक्त होते हुए चतुर्गतिरूप संसार में भ्रमण करते हैं, क्योंकि विषयों से विमोहित होने पर ये फिर भी जगत में प्राप्त होंगे इसमें भी विषय कषायों का ही संस्कार है।

भावार्थ – ज्ञान प्राप्त करके विषय कषाय छोड़ना अच्छा है, नहीं तो ज्ञान भी अज्ञानतुल्य ही है।।७।।

प्रवचन-१८३, गाथा- ७ से १०, रविवार, पौष कृष्ण १३, दिनांक २४-०१-१९७१

७वीं गाथा। **आगे कहते हैं कि यदि कोई ज्ञान को जानकर भी विषयासक्त रहते हैं, वे संसार ही में भ्रमण करते हैं :-**

णाणं णाऊण णरा केई विसयाइभावसंसत्ता।
हिंडंति चादुरगदिं विसएसु विमोहिया मूढ़ा।।७।।

अर्थ :- कई मूढ़ मोही पुरुष... यहाँ अज्ञानी की बात है। **ज्ञान को जानकर...** जानपना करे। शास्त्र से जानपना करे, ज्ञान का उघाड़ (हो) परन्तु **विषयरूप भावों में आसक्त होते हुए...** वह राग और परवस्तु विकल्प आदि में जिसकी रुचि एकाकार है।

परविषय, स्व चैतन्य आनन्द का विषय छोड़कर और परविषय, फिर शुभराग, अशुभ रागादि सब विषय ही है, उसकी जिसे अन्तर रुचि है, एकाग्रता है, वह पर में, राग में, आनन्द के अतिरिक्त परवस्तु में जानपना किया, तथापि उसमें एकाकार है। वह **चतुर्गतिरूप संसार में भ्रमण करते हैं,...** चार गति में भटकेगा। जानपना चाहे जितने किया हो, उस जानपने में स्व दृष्टि न हो और राग की रुचि न छूटे तो वह चार गति में भटकनेवाला है, ऐसा कहते हैं।

यहाँ ऐसा लिया है। '**णाणं णाऊण**' समझ में आया? **जानकर भी...** ऐसा कि जानने में क्षयोपशम में आया, उसे ख्याल में, परन्तु उसका प्रेम, राग के प्रेम से रुचि हटी नहीं। शुभरागादि का प्रेम है, उसे विषय की ही रुचि है। विषय के '**भावसंसत्ता**' ऐसा शब्द है न? '**विसयाइभावसंसत्ता**' विषय की भावना में लीन है। समझ में आया? अन्तर स्वरूप में विषय के राग का जिसे प्रेम है, वह विषय में आसक्त है। उसे आत्मदृष्टि नहीं। समझ में आया? वह चार गति में भटकता है। ऐसा ज्ञान होने पर भी परविषय की रुचि नहीं छोड़ी, इसलिए वह अज्ञान है। उस ज्ञान को अज्ञान कहा जाता है।

क्योंकि विषयों से विमोहित होने पर... पर विषय, पुण्य-पाप के भाव में ही लीन हुआ है। उसका ही जिसे प्रेम और रुचि और आसक्ति भाव में वर्तता है। **फिर भी जगत में प्राप्त होंगे...** फिर चार गति में आयेंगे। **इसमें भी विषय-कषायों का ही संस्कार है**। ऐसा कहते हैं। जहाँ जायेंगे वहाँ वापस विषय के संस्कार, राग और द्वेष के संस्कार हैं। चार गति में राग का प्रेम है, वह चार गति में राग-द्वेष के संस्कार हैं, वहाँ अवतरित होगा, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात! यहाँ तो विषय यह लिया है। स्वविषय चैतन्य आनन्दस्वरूप के सन्मुख की दृष्टि होकर एकाग्र नहीं हुआ और अकेले जानपनेपने के भाव में, रागादि भाव में एकाकार है, वह विषय में विमोहित जीव है। पर में मूढ़ हो गया है। स्वविषय आत्मा को वह जानता नहीं। समझ में आया?

फिर भी जगत में प्राप्त होंगे... अर्थात्? यहाँ भी राग के विकार का प्रेम और रुचि है, इसलिए जहाँ-जहाँ जायेगा, वहाँ वे-वे संस्कार उसके रहनेवाले हैं। वह जगत में भ्रमेगा। जहाँ जायेगा वहाँ, उसे राग और विषय का प्रेम पर का प्रेम है। पर के प्रेमरूपी जगत में भटकेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भारी सूक्ष्म बात। **इसमें भी विषय-कषायों**

का ही संस्कार है। जहाँ देखे वहाँ आत्मा का स्वभाव भूलकर पर में उसका प्रेम और उत्साह और वीर्य वर्तता है। पूरा जगत इस प्रकार से है। आहाहा!

भावार्थ :- ज्ञान प्राप्त करके विषय-कषाय छोड़ना अच्छा है,... जानपना तो उसे कहते हैं कि जिसमें पर का विषय छूटकर, राग की एकता छूटकर स्वभाव की एकता हो, उसे ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? बाहर के विषय छोड़ना, उसका प्रश्न यहाँ है नहीं। बाहर के विषय तो छूटे हुए ही पड़े हैं। परन्तु जो आत्मा का स्व-आनन्द और शुद्ध चैतन्य का विषय-ध्येय छोड़कर जिसने राग और पुण्य-पाप के विकल्प को ध्येय बनाकर रुचि की है, वह विषय में ही विमोहित है। आहाहा! समझ में आया?

जिसे दृष्टि बदलनी नहीं, उसका जानपना हो तो वह सब अज्ञान है, (ऐसा कहते हैं)। जिसे पाँच इन्द्रिय के विषयों में मिठास लगती है, उसे आत्मा के आनन्द की रुचि नहीं है। भले उसने जानपना नौ पूर्व का-ग्यारह अंग का किया हो परन्तु उसे आत्मा के स्वाद की खबर नहीं। विषय के स्वाद की रुचि में वह पड़ा हुआ है। आहाहा! भले वह बाह्य में त्यागी हो। यह बात आ गयी है। बाहर से त्यागी हो। आ गया है न पहला? विषय विरक्त। '**विसए विरत्तमेत्तो ण खवेइ पुराइयं कम्मं।**' चौथी गाथा में आ गया है। विषय से विरक्त हो अर्थात् बाह्य संयोग विषय के न हो। नग्न मुनि दिगम्बर हो गया हो। परन्तु अन्तर में स्व चैतन्य के अन्तर्दृष्टि के भान बिना उसे अन्तर में विकल्प के राग का प्रेम है, वही उसे विषय की विरक्ति का अभाव है। आहाहा! भारी शीलपाहुड़! कहो, जयन्तीभाई! बाहर से विषय छोड़ें हों स्त्री, कुटुम्ब सब, परन्तु अन्तर में जिसे संसार जिसमें से फलता है, ऐसा जो राग, विकल्प चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो, उसकी जिसे रुचि और प्रेम है, वह विषय में आसक्त है। गजब!

ज्ञान प्राप्त करके विषय-कषाय छोड़ना अच्छा है,... अर्थात्? सच्चा ज्ञान मिलने से तो उसे वास्तव में तो पर की रुचि का प्रेम छूट जाये। तो उसे ज्ञान कहते हैं। अन्दर में राग का रस रहे, विषय शब्द से राग का रस रहे, उसे विषय का ही रस है। सेठ! आहाहा! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : राग के ऊपर प्रेम है। उसमें उसे रस है। ऐई... पण्डितजी! कठिन बात, भाई! बेचारा विषय छोड़े, स्त्री-पुत्र छोड़े, राज छोड़े। छोड़ा है कहाँ? वह तो छूटे हुए ही पड़े हैं। जो छोड़ना है, वह तो छोड़ा नहीं। स्वभाव चैतन्य का आनन्द और ज्ञायकभाव, उसकी रुचि करके राग की रुचि छोड़नेयोग्य, राग का दृष्टि में त्याग करनेयोग्य, वह तो छोड़ा नहीं। आहाहा!

यह तो शीलपाहुड़ है। कहते हैं, **नहीं तो ज्ञान भी अज्ञानतुल्य ही है।** नातर (अर्थात्) नहीं तो ऐसा। यदि ज्ञान प्राप्त करके राग का प्रेम और रुचि, आनन्द का भाव अन्दर नहीं छूटा, राग में आनन्द, राग में सुख, राग में मिठास (हो)... आहाहा! उसे आत्मा के आनन्द की मिठास नहीं, इसलिए वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? अन्तर के आनन्द की रुचि के स्वाद बिना उसे राग का स्वाद है। पुण्यभाव भोग निमित्तं जो कहा है न? वह सब यह। उस पुण्य का जिसे प्रेम है, राग का जिसे रस है, उसे विषय का रस है। क्योंकि राग के फल में तो संसार है। और वहाँ सर्वत्र राग के रस में ही इसे अवतरित होना है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा शुद्ध आनन्दधाम, ज्ञान और आनन्द का धाम, उसकी जिसे अन्तर रुचि नहीं, उसके श्रद्धा-ज्ञान में पोषाण में आत्मा आया नहीं, उसे पर विषय अर्थात् राग का विषय उसे प्रेम में पड़ा है। आहाहा! राग के विषय में, रागरूप विषय, उसके प्रेम में पड़ा, वह ज्ञान अज्ञान है। वह ज्ञान नहीं। कान्तिभाई!

यहाँ तो ज्ञान उसे कहते हैं कि जिस ज्ञान ने उपयोग को अन्तरोन्मुख करके आत्मा के आनन्द का प्रेम प्रगट किया है। जिससे उसे पूरी दुनिया, विकल्प से लेकर सारी दुनिया का जिसे रस अन्दर से उड़ गया है, उसे ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? बहुत सरस अधिकार लिया। अकेले जानपने के नाम से राग में मिठास वर्ते और हमें ज्ञान है, हमें आत्मा की रुचि है, (ऐसा माननेवाला) जीव को ठगता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

'नातर...' अर्थात् नहीं तो। हिन्दी भाषा है न। 'नातर' अर्थात् नहीं तो, ऐसा। अपने (गुजराती में) नहितर कहते हैं। **नहीं तो ज्ञान भी अज्ञानतुल्य है।** आहाहा! एक ओर आत्माराम तथा एक ओर पूरा गाँव। यहाँ कहते हैं कि यह आत्मा, आत्मा सच्चिदानन्द

स्वरूप है। सत्–शाश्वत् ज्ञान और आनन्द है। ऐसे ज्ञान के आनन्दवाले आत्मा का जिसने अन्तर्मुख होकर, स्व का आश्रय लेकर प्रेम नहीं किया, उसके शास्त्र का जानपना सब, राग की रुचि में पड़ा है, उसे अज्ञानी कहा जाता है। जिसे गहरे राग में रस और प्रेम है, वह विषय में ही विमोहित है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अन्तर भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप का जिसे अन्तर प्रेम और स्वाद नहीं, वह राग के स्वाद में अर्पित हो गया है। उसका ज्ञान, वह अज्ञान है, ऐसा कहते हैं। मिथ्यात्व है। आहाहा! प्रवीणभाई आये है न? भाई आये हैं। तुम्हारा तो बाकी है वापस अभी। समझ में आया?

इसमें तो एक चोट और दो टुकड़े हैं। जिसे भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का सागर, उसका जिसे अनुभव हुआ, उसे विषय और पूरा जगत जिसके रस में से–दृष्टि में से छूट गया है। उसे कोई रस रहा नहीं। समझ में आया? और जिसे अन्तर भगवान आत्मा के आनन्द के प्रेम बिना अकेला राग का ही प्रेम है, विकल्प चाहे तो शुभ–अशुभराग चाहे जो हो, पुण्य–पाप का, परन्तु उस राग में जिसे एकताबुद्धि है, राग में रस है, राग में ठीक है, हितबुद्धि है, वह ज्ञान अज्ञान है। समझ में आया? और वह अज्ञान चार गति में चौरासी के अवतार में इसे भटकायेगा। आहाहा!

गाथा–८

आगे कहते हैं कि जब ज्ञान प्राप्त करके, इस प्रकार करे तब संसार कटे –

जे पुण विसयविरत्ता णाणं णाऊण भावणासहिदा।
छिंदंति चादुरगदिं तवगुणजुत्ता ण संदेहो।।८।।

ये पुनः विषयविरक्ताः ज्ञानं ज्ञात्वा भावनासहिताः।
छिन्दन्ति चतुर्गतिं तपोगुणयुक्ताः न संदेहः।।८।।

यों जानकर जो ज्ञान विषय–विरक्त भावनाओं–सहित।
तप–गुणों से संयुक्त छेदें चार–गति सन्देह न।।८।।

अर्थ **– जो ज्ञान को जानकर और विषयों से विरक्त होकर उस ज्ञान की बारबार**

अनुभवरूप भावनासहित होते हैं, वे तप और गुण अर्थात् मूलगुण उत्तरगुणयुक्त होकर चतुर्गतिरूप संसार को छेदते हैं, काटते हैं, इसमें संदेह नहीं है।

***भावार्थ* – ज्ञान प्राप्त करके विषय कषाय छोड़कर ज्ञान की भावना करे, मूलगुण उत्तरगुण ग्रहण करके तप करे वह संसार का अभाव करके मुक्तिरूप निर्मलदशा को प्राप्त होता है – यह शीलसहित ज्ञानरूप मार्ग है।**

गाथा-८ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जब ज्ञान प्राप्त करके इस प्रकार करे तब संसार कटे :- अब सुल्टा लेते हैं।

जे पुण विसयविरत्ता णाणं णाऊण भावणासहिदा।
छिंदंति चादुरगदिं तवगुणजुत्ता ण संदेहो।।८।।

अर्थ :- जो ज्ञान को जानकर और विषयों से विरक्त होकर... व्याख्या—विषय के विरक्त का अर्थ पर रागादि विषय से पीठ फिराकर स्वभाव की दृष्टि नहीं करता तो वह सब अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? **ज्ञान को जानकर और विषयों से विरक्त होकर...** विषय में विरक्त का अर्थ (यह कि) चैतन्य के आनन्दस्वभाव में ढलता और राग के रस से हटता है, उसने विषय की विरक्ति की, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! ...भाई! यह तो बहुत सूक्ष्म बातें हैं। मूल में भूल, ठीक! आहाहा!

ज्ञान को जानकर और विषयों से विरक्त होकर... अर्थात् अन्तर में राग के विकल्प का प्रेम है, उससे हट गया है और आत्मा के आनन्द के प्रेम में जो आया है, उसने विषय का त्याग किया, ऐसा कहने में आता है। अज्ञानी बाहर के विषय छोड़कर स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, भोग छोड़कर बैठे त्यागी होकर, परन्तु उसके अन्तर में राग का विकल्प जो पुण्य का, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हैं, उस राग का जिसे प्रेम और रस है, उसे विषय का रस है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान की जहाँ भेंट हुई, वहाँ विषय की भेंट कैसे रहे? ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा ज्ञानानन्द की मूर्ति (है)—ऐसा सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहा, वैसा आत्मा। उसके अन्तर का प्रेम जगा,

अन्तर में अर्पणता हो गयी कि मैं शुद्ध चैतन्य अखण्ड आनन्द हूँ। मुझमें दूसरी कोई चीज़ है नहीं। उसे फिर विकल्प का रस और रुचि और एकता नहीं रहती। इसका नाम विषय से विरक्त कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? गजब!

ज्ञान को जानकर... बहुत जानपने की भाषा सीखे, बोले, परन्तु अन्दर में गहराई में उसकी मिठास तो राग और विकार और विषय की है। कहते हैं कि वह ज्ञान, अज्ञान और मिथ्यात्व है। समझ में आया? श्रीमद् में आता है न?

मुख से ज्ञान कहे अरु अन्तर छूटा नहीं मोह,
वह पामर प्राणी करे मात्र ज्ञानी का द्रोह।

अन्तर स्वरूप... आहाहा! क्या बात! शील-शील। शील लगा। यह सील लगाते हैं न, फिर उघड़ती नहीं। राग से रहित आत्मा में एकाकार होकर शील रख दी। ज्ञानस्वभाव में आनन्द मानकर उसमें एकाकार हुआ, उसका ज्ञान सुशील कहने में आता है। समझ में आया?

ज्ञान की बारबार अनुभवरूप भावनासहित होते हैं... फिर लिया है न? '**भावणासहिदा**' '**विसयविरत्ता**' और '**भावणासहिदा**' और जिसे अन्तर आनन्दस्वरूप की ही बारम्बार एकाग्रता की भावना है। इच्छा, रागादि मात्र की भावना है नहीं। समझ में आया? लोगों को बाह्य त्याग की महिमा इतनी घुस गयी है कि जिससे अन्तर के राग का रस जो है, वह छोड़ना कठिन पड़ता है। कुछ छोड़ा हमने, त्यागी हुए, स्त्री छोड़ी, पुत्र छोड़े, साधु हुए। किसके साधु?

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, उसकी जिसे आरूढ़ दशा आनन्द के ऊपर हुई है, उसे अब राग का अनारूढ़ अर्थात् विषय का त्याग कहा जाता है। उसे राग पर आरूढ़ता है ही नहीं। राग आवे, तथापि उसकी रुचि और प्रेम नहीं। आहाहा! 'धार तलवार की सोह्यली दोह्यली चौदवाँ जिनतणी चरणसेवा' ऐसा मार्ग है। आहाहा! प्रथम ही कहते हैं कि जो ज्ञान की वर्तमान दशा, आत्मा के आनन्द की दिशा की ओर वह झुका नहीं, वह ज्ञान राग के प्रति उन्मुख है, इसलिए उसे अज्ञान और मिथ्यात्व कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? उसे जिसने छोड़ा है,

आत्मस्वरूप आनन्दमय प्रभु है, ऐसा जिसे अन्तर्मुख होकर स्व का ज्ञान हुआ, वह विषय से विरक्त ही है। चाहे तो उसे रागादि अशुभ हो तो भी उससे धर्मी जीव समकिती तो विरक्त ही है। आहाहा! समझ में आया? जिसके अपने जगत में वह राग नहीं है। अपना जगत अर्थात् आत्मजगत। उसके बाहर राग है।

राग में आत्मा नहीं और आत्मा में राग नहीं। आहाहा! निर्विकल्प भगवान आत्मा में विकल्प नहीं और जिसे विकल्प का प्रेम है, उसे निर्विकल्प आत्मा उसमें नहीं। इस प्रकार सुशील का यहाँ वर्णन करते हैं। आहाहा! समझ में आया? और आत्मा के भान में राग की रुचि जिसे छूटी है, ऐसा जो ज्ञान, वह बारम्बार उसके अनुभव के लिये प्रयत्न करता है। उसे ही अनुभवना।

भावनासहित होते हैं, वे तप और गुण अर्थात् उत्तरगुणयुक्त होकर... आगे बढ़ गया है न अब तो। और आगे बढ़कर इच्छा का नाश होकर अमृतसागर आत्मा उछल गया है अन्दर से, उसका नाम तप। तप अर्थात् अपवास करना और लंघन करना, वह तप नहीं। कान्तिभाई! ऐसा भारी मार्ग, भाई! जहाँ शुभ-अशुभ इच्छा की ही उत्पत्ति नहीं और जहाँ आत्मा अनाकुल आनन्द की ही उत्पत्ति है, ऐसी स्थिति को तप कहा जाता है। बाकी ऐसे भान बिना के अपवास आदि उन सबको लंघन और अज्ञान कहा जाता है। समझ में आया?

तप और गुण अर्थात् मूलगुण उत्तरगुणयुक्त होकर... विशेष फिर आगे बढ़कर चारित्र की स्थिरता बढ़ गयी है। **चतुर्गतिरूप संसार को छेदते हैं,...** उसे चार गति रहेगी नहीं। काटे हैं—चार गति को छेदता है। लो! '**छिंदंति चादुरगदिं**' इसका अर्थ कि उसे चार गति होगी नहीं। चार गति है, उसे छेदना, यह तो कथन है। विकल्पमात्र राग के पहलू से जिसकी दृष्टि छूट गयी है और निर्विकल्प भगवान आत्मा के पक्ष में जिसकी दृष्टि जम गयी है, उसे धर्मी और ज्ञानी कहा जाता है। आहाहा! गजब बात! भगवान कहते हैं कि मेरी भक्ति के राग में भी जो रस है, उसे विषय का रस है, ऐसा है, हों! यहाँ। राग में भगवान की भक्ति का राग है। जिसे राग में रस है उसे विषय का रस है, ऐसा कहते हैं। राग के फल में पुण्य बँधे, पुण्यबन्ध में संयोग मिले-बाहर की धूल और उसमें राग करे, वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा!

इसमें सन्देह नहीं है। 'ण संदेहो' ऐसा कहते हैं न? नि:सन्देह है। भगवान आत्मा जिसके ज्ञान में उपयोग अन्तर में ढलकर आनन्दधाम का जिसे अन्तर अनुभव में स्वीकार हुआ, वह बारम्बार अनुभव में उसकी प्रयत्नदशा ढलती है। उस अनुभव में ढलते-ढलते उसे स्थिरता विशेष बढ़ती है, उसे उत्तरगुण और मूलगुण विशेष अन्दर प्रगट होते हैं और वह मुक्ति को प्राप्त करता है, चार गति को छेदता है। समझ में आया?

भावार्थ :- ज्ञान प्राप्त करके विषय-कषाय छोड़कर... विषय-कषाय छोड़कर अर्थात् राग की आसक्ति और राग का भाव, इन दो को छोड़कर स्वरूप भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति प्रभु का जिसे आश्रय और उसके पक्ष में चढ़ गया है, राग के पक्ष से हट गया है। पडखा समझते हो न? बाजु। **ज्ञान प्राप्त करके विषय-कषाय छोड़कर...** फिर व्याख्या करे बाहर की कि यह विषय कषाय छूटे। **ज्ञान की भावना करे,...** वस्तु स्वभाव शुद्ध आनन्द प्रभु की अन्तर एकाग्रता और भावना करे। **मूलगुण उत्तरगुण ग्रहण करके तप करे, वह संसार का अभाव करके मुक्तिरूप निर्मलदशा को प्राप्त होता है। यह शीलसहित ज्ञानरूप मार्ग है।** देखो! शील अर्थात् भगवान आत्मा आनन्द के स्वाद में अन्तर में रहना, इसका नाम शील है। समझ में आया? इस ज्ञान को सुशील ज्ञान कहने में आता है।

शीलसहित ज्ञानरूप मार्ग है। शीलसहित अर्थात्? अकेला जानना, ऐसा नहीं परन्तु जानने में स्वरूप का आश्रय करके जिसने अन्दर से विषय-कषाय का घात किया है—भेद कर डाला है और आत्मा जिसने विषय-कषाय के विकल्प से भिन्न कर डाला है। वह शीलसहित ज्ञान, उसे सुशीलज्ञान, वह शीलसहित का ज्ञान, वह मोक्ष के मार्ग में कहा गया है। समझ में आया? भारी बातें, भाई!

इससे कोई हल्की चीज़ होगी दूसरी? ऐसी बात अध्यात्म की तो लोगों को कठिन पड़ती है। सर्वत्र पचती नहीं। कहो, क्या करना इसे? ऐई... पण्डितजी! तुम्हारे में से कितने ही पण्डित कहते हैं। ऐसा कि ऐसा अध्यात्म का मार्ग मूल तो पचना कठिन। इसलिए सत्य इसे मिलना कठिन, पचना कठिन, इसलिए फिर असत्य देना उसे? सत्य तो यह है। यह है सत्य, इसके अतिरिक्त असत्य कहना, इससे कुछ हल्का पड़े, ठीक

पड़े ? वह तो असत्य है। असत्य में सत्य कहाँ से आयेगा ? आहाहा! लोग भी कहाँ-कहाँ अटके हैं ?

यहाँ तो पुकार करके कहते हैं कि भगवान! तेरे आनन्दस्वभाव को छोड़कर राग का प्रेम और रुचि यदि रही तो मिथ्यादृष्टि है। अब यह सत्य न पचे तो तब दूसरा इसे कौन सा पचेगा ? असत्य ? कि राग करो, भले राग का प्रेम भले हो परन्तु राग करनेयोग्य है। ऐसा कहे तो इसे हल्का लगे ? वह तो झूठ है। झूठ, वह हल्का और सत्य वह अच्छा-ऊँचा, ऐसे हैं दो भाग इसमें ? आहाहा! क्या हो ? सत्य के-धर्म के नाम से लूटे हैं न। लुटा है, जगत लुटा है। दया पालना, दान करना, भक्ति करना, पूजा करना, यात्रा करना, वह धर्म। ऐई... जयन्तीभाई! वह धर्म नहीं, वह तो राग है—वह तो विकल्प है, तुझे खबर नहीं। उस विकल्प का प्रेम है, वहाँ अज्ञान और मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वहाँ तो इसे हो गया धर्म। दो घड़ी सामायिक की। नाम सामायिक। सामायिक कहाँ थी तुझे ? सामायिक तो उसे होती है कि जिसे रागमात्र पुण्य-पाप के विकल्प का रस छूटकर आत्मा के आनन्द के रस में जिसे दृष्टि हुई है और उस आनन्द में जम जाता है, उसे सामायिक होती है। सामायिक तुझे कहाँ से आयी ? समझ में आया ? सामायिक तो प्रतिदिन करते हैं, हम सवेरे उठकर आसन बिछाकर (करते हैं) । किया। सामायिक किसे कहना, यह भान नहीं होता, क्या करता था तू ?

भगवान आत्मा अन्तर आनन्द का धाम, जिसके अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के समक्ष समकिती को, जिसे इन्द्र की इन्द्राणी करोड़ों, उनके भोग भी जिसे दु:ख लगे। आहाहा! स्वर्ग के सुख भी जिसे अन्तर में दु:ख लगे और आत्मा का आनन्द जिसे सुख लगे... आहाहा! ऐसे दृष्टिवन्त को अन्दर में स्थिरता जमती है, तब उसे सामायिक और प्रौषध और प्रतिक्रमण कहा जाता है। बाकी सब बिना एक के शून्य, रण में शोर मचाने जैसा है। ऐई... चिमनभाई! किया होगा कि या नहीं पहले थोड़ा ? किया नहीं। ठीक! उगकर खड़े हुए वहाँ... आहाहा!

शीलसहित ज्ञानरूप मार्ग है। लो, देखो! ज्ञान का मार्ग तो उसे कहते हैं कि जो ज्ञान आत्मा के आनन्द में स्थिर हो और राग के रस में से हट जाये। उसे ज्ञानसहित शील कहा जाता है। वह शीलसहित ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया ? आहाहा! ऐसा तो

भारी कठिन पड़े, वे पण्डित लोग कहे। परन्तु मार्ग ही यह है और सत्य ही यह है। फिर सत्य में असत्य डाले तो उसे हल्का मार्ग हो, ऐसा है? जहर डाले। एक मण दूधपाक में इतना जहर डाले तो मार डालेगा। दूधपाक काम नहीं करे, वहाँ जहर काम करेगा।

मुमुक्षु : उल्टी होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टी नहीं होगी, मर जायेगा ऐसा का ऐसा सीधा। वहाँ हुआ था न? एक बार राजकोट में हुआ था। दूधपाक हुआ था, उसमें छिपकली आयी थी। बहुत करके वहाँ ही कहीं थी। तुम्हारे वनेचन्दकाका के यहाँ, बस वह। वे भाई क्या गुजर गये? नहीं? नरभेरामभाई नहीं, दूसरा वह खीमचन्दभाई। एक नरभेराम भाई है, वहाँ हुआ था। बहुत वर्ष की बात है, हों! दूधपाक बनाया और उसमें छिपकली (गिरी)। वह छिपकली समझते हो? छिपकली। उसमें जहर हो गया। वह खाकर आये थे। हमारे शिवलाल भी था। शिवलाल गया था। वह सब खाकर आया। सबको रात्रि में उल्टी हुई, कितनों को दस्त और डॉक्टर कहे हाय... हाय... वहाँ आये उपाश्रय में आवास पर। कौन सा वर्ष होगा? (संवत्) ७६ का? ८२ का वर्ष। ८२ का वर्ष होगा। शिवलाल ८२ में था न? ८२ का वर्ष होगा। रात्रि में लोग आये। कैसा है? कितने ही खाकर वहाँ आकर सो रहे थे। इसलिए कहे, यहाँ कुछ बाधा नहीं। घर में तो वनेचन्द को तो बहुत हो गया था। जहर अन्दर आ गया थोड़ा। था दूधपाक। रात्रि का भाग इसलिए कुछ जहर पड़ गया होगा, चाहे जो हो। वह दूधपाक का फल नहीं देता। मरण का देता है।

इसी प्रकार आत्मा के आनन्द के रस की रुचि बिना अन्दर में विषय का राग, पुण्य का प्रेम और जिसे है, वह मिथ्यात्व का जहर है। चाहे तो साधु होकर बैठा हो, त्यागी होकर बैठा हो, भोग छोड़े हों तो वह भोगी है, वह त्यागी नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

शीलसहित ज्ञानरूप मार्ग है। जानने का आत्मा का स्वभाव, उसे जाना। जानकर उसमें स्थिर हुआ। राग में से पूरा संसार उदयभाव में से हट गया है, ऐसा कहते हैं। कोई भी उदयभाव में प्रेम रहा तो विषय का प्रेम है, मूल तो यहाँ ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

गाथा-९

आगे इस प्रकार शीलसहित ज्ञान से जीव शुद्ध होता है, उसका दृष्टान्त कहते हैं–

जह कंचणं विसुद्धं धम्मइयं खडियलवणलेवेण।
तह जीवो वि विसुद्धं णाणविसलिलेण विमलेण।।९।।

यथा कांचनं विशुद्धं धमत् खटिकालघणलेपेन।
तथा जीवोऽपि विशुद्धः ज्ञानविसलिलेनं विमलेन।।९।।

ज्यों स्वर्ण खड़ी लवण–सुलेप से धय सु निर्मल कान्तिमय।
त्यों जीव ज्ञान–पवित्र जल से हो सकल ही शुद्धमय।।९।।

_अर्थ_ – जैसे कांचन अर्थात् सुवर्ण खडिय अर्थात् सुहागा (खड़िया क्षार) और नमक के लेप से विशुद्ध निर्मल कांतियुक्त होता है, वैसे ही जीव भी विषयकषायों के मलरहित निर्मल ज्ञानरूप जल से प्रक्षालित होकर कर्मरहित विशुद्ध होता है।

_भावार्थ_ – ज्ञान आत्मा का प्रधान गुण है, परन्तु मिथ्यात्व विषयों से मलिन है, इसलिए मिथ्यात्व–विषयरूप मल को दूर करके इसकी भावना करे, इसका एकाग्रता से ध्यान करे तो कर्मों का नाश करे, अनन्त चतुष्टय प्राप्त करके मुक्त होकर शुद्धात्मा होता है, यहाँ सुवर्ण का तो दृष्टान्त है वह जानना।।९।।

गाथा-९ पर प्रवचन

आगे इस प्रकार शीलसहित ज्ञान से जीव शुद्ध होता है, उसका दृष्टान्त कहते हैं :- जिसे भगवान आत्मा शुभ–अशुभ विकल्प के रागरहित, उसका जहाँ अन्तर्मुख होकर आत्मज्ञान हुआ और वह ज्ञान एकाग्र हुआ है अन्दर रागरहित, उसे शील कहा जाता है। ऐसा ज्ञान, शीलसहित जो ज्ञान, वह जीव को शुद्ध होता है। उसमें शुभाशुभ परिणाम नहीं होते, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **उसका दृष्टान्त कहते हैं :-**

जह कंचणं विसुद्धं धम्मइयं खडियलवणलेवेण।
तह जीवो वि विसुद्धं णाणविसलिलेण विमलेण।।९।।

अर्थ :- जैसे कंचन अर्थात् सुवर्ण... सोना-सोना। **खडिय अर्थात् सुहागा...** यह खड़ी-खड़ी। क्या कहलाता है ? क्षार ? सुहागा को क्या कहते हैं ? गेरु। गेरु आती है न लाल ? सोनागेरु। सोने के ऊपर चमक लावे। **सुहागा (-खडिय क्षार)...** लो ! और नामक। **और नमक के लेप से विशुद्ध निर्मल कान्तियुक्त होता है...** सोना शोभता है। नमक और क्या कहा पहला ? गेरु। गेरु और नमक दो डाले तो सोना शोभता है। ओप-ओप। सोलहवान शोभा आवे अन्दर ऊँची। **वैसे ही जीव भी विषय-कषायों के मलरहित...** अन्दर में स्वभाव के अतिरिक्त कोई भी राग के विकल्प की रुचि के प्रेमरहित, उसे विषय और कषायरहित कहा है। ऐसे विषय अर्थात् राग, उसकी रुचि का अभाव और राग कषाय है, उसके आश्रय का अभाव। ऐसे विषयकषाय के मल से रहित है। **निर्मल ज्ञानरूप जल से प्रक्षालित होकर...** आहाहा ! भाषा...

निर्मल जल से... फिर सोने को गेरु लगाकर साफ करे। वैसे भगवान आत्मा राग-द्वेष के परिणाम, पुण्य-पाप का विकल्प, जिस भाव से स्वर्ग मिले या जिस भाव से यह धूल-लक्ष्मी आदि मिले, वह सब राग मैल और दु:ख है। आहाहा ! प्रसन्न हो। अपने पुण्य करेंगे, फिर देव होंगे, फिर राजा होंगे, फिर नरक में जायेंगे। क्यों (कि) राजेश्वरी नरकेश्वरी, नहीं कहते ?

मुमुक्षु : एकदम ऊँचे फिर नीचे खड्डे में।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊँचा था ही कहाँ वह। राज से ऊँचा हो गया ? व्यवहार से कहेंगे यह। ऊर्ध्वगति कहेंगे। पुण्य का अधिकार आयेगा। पुण्य के नाम। पाप अधोरूप है और वह (पुण्य) ऊर्ध्वरूप है। (समयसार) नाटक में। इसका अर्थ कि गति। परन्तु उसमें आत्मा कहाँ ऊर्ध्व हुआ ? जैसे मक्खी ऊँची होकर बैठी लकड़ी पर, इसलिए ऊँची हो गयी ? तुम्हारी अपेक्षा ऊँची हो गयी मक्खी ? तुम्हारी अपेक्षा ऊँची है न ! ऊँचा मार्ग तो है न ? उसे ऊँचा कौन कहे ? सुन न।

इसी प्रकार आत्मा के स्वभाव को भूलकर पुण्य परिणाम करे और पुण्य का प्रेम

करके स्वर्गादि में जाये, वह ऊँचा हो गया है, निश्चय से ऐसा है नहीं। धूल भी नहीं। वहाँ से पटकेगा वापस ढोर होगा, मनुष्य होगा और निगोद में जायेगा। जिसे राग के पुण्य-पाप के परिणाम का प्रेम और रस है, वह क्रम से उसके पन्थ में निगोददशा बीच में आयेगी। आहाहा! ऐसा है, भाई! हों! मार्ग। लोगों को ऐसा लगे, यह तो ऐसा अध्यात्ममार्ग ऊँचा! ऊँचा नहीं, सत्य ही यह है। और नीचा कुछ और ऊँचा कुछ, ऐसे दो भाग हैं ही नहीं। एक मिथ्यात्व का भाग और एक समकित का। दो ही प्रकार हैं। समझ में आया?

कहते हैं, जैसे सोने को गेरु और नमक / लवण लगाने से और फिर पानी से साफ करने से शोभता है। उसी प्रकार भगवान आत्मा अपने पवित्र स्वभाव के अतिरिक्त का जो भाग रागादि है, उसकी जिसे रुचि और एकाग्रता छोड़कर स्वभाव में एकाग्रता की है, वह **निर्मल ज्ञानरूप जल से प्रक्षालित होकर कर्मरहित विशुद्ध होता है**। अकेला चैतन्यबिम्ब भगवान जैसा है, वैसा होगा। समझ में आया? अन्य भटकेगा कहा, यह होगा (ऐसा कहा)।

भावार्थ :- ज्ञान आत्मा का प्रधान गुण है... प्रधान अर्थात् मुख्य। ज्ञान, वही मुख्य स्वभाव है। ज्ञान—जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... **परन्तु मिथ्यात्व विषयों से मलिन है,...** मिथ्यात्व और विषय से मलिन है। विपरीत मान्यता और राग की रुचि, वह राग विषय है, उससे जीव का ज्ञान मलिन है। समझ में आया? गजब बातें ऐसी, भाई! वे तो कहें, व्रत पालो, महाव्रत पालो, दया करो, व्रत करो, अपवास करो। यह पर्यूषण आते हैं न? आठ-आठ, दस-दस। धूल भी नहीं, सुन न! ये सब अधर्म के रास्ते हैं। राग के रास्ते, उसके प्रेम के रास्ते मिथ्यात्व के रास्ते हैं। जयन्तीभाई! भारी कठिन पड़े। आहाहा! आत्मा का ज्ञान एक मुख्य गुण है, जानना ऐसा स्वभाव। राग और पुण्य उसका कहीं गुण है? उसका स्वभाव है? उसके मूल सत्त्व के तत्त्व में वह पुण्य-पाप के परिणाम हैं? यह... है। परजगत है। स्वजगत में वह है नहीं। आहाहा!

इसलिए मिथ्यात्व-विषयरूप मल को दूर करके... ज्ञान भगवान आत्मा को मिथ्या-विपरीत मान्यता, राग में प्रेम है, राग का रस है। जिसे पाँच इन्द्रिय के विषयों में

कहीं भी उल्लसित बुद्धि है, उसका ज्ञान मिथ्यात्वसहित मलिन होता है। समझ में आया? शब्द सुनकर जिसे सुख लगता है। गाना गाये न? तू ऐसा है, तू ऐसा है। उसमें उसे सुख लगता है। अभिनन्दन। अभिनन्दन देते हैं न? अभिनन्दन। ...बहुत दे सब। पैसा-बैसा खर्च करे न, इसलिए दे। क्या कहलाता है वह? ...वह दे न? मानपत्र। यह तो दृष्टान्त। सेठ! यह तो सबको बहुतों को होता है। अखबार में आया था। भगवानदास ने बाईस हजार रुपये का एक दिया... कराया। आज सवेरे अखबार में आया है। ...जैन... उसमें लिखा है। बाईस हजार रुपये दिये। एक कमरा बनानेवाले हैं। ऐसा कुछ था।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : आये हैं न।

यहाँ कहते हैं कि राग में विकल्प का प्रेम है, वह मिथ्यात्व का मैल है। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों, वे भाव शुभराग हैं। उस राग का जिसे प्रेम है, उसे मिथ्यात्व का मैल है। आहाहा! कहो, ...भाई! भारी ऐसा कठिन निकला। एक ओर भक्ति करना, एक ओर मन्दिर बनाना, ऐसा कहे। होवे, परन्तु उसका झुकाव वहाँ रुचि में पड़ा है। आहाहा! वीतरागमार्ग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ का वीतरागमार्ग, वह वीतरागभाव से खड़ा होता है। कहीं भी वह राग के प्रेम में पड़ा तो वह मिथ्यात्व के मैल में पड़ा है। आहाहा!

मल को दूर करके... भगवान आत्मा अनाकुल शान्तरस के प्रेम में एकाकार होकर, आहाहा! मिथ्यात्व के मैल को दूर करके, **इसकी भावना करे,...** आनन्दस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय की ही बारम्बार एकाग्रता और चिन्तवना करे, **इसका एकाग्रता से ध्यान करे...** लो! एक अग्र। एक ही मुख्य दृष्टि में लेकर, व्यवहार-फ्यवहार विकल्प को लक्ष्य में से छोड़कर, ऐसा कहते हैं। ऐसी भावना करे, ध्यान करे **तो कर्मों का नाश करे, अनन्त चतुष्टय प्राप्त करके मुक्त हो...** वह अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य पाकर मुक्ति पावे। वह आत्मा के आनन्दरस में दृष्टि करके उसमें स्थिरता की भावना करता है। राग के रस की रुचि और एकाग्रता छोड़ता है। गजब मार्ग। अधिक सभा में दस-दस हजार लोगों में ऐसा कहना!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य है तो सत्य तो यह है। सत्य एक में होता है या लाख में हो। मार्ग तो यह सत्य है। चौरासी के अवतार में जन्म-मरण करके कचूमर निकल जानेवाले हैं, खबर नहीं इसे। जरा सी कुछ थोड़ी सुविधा मिली, वहाँ ऐसा हो जाता है कि हम सुखी हैं। अब पैसा-बैसा खर्च करते हैं। अपने को धर्म हो जाये। धूल भी नहीं। तेरे पैसे लाख-करोड़ दे न, तो भी जरा भी धर्म नहीं। ऐई! मैंने इतने पैसे दिये, ऐसा माने तो मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। अधर्म का पाप लगता है।

मुमुक्षु : सच्ची नजर से जाना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाना नहीं, माना—ऐसा कहते हैं। दिये ही नहीं, यहाँ तो ऐसा कहा। वह ११ हजार लिखाये हैं, वह तुमने नहीं दिये। वे तो जड़ हैं। जड़ तुम्हारे देने का अधिकार है? क्या कहा भाई ने? यह रुपया देकर... ऐसा नहीं। वह रुपये अजीव हैं, वे मैंने दिये, उनका जो स्वामी हुआ, वह मिथ्यात्व है। महापाप है। कसाईखाने से (बड़ा पाप है)। वह पैसे मैंने दिये, मेरे, जड़ मेरा। जड़ तेरा था? ...भाई! ऐसी मार्ग की रीति है यहाँ तो। आहाहा!

कहते हैं, **कर्मों का नाश करे, अनन्त चतुष्टय प्राप्त करके...** आहाहा! यह मैंने दिये और तूने दिये, यह तो बात भी यहाँ नहीं है। जड़ को कौन दे और जड़ को कौन खर्च करे और जड़ को कौन रखे? वह तो अजीवतत्त्व, जगत के तत्त्व हैं। अजीव का रहना और अजीव का जाना, वह अजीव के आधीन है। कहीं तेरे आधीन नहीं है। यहाँ तो उसमें राग की मन्दता हो, उस मन्दता के राग के रस में पड़ा है, वह विषय के रस में है। आत्मा के रस में वह नहीं है। कठिन काम भाई! आत्मा **शुद्धात्मा होता है, यहाँ सुवर्ण का तो दृष्टान्त है, वह जानना।** लो!

गाथा-१०

आगे कहते हैं कि जो ज्ञान पाकर विषयासक्त होता है, वह ज्ञान का दोष नहीं है, कुपुरुष का दोष है –

णाणस्स णत्थि दोसो कुप्पुरिसाणं वि मंदबुद्धीणं।
जे णाणगव्विदा होऊणं विसएसु रज्जंति।।१०।।

ज्ञानस्य नास्ति दोषः कापुरुषस्यापि मंदबुद्धेः।
ये ज्ञानगर्विताः भूत्वा विषयेषु रज्जन्ति।।१०।।

जो ज्ञान-गर्वित हो विषय-आसक्ति पूर्वक वर्तते।
वह ज्ञान का नहिं दोष कुदेही मन्द-बुद्धि दोष है।।१०।।

अर्थ – जो पुरुष ज्ञानगर्वित होकर ज्ञानमद से विषयों में रंजित होते हैं, सो यह ज्ञान का ही दोष नहीं है, वे मंदबुद्धि कुपुरुष हैं, उनका दोष है।

भावार्थ – कोई जाने कि ज्ञान से बहुत पदार्थों को जाने, तब विषयों में रंजायमान होता है, सो यह ज्ञान का दोष है, यहाँ आचार्य कहते हैं कि ऐसे मत जानो, ज्ञान प्राप्त करके विषयों में रंजायमान होता है, सो यह ज्ञान का दोष नहीं है, यह पुरुष मंदबुद्धि है और कुपुरुष है, उसका दोष है, पुरुष का होनहार खोटा होता है, तब बुद्धि बिगड़ जाती है, फिर ज्ञान को प्राप्त कर उसके मद में मस्त हो विषयकषायों में आसक्त हो जाता है तो यह दोष-अपराध पुरुष का है, ज्ञान का नहीं है। ज्ञान का कार्य तो वस्तु को जैसी हो वैसी बता देना ही है, पीछे प्रवर्तना तो पुरुष का कार्य है, इस प्रकार जानना चाहिए।।१०।।

गाथा-१० पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो ज्ञान पाकर विषयासक्त होता है, वह ज्ञान का दोष नहीं है, कुपुरुष का दोष है :- क्या कहते हैं ? किंचित् जानपना हुआ और वह विषय के राग

के रस में एकाकार हो तो वह ज्ञान का दोष नहीं है। ज्ञान का स्वभाव तो जानना इतना ही है उसका तो। तदुपरान्त उसने राग में प्रेम किया, यह कुपुरुष का दोष है। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

णाणस्स णत्थि दोसो कुप्पुरिसाणं वि मंदबुद्धीणं।
जे णाणगव्विदा होऊणं विसएसु रज्जंति।।१०।।

आहाहा! **अर्थ :- जो पुरुष ज्ञानगर्वित...** जानपना पाकर गर्व करता है कि हमको ज्ञात हुआ है। अमुक को ज्ञान नहीं है, उसे ज्ञान नहीं है, जवाब देना नहीं आता। प्रश्नोत्तर के प्रश्न के उत्तर देना नहीं आता। हम तो एकदम फटाफट सबको जवाब दें, ऐसा हमें ज्ञान है। ऐसे ज्ञान के गर्ववाले (ने) मार डाला। आहाहा! **ज्ञानगर्वित...** पाठ है, हों! अन्दर। '**णाणगव्विदा**' गर्व का अर्थ ज्ञान में उसे जानपने का अभिमान हो गया है। जानपना कहते हैं, उसमें उसे अभिमान हो गया है कि हमें मानो ऐसा ज्ञान है। समझ में आया? समकिती अनुभवी धर्मी जीव हो, उसे भी ज्ञान हुआ, अपने ज्ञान में... समझ में आया? आहाहा!

ज्ञानगर्वित होकर ज्ञानमद से विषयों में रंजित होते हैं... वह तो अज्ञान का गर्व है, वही विषय और उसमें रत हो गया है, ऐसा कहते हैं। गजब बात, भाई! समझ में आया? धर्मात्मा अनुभवी समकिती ज्ञानी हो, आनन्द के अनुभव में हो, एक भी जानपना न हो, प्रश्न-उत्तर आदि देना विशेष नहीं आता हो और इसे आता हो तो इसे ऐसा लगता है कि देखो! मैं बढ़ गया हूँ। उसे कहाँ ऐसा है? ज्ञान हो तो कुछ जवाब देना आवे न। जवाब देना, न देना, वह दूसरी चीज़ है। उसके साथ क्या है? आहाहा! समझ में आया? **वे मन्दबुद्धि कुपुरुष है,...** वह ज्ञान का दोष नहीं। गर्व का दोष है। ज्ञान का दोष नहीं, इसका अर्थ कि ज्ञान तो जानने का स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। परन्तु उसमें अभिमान आया कि मैं जाननेवाला हूँ। उसे आता नहीं। वह मिथ्यादृष्टि का कुपुरुष का दोष है। इसकी विशेष बात करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१८४, गाथा- १० से १३, सोमवार, पौष कृष्ण १४, दिनांक २५-०१-१९७१

...वह तो कुशील है। राग चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का हो, परन्तु राग है, वह पर विषय की वस्तु है। उसमें जिसकी एकताबुद्धि है, वह ज्ञान का दोष नहीं परन्तु एकताबुद्धि करे, वह मिथ्यात्व का दोष है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **यह ज्ञान का दोष नहीं है, वे मन्दबुद्धि कुपुरुष हैं, उनका दोष है।** यह जानना इतना हुआ, उसमें कहीं दोष नहीं। परन्तु उसमें राग को जानकर, राग में ही एकत्वबुद्धि है, वह मिथ्यात्वबुद्धि कुपुरुष की मन्दबुद्धि का दोष है। समझ में आया?

पुरुष का होनहार खोटा होता है, तब बुद्धि बिगड़ जाती है,... पुरुष का होनहार ही जहाँ खोटा हो, उसकी बुद्धि बिगड़ जाती है। **फिर ज्ञान को प्राप्त कर उसके मद में मस्त हो...** जहाँ ज्ञान का उघाड़ हुआ हो, उसका उसे अभिमान हो जाता है। हमें ज्ञान हुआ, उघाड़ हुआ। ग्यारह अंग नौ पूर्व पढ़ा। परन्तु उस ज्ञान की अन्दर अधिकता भासे, मद भासे, उसे आत्मा ज्ञानस्वरूप भिन्न है, उसका भास नहीं है। समझ में आया? शीलपाहुड़ में जरा सूक्ष्म बात ली है। वस्तु जो ज्ञानानन्दस्वरूप, उसका ज्ञान होने से ज्ञान में शीलपना साथ में होता है। ज्ञान में शील; शील अर्थात् रागरहित स्वभाव का अनुभव साथ में होता है। चौथा गुणस्थान हो तो भी शील है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में भी शील है। क्योंकि जिसने स्वचैतन्य (को) विषय बनाकर स्वभाव में (जिसकी) एकाग्रता हुई है और राग से जिसका पृथक् भान वर्तता है, उसे समकितसहित शील कहा जाता है और उस ज्ञान को सुशील का ज्ञान कहा जाता है। परन्तु जो ज्ञान राग में एकत्व होकर पर में लाभ मानकर रुक गया हुआ ज्ञान है, वह अज्ञान कुशील ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? दिशा फेर से इसकी दशा फेर है, ऐसा कहते हैं।

ज्ञान को प्राप्त कर उसके मद में मस्त हो... हमको आता है, हम जानते हैं। क्या? परलक्ष्यी ज्ञान का उघाड़। **विषय-कषायों में आसक्त हो जाता है...** विषय-कषाय शब्द से राग है, वह परविषय है, उसमें आसक्त हो, वही मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? राग का विकल्प है न? सूक्ष्म में सूक्ष्म विकल्प, उसमें जहाँ अन्तर रुचि है,

उसे राग की, उस ज्ञान को कुशील ज्ञान कहते हैं। मिथ्यादृष्टि का ज्ञान कुपुरुष का ज्ञान है। समझ में आया?

यह दोष-अपराध पुरुष का है, ज्ञान का नहीं है। पुरुष का अर्थ उसकी श्रद्धा का दोष है। ज्ञान तो जानना ही इतना है परन्तु उसमें अभिमान-मद में आ जाये और हम जानते हैं... हम जानते हैं... आहाहा! परलक्ष्यीज्ञान का उघाड़, उसका मद, वही मिथ्यात्वभाव है। **ज्ञान का दोष नहीं है।** वह तो उसका मिथ्यात्व का दोष है। **ज्ञान का कार्य तो वस्तु को जैसी हो वैसी बता देना ही है,...** जैसी वस्तु है, वैसा बतलावे इतना। **पीछे प्रवर्तना तो पुरुष का कार्य है,...** राग में प्रवर्तना या राग से छूटकर ज्ञान में प्रवर्तना, वह तो अपना कार्य है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म में सूक्ष्म राग विकल्प-भक्ति का या गुण-गुणी के भेद का, उस विकल्प में वर्तना या विकल्परहित में वर्तना, वह उघाड़ होने के बाद का पुरुष-आत्मा का वह कार्य है। समझ में आया? यह कार्य न करे तो ज्ञानमात्र से कहीं आत्मा को लाभ है नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आगे कहेंगे, नरक में भी शील है। सातवें नरक में भी समकिती को शील है। क्योंकि विषय की रुचि छूट गयी है। आसक्ति हो भले, परन्तु रस गया है। राग का रस गया है। आहाहा! सूक्ष्म में सूक्ष्म राग के रस की रुचि है, वह ज्ञान कुशीलज्ञान है। वह विषय में ही रक्त है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : आप तो अधिक समझाने की...

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत बात तो हो गयी है। यह तो १०वीं गाथा का भावार्थ चलता है न! शील की व्याख्या अलग प्रकार की है।

अपना आनन्दस्वभाव, उसमें ज्ञान रुककर शुद्धता प्रगट करे, उसे सम्यग्दृष्टि का सुशीलपना कहा जाता है। ऐसा स्वविषय को छोड़कर उघाड़ के जानपने के मद में आकर उस विकल्प का ही विषय, राग का ही विषय बनाता है, वह कुशील ज्ञान है। मिथ्यात्वी का ज्ञान है, अज्ञान कुशीलभाव है। आहाहा! राग को स्वभाव के साथ मिलाकर व्यभिचारी ज्ञान कहा उसे। डॉक्टर! सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा!

राग है, वही महाविषय है-पर। उसके विषय में एकाकार है, ऐसा जो ज्ञान, उसे

कहते हैं कि अज्ञान है, वह तो कुशील है। स्वभाव शुद्ध के साथ, राग के साथ, उसने व्यभिचार किया। आहाहा! समझ में आया? वह पुरुष का ही उल्टा कार्य है, ऐसा कहते हैं। जानपने का काम नहीं। वह तो वस्तु बतला दे इतना ही। परन्तु उसका आत्मा राग के रस की एकता में जो ज्ञान पड़ा, वह मिथ्यात्वी का ज्ञान, मिथ्यात्वभाव है। सूक्ष्म भाव है, भाई! यह तो वीतरागमार्ग है। वीतरागमार्ग... राग को स्वीकार करे और वीतरागमार्ग हो, ऐसा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। क्योंकि भगवान आत्मा जिनस्वरूप है। वस्तु जिनस्वरूप है। जिन सो ही है आत्मा। वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। कारण कि वीतरागता पूर्ण प्रगटे कहाँ से? अन्तर में से। वीतरागस्वरूप है, उसकी रुचि छोड़कर, उससे विरुद्ध चाहे तो भक्ति का, दया, दान का, व्रत का कोई भी विकल्प हो, उसकी जिसे रुचि और दिशा में उसकी दशा है ऐसी, उसकी दिशा में लक्ष्य है, इसलिए उसकी दशा मिथ्यात्व की है। आहाहा! ऐई! ऐसी बात है, बापू! आहाहा! शील में तो आचार्य ने गजब बात की है! लो! कुशील और सुशील में कितना अन्तर होता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...यह ज्ञानस्वरूप भगवान... वह राग की एकता संसार प्रकृति है, वह संसार प्रकृति है। और राग की एकता टूटकर सम्यग्दर्शन स्वभाव का आश्रय होकर हुआ, वह मोक्ष प्रकृति है। अर्थात् कि मोक्ष देने का वह स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? यह मार्ग अलग। यह वीतरागमार्ग है। वीतराग अर्थात् वस्तु के स्वरूप का यह मार्ग है। वीतराग कोई पक्ष-वाड़ा नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, यह प्रवर्तना अर्थात् क्या कहा? कि जानने का ख्याल आया ज्ञान (में)। आत्मा में वर्तमान ज्ञान की दशा में क्षयोपशमरूपी परलक्ष्यी ख्याल आया। परन्तु वह ख्याल कहीं धर्म नहीं है। ऐई! वह ज्ञान परलक्ष्यी राग के विकल्प के व्यभिचार के साथ जुड़ जाता है। इसलिए उस ज्ञान को अज्ञान और कुशील ज्ञान, कु-शील, कु-रास्ते में गया वह तो।

भगवान! तू कौन है? वह तो राग के विकल्प बिना की चीज़ है। उस चीज़ का जहाँ ज्ञान होता है, वह तो राग से पृथक् हो जाता है। उसे विषय का एकपना नहीं रहता। विषय शब्द से पर राग के साथ एकपना नहीं रहता। और एकपना रहे तो वह ज्ञान ही

नहीं है। वह मिथ्याज्ञान है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! लो! है? **ज्ञान का कार्य तो वस्तु को जैसी हो वैसी बता देना ही है,...** बस इतना। अब, **पीछे प्रवर्तना तो पुरुष का कार्य है**। इतने में भर दिया। यह जानपने का राग के साथ विषय करके एकत्व होना या इस ज्ञान को स्वभाव के साथ विषय करके एकत्व होना, वह वर्तमान आत्मा का कार्य है। सूक्ष्म बात। पद्धति है न इसकी। रीति हो, वह आवे न! मार्ग तो जो हो, वह आवे। दूसरा कुछ आवे दुनिया को ऐसा लगे कि ऐसा तो समाज के लिये कठिन पड़ेगा।

मुमुक्षु : पहले तो निर्णय तो करे, फिर हाँ पाड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु निर्णय करने का इसे सत्य ही ऐसा है। सत्त्व वस्तु और सत् का सत्स्वरूप ही ऐसा है। उसमें दूसरा उसे हल्का करके बतलाना, वह वस्तु कहाँ रही इसमें? आहाहा! क्या हो? अन्तर में जब तक खटखटाहट खड़ी हो राग की और माने कि हमें ज्ञान है, हम धर्मी हैं, धर्म करते हैं। बापू! वह चीज़ दूसरी है।

कहते हैं, जानने में आने पर भी। इतनी बात, बस। उघाड़ हुआ परन्तु अब वह उघाड़ राग में प्रवर्तना या आत्मा में-स्वभाव में प्रवर्तना, वह पुरुष का वर्तमान पर्याय का कार्य है। समझ में आया? आहाहा! यह सब व्यवहार से काम होता है, इस सबको उड़ाते हैं, यहाँ तो शून्य लगाते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार यह कहते हैं न अभी। समयसार नाटक। निश्चय कहूँगा और शुद्ध व्यवहार कहूँगा। शुद्ध व्यवहार का अर्थ यह। स्वभाव में एकाग्र होने की दशा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह व्यवहार है। समयसार नाटक में दोपहर में आया था। दोपहर में वाँचन होता है उसमें (आया था)।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा वापस?

मुमुक्षु : शुद्ध व्यवहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह आया था, नहीं? अर्थ नहीं किया था परसों? १६वाँ। देखो!

कहौ शुद्ध निहचै कथा, कहौं शुद्ध विवहार।
मुकतिपंथकारन कहौं अनुभौको अधिकार॥

परसों कहा था। भूल गये, पण्डितजी! यहाँ समयसार नाटक में तो अनुभव का अधिकार कहते हैं। कहते हैं कि अनुभव क्या है? शुद्ध व्यवहार है। वस्तु है शुद्ध निश्चय त्रिकाल ज्ञायकभाव। वह निश्चय। वह भी कहूँगा। और '**कहौं शुद्ध विवहार**' क्या? '**मुकतिपंथकारन कहौं अनुभौको अधिकार।**' अनुभव, वही मुक्ति का कारण है। बाकी कोई मोक्ष का कारण और धर्म दूसरी चीज़ है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : परमार्थ वचनिका में यही लिखा है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही लिखा है न। निश्चय, वह द्रव्य है और व्यवहार, वह मोक्ष का मार्ग है। मोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार है, ऐसा कहा है। पर्याय साधना, वह पर्याय व्यवहार है। आहाहा! केवलज्ञान स्वयं व्यवहार है, मुक्त सिद्धपद व्यवहार है। पर्याय है न अवस्था? वह तो राग की क्रिया, व्यवहार और उससे आत्मा का धर्म प्राप्त हो। उल्टे भाव से सुलटा भाव आवे। ऐसी बात है। उल्टे घड़े में सब उल्टे रहें। घड़ा समझते हो न? उल्टा रहता है न? उल्टा रहे। सुलटे में सुलटा रहे।

'**कहौं अनुभौको अधिकार**' ऐसा कहा। अनुभव अधिकार हम समयसार नाटक में कहेंगे। क्योंकि वह शुद्ध व्यवहार है और वही मुक्ति का पन्थ है। दूसरा कोई मुक्ति का पन्थ है नहीं। व्यवहार-फ्यवहार मोक्षमार्ग को यहाँ उड़ा दिया। व्यवहार मोक्षमार्ग, वह कोई मार्ग है ही नहीं। एक ही मोक्षमार्ग है। आहाहा! समझ में आया? लोगों को अन्तर वस्तु का माहात्म्य नहीं आता न, और बाहर के माहात्म्य अनादि के आये हैं, इसलिए उसमें से इसे सुनना खटकता है अन्दर से। आहाहा! यह तो भारी ऊँचा मार्ग। ऊँचा नहीं, मार्ग ही यह है। ऊँचा और फिर नीचा, दो भाग कहाँ होंगे? आहाहा! सेठ!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग ही यह है। वहाँ से शुरु किया था परसों। भाई आये थे न, अपने केशुभाई!

'**मुकतिपंथकारन कहौं**' मुक्तिपन्थ का अर्थ, मुक्तिपन्थ का कारण नहीं परन्तु

मुक्तिपन्थ कारण। मुक्तिपन्थरूपी कारण अनुभव का अधिकार। वह मुक्ति का पन्थ है। सम्यग्दर्शन का यह मार्ग है। भगवान आत्मा शुद्ध स्वरूप त्रिकाली, उसका अन्तर आश्रय लेकर शक्ति में से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति का अंश निर्विकल्प रागरहित का जो भाव प्रगट हुआ, वह अनुभव और मोक्षमार्ग है। वह शुद्ध व्यवहार है। कहो, समझ में आया? फिर कहा न?

वस्तु विचार ध्यावतै, मन पावै विश्राम।
रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभौ याकौ नाम॥

आत्मा के आनन्द के रस का स्वाद आवे, इसका नाम अनुभव, इसका नाम मुक्ति का पन्थ, इसका नाम शुद्ध व्यवहार, इसका नाम मोक्ष का कारण। आहाहा! फिर रात्रि में कहा नहीं था?

अनुभव चिंतामनि रतन, अनुभव है रसकूप।
अनुभव मारग मोखकौ, अनुभव मोख सरुप॥

फिर पूरी बात नहीं ली थी। कहो, समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि जानना, इतना होने के उपरान्त आत्मा को किस दिशा में ढलना है, यह आत्मा का कार्य है, मूल तो ऐसा कहते हैं, भाई! जानना काम है, आत्मा इतना वह तो बतलाया कि यह आत्मा है। अब किस दिशा में ढलना, वह श्रद्धा का कार्य है, ऐसे ढलना या ऐसे ढलना, वह आत्मा का कार्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पण्डितजी! आहाहा! ऐसा मार्ग! अलौकिक बात है। लोगों के ख्याल में मूल द्रव्य क्या है और उस द्रव्य में अन्दर शक्ति कितनी और किस प्रकार की है, उसका माहात्म्य आया नहीं न, इसलिए पर्याय, राग और पुण्य का माहात्म्य, भक्ति और व्यवहार का माहात्म्य उसे हटता नहीं है। समझ में आया? लो! यह हुआ भावार्थ।

गाथा-११

आगे कहते हैं कि पुरुष को इस प्रकार निर्वाण होता है –

णाणेण दंसणेण य तवेण चरिएण सम्मसहिएण।
होहदि परिणिव्वाणं जीवाण चरित्तसुद्धाणं।।११।।

ज्ञानेन दर्शनेन च तपसा चारित्रेण सम्यक्त्वसहितेन।
भविष्यति परिनिर्वाणं जीवानां चारित्रशुद्धानाम्।।११।।

समकित–सहित चारित्र दर्शन ज्ञान तप–संपन्न के।
चारित्र शुद्धि पूर्णता पर मोक्ष होता जीव के।।११।।

अर्थ – ज्ञान–दर्शन–तप इनका सम्यक्त्व भावसहित आचरण हो, तब चारित्र से शुद्ध जीवों को निर्वाण की प्राप्ति होती है।

भावार्थ – सम्यक्त्व सहित ज्ञान–दर्शन–तप का आचरण करे, तब चारित्र शुद्ध होकर राग–द्वेषभाव मिट जावे, तब निर्वाण होता है, यह मार्ग है।।११।। (तप= शुद्धोपयोगरूप मुनिपना, यह हो तो २२ प्रकार व्यवहार के भेद हैं।)

गाथा-११ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि पुरुष को इस प्रकार निर्वाण होता है :-

णाणेण दंसणेण य तवेण चरिएण सम्मसहिएण।
होहदि परिणिव्वाणं जीवाण चरित्तसुद्धाणं।।११।।

'**सम्मसहिएण**' जोर यहाँ है।

अर्थ :- ज्ञान-दर्शन-तप इनका सम्यक्त्वभावसहित आचरण हो... जोर यहाँ है—सम्यक्त्वभावसहित। '**सम्मसहिएण**' है न? जिसका आत्मा अन्तर स्वभाव परमात्मस्वरूप, उसका आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव

सम्यग्दृष्टि सहित ज्ञान हो, दर्शन हो, संयम अर्थात् तप आदि हो। वह आचरे **तब चारित्र से शुद्ध...** तब स्वरूप की रमणता से शुद्ध हुआ आत्मा **शुद्ध जीवों को निर्वाण की प्राप्ति होती है।** उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। **एक होय तीन काल में परमार्थ का...** यह पंथ है। दूसरा कोई मार्ग है नहीं।

भावार्थ :- सम्यक्त्वसहित... देखो! जोर तो यहाँ देना है। जिसे आत्मद्रव्य अखण्ड अभेद परलक्ष्य छोड़कर स्वलक्ष्य के बन्धन में सम्यग्दर्शन हुआ। आहाहा! अन्तर्दृष्टि होने पर स्वविषय बनाने से, स्वध्येय को ध्यान में करने से-लेने से जो सम्यग्दर्शन हुआ, वह सम्यग्दर्शनसहित ज्ञान हो, चारित्र हो, तप हो, इच्छा निरोध आदि वह भाव **ज्ञान-दर्शन-तप का आचरण करे, तब चारित्र शुद्ध होकर...** लो! परन्तु सम्यग्दर्शनसहित हो तो चारित्र शुद्ध। नहीं तो चारित्र-फारित्र शुद्ध नहीं हो सकता। समझ में आया?

राग-द्वेषभाव मिट जावे... सम्यग्दर्शन अर्थात् पूरा द्रव्य वीतरागभाव, वस्तु पूरी वीतरागभाव का पिण्ड है। उसकी दृष्टि होने से वीतराग दृष्टि हुई। वह सम्यग्दर्शन। और वह वीतरागदृष्टि हुई इसलिए फिर वीतरागता स्थिरता हुई। वह हो तो स्थिरता होती है, ऐसा कहते हैं। वीतरागी स्वरूप त्रिकाली, ऐसा दृष्टि में आया, तब वह वीतरागी समकित हुआ। और ऐसे समकिती को अब स्थिरता वीतरागभाव अन्दर परिपूर्ण है, उसे सम्यग्दर्शन के भानसहित स्थिरता प्रगट होती है, तब वह चारित्र है। वह वीतराग चारित्र है। उसकी मुक्ति होती है। ऐसे जीव को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रवन्त को मुक्ति होती है। लो! समझ में आया?

निर्वाण पाता है, यह मार्ग है। यह मार्ग है। जिसका ध्येय ध्यान में स्थिर नहीं, कहते हैं कि जिसके ध्यान में राग का ध्येय है, उस मिथ्यादृष्टि को सम्यग्दर्शन नहीं, इसलिए ज्ञान और चारित्र उसे नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। जिसका ध्येय पलट गया है, अन्दर वस्तु का ध्येय बनाकर ध्यान किया है और सम्यग्दर्शन हुआ है, उसके अब ज्ञान, चारित्र, इच्छा निरोध तप आदि से चारित्र की शुद्धि होने से वीतरागभाव में वृद्धि करते हुए मुक्ति को पाता है। आहाहा! परन्तु यह अनादि का पराधीन है न। कोई दे देवे मानो कहीं से।

मुमुक्षु : वह तो बहुत रुचे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत रुचे। कोई दे दे। किसी की कृपा हो जाये। भगवान दे दे, गुरु दे दे, शास्त्र दे दे कुछ।

मुमुक्षु : धप्पा मारकर दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धप्पा मारे। धर्म तो नहीं देते थे। वह तो रोग के लिये कहते। लोग कहते। अब उसे रोग स्वयं को हुआ अन्दर। किडनी का रोग हुआ और अटैक आया एक तो ले गये वहाँ हॉस्पीटल में, दूसरे अटैक में गुजर गया। हॉस्पीटल में। स्वामी नारायण में नहीं अभी एक योगी था न बड़ा... परसों गुजर गया। आज जलानेवाले थे।

मुमुक्षु : नहीं, जला दिया। समाचार-पत्र में आ गया न। गत कल।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा! समाचार-पत्र में ऐसा था। जयहिन्द में सोमवार को जलानेवाले थे।

मुमुक्षु : फूलछाब में आ गया, जलाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : जलाया। वे नहीं आये हो। वहाँ से आनेवाले थे।

मुमुक्षु : आ गये अफ्रीका में से।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा। आ गये।

मुमुक्षु : लगभग एक लाख लोग इकट्ठे हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : ओहो!

मुमुक्षु : ६०-७० हजार।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहलाये बाहर। ४०-५० हजार हो तो लाख कहलाये। वह वहाँ कहाँ गिनते थे? अब उसके साथ क्या सम्बन्ध है? संख्या अधिक इकट्ठी हो न... यह तत्त्व का जहाँ भान नहीं, वहाँ सब थोथा-थोथा है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकर को स्वीकार करे और माने तो भी वह

विकल्प है। उससे कल्याण नहीं होगा। क्योंकि उसकी दिशा में अन्तर है। उसका परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य है। मोक्ष का मार्ग तो स्वद्रव्य के आश्रय से होता है। बड़ा अन्तर है। बहुत अन्तर है। जैन सम्प्रदाय में तत्त्व ऐसा सत्य है, उसकी भी इसे अभी खबर नहीं होती। दूसरे में तो है ही कहाँ? बात... कहाँ है? गप्प-गप्प उल्टे मारे हैं सबने। यह ११वीं कही।

गाथा-१२

आगे इसी को शील की मुख्यता द्वारा नियम से निर्वाण कहते हैं –

सीलं रक्खंताणं दंसणसुद्धाण दिढचरित्ताणं।
अत्थि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्तचित्ताणं।।१२।।

शीलं रक्षतां दर्शनशुद्धानां दृढचारित्राणाम्।
अस्ति ध्रुवं निर्वाणं विषयेषु विरक्तचित्तानाम्।।१२।।

हैं शील के रक्षक सु दर्शन शुद्ध दृढ़ चारित्रमय।
विषयों में पूर्ण विरक्त मन निर्वाण उसका है नियत।।१२।।

अर्थ **– जिन पुरुषों का चित्त विषयों से विरक्त है, शील की रक्षा करते हैं, दर्शन से शुद्ध हैं और जिनका चारित्र दृढ़ है, ऐसे पुरुषों को ध्रुव अर्थात् निश्चय से–नियम से निर्वाण होता है।**

भावार्थ **– विषयों से विरक्त होना ही शील की रक्षा है, इस प्रकार से जो शील की रक्षा करते हैं, उन ही के सम्यग्दर्शन शुद्ध होता है और चारित्र अतिचाररहित शुद्ध–दृढ़ होता है, ऐसे पुरुषों को नियम से निर्वाण होता है। जो विषयों में आसक्त हैं, उनके शील बिगड़ता है, तब दर्शन शुद्ध न होकर चारित्र शिथिल हो जाता है, तब निर्वाण भी नहीं होता है, इस प्रकार निर्वाण मार्ग में शील ही प्रधान है।।१२।।**

गाथा-१२ पर प्रवचन

आगे इसी को शील की मुख्यता द्वारा नियम से निर्वाण कहते हैं :- मोक्षमार्ग को।

सीलं रक्खंताणं दंसणसुद्धाण दिढचरित्ताणं।
अत्थि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्तचित्ताणं।।१२।।

अर्थ :- जिन पुरुषों का चित्त विषयों से विरक्त है,... विरक्त का अर्थ परविषय की दृष्टि छूट गयी है। राग का विकल्प है, वह पर विषय है। उससे जो विरक्त है। जो राग में रक्त था, वह मिथ्यात्वभाव और संसार था। वह राग का रक्तपना छूटकर स्वरूप में रक्त हुआ, वह विषय से विरक्त है। समझ में आया? विषय शब्द से परपदार्थ। विकल्प से लेकर पर सब ही। उसमें से जो विरक्त है। विकल्प की बुद्धि में से रुचि हट गयी है। और स्वविषय बनाकर जिसने आत्मा में एकाग्रता, सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है, उसका चित्त-मन पर से विमुख हो गया है। वास्तव में तो धर्मी को ऐसा कहते हैं कि वह व्यवहार से ही मुक्त हो गया है। तब विषय से विरक्त हुआ कहलाये। व्यवहार कौन सा? यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा ऐसे विकल्प से विरक्त हुआ है। उस पहलू से हट गया है। वस्तु के पहलू में चढ़ गया है, वह विषय से विरक्त है। बाहर के विषय छोड़ो, त्यागो, बातें हुआ करे। आहाहा! वह बात यहाँ नहीं है।

यहाँ तो स्वविषय में लीन, परविषय में लीन—दो की बात है। समझ में आया? शील की व्याख्या ही ऐसी की है। **विषयों से विरक्त है, शील की रक्षा करते हैं,...** देखो! उसे शील रखते हैं। रागरहित दशा को दृष्टिसहित रखते हैं। क्या कहा? आत्मा शुद्ध चिदानन्दमूर्ति वीतराग परमात्मस्वरूप है। क्योंकि आत्मा परमात्मा वीतरागरूप सर्वज्ञरूप होता है, ऐसा ही सर्वज्ञ और वीतरागपना आत्मा में पड़ा है। वह कहीं बाहर से नहीं आता। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर और वीतराग परमात्मा हुए, वे तो पर्याय में-हालत में-दशा में हुए। परन्तु वह दशा हुई कहाँ से? ऐसी महा सर्वज्ञ वीतरागदशा आयी कहाँ से? स्वयं ही सर्वज्ञ और वीतरागस्वरूपी आत्मा है।

भगवान आत्मा सर्वज्ञ और वीतरागस्वरूपी है। उसकी जहाँ दृष्टि हुई, (वहाँ)

विषय से विरक्त हो गया, कहते हैं। समझ में आया? परविषय से निवृत्त हो गया है। व्यवहार के विकल्प से दया, दान, भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा-राग से विरक्त हुआ है। समझ में आया? गजब! ऐसी व्याख्या जगत को कठिन पड़े। बापू! मार्ग तो यह है। जहाँ आगे राग के रस में रुचि है, वह विषय में रक्त है। परविषय में रक्त है। अनादि का है। वह की वह दशा। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, **पुरुषों का चित्त विषयों से विरक्त हैं, शील की रक्षा करते हैं,...** उसके साथ जो रागरहित दशा, जो रखता है, वीतरागभाव प्रगट हुआ है, उसे रखता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन सहित की बात है। **दर्शन से शुद्ध हैं...** वह सम्यग्दर्शन से शुद्ध है। **और जिनका चारित्र दृढ़ है...** अब स्वरूप में रमणता की चारित्र (दशा) बढ़ गयी है, वापस आगे। मार्ग ऐसा है, भगवान! परन्तु क्या हो? लोगों को बाहर के कारण निवृत्ति नहीं होती और बहुत निवृत्त हो तो वह पुण्य के परिणाम करे तो मुझे धर्म हो गया, (ऐसा मानता है)।

मुमुक्षु : शास्त्र में पुण्य धर्म कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह धर्म अर्थात् पुण्य धर्म अर्थात् व्यवहार धर्म। व्यवहार धर्म अर्थात् धर्म नहीं, उसे धर्म कहना, इसका नाम व्यवहार धर्म।

मुमुक्षु : ...लम्बा बहुत हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु व्यवहार का लक्षण ही यह है। जो जिसका स्वरूप नहीं, उसे उस रीति से कहना, इसका नाम व्यवहार। आता है या नहीं? मोक्षमार्गप्रकाशक (में) टोडरमलजी (कृत)। समझ में आया?

भगवान आत्मा परम आनन्द और अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द आत्मा है। वह परमानन्द के रस के कन्द में एकाकार होकर जो शुभ-अशुभ परिणाम के राग से विरक्त होकर स्वभाव में लीन होकर जो परिणाम प्रगट हों शुद्धोपयोग, उसे भगवान धर्म की शुरुआत और संवर कहते हैं। उसे पाप अटके हैं। संवर अर्थात् अटक जाना। समझ में आया? आहाहा! जो उपयोग स्वरूप धरी, ऐसा। जो आत्मा के जानने-देखने के परिणामरूपी शुद्ध उपयोग को धारे, स्वयं धारे - ऐसा कहते हैं। कर्म का अभाव हो और

धारे, ऐसा है नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? यहाँ तो कहे, भगवान की भक्ति करो तुम्हारे निर्जरा होगी, पुण्य होगा। भगवान की भक्ति की बहुत धुन लगाओ। भगवान तो परद्रव्य है। उनकी भक्ति का विकल्प तो राग है। उसमें धुन लगाकर कर्तापना हो तो मिथ्यात्व है। ऐसी व्याख्या जगत को कठिन पड़ती है। बापू! मार्ग तो यह है। जहाँ आगे राग के रस में रुचि है, वह विषय में रत है। पर विषय में रत है। अनादि का है, वह की वह दशा है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, **पुरुषों का चित्त विषयों से विरक्त है, शील की रक्षा करते हैं,...** उसके साथ जो रागरहित दशा रखता है। वीतरागभाव प्रगट हुआ है, उसे रखता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह सम्यग्दर्शनसहित की बात है। **दर्शन से शुद्ध हैं...** यह सम्यग्दर्शन से शुद्ध है। **और जिनका चारित्र दृढ़ है...** अब स्वरूप में रमणता की चारित्र (दशा) बढ़ गयी है फिर आगे, वह भी शील की उत्कृष्टता है। चारित्र, वह शील की उग्रता है। चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन (प्रगट होकर) राग की एकता टूटकर जो स्वरूप में स्थिरतारूपी शील प्रगट हुआ है, वह जघन्य पद में शील है और चारित्र है, वह उत्कृष्ट पद में शील है। स्थिरता, रमणता, वीतरागता जहाँ जमी है, वह उत्कृष्ट शील है। समझ में आया? अरे! बातें कठिन! बड़ी-बड़ी बातें करे परन्तु सुल्टा रास्ता न बतावे, और एक व्यक्ति ऐसा कहता है। मार्ग ही यह है, भाई! क्या हो? तेरा सत्साहेबा ही ऐसा है। सत् वीतराग सर्वज्ञस्वभावी, वीतरागभावी ऐसा तेरा स्वभाव है। और जिसने ध्येय बनाया और पर्याय तथा राग का ध्येय छूट गया, उसे नियम से शील है। सुशील है। आगे बढ़ने से उग्रशील प्रगट हुआ-स्थिरता-वीतरागता। ऐसा कहते हैं।

दर्शन से शुद्ध हैं और जिनका चारित्र दृढ़ हैं... उसने स्वरूप में स्वविषय बनाया है दर्शन में, उसमें जो स्थिर होता है। शुद्धता के आनन्द के चारित्र में स्थिर होता है, उसे दृढ़ चारित्र मुक्ति का कारण होता है। ऐसे भान बिना के व्रत-फ्रत लेकर बैठे (और माने कि) चारित्र है, वह सब बिना एक के शून्य हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **जिनका चारित्र दृढ़ है, ऐसे पुरुषों को ध्रुव निश्चय से-नियम से निर्वाण होता है।** निश्चित उसे केवलज्ञान होकर परमानन्द की प्राप्ति होगी। दूसरे किसी उपाय से नहीं, ऐसा कहते हैं। व्रत, तप और अमुक ऐसे विकल्प की लगनी से मुक्ति-फुक्ति नहीं। उससे संसारबन्धन

होकर स्वर्गादि में जाये, धूल में जाये। समझ में आया? '**अत्थि धुव**' ऐसा कहा न? निश्चित उसे मुक्ति प्राप्त होगी। जिसे मुक्तस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा, निमित्त से तो रहित है, राग से रहित है, वास्तव में तो एक समय की पर्याय से भी त्रिकाली ध्रुव है, वह वस्तु... रहित है। उसका जिसने आश्रय किया, विषय बनाया ध्यान में ध्येय बनाकर, उसे सम्यग्दर्शन की स्थिरता के अंशसहित का शीलपना प्रगट हुआ है। आगे बढ़ने से वह शील उग्रपने को पाता है, यह रमणता में चारित्र की उग्रता है। चारित्र मुक्ति का कारण है। समझ में आया? क्या मार्ग है, यह समझने का समय नहीं मिलता। प्रभु महाचैतन्य भगवान वीतराग स्वभाव से विराजमान प्रभु अनादि-अनन्त आत्मा है। नहीं... उसमें सुधारा है? १२वीं गाथा। दूसरा पद।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तो यह बराबर है। '**अस्ति ध्रुवं**' पहले में... है। संस्कृत में '**अत्थि धुव**' नीचे अस्ति किया है। वहाँ '**अत्थि**' किया, यहाँ... किया। '**अस्ति ध्रुवं निर्वाणं विषयेषु विरक्तचित्तानाम्**' जिसने परविषय का लक्ष्य छोड़ दिया है। विषय शब्द से रागादि पुण्यादि सब। और स्वलक्ष्य हुआ है, ऐसे शीलवन्त पुरुष को वह समकिती शीलवन्त है। भले विषय की आसक्ति हो, तथापि यह सम्यग्दर्शन, वह स्वयं शीलस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- विषयों से विरक्त होना ही शील की रक्षा है,... देखो! यह राग से एकता टूटना और स्वरूप में दृष्टि होना, वही शील की रक्षा है। आहाहा! अकेले शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, वह शील नहीं है। वह तो विकल्प है।

मुमुक्षु : शील तो देवलोक दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : देवलोक दे, उसमें क्या धूल हुई? देवलोक अर्थात् क्या? पृथ्वी का लोक। आत्मलोक दे? चन्दुभाई! बस, हो गया तब।

मुमुक्षु : ...यह बात सच्ची है। ऐसा बताकर उसकी रुचि छुड़ाना चाहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका अर्थ कि इतना पहले उसका प्रेम तो छोड़। ऐसा है। उसमें से तुझे स्वर्ग का लाभ होगा, ऐसा वहाँ बताना नहीं है। 'जो नव वाड विशुद्ध

से...' आता है न ? '...' का अर्थ ही यह है कि स्वरूप की दृष्टि होकर स्थिरता होकर ऐसा ब्रह्मचर्य पाले, उसकी वहाँ बात है। वह तो नव वाड से अनन्त बार पालन किया। परन्तु जो नव वाड विशुद्ध से। समझ में आया ? अन्दर शुद्ध चैतन्य द्रव्य का आश्रय करके जिसने ब्रह्मचर्य पालन किया है, 'भव उसका... फिर रहे।' एकाध-दो भव बाकी हो रागादि। उसकी मुक्ति ही होनेवाली है। आहाहा!

परन्तु जिसे अन्तर हृदय में राग का प्रेम है, उसे भोग का ही प्रेम है, विषय का ही प्रेम है, परद्रव्य का ही प्रेम है। आहाहा! राग का फल पुण्य और पुण्य के फल में धूल मिलेगी यह संयोग। उसमें रस एकाकार हो जायेगा, मिठास। उसे भोग और विषय की... भोग बाहर का छोड़ा, तथापि उसमें मिठास लगती है, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? यह सुन्दर रूपवान शरीर, सुन्दर स्त्री, सुन्दर अभिनन्दन वाणी। महिमा करते हैं न ? अभिनन्दन देते हैं न ? कितने अभिनन्दन उतारे हैं यहाँ। शान्तिभाई ने किया है ? किसने किया यह सब ? शान्तिभाई के... है न। रामजीभाई के समय से चला है परन्तु रामजीभाई कहाँ करने गये थे ? यह अभिनन्दन का किया है किसने ? शान्तिभाई ने ? देखो ! इन्होंने... किया था। वे शान्तिभाई करते थे न सब। अब यहाँ पड़े हैं। आहाहा! अरे! किसका अभिनन्दन, बापू ! स्वयं अपने आनन्द को अभिनन्दे, वह अभिनन्दन है। बाकी सब धूलधाणी बातें हैं।

कहते हैं कि जिसे बाहर के शब्दों में रस है, वह व्यभिचारी है, मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। जिसे आत्मा के आनन्द के रस का स्वाद नहीं और रस का भान नहीं और पर के रस के रास्ते चढ़ गया है। चाहे तो विषय भोगता न हो, बालब्रह्मचारी हो, तथापि वह व्यभिचारी है। आहाहा! प्रेमचन्दभाई ! मार्ग ऐसा है, भाई ! वस्तु की स्थिति ऐसी है। ऐई ! .... आहाहा! आचार्य ने शीलपाहुड़ करके तो गजब बात की है।

शील की रक्षा करते हैं, उन्हीं के सम्यग्दर्शन शुद्ध होता है... लो ! क्या कहते हैं ? जिसे स्वभाव की एकता की दशा है, उसे सम्यग्दर्शन शुद्ध है। जिसे सम्यग्दर्शन है, उसे स्वभाव की एकतादशा शीलरूप होती ही है, ऐसा कहते हैं। चारित्र बाद में। पाँचवें-छठवें की यहाँ बात नहीं। ब्रह्मस्वरूप आत्मा ब्रह्मानन्द भगवान आत्मा, उसका-ब्रह्मानन्द का आनन्द जिसे दृष्टि में आया है, वह आनन्द में अन्तर्दृष्टि में लवलीन है, उसे

शील है। उसे शील कहा जाता है। आहाहा! नवलभाई! ऐसा मार्ग है। कायर के कलेजे काँप उठें, ऐसा है। 'वचनामृत वीतराग के...' आता है न? 'परम शान्त रस मूल, औषध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल।' आहाहा! राग के प्रेमी कायरों को यह मार्ग कठिन लगता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भ्रमणा अभी पर में रस है। उसे आत्मा का रस कहाँ से आयेगा? उसे भ्रम है कि पर में सुख है, राग में सुख है, पुण्य में सुख है। आहाहा! यह त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की भक्ति में सुख है। ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। ऐसा कहते हैं यहाँ। कारण कि वह तो विकल्प है, विकल्प है वह राग है, राग है वह दुःख है, दुःख है वह जहर है। जयन्तीभाई! परन्तु भारी कठिन मार्ग भाई! मार्ग ही यह है, भाई! चैतन्य प्रभु भगवान अनाकुल अनन्त शान्ति आनन्द के रस का वह कन्द है। उसका रस जहाँ आवे, तब उसे सम्यग्दर्शन और शीलपना कहा जाता है। फिर भले चौथे गुणस्थान हो।

मुमुक्षु : नरक में भले न हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! नरक में। सातवें नरक का नारकी। समकित लेकर जाये नहीं और समकित लेकर निकले नहीं। परन्तु वहाँ समकित उत्पन्न होता है, उसे भी वहाँ शील है। आहाहा! समझ में आया?

शील की रक्षा करते हैं, उन्हीं के सम्यग्दर्शन शुद्ध होता है... स्वविषय में जिसकी एकता वर्तती है, उसे सम्यग्दर्शन शुद्ध होता है, ऐसा। आहाहा! राग में जिसकी एकता वर्तती है, उसे मिथ्यात्व की प्राप्ति होती है। आहाहा! गजब बात। नये लोगों को तो यह ऐसा लगे, चोट जैसा लगे मानो। ऐसा मार्ग होगा? सत्य का स्वरूप ही ऐसा है। सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव ने कहा हुआ और ऐसा है। कहते हैं कि **और चारित्र अतिचाररहित शुद्ध-दृढ़ होता है, ऐसे पुरुष को नियम से निर्वाण होता है।** ऐसा दृढ़ सम्यग्दर्शन में शीलवाला जीव आगे बढ़कर स्वरूप में विशेष लीनतारूपी शील-चारित्र प्रगट किया है, उसे मुक्ति होगी। निश्चय से उसे मुक्ति है। द्रव्य मुक्तस्वरूप का अनुभव हुआ, उसकी पर्याय में मुक्ति होनी ही है। ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जो विषयों में आसक्त हैं, उनके शील बिगड़ता है, तब दर्शन शुद्ध न होकर... देखो! यह विषय अर्थात् राग में जहाँ एकता है, उसका शील बिगड़े। वह आत्मा का स्वभाव बिगड़ा। **तब दर्शन शुद्ध न होकर...** उसे समकित नहीं होता। आहाहा! **चारित्र शिथिल हो जाता है,...** उसे स्वरूप में भी स्थिरता नहीं होती। चारित्र नहीं होता, ऐसा कहना है। शिथिल अर्थात् चारित्र नहीं होता। **तब निर्वाण भी नहीं होता है, इस प्रकार निर्वाणमार्ग में शील ही प्रधान है।** मोक्ष के मार्ग में तो शील ही प्रधान है। सम्यग्दर्शन, वह शील है। सम्यग्ज्ञान, वह स्वसन्मुख ढला हुआ, वह भी शील है। सम्यक्चारित्र उतने अंश में चौथे में प्रगट होता है। वे सब इनकार करते हैं न। यहाँ तो हाँ करते हैं। चौथे में शील है, ऐसा कहते हैं। स्वरूपाचरण है। क्या हो, उसे जँचा न हो। ऐसा कठिन लगता हो कि अरे! ऐसा सम्यग्दर्शन! सम्यग्दर्शन में उसे स्वरूप की स्थिरता शान्ति? परन्तु शान्ति आवे, वह स्वरूप की स्थिरता है, वह शान्ति है। अर्थात् चारित्र का भाग है। भले वह संयम का चारित्र न हो। यह तो पहले समकित की बात की है। पश्चात् संयमरूपी चारित्र स्वरूप में स्थिरता की जो दशा, वह उग्र बढ़ गयी, वह चारित्र है। उसे मुक्ति प्राप्त होती है। **मार्ग में शील ही प्रधान है।**

गाथा-१३

आगे कहते हैं कि कदाचित् कोई विषयों से विरक्त न हुआ और 'मार्ग' विषयों से विरक्त होनेरूप ही कहता है, उसको मार्ग की प्राप्ति होती भी है, परन्तु जो विषय सेवन को ही 'मार्ग' कहता है, तो उसका ज्ञान भी निरर्थक है –

विसएसु मोहिदाणं कहियं मग्गं पि इट्ठदरिसीणं।
उम्मग्गं दरिसीणं णाणं पि णिरत्थयं तेसिं।।१३।।

विषयेषु मोहितानां कथितो मार्गोऽपि इष्टदर्शिनां।
उन्मार्गं दर्शिनां ज्ञानमपि निरर्थकं तेषाम्।।१३।।

विषयों में मोहित भले पर है इष्ट दर्शी मार्ग भी।
उन्मार्ग-दर्शी जीव का तो निरर्थक है ज्ञान भी।।१३।।

अर्थ **– जो पुरुष इष्ट मार्ग को दिखानेवाले ज्ञानी हैं और विषयों से विमोहित हैं तो भी उनको मार्ग की प्राप्ति कही है, परन्तु जो उन्मार्ग को दिखानेवाले हैं, उनकी तो ज्ञान की प्राप्ति भी निरर्थक है।**

भावार्थ **– पहिले कहा था कि ज्ञान और शील के विरोध नहीं है और यह विशेष है कि ज्ञान हो और विषयासक्त होकर ज्ञान बिगड़े तब शील नहीं है। अब यहाँ इस प्रकार कहा है कि ज्ञान प्राप्त करके कदाचित् चारित्रमोह के उदय से (उदयवश) विषय न छूटे वहाँ तक तो उनमें विमोहित रहे और मार्ग की प्ररूपणा विषयों के त्यागरूप ही करे, उसको तो मार्ग की प्राप्ति होती भी है, परन्तु जो मार्ग ही को कुमार्गरूप प्ररूपण करे विषय-सेवन को सुमार्ग बतावे तो उसकी तो ज्ञान-प्राप्ति भी निरर्थक ही है, ज्ञान प्राप्त करके भी मिथ्यामार्ग प्ररूपे उसके ज्ञान कैसा ? वह ज्ञान मिथ्याज्ञान है।**

यहाँ यह आशय सूचित होता है कि सम्यक्त्वसहित अविरत सम्यग्दृष्टि तो अच्छा है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि कुमार्ग की प्ररूपणा नहीं करता है, अपने को (चारित्रदोष से) चारित्रमोह का उदय प्रबल हो, तबतक विषय नहीं छूटते हैं, इसलिए अविरत है परन्तु जो सम्यग्दृष्टि नहीं है और ज्ञान भी बड़ा हो, कुछ आचरण भी करे, विषय भी छोड़े और कुमार्ग का प्ररूपण करे तो वह अच्छा नहीं है, उसका ज्ञान और विषय छोड़ना निरर्थक है, इस प्रकार जानना चाहिए।।१३।।

गाथा-१३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि कदाचित् कोई विषयों से विरक्त न हुआ... यह वापस दूसरी शैली ली। वह विरक्त हुआ, वह राग की रुचि से विरक्त हुआ, ऐसा था। यहाँ आसक्ति से विरक्त नहीं, अब ऐसा लेना है। **आगे कहते हैं कि कदाचित् कोई विषयों से विरक्त न हुआ...** यह विरक्ति, विरक्ति के दो भेद। एक परविषय रागादि है, उससे बाहर छूटा नहीं, वह मिथ्यादृष्टि। अब परविषय से छूटा है परन्तु उसकी आसक्ति छूटी नहीं।

मुमुक्षु : चारित्र की...

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र की... समझ में आया?

मुमुक्षु : आसक्ति का मतलब...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राग है न, आसक्ति चारित्र की। चारित्रमोह में-निमित्त में जुड़ने से राग, विषयभोग की वासना है। समकिती है, ज्ञानी है, वासना है। उसे मार्ग नहीं बताते। दोष है, अधर्म है। समझ में आया?

विरक्त न हुआ और मार्ग विषयों से विरक्त होनेरूप ही कहता है,... देखो! मार्ग तो ऐसा बताते हैं कि यह पर जो आसक्ति है, उसका लक्ष्य छोड़कर स्वरूप में स्थिर होगा, तब मुक्ति होगी। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ, इसलिए मुक्ति होगी—ऐसा नहीं। ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? वस्तु का स्वरूप जैसा है, वैसा विकल्प के भागरहित अकेला निर्विकारी भाग वीतराग रह जाता है। उसका आश्रय करके जो दृष्टि हुई, वह शील हुआ। वह तो विषय से अर्थात् पर रागादि व्यवहार के विषय से विरक्त हुआ। दृष्टि की अपेक्षा से। परन्तु अभी आसक्ति छोड़ी नहीं, तथापि मार्ग तो है, वह बताते हैं। ऐसा नहीं कि यह भोग है, वह हमारे निर्जरा का कारण है। समकिती को भोग आता है न शास्त्र में? ऐई! सम्यग्दृष्टि का भोग निर्जरा का हेतु है। ऐसा नहीं होता, सुन न। आसक्ति तो आसक्ति ही है। दोष, वह दोष ही है।

मुमुक्षु : बन्ध का ही कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्ध का ही कारण है। लिखता है न वह रजनीश। भोगानन्द में ब्रह्मानन्द है। धूल भी नहीं, जहर है। सुन न! ऐसा उल्टा कहाँ से? ऐई! तुम्हारा रजनीश कहता था एक बार। पूर्व की अपेक्षा से। यह तो पूर्व के... उसका भतीजा पैसा बहुत देता। लालचन्दजी। भोगानन्द में ब्रह्मानन्द है ऐसा... गजब बात है! अर र र! अरे! समकिती को भी राग में उसे अस्थिरता आ जाती है, तो भी रस नहीं है, रुचि नहीं है। परन्तु वह राग काले नाग जैसा दिखता है। आहाहा! उपसर्ग आया है... उपसर्ग आया... ऐसा जाने। आहाहा! समझ में आया? उसका आदर नहीं, रस नहीं, रुचि नहीं; आसक्ति रह गयी। उसे वह निर्दोष नहीं बतलाता। वह सदोष है। आहाहा! राग का छोटे में छोटा कण हो, परन्तु वह दोष है।

कहते हैं कि **और मार्ग विषयों में विरक्त होनेरूप ही कहता है, उसको मार्ग की प्राप्ति होती भी है...** उसे चारित्र प्राप्त होगा, ऐसा कहते हैं। मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान तो है परन्तु आसक्ति है, उसे दोष बताते हैं। उसे मार्ग नहीं। यह बीच में से निकल जायेगा, तब स्थिरता होगी, तब चारित्र होगा, तब मुक्ति होगी। ऐसा जो प्ररूपित करता है, उसे चारित्र की प्राप्ति होगी, ऐसा कहते हैं। **मार्ग की प्राप्ति होती भी है परन्तु विषय-सेवन को ही मार्ग कहता है...** भोग में समकिती को भी निर्जरा होती है, ऐसा नहीं होता, भाई! वह तो शुद्धि का जोर बतलाना है। द्रव्य की शुद्धि है, इसलिए वह आकर स्थिर हो जाता है, इतना। परन्तु अन्दर जो आसक्ति का राग है, वह दोष है, बन्धन का कारण है, छोड़नेयोग्य है। ऐसा है।

मुमुक्षु : श्रद्धा में ही ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा में ऐसा है।

जो विषय-सेवन को ही मार्ग कहता है तो उसका ज्ञान भी निरर्थक है :- उसका ज्ञान भी सच्चा नहीं। विशेष कहेंगे, लो! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१८५, गाथा-१३-१४, बुधवार, माघ शुक्ल १, दिनांक २७-०१-१९७१

शीलपाहुड़, अष्टपाहुड़ में शीलपाहुड़। १३वीं गाथा चलती है। इसका अर्थ फिर से लेते हैं। अर्थ तो चल गया है परन्तु भावार्थ (लेंगे)।

अर्थ :- जो पुरुष इष्ट मार्ग को दिखानेवाले ज्ञानी हैं... क्या कहते हैं? **इष्ट मार्ग को दिखानेवाले...** अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्यद्रव्य आनन्द, पुण्य-पाप के राग से, विकल्प से रहित ऐसा मार्ग बताते हैं, वह इष्ट मार्ग है। पुण्य और पाप, शुभ-अशुभभाव में धर्म बताते हैं, वह अनिष्ट कुमार्ग है। शब्द पड़ा है न? **'इट्ठदरिसीणं'**, **'इट्ठदरिसीणं'**। **जो पुरुष इष्ट मार्ग को दिखानेवाले ज्ञानी हैं...** अपना निज स्वरूप शुभ-अशुभराग से रहित है, ऐसा मार्ग दिखाते हैं। पुस्तक है या नहीं? सेठ! पुस्तक वहाँ से नहीं लाये हो?

नहीं है ? १३वीं गाथा है, शीलपाहुड़। श्लोक है, अर्थ है, अर्थ उसका पहले। १३वीं गाथा।

जो पुरुष इष्ट मार्ग को दिखानेवाले ज्ञानी हैं और विषयों से विमोहित हैं तो भी उनको मार्ग की प्राप्ति कही है,... क्या कहते हैं ? थोड़ी सूक्ष्म बात है। जो कोई पुरुष इष्ट मार्ग (अर्थात्) पुण्य-पाप का विकल्प जो राग है, उससे रहित आत्मधर्म है। ऐसा बताते हैं और **विषयों से विमोहित हैं...** विषय में भोग में आसक्ति है। परन्तु विषय की, राग की रुचि नहीं है। सूक्ष्म बात है। सम्यग्दृष्टि जीव सत्य मार्ग कहते हैं। क्योंकि उसकी दृष्टि में जो कोई विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध का रागादि है, उससे भिन्न मेरी चीज़ है, ऐसा मार्ग बताते हैं और ऐसा मार्ग अन्दर रखते हैं। प्ररूपणा भी वही करते हैं कि राग जो विकल्प है, शुभराग, उससे धर्म नहीं होता। समझ में आया ? ऐसी श्रद्धा राग के विकल्प से रहित अपना चैतन्य स्वभाव, उसकी अनुभव दृष्टि है। परन्तु विषय में अभी आसक्त है। १३वीं गाथा का भावार्थ, शीलपाहुड़, शील। समझ में आया ? पाठ में है, देखो ! '**इट्ठदरिसीणं**'। है न मूल ? कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है। '**इट्ठदरिसीणं**'। पहले पद का अन्तिम शब्द।

जो कोई आत्मा, पुरुष का अर्थ आत्मा **इष्ट मार्ग को दिखानेवाले ज्ञानी हैं,...** आत्मा में धर्म ऐसे होता है कि शुभ-अशुभभाव जो विकल्प है, उससे रहित अपने स्वभाव की दृष्टि करने से धर्म होता है। इसके अतिरिक्त कभी कोई धर्म होता नहीं। ऐसा मानते हैं और ऐसा बताते हैं।

मुमुक्षु : वह इष्ट मार्ग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इष्ट मार्ग है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... करते हैं तो क्या है ? सत्य असत्य हो जाता है ? मार्ग है, देखो ! क्या लिखा है ?

जो पुरुष... ऐसा शब्द है न ? **इष्ट मार्ग को दिखानेवाले...** मूल पाठ में '**इट्ठदरिसीणं**' कुन्दकुन्दाचार्य का शब्द है। और ज्ञानी है। उसको ज्ञानी कहते हैं। जो कोई आत्मा

अपना आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्यमूर्ति की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। राग की कोई क्रिया व्यवहार दया, दान, व्रतादि के परिणाम से धर्म नहीं होता और उससे समकित नहीं होता।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा बताते हैं, वह ज्ञानी कदाचित् विषय में विमोहित भी है। विषय के भोग की आसक्ति है। समझ में आया? भरत चक्रवर्ती, श्रेणिक राजा इत्यादि। भरत चक्रवर्ती को ९६ हजार स्त्रियां थीं। भोग की आसक्ति थी, रुचि नहीं थी। आसक्ति में रस नहीं था। अपना आत्मा आनन्द है, शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु चैतन्य ज्ञानस्वरूपी, उसके आनन्द में रुचि थी और प्ररूपणा भी ऐसे मार्ग की करते थे। समझ में आया?

श्रेणिक राजा समकिती थे। विषयभोग छूटे नहीं थे, चारित्र नहीं था और नरक का आयुष्य पहले बँध गया। अभी नरक में ८४००० वर्ष की स्थिति में है। परन्तु आत्मज्ञान प्राप्त किया और उसमें तीर्थंकरगोत्र बँध गया। वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होंगे। श्रेणिक राजा अभी पहली नरक में है। ८४००० वर्ष की स्थिति में है। वहाँ से निकलकर, जैसे महावीर परमात्मा अन्तिम तीर्थंकर हुए, ऐसे आगामी चौबीसी में प्रथम तीर्थंकर होंगे। क्योंकि उसने, आत्मा आनन्दमूर्ति शुद्ध चैतन्य मेरे में सुख है, पुण्य के रागादि में सुख नहीं, धर्म नहीं, धर्म का कारण नहीं—ऐसी अन्तर्दृष्टि हुई और विषय का आसक्तिभाव छूटा नहीं। **तो भी उनको मार्ग की प्राप्ति कही है।** देखो! उसे मार्ग की प्राप्ति होगी, चारित्र होगा और केवलज्ञान होगा। समझ में आया? है? **विषयों से विमोहित है तो भी उनको मार्ग की प्राप्ति कही है,...** आहाहा! क्योंकि अन्दर में आत्मा में आनन्द के रस का समकित दर्शन हुआ है तो विषय में प्रेम है, परन्तु विषय में रस नहीं है। उसमें सुख है, राग भाग में सुख है, ऐसी बुद्धि नाश हो गयी है। अपने में धर्म और आनन्द है, ऐसी बुद्धि का भान अन्तर सम्यग्दर्शन होने से। राग का विकल्प सूक्ष्म राग हो, परन्तु उसके साथ एकत्वबुद्धि छूट गयी है। आसक्ति छूटी नहीं। पण्डितजी! बहुत सूक्ष्म, भगवान! मार्ग सूक्ष्म है, प्रभु! ओहो! दुनिया को सुनने मिले नहीं। भाईसाहब कहते हैं, कोई सुनानेवाले मिले नहीं। बात तो ऐसी चीज़ है, भैया! आहाहा! ऐसी पात्रता हो तो सुनने मिले बिना रहे नहीं।

यह तो सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा का मार्ग है, अन्य का यह मार्ग नहीं है। कुन्दकुन्दाचार्य भगवान आचार्य थे, मुनि थे, आत्मध्यानी आनन्द में रहनेवाले थे। शास्त्र (रचना का) विकल्प आया, शब्दों से शास्त्र बन गया। उसमें कहते हैं, जो कोई आत्मा, भले स्त्री का आत्मा हो, स्त्री देह... देह। स्त्री देह है, आत्मा स्त्री नहीं है। वह तो देह का आकार है, स्त्री-पुरुष का। यह तो मिट्टी जड़ का है, आत्मा का नहीं। आत्मा उसरूप कभी होता ही नहीं। स्त्री का देह या पुरुष के आकार जड़ मिट्टीरूप होता ही नहीं। ये तो जड़रूप है। तो कोई पुरुष अर्थात् आत्मा, ऐसे लेना। कोई भी आत्मा इष्ट मार्ग के दिखानेवाले ज्ञानी है। भले स्त्री हो, परन्तु जिसमें आत्मदर्शन प्रगट हुआ हो, सम्यग्दर्शन हुआ हो और राग की आसक्ति छूटी न हो। स्त्री भी सम्यग्दृष्टि हो। शादी भी करे। होता है या नहीं? तीर्थंकर की ९६ हजार स्त्री थी। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ तीर्थंकर थे, चक्रवर्ती थे और कामदेव थे। तीनों पुरुष। अन्तर में आत्मा, पुण्य-पाप का विकल्प जितना रागभाव है, सब दु:खदायक है, बन्ध का कारण है, मेरी चीज़ उससे भिन्न है। ऐसा अन्तर में अनुभव का, आत्मा के आनन्द का भान सम्यग्दर्शन में हुआ है।

कहते हैं कि मार्ग सत्य बताते हैं। भैया! राग में धर्म नहीं। राग ही विषय है वास्तव में तो। शुभराग पुण्य हो या पापभाव हो, दोनों दु:खदायक है। वह धर्म नहीं। वह दु:खदायक (है और) धर्म का कारण भी नहीं। भगवान आत्मा राग से भिन्न अपना सच्चिदानन्द स्वरूप चित् स्वरूप, ऐसी अन्तर्दृष्टि हुई तो राग से धर्म मनाते नहीं। उसको आसक्ति का राग छूटा नहीं परन्तु राग से धर्म मनाते हैं, ऐसा नहीं।

विषयों से विमोहित हैं,... समकिती है, आत्मज्ञानी है। विषय में आसक्ति का भाव छूटा नहीं। **तो भी उनको मार्ग की प्राप्ति कही है,...** तो भी उनको मार्ग की प्राप्ति होती है, उसको चारित्र होगा, केवलज्ञान होगा और मोक्ष हो जायेगा। समझ में आया? **परन्तु जो उन्मार्ग को दिखानेवाले हैं...** यह दूसरा पद है। '**उम्मग्गं दरिसीणं**'। कोई भी प्राणी त्यागी हो, व्रती हो, मुनि हो, ऐसा नाम धारणकर क्रिया करते हो, परन्तु राग की क्रिया जो व्यवहार की है, उसको धर्म बताते हैं, वह उन्मार्ग को दिखानेवाला है। **उन्मार्ग को दिखानेवाले हैं, उनको तो ज्ञान की प्राप्ति भी निरर्थक है**। आहाहा! वह दुनिया को

समझाये, कहते हैं कि उसका ज्ञान प्राप्त करना निरर्थक है। पण्डितजी! भगवान आत्मा चैतन्यस्वभावी, वह तो आनन्द का धाम प्रभु आत्मा है। उसमें विकल्प उठते हैं, व्यवहार का दया, दान, शुभादि का, वह विकार है, दु:ख है। उसकी रुचि छूटकर धर्मात्मा की अन्तर आनन्द की रुचि हुई है तो पर में से, सारे जगत से रुचि हट गयी है। ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव विषय की आसक्ति छोड़ता नहीं, छोड़ सकता नहीं। मार्ग तो ऐसा है, ऐसा यथार्थ मानते हैं और प्ररूपते हैं। तो मार्ग की प्राप्ति है। उसको चारित्र होगा और थोड़े काल में केवलज्ञानी होगा। परन्तु जो **उन्मार्ग को दिखानेवाले हैं, उनको तो ज्ञान की प्राप्ति भी निरर्थक है।** शास्त्र पढ़ना (आदि निरर्थक है)।

भावार्थ :- उसका विशेष (अर्थ) करते हैं। पण्डित जयचन्द्रजी है न? जयपुर के पण्डित जयचन्द्र हुए। बड़े पण्डित। पहले तो गृहस्थ भी बहुत अच्छे थे। टोडरमलजी, बनारसीदास, द्यानतराय, दौलतराम। बहुत आत्मज्ञानी, ध्यानी। भान था। गृहस्थाश्रम हो। राग है। परन्तु वस्तु की दृष्टि में थोड़ा भी फर्क होता नहीं। कहते हैं कि **पहिले कहा था...** पण्डित जयचन्द्रजी स्पष्टीकरण करते हैं। **ज्ञान के और शील के विरोध नहीं है।** ज्ञान में और शील में विरोध नहीं है। क्या कहा है? पहले आ गया है। दूसरी गाथा में आ गया है। **ज्ञान के और शील के विरोध नहीं है।** उसका अर्थ क्या? ज्ञानस्वरूप चैतन्य भगवान, उसका ज्ञान हुआ तो उसमें विकल्प जो राग है, उसमें एकत्व टूटकर ज्ञान हुआ है। समझ में आया?

चैतन्य नूर प्रभु, चैतन्य के प्रकाश का पूर प्रभु आत्मा, उसमें जो रागादि है, विकल्प-सूक्ष्म विकल्प हो, गुण-गुणी का भेद। गुणी प्रभु आत्मा और उसका आनन्द आदि गुण, उसके भेद का विकल्प जो उठता है, उस विकल्प की एकता ज्ञानी को टूट गयी है। आहाहा! उसका नाम शील है। समझ में आया? **ज्ञान के और शील के विरोध नहीं है।** अर्थात् जहाँ ज्ञान है, वहाँ शील है। अर्थात् शील की व्याख्या क्या? वह पहले आ गया है। राग से हटकर अपना शुद्ध वीतरागस्वभाव की दृष्टि हुई तो आत्मा की श्रद्धा हुई और राग के अभाव से स्थिरता का अंश भी हुआ। सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान में। सम्यग्दृष्टि को शीलवन्त कहते हैं। समझ में आया? पंचेन्द्रिय का विषय, स्त्री आदि का विषय हो, राग हो, फिर भी अन्तर में उस राग से पृथक् होकर स्वभाव में एकता हुई है,

वही उसका शील है। यह पहले आ गया है। समझ में आया? चैतन्य भगवान आत्मा शुद्ध, उसकी दृष्टि हुई तो इतना तो अन्दर में राग से भिन्न होकर ज्ञान और वैराग्य शक्ति अन्दर में प्रगट हुई है, वही शील है। समझ में आया? **ज्ञान के और शील के विरोध नहीं है।** पहले ऐसा कहा था।

और यह विशेष है कि ज्ञान हो और विषयासक्त होकर ज्ञान बिगड़े... क्या कहते हैं? अपने में ज्ञान हुआ और यदि ज्ञान राग में एकत्व हो, पुण्य के विकल्प में ज्ञान एकत्व हो तो ज्ञान बिगड़े-मिथ्यादृष्टि हो जाये। आहाहा! सत्य बात बहुत सूक्ष्म है। अन्दर में भगवान आत्मा चैतन्यस्वभावी परमात्मा अपना निज स्वरूप, उसका ज्ञान करके और वह ज्ञान राग की एकता करे तो वह ज्ञान कुशील ज्ञान है, अज्ञान है। है? **ज्ञान हो और विषयासक्त होकर...** यहाँ विषयासक्त का अर्थ-विषय अर्थात् राग की एकता, उसका नाम विषयासक्त है। तब **ज्ञान बिगड़े...** शुभराग से भी मुझे लाभ होगा, शुभराग मेरी चीज़ है, ऐसी मान्यता में ज्ञान बिगड़ गया, मिथ्यादृष्टि हो गया। समझ में आया? **तब शील नहीं है।** अपने में स्वभाव की दृष्टि और अनन्तानुबन्धी का अभाव, ऐसा शील मिथ्यादृष्टि को होता नहीं। राग का एकत्व माननेवाला, राग भले पुण्यभाव हो परन्तु वह बन्धस्वभावी भाव है। समझ में आया? उसका एकत्व माननेवाला, उसका ज्ञान बिगड़ गया। चाहे तो ग्यारह अंग पढ़ा हो, शास्त्र, हजारों शास्त्र कण्ठस्थ किये हों, परन्तु अन्दर सूक्ष्म राग के साथ अन्दर एकता है (तो) ज्ञान बिगड़ गया। समझ में आया?

अब यहाँ इस प्रकार कहा है... अब यहाँ दूसरी बात करते हैं। **ज्ञान प्राप्त करके कदाचित् चारित्रमोह के उदय से (-उदयवश) विषय न छूटे...** देखो! सम्यग्ज्ञान प्राप्त करके, अपना शुद्ध स्वरूप वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा है। आत्मा तो वीतरागमूर्ति अन्दर है, उसको आत्मा कहते हैं। राग, वह आत्मा नहीं; वह तो अनात्मा है। आहाहा! चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प है, वह तो राग है, अनात्मा है, आत्मा नहीं। आहाहा! जगत को वीतरागमार्ग कैसा है, सुनने में आया नहीं। समझे कैसे और रुचि तो कहाँ से करे? आहाहा!

कहते हैं कि आत्मज्ञान हुआ। राग से भिन्न होकर अपना निज स्वरूप की अनुभव दृष्टि हुई, **चारित्रमोह के उदय से (-उदयवश) विषय न छूटे...** अपने पुरुषार्थ

की कमजोरी के कारण विषयभोग की आसक्ति का राग छूटे नहीं। **वहाँ तक तो उनमें विमोहित रहे...** राग में आसक्त रहे। **और मार्ग की प्ररूपणा विषयों के त्यागरूप ही करे...** आसक्ति मुझे होती है। वह आसक्ति त्यागने योग्य है। आसक्ति से धर्म नहीं। समझ में आया? दृष्टि के अन्तर में बहुत फर्क है। सेठ! कमजोरी से (होता है)। कमजोरी का भान है। मैं तो कमजोरी राग से रहित मेरी चिदानन्द घन आत्मदृष्टि है। आहाहा! सम्यग्दर्शन अर्थात् क्या चीज़ है! अभी तो धर्म की पहली सीढ़ी। समझ में आया? कहते हैं कि विषय में **विमोहित रहे और मार्ग की प्ररूपणा विषयों के त्यागरूप ही करे...** मार्ग की प्ररूपणा करे कि राग का त्याग करना, वही धर्म है। अपने स्वभाव में रागरहित स्थिरता करना, वह धर्म है। बराबर है? पण्डितजी! आहाहा! **मार्ग की प्ररूपणा विषयों के त्यागरूप ही करे...** विषय अर्थात् राग। अन्दर राग है न? राग है, वही विषय है। एक ओर आतमराम और एक ओर राग से लेकर पूरा गाँव। अन्तर्दृष्टि में राग का आश्रय छूट गया है। दृष्टि में तो भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं, ऐसे आत्मा का आश्रय अन्दर धर्मी को हो गया है। समझ में आया? आहा!

कहते हैं, मार्ग की प्ररूपणा तो राग का त्याग की ही करे। राग सूक्ष्म हो तो भी लाभदायक है नहीं, ऐसी प्ररूपणा करे। **उसको तो मार्ग की प्राप्ति होती भी है,...** उसे तो चारित्र होगा, क्रमशः स्वरूप में रमणता (होकर) केवलज्ञान प्राप्त करेगा। क्योंकि सम्यग्दर्शन निर्मल है। समझ में आया? शुभराग से भी धर्म मानते नहीं। **परन्तु जो मार्ग ही को कुमार्गरूप प्ररूपण करे...** देखो! बहुरि अर्थात् और। जो मार्ग को कुमार्गरूप प्ररूपण करे-राग को ही धर्म बताये, विषयसेवन का कुमार्ग बताये, राग के सेवन से धर्म होगा, ऐसा बताते हैं, विषय शब्द का अर्थ यहाँ राग है। स्वविषय छूटकर परविषय में लीन है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **विषय-सेवन को सुमार्ग बतावे...** राग के कारण से अपना धर्म होगा, ऐसे परविषय से धर्म बताते हैं, वह विषयसेवन को ही मार्ग बताते हैं। **तो उसकी तो ज्ञान-प्राप्ति भी निरर्थक ही है,...** वह ज्ञान जानना हुआ, निरर्थक है, नुकसानकारी है। अपने हाथ में तलवार हो तो अपना ही गला काटते हैं। आहाहा! उसे भगवान वीतरागमार्ग स्वरूप भगवान आत्मा का अपना निज वर्तमान में वीतरागस्वरूप ही आत्मा है, ऐसी दृष्टि नहीं करके, वह राग का कण है, उससे भी लाभ होगा, तो

विषयसेवन की ही उसकी बुद्धि है। मार्ग तो यह है। **तो उसकी तो ज्ञान-प्राप्ति भी निरर्थक ही है।**

ज्ञान प्राप्त करके भी मिथ्यामार्ग प्ररूपे... शास्त्र का ज्ञान करके मिथ्यामार्ग प्ररूपे। वीतरागस्वभाव का धर्म न बताये और राग की क्रिया से धर्म होगा, ऐसा बतावे। **उसको ज्ञान कैसा?** उसको ज्ञान क्यों कहें? वस्तु ऐसी है, भगवान! महँगी पड़े, कठिन लगे, मार्ग तो ऐसा है। डालचन्दजी!

मुमुक्षु : राग छूटना चाहिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग की एकता छूटनी चाहिए। राग तो है, आत्मा है, परन्तु आस्रव से—राग से मुझे धर्म होगा, ऐसी बुद्धि छूटनी चाहिए। आस्रव भला हो सकता है? जिस भाव से आवरण हो, वह भला है?

मुमुक्षु : पुण्य तो बहुत भला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी भला नहीं है। पुण्य किसको कहना? सवेरे एक टुकड़ा कहा था न? सवेरे उठते ही आया था, अन्दर चलता था न। 'चैतन्यस्वभावी आतमराम, रागस्वभाव, सो बन्ध का काम।' (ऐसा) एक टुकड़ा दिया था सुबह। 'चैतन्यस्वभावी आतमराम, रागस्वभाव, सो बन्ध का काम।' आहाहा! पण्डितजी! सुबह ये लोग दर्शन करने आते हैं न? ... वह बन्धमार्ग में आता है न? बन्ध का लक्षण राग, भगवान आत्मा का लक्षण चैतन्य।... उसमें से यह आया अन्दर से। 'चैतन्यस्वभावी आतमराम'। वह तो ज्ञान और आनन्दस्वभावी स्वरूप प्रभु आत्मा है। रागस्वभाव बन्ध का कारण है। वह तो बन्धभाव है। आत्मभाव नहीं। आहाहा! चाहे तो तीर्थंकरगोत्र का भाव हो, वह भाव भी बन्धभाव है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा रागबुद्धि से हटकर वीतराग स्वभावबुद्धि में आया, फिर तो चैतन्यस्वरूप आत्माराम है, वैसा हो गया। और राग को अपना मानकर बन्धभाव को अपना मानकर अबन्धस्वभावी को अपना बन्धसहित माना, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे जैन की खबर नहीं, वीतरागमार्ग की खबर नहीं। समझ में आया? माने, न माने, बैठे, नहीं बैठे, मार्ग तो यह है। दूसरे प्रकार से कोई बताये तो वह मार्ग कुमार्ग है। हें! आहाहा! **वह ज्ञान मिथ्याज्ञान है।** है?

यहाँ यह आशय सूचित होता है कि सम्यक्त्वसहित अविरत सम्यग्दृष्टि तो अच्छा है... देखो! पण्डित जयचन्द्रजी स्वयं खुलासा करते हैं। सम्यक्त्वसहित। आत्मा राग से रहित, समकित सहित, ऐसी दृष्टि जिसको अन्तर में हुई, वह तो भला है। **क्योंकि सम्यग्दृष्टि कुमार्ग की प्ररूपणा नहीं करता है,...** राग से धर्म नहीं मानता। उसको राग होता है। समझ में आया? ठीक आ गये हो, डालचन्दजी! मूल मार्ग क्या है, ऐसे थोड़ा, थोड़ा। आहाहा! प्रभु! क्या कहें, मार्ग कोई ऐसी चीज़ है। **सम्यग्दृष्टि कुमार्ग की प्ररूपणा नहीं करता है, अपने को (चारित्रदोष से) चारित्रमोह का उदय प्रबल हो, तब तक विषय नहीं छूटते हैं...** विषय छूटते नहीं **इसलिए अविरत है, परन्तु जो सम्यग्दृष्टि नहीं है और ज्ञान भी बहुत हो,...** राग से धर्म मनानेवाला राग से भिन्न है, ऐसा आत्मा का भान नहीं है तो सम्यग्दृष्टि नहीं हो, ज्ञान भी बड़ा हो। शास्त्र पढ़ा हो, हजारों-लाखों लोगों में अपनी छाप हो, बाह्य में त्याग हो, क्रिया से त्यागी। ज्ञान भी बड़ा हो **कुछ आचरण भी करे, विषय भी छोड़े...** आचरण में विषयभोग छूट गया हो, स्त्री का विषय नहीं हो, धन्धा नहीं हो परन्तु दृष्टि में राग से धर्म माननेवाला कुमार्गी है।

और कुमार्ग का प्ररूपण करे तो वह अच्छा नहीं है,... आहाहा! देखो! तीन बात ली। सम्यग्दृष्टि नहीं हो, एक बात। सम्यग्दृष्टि अर्थात् राग से रहित मेरी चीज़ है, ऐसी दृष्टि नहीं है, परन्तु राग से सहित और राग से मुझे लाभ होगा, ऐसी दृष्टि है। तो ज्ञान भी बड़ा हो, भले क्षयोपशम बहुत हो, पढ़ा-लिखा बहुत हो, सब निरर्थक है। **कुछ आचरण भी करे,...** व्रत भी पाले, तप करे, उपवास करे, **विषय भी छोड़े...** आचरण करने में विषय भोग आदि छोड़े। **और कुमार्ग का प्ररूपण करे...** राग से धर्म मानता है, मनाता है, प्ररूपणा करता है, **वह अच्छा नहीं है, उसका ज्ञान और विषय छोड़ना निरर्थक है,...** आहाहा! सेठ!

मुमुक्षु : इसे मिथ्याबुद्धि गिननी?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्याबुद्धि है। हमारे छोटे सेठ पहले से आये हैं, बहुत दिन हुए। आहाहा! ये करना है, धूल में कुछ नहीं है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन आता है ? रुपया कहाँ आता है ? रुपया रुपये में रहता है। रुपया रुपये में रहता है। उसके साथ है ? उसकी ममता उसके साथ है, मेरे हैं, ऐसी।

मुमुक्षु : रुपया नहीं है, रुपये की...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... कहो या ममता कहो। दूसरा क्या है ? जड़ आत्मा में आती है ? जड़ आत्मारूप होता है ? आत्मा जड़रूप होता है ? तो क्या हुआ ? जड़ जड़रूप है।

एक बार कहा था, एक करोड़पति आदमी था, करोड़पति। हमने नजरों के सामने देखा है। अपासरा में बैठे थे। करोड़पति आदमी था, नाम नहीं देते हैं। करोड़पति थे। लकड़ी नहीं रखते थे। करोड़ रुपया था। धन्धा बड़ा। लकड़ी नहीं रखते थे। हम ... फिर लकड़ी छोड़ दी। पैसे आये, लकड़ी छूट गयी। मन्दिर दर्शन करने जाये, लकड़ी के बिना। मुझे लगा, यह क्या है ? अभी पैसे हुए हैं। पैसे हुए, इसलिए लकड़ी छूट गयी। पैसे नहीं थे, तब ऐसे (लकड़ी लेते थे)।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ममता आयी है, मुफ्त की। धूल में कहा था वहाँ। वह तो अजीवतत्त्व है। अजीवतत्त्व जीवतत्त्व का होता है कभी ?

मुमुक्षु : उन दिनों में यहाँ काठियावाड़ में किसी के पास करोड़ रुपये नहीं थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं थे उन दिनों में, बात सच्ची है। उन दिनों में करोड़ रुपये नहीं थे। अभी तो कितनों के पास करोड़ रुपये हो गये हैं। पहले करोड़ नहीं थे। दस लाख हमारे दामोदर सेठ के पास थे। साठ साल पहले। दामोदर सेठ थे। दस लाख अर्थात् बड़े गृहस्थ गिने जायें। चालीस हजार की कमाई थी। एक गाँव घर का था। अभी तो करोड़ तो कितनों के पास है। अफ्रीका में महाजन लोगों को देखो तो... यहाँ से महाजन लोग गये हैं न, कितनों के पास करोड़ रुपये हैं। किसी के पास पचास लाख, किसी को करोड़ की, किसी को दो करोड़ की, तीन करोड़ की।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें धूल में भी कुछ नहीं है। भगवान आत्मलक्ष्मी का

भण्डार है। वह लक्ष्मीवाला है। उसका जिसे सम्यग्दर्शन हुआ, वह लक्ष्मीवाला है। बाकी सब भिखारी है। लखपति। लक्षपति आया था न?

ऋद्धि सिद्धि वृद्धि दिखे, घट में प्रगट सदा,
अन्तर की लच्छी सो अजाति लक्षपति है।

आया था, बनारसीदास में।

अन्तर की लच्छी सो अजाति लक्षपति है,
दास भगवंत उदास रहैं जगत सौं,
सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं।

बाकी सब दु:खी हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञान भी बड़ा है, परन्तु श्रद्धा का भान नहीं है, राग से धर्म मनाते हो, विषय भी छूटे हो, आचरण भी कुछ ठीक लगता हो बाहर से, स्त्री का भी त्याग हो, बालब्रह्मचारी हो। आहाहा! परन्तु राग का छोटे से छोटा कण जो विकार है, पुण्यभाव है, उससे धर्म मनाते हैं, मानते हैं, तेरा सब ज्ञान निरर्थक है। **विषय छोड़ना निरर्थक है, इस प्रकार जानना चाहिए।** १३वीं गाथा पूरी हुई। अब, १४वीं।

गाथा-१४

आगे कहते हैं कि जो उन्मार्ग के प्ररूपण करनेवाले कुमत-कुशास्त्र की प्रशंसा करते हैं, वे बहुत शास्त्र जानते हैं तो भी शीलव्रतज्ञान से रहित हैं, उनके आराधना नहीं है-

कुमयकुसुदपसंसा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं।
शीलवदणाणरहिदा ण हु ते आराधया होंति ।।१४।।

कुमतकुश्रुतप्रशंसका: जानंतो बहुविधानि शास्त्राणि।
शीलव्रतज्ञानरहिता न स्फुटं ते आराधका भवंति ।।१४।।

दुर्मत कुशास्त्र प्रशंसकी जाने विविध बहु-शास्त्र भी।
पर शील ज्ञान व्रतादि बिन है नहीं आराधक अभी।।१४।।

अर्थ – जो बहुत प्रकार के शास्त्रों को जानते हैं और कुमत कुशास्त्र की प्रशंसा करनेवाले हैं, वे शीलव्रत और ज्ञान रहित हैं, वे इनके आराधक नहीं हैं।

भावार्थ – जो बहुत शास्त्रों को जानकर ज्ञान तो बहुत रखते हैं और कुमत कुशास्त्रों की प्रशंसा करते हैं तो जानो कि इनके कुमत से और कुशास्त्र से राग है, प्रीति है, तब उनकी प्रशंसा करते हैं – ये तो मिथ्यात्व के चिह्न हैं, जहाँ मिथ्यात्व है, वहाँ ज्ञान भी मिथ्या है और विषय-कषायों से रहित होने को शील कहते हैं, वह भी उसके नहीं है, व्रत भी उसके नहीं है, कदाचित् कोई व्रताचरण करता है तो भी मिथ्याचारित्ररूप है, इसलिए दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आराधनेवाला नहीं है, मिथ्यादृष्टि है।।१४।।

गाथा-१४ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो उन्मार्ग के प्ररूपण करनेवाले कुमत, कुशास्त्र की प्रशंसा करते हैं, वे बहुत शास्त्र जानते हैं तो भी शीलव्रतज्ञान से रहित हैं, उनके आराधना नहीं है :- आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की... गाथा।

कुमयकुसुदपसंसा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं।
शीलवदणाणरहिदा ण हु ते आराधया होंति।।१४।।

अर्थ :- जो बहुत प्रकार के शास्त्रों को जानते हैं... बहुत पढ़ा हो, बहुत लिखा हो, पण्डित हुआ हो, उसमें क्या है? **और कुमत, कुशास्त्र की प्रशंसा करनेवाले हैं...** जिसका अभिप्राय राग से धर्म माननेवाला है, ऐसा कुमत जो है, उसकी प्रशंसा करते हैं। तेरा शास्त्र का पढ़ना और **शीलव्रत और ज्ञान रहित हैं...** बहुत शास्त्र को जानते हैं और कुमत, कुशास्त्र की प्रशंसा करनेवाले हैं। वीतरागमार्ग से (विपरीत) राग से धर्म मनानेवाला है, वीतरागमार्ग में रहकर, वह कुमत है। उसका शास्त्र बनाया हो, राग से धर्म (मनवाता हो), वह कुशास्त्र है। आहाहा! उसकी प्रशंसा करते हैं, वह शील व्रत और और ज्ञान से रहित हैं। उसके पास सम्यग्दर्शनरूपी शील नहीं और व्रतरूपी चारित्र

नहीं और आत्मा का सम्यग्ज्ञान नहीं है। तीनों से रहित है। आहाहा!

भावार्थ :- जो बहुत शास्त्रों को जानते हैं... ज्ञान तो बहुत जाने। **और कुमत, कुशास्त्रों की प्रशंसा करते हैं...** जिसका अभिप्राय राग से धर्म मनानेवाला, पुण्य से धर्म माने उसकी प्रशंसा करे। सेठ! क्या कहते हैं ? देखो! सुनो। **बहुत शास्त्रों को जानते हैं...** बहुत जाने **और कुमत कुशास्त्रों की...** वीतरागस्वभाव की दृष्टि बिना राग से धर्म मनाते हैं और शास्त्र में भी राग से आत्मा का कल्याण होगा, ऐसा जिस शास्त्रों में लिखा है, उसकी प्रशंसा करे **तो जानो कि इनके कुमत से और कुशास्त्र से राग है...** समझ में आया ? कुमत। वीतराग मत के अतिरिक्त राग से धर्म मनानेवाले सब कुमत है। आहाहा! वीतरागधर्म है न यह तो। वीतराग सम्प्रदाय में जन्म हुआ तो भी वीतराग से धर्म मानते नहीं और राग से धर्म मनाते हैं, वह भी कुमत है। और उसकी प्ररूपणा जो शास्त्र (करते हैं), वह कुशास्त्र है। उसकी प्रशंसा करनेवाला कुमत और कुशास्त्र का रागी है। उसका **राग है, प्रीति है, तब उनकी प्रशंसा करते हैं...** बहुत अच्छी बात ली है। पण्डित जयचन्द्रजी ने मूल पाठ का खुलासा किया है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का। **ये तो मिथ्यात्व का चिह्न है,...** लो।

यह शील की व्याख्या है। शील का अर्थ राग से धर्म नहीं मानना और अपने वीतरागस्वभाव से श्रद्धा और धर्म मानना, उसका नाम शील है। इस शील की यहाँ व्याख्या है। आहाहा! और राग से लाभ मानना वह कुशील है। ज्ञान कुशील, श्रद्धा कुशील, चारित्र कुशील, सब कुशील है। ऐसा कुमत और कुशास्त्र की प्रशंसा करो और शास्त्र का बहुत ज्ञान हो तो जानना कि उसको कुमत और कुशास्त्र की प्रीति है। सत् शास्त्र, सत् गुरु या सत् धर्म की प्रीति उसको नहीं है। समझ में आया ? **मिथ्यात्व का चिह्न है,...** आहाहा!

जहाँ मिथ्यात्व है, वहाँ ज्ञान भी मिथ्या है... जहाँ वीतरागस्वभाव आत्मा का है और वीतरागस्वभाव से ही वीतरागस्वभाव प्रगट होता है, राग से नहीं। ऐसा वीतराग का धर्म है। भगवान वीतरागस्वरूप आत्मा है, उसका आश्रय करने से वीतरागभाव सम्यग्दर्शन, ज्ञान प्राप्त होता है; रागभाव से नहीं। राग से लाभ बतानेवाला कुमति और कुशास्त्र की जो कोई प्रशंसा करते हैं तो जानिये कि उसको भी कुमत और कुशास्त्र

का राग है। समझ में आया? है न? देखो! **प्रीति है, तब उनकी प्रशंसा करते हैं...** नहीं तो प्रशंसा क्यों करे? जिसकी जो रुचि है, ऐसी चीज़ देखे तो उसकी प्रशंसा करे। आहाहा!

वहाँ ज्ञान भी मिथ्या है और विषयकषायों से रहित होने को शील कहते हैं, वह भी उनके नहीं है,... क्योंकि राग की प्रशंसा करता है तो राग का अभाव, वह आत्मा की दृष्टि, वह शील है। वह शील है नहीं। अन्दर राग का विषय लक्ष्य छोड़कर, कषाय का लक्ष्य छोड़कर। दो लिया न? विषय कषाय। राग कषाय है, विषय है, पर है। उसका लक्ष्य छोड़कर अपने स्वभाव का आश्रय करना, उसका नाम शील कहते हैं। **वह भी उनके नहीं है,...** राग की प्रशंसा करनेवाला कुमत और कुशास्त्र का माननेवाले की प्रशंसा करे तो उसे राग से रहित अपना शील स्वभाव है, वह उसके पास है नहीं। बराबर है? आहाहा! सूक्ष्म बात। बाह्य प्रवृत्ति तो लोग बहुत करते हैं। परन्तु अन्तर की राग की प्रवृत्ति में धर्म माननेवाला जगत का प्राणी अनन्त काल से नौवीं ग्रैवेयक अनन्त बार गया है। अन्दर सूक्ष्म शल्य रह गया। वह मिथ्यादृष्टि है।

विषयकषायों से रहित होने को शील कहते हैं, वह भी उनके नहीं है... राग और कषाय, विषय है। उससे रहित दृष्टि पलटकर अपने स्वभाव में दृष्टि करने से विषय कषाय के विषय से रहित दृष्टि हुई, उसका नाम शील है। विषय-कषाय राग, उसकी प्रशंसा करनेवाला, वह विषय-कषाय रहित हुआ नहीं। तब तो विषय-कषाय को ही अनुमोदता है। आहाहा! समझ में आया? बड़ा कठिन मार्ग ऐसा, भाई! ऐसा स्वरूप कब पकड़ में आये? समझ में नहीं आता। नहीं समझ में आये, ऐसा होता है? वस्तु स्वयं चीज़ रागभाव चाहे तो तीर्थंकरगोत्र का हो, परन्तु वह तो बन्ध है, विकार है, अपराध है। उससे रहित दृष्टि हुई है। राग से मुझे लाभ नहीं है। राग आता है। आहाहा! समझ में आया?

शील कहते हैं, वह भी उनके नहीं है, व्रत भी उनके नहीं है,... राग की प्रशंसा करनेवाले को व्रत कहाँ से आये? जहाँ दृष्टि ही मिथ्यात्व है। समझ में आया? **कदाचित् कोई व्रताचरण करते हैं तो भी मिथ्याचारित्ररूप है,...** ब्रह्मचर्य पाले, कोई दया पाले, कोई साधु का व्रत धारण करे-पाले, मिथ्याचारित्र है। समझ में आया? वस्तु

ऐसी है, ऐसी है। कितने ही कहते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य बहुत कड़क हैं। कड़क नहीं, वस्तु का स्वरूप है ऐसा कहा है। कड़क क्या ? दुनिया को न रुचे, इसलिए कड़क हो जाये ? आहाहा !

मुमुक्षु : ...पुराने काल की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान पंचम काल के लिये कहा है या किसके लिये कहा है ? पंचम काल के साधु थे। भगवान के बाद ६०० वर्ष बाद हुए थे कुन्दकुन्दाचार्य। भगवान के पास गये थे। सीमन्धर परमात्मा वर्तमान में विराजते हैं। वर्तमान में विराजते हैं। आयुष्य बड़ा है। आठ दिन रहे। आठ दिन सुनकर यहाँ आये। भगवान की छाप लेकर आये हैं। समकिती थे, मुनि थे। वीतरागी मुनि थे। सम्यग्दर्शनसहित तीन कषाय का अभाव, बड़ा आचार्यपद था। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदर्यो। तीसरे नम्बर पर आये। वे कहते हैं, भाई ! मार्ग तो ऐसा है। तू दूसरे तरीके से कहेगा तो तेरा सब शास्त्रज्ञान झूठा है। तेरा पढ़ना, पढ़ाना मिथ्यात्व का चिह्न है। आहाहा !

मिथ्याचारित्ररूप है, इसलिए दर्शन-ज्ञान-चारित्र के आराधनेवाले नहीं है,... तीनों को नहीं। जो कुमत अज्ञानी... समझ में आया ? उस समय श्वेताम्बर पन्थ निकल चुका था। कुन्दकुन्दाचार्य के समय में श्वेताम्बर (मत) तो निकल चुका था। बहुत पहले। राग की क्रिया से, शुभभाव से ही धर्म मनाते थे। समझ में आया ?

मुमुक्षु : राग से धर्म मनाते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मनाते हैं, श्वेताम्बर का मार्ग ही वह है। पुण्य करते-करते धर्म होगा, शुभ करते-करते होगा, यात्रा करते-करते, भगवान की भक्ति करते, यात्रा करके धर्म होगा, ऐसी ही प्ररूपणा है उसकी। वह बताते हैं। ऐसा दिगम्बर में कोई माने तो वह भी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ?

गिरनार में कुन्दकुन्दाचार्य आये थे और श्वेताम्बर के आचार्य भी आये थे, उस समय। कुन्दकुन्दाचार्य के समय। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य यहाँ निकले थे यात्रा के लिये। गिरनार पर इकट्ठे हो गये। उसका एक साधु था। चर्चा (हुई)। वह कहे, हम

पुराने हैं, ये कहे, हम पुराने हैं। प्राचीन हो वह पहला झण्डा लहराये। पूजा करे। कुन्दकुन्दाचार्य को प्रतिमा थी, सरस्वती की मूर्ति कहे वह मान्य है। आवाज निकली, दिगम्बर प्राचीन है। आदि है, उसका अर्थ प्राचीन है। आदि का अर्थ उन लोगों ने उल्टा कर दिया। आता है? इतिहास में आता है, कुन्दकुन्दाचार्य गिरनार गये थे। नहीं सुना है? लो, ये न्यायाचार्य बड़े।

मुमुक्षु : हिन्दी में कहिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ की साल में यहाँ भरतक्षेत्र में थे। और १०० वर्ष पहले श्वेताम्बर पन्थ निकल चुका था। वे यात्रा करने निकले। शुभभाव तो आता है न, मुनि को आता है, वह दूसरी बात है, परन्तु वह धर्म है—ऐसा नहीं। पुण्यधर्म। पुण्य-व्यवहार है। (यात्रा करने) निकले थे तो गिरनार में दोनों इकट्ठे हो गये। श्वेताम्बर के आचार्य और कुन्दकुन्दाचार्य। अपने यहाँ है न? समवसरण स्तुति में है न? किसमें है? है या नहीं? बहुत जगह है। नन्दलाल ने नहीं किया है? भिण्ड के नन्दलाल ब्रह्मचारी। भजन है उसमें आता है।

मुमुक्षु : उसका अर्थ यह हुआ कि उन्होंने कहा हम पहले हैं, ये कहे, हम पहले हैं। श्वेताम्बर के मन्दिर नहीं थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं थे, मन्दिर नहीं थे। मन्दिर बाद में किये हैं। पहले तो दिगम्बर मन्दिर में आते थे। श्वेताम्बर निकले तो थे, परन्तु आते थे दिगम्बर मन्दिर में। (उनके) मन्दिर नहीं थे। श्वेताम्बर पन्थ ही कहाँ था? यह तो अनादि मार्ग है, अनादि का मार्ग है। निकले थे तो यहाँ आते थे। फिर नया बनाया। चलता है, संसार ऐसे ही चलता है अनादि से। उसमें श्लोक है। नन्दलाल का है न? नन्दलाल का श्लोक है। है न। लो। ये रहा। (समवसरण स्तुति पृष्ठ-२०)।

झण्डा कुन्दकुन्द मुनि धारा, आदि दिगम्बर धर्म प्रचारा,
श्वेताम्बरवादी जब आये, सभी दिगम्बर जैन बुलाये
भोलेभाले तिन बहकाये, गहो-धरम मम नहीं छुटकारा
झण्डा कुन्दकुन्द मुनि धारा,

कुन्दकुन्द मुनि शीघ्र पधारे, संघ-सहित आये जब सारे,
गिरनारीगिर सभी सिधारे, उभय-पक्ष-जमघट्ट अपारा॥

उभय पक्ष जमी गया। लोग बहुत (आये)।

कुन्दकुन्द प्रभु आप ही बोले, सुनियो! मत वाले सब भोले,
यह पाषाण स्वयं ही बोले,

पत्थर बोलेगा।

धर्म कौन है आदि करारा, संघपति गुरु श्वेताम्बर के, न्याययुक्त वाणी सुन करके

उन लोगों ने कबूल किया, बुलवाइये।

हर्षित हो चित धीरज धरके, क्रिया प्रमाण उदय मति वारा
ध्वनि पाषाण जब भेद गाजा, नभ में देव बजावे बाजा
आदि धर्म सुन सब सुख पाजा, मान! मान! यह वचन हमारा।

आदि मूल धर्म यह है अनादि का। तुम्हारा नया धर्म निकला है।

मुमुक्षु : वे लोग कहते हैं, आदि है, इसलिए नया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आदि का अर्थ अनादि है। वह उल्टा अर्थ करते हैं। सब खबर है, वह सब खबर है। भगवान के बाद ९०० साल तक तो अनादि-अनादि दिगम्बर धर्म एक ही चला है। महाविदेह में एक ही धर्म है, दूसरा कोई धर्म है नहीं। ये तो बाद में निकला है।

मुमुक्षु : महाविदेह में एक ही धर्म है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही धर्म। दिगम्बर की मूर्ति, दिगम्बर का मन्दिर। झूठा अभिप्राय बहुत का है। परन्तु बाह्य में कोई वेश नहीं है।

मुमुक्षु : ... भेद नहीं है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल वेश नहीं, कोई दूसरा मन्दिर नहीं, कोई दूसरा वेश नहीं। एक ही दिगम्बर अनादि सनातन। तिल्लोय पण्णत्ति में पाठ है। अभी आया था। विरोध हो गया। आत्मधर्म में ऐसा दिया तो स्थानकवासी को थोड़ा (विरोध) हो गया।

हमारे हरिभाई ने थोड़ा डाला था। एक ही धर्म है। दूसरा वेश होता नहीं। कपड़े-बपड़े का धर्म है ही नहीं वहाँ। यहाँ तो नया निकला है। इतिहास में आता है।

यहाँ कहते हैं, **आराधनेवाले नहीं है,...** जिसकी राग की प्रीति-रुचि है और राग से धर्म मानते हैं, मनाते हैं, माननेवाले की प्रशंसा करते हैं, उसको सम्यग्दर्शन नहीं, सम्यग्ज्ञान नहीं, सम्यक्चारित्र नहीं है। चाहे तो कितना भी त्यागी है, परन्तु वह त्यागी नहीं है, ऐसा कहते हैं। १४वीं गाथा पूरी हुई। उसे आराधना नहीं है। तीनों की आराधना नहीं। दर्शन झूठा है तो ज्ञान और चारित्र कहाँ से आया? आहाहा! बाहर में व्रतादि पाले परन्तु वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? तीनों का आराधन है नहीं। १५वीं गाथा कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१५

आगे कहते हैं कि यदि रूप सुन्दरादिक सामग्री प्राप्त करे और शील रहित हो तो उसका मनुष्य जन्म निरर्थक है -

रूवसिरिगव्विदाणं जुव्वणलावण्णकंतिकलिदाणं।
सीलगुणवज्जिदाणं णिरत्थयं माणुसं जम्म।।१५।।

रूपश्रीगर्वितानां यौवनलावण्यकांतिकलितानाम्।
शीलगुणवर्जितानां निरर्थकं मानुषं जन्म।।१५।।

लावण्य यौवन कान्ति-युत पर रूपश्री गर्वित तथा।
है शील गुण वर्जित निरर्थक मनुज जन्म कहा गया।।१५।।

***अर्थ* - जो पुरुष यौवन अवस्था सहित हैं और बहुतों को प्रिय लगते हैं, ऐसे लावण्य सहित हैं, शरीर की कांति-प्रभा से मंडित है और सुन्दर रूप, लक्ष्मी, संपदा से गर्वित हैं, मदोन्मत्त हैं, परन्तु वे यदि शील और गुणों से रहित हैं तो उनका मनुष्य जन्म निरर्थक है।**

भावार्थ – मनुष्य जन्म प्राप्त करके शीलरहित हैं, विषयों में आसक्त रहते हैं, सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र गुणों से रहित हैं और यौवन अवस्था में शरीर की लावण्यता कांतिरूप सुन्दर धन, संपदा प्राप्त करके इनके गर्व से मदोन्मत्त रहते हैं तो उन्होंने मनुष्य जन्म निष्फल खोया, मनुष्य जन्म में सम्यग्दर्शनादिक का अंगीकार करना और शील संयम पालना योग्य था, वह तो अंगीकार किया नहीं तब मनुष्यजन्म निष्फल ही गया।

ऐसा भी बताया है कि पहिली गाथा में कुमत–कुशास्त्र की प्रशंसा करनेवाले का ज्ञान निरर्थक कहा था, वैसे ही यहाँ रूपादिक का मद करे तो यह भी मिथ्यात्व का चिह्न है, जो मद करे उसे मिथ्यादृष्टि ही जानना तथा लक्ष्मी, रूप, यौवन, कांति से मंडित हो और शीलरहित व्यभिचारी हो तो उसकी लोक में निंदा ही होती है।।१५।।

प्रवचन-१८६, गाथा-१५ से १८, गुरुवार, माघ शुक्ल २, दिनांक २८-०१-१९७१

शीलपाहुड़, १५वीं गाथा। **आगे कहते हैं...** १४ गाथा पूरी हुई, १५वीं चलती है। **यदि रूप सुन्दरादिक सामग्री प्राप्त करे और शील रहित हो तो उसका मनुष्य-जन्म निरर्थक है :-**

रूवसिरिगव्विदाणं जुव्वणलावण्णकंतिकलिदाणं।
सीलगुणवज्जिदाणं णिरत्थयं माणुसं जम्म।।१५।।

अर्थ :- कहते हैं कि **जो पुरुष यौवन अवस्था सहित है...** वह तो शरीर की अवस्था है, जड़ की जवानी है। **और बहुतों को प्रिय लगते हैं, ऐसे लावण्य सहित हैं,...** शरीर में ऐसी सुन्दरता आदि हो, दूसरे को प्रिय लगे। ऐसी प्रकृति है न? ऐसा हो, वह तो जड़ है। शरीर की युवा अवस्था, लावण्यता आदि तो सब जड़ की दशा, मिट्टी–धूल की है। **शरीर की कान्ति-प्रभा से मण्डित हैं...** शरीर की कान्ति भी हो और प्रभा विशेष, वह तो जड़ की कान्ति है, मिट्टी अजीव पुद्गल की। **और सुन्दर रूप...** शरीर की सुन्दरता, सभी अवयवों की सुन्दरता होती है। और लक्ष्मी **सम्पदा से गर्वित हैं,...** लक्ष्मी और रूप आदि का अभिमान है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। पर तो जड़ है। शरीर की यौवन अवस्था, लक्ष्मी, सुन्दर रूप, लावण्यता वह तो जड़ की–मिट्टी–पुद्गल की अवस्था है।

उसका जो गर्व करते हैं कि ऐसा हमारे है, वह मिथ्यादृष्टि है। शील नहीं है। सम्यग्दर्शनरूपी शील उसके पास नहीं है। समझ में आया?

मदोन्मत्त है,... मद में उन्मत्त। शरीर की जवानी, कान्ति, प्रभा, लावण्यता और लक्ष्मी आदि। उसके मद में उन्मत्त हो गया है, पागल-पागल। अपनी चैतन्य-लक्ष्मी क्या है, उसकी खबर नहीं। बाहर के जड़ में गर्वित मन्दोमत्त है। **यदि शील और गुणों से रहित हैं...** दो शब्द लिये हैं, '**सीलगुणवज्जिदाणं**' पहले भी यह शब्द आया है। '**सीलगुणवज्जिदाणं**' अर्थात् आत्मा अपनी आनन्दादि लक्ष्मीसहित है, उसकी तो अन्तर्दृष्टि का अनुभव नहीं। अपना सुन्दर आनन्द ज्ञायक चैतन्यरूप है, उसकी तो प्रतीति नहीं और सम्यग्दर्शनादिक गुण नहीं। अपने स्वभाव का शील नहीं और सम्यग्दर्शन भी शील है (वह नहीं), **उनका मनुष्यजन्म निरर्थक है।** धर्म के लिये निरर्थक है, दुर्गति के लिये सार्थक हो गया। समझे? शरीर को कीड़े खायेंगे, कीड़े। शरीर की सुन्दरता है, उसकी बात है, हों! नहीं है, कोई ठिकाना नहीं है और विषय में अभिमानी है, शरीर की अधिकता बतानेवाले हैं, वह तो मिथ्यादृष्टि आत्मा का आनन्द का अनादर करनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? **मनुष्यजन्म निरर्थक है।**

भावार्थ :- मनुष्य-जन्म प्राप्त करके शीलरहित हैं,... यहाँ शील शब्द का अर्थ- आत्मा में विकल्प जो रागादि है, उसकी एकता तोड़कर स्वभाव की एकता करना उसका नाम शील कहने में आता है। यहाँ तो वह शील है। समझ में आया? **मनुष्य-जन्म प्राप्त करके शीलरहित हैं,...** १५वीं गाथा का भावार्थ। क्या कहते हैं? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि मनुष्य का जन्म पाकर शीलरहित है। अपना आत्मा शुभ-अशुभ जो राग विकल्प है, उससे रहित की दृष्टि नहीं है। अपना आत्मा पवित्र आनन्दघन सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप है। पुण्य-पाप के भाव से रहित है। ऐसे आत्मा की जिसको दृष्टि नहीं है, वह शीलरहित है।

विषयों में आसक्त रहते हैं,... वह राग में ही आसक्त है। अपना निज आनन्द शुद्ध स्वभाव, उसकी दृष्टि—अवलम्बन—आश्रय बिना अकेले पुण्य-पाप के परिणाम में लीन-आसक्त हैं, वे **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र गुणों से रहित हैं...** जो रागभाव भगवान आत्मा से भिन्न है, क्षयोपशम भाव है, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव हो, परन्तु

वह तो राग है। राग में जिसकी एकता है और राग से भिन्न अपने स्वरूप की दृष्टि का शील नहीं है, कहते हैं कि **गुणों से रहित हैं...**

और यौवन अवस्था में शरीर की लावण्यता... शरीर की यौवन अवस्था वर्तती हो, २५-३०-४०-५० वर्ष की उम्र, यौवन तो जड़ की दशा है। उसका अभिमान है कि मैं जवान हूँ। आहाहा! यह तो मिट्टी है। अजीवतत्त्व की दशा है, यह यौवन अवस्था। वह कोई जीव की नहीं है। ऐसी यौवन अवस्था पाकर **शरीर की लावण्यता...** शरीर में सुन्दरता, कोमलता आदि लावण्यता। जगत को प्रिय लगे ऐसी शरीर की लावण्यता हो, वह तो जड़ की है। और **कान्तिरूप...** शरीर में कान्ति हो, वह तो जड़ की कान्ति है। भगवान आत्मा की कान्ति नहीं। और सुन्दर रूप। रूप अर्थात् शरीर की सुन्दरता, कोमल सुन्दरता। प्रत्येक अवयव भिन्न जाति की सुन्दरतारूप हो और उसका अभिमान करे, ऐसा कहते हैं। हम यौवन है। हम यौवन है? भगवान! यौवन तो जड़ की दशा है। हम सुन्दर हैं। सुन्दर, ये शरीर की सुन्दरता तो जड़ की माटी है। उसमें कीड़े पकते हैं। आहाहा! लावण्यता है। दूसरों को बहुत प्रिय लगे। वह तो जड़ है। तेरा स्वरूप तो जड़ से, यौवन अवस्था से, राग से भी भिन्न है। ऐसे स्वभाव की तो अन्तर प्रतीति का अभिमान नहीं और इस परचीज़ का अभिमान करता है, निरर्थक मनुष्य है। आहाहा! समझ में आया?

धन, सम्पदा... लक्ष्मी उसकी **सम्पदा प्राप्त करके इनके गर्व से मदोन्मत्त रहते हैं...** एक तो शरीर जवान हो, उसमें भी लावण्यता हो, उसमें भी सुन्दरता हो और लक्ष्मी आदि हो, वह सब तो जड़ है, प्रभु! वह तेरी चीज़ नहीं। तेरी चीज़ में वह चीज़ नहीं। उस चीज़ में तू नहीं। यहाँ तो बताना है कि भगवान आत्मा, पुण्य और पाप के विकल्प से भी भिन्न है। तो पुण्य-पाप के फल से मिली सामग्री, उससे तो भिन्न है ही। ऐसा अपना स्वरूप पूर्ण आनन्द और ज्ञायक का जिसको अन्तर में भान नहीं है और रागादि क्रिया और शरीरादि की सुन्दरता का अभिमान (करता है), वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

इनके गर्व से मदोन्मत्त... किसी को गिने नहीं। धर्मी कौन है, धर्म क्या है। अपनी जड़ की लक्ष्मी की मदोन्मत्त दशा से पागल हो गया है, कहते हैं। आहाहा! समझ में

आया? **उन्होंने मनुष्य-जन्म निष्फल खोया,...** आहाहा! श्रीमद् में आता है न? १६ वर्ष में। उन्होंने लिखा है। उसमें है। है, मालूम है। १६ वर्ष में श्रीमद् राजचन्द्र (लिखते हैं)। सात वर्ष की आयु में पूर्व का जातिस्मरण था। सात वर्ष की आयु। इस भव से पहले का। १६ वर्ष की उम्र में एक मोक्षमाला बनायी। माला के १०८ मणका होता है न? पारा। तो १०८ पाठ बनाये। १६ साल में। उसका नाम मोक्षमाला दिया। उसमें एक पाठ है, ६७वाँ पाठ है, वह तो क्षमा का है। ये पाठ क्या है? संख्या नहीं दी है। उसमें लिखा है। १६ वर्ष में। उसमें लिखा है। इस गाथा में उन्होंने आधार दिया है, रावजीभाई ने।

बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला।
तो भी अरे! भवचक्र का फेरा न एक कभी टला॥
सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते सुक्ख जाता दूर है।
तू क्यों भयंकर भावमरण प्रवाह में चकचूर है।
लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिए?

लक्ष्मी बढ़ी, अधिकार बढ़ा। समाजभूषण तो कहने में आता है या नहीं? ... लगाते हैं या नहीं? इतना तो होता है या नहीं? ऐई! डालचन्दजी! 'लक्ष्मी अने अधिकार वधतां...' वधतां समझे? बढ़ा। 'शुं वध्युं ते तो कहो,'

परिवार और कुटुम्ब है क्या? वृद्धि नय पर तोलिए।
संसार का बढ़ना अरे! नरदेह की यह हार है।
नहीं एक क्षण तुझको अरे! इसका विवेक विचार है।

देखिये! यह भाषा १६ साल में लिखी है। १६ वर्ष शरीर के, हों! आत्मा की अवस्था कहाँ है। आत्मा तो अनादि-अनन्त है। देह की अवस्था का नाम है। इसको पचास हुए, साठ हुए, अस्सी हुए। वह जड़ की अवस्था है। 'बहु पुण्य केरा पुंजथी शुभदेह मानवनो मण्यो,' इसमें जन्म है न? भाई! जन्म। मनुष्य-जन्म। इसलिए साथ में यह लिया। मनुष्य-जन्म। बहुत पुण्य के पुंज के कारण तुझे यह मनुष्य का देह मिला है। 'तोये अरे भवचक्रनो...' अरे! भव के अभाव का तूने कुछ किया नहीं। भव के

अभाव की गाम। पुण्य, दया, दान, व्रतादि करे, पुण्यादि से स्वर्ग मिले, वह कोई धर्म नहीं, वह कोई जन्म-मरण टालने का उपाय नहीं है। आहाहा!

'सुख प्राप्त करतां सुख टळे छे' गुजराती है न? गुजराती। अपना सुख छोड़कर, पर में सुख माननेवाला अपना सुख लुटाता है। ये सब आपको सुखी कहते हैं न? पैसेवाले। 'सुख प्राप्त करतां सुख टळे छे।' लक्ष्मी में सुख, शरीर में सुख, यौवन में सुख, आबरू में सुख ऐसी मान्यता से प्रभु! तेरे आत्मा का आनन्द तो लुट जाता है। आहाहा! समझ में आया? तुझे अधर्म उत्पन्न होता है, ऐसा कहते हैं। 'सुख प्राप्त करतां सुख टळे छे, लेश अे लक्षे अहो।' लेश तो लक्ष्य में ले। कभी आत्मा का ध्यान तो किया नहीं कि क्या चीज़ है, परन्तु लक्ष्य में भी लिया नहीं।

'क्षण क्षण भयंकर भावमरणे कां अहो राची रहो।' १६ वर्ष में, हों! 'क्षण क्षण भयंकर भावमरणे...' अन्दर पुण्य और पाप के राग में अभिमान (किया) और वह राग की क्रिया मेरी, (ऐसी मान्यता में) क्षण-क्षण में तेरे चैतन्य भावमरण का मरण होता है। आहाहा! पण्डितजी! 'क्षण-क्षण भयंकर भावमरणे...' भावमरण होता है, प्रभु! तेरा। आहाहा! अपनी निज लक्ष्मी आनन्द और ज्ञान आदि से भरा भण्डार अपना निज स्वरूप है, उसमें आनन्द और सुख है, ऐसा नहीं मानकर पर में सुख है, ठीक है, मजा है, हित है, ठीक है, ऐसे पुण्य-पाप के भाव को भी अपना मानकर तेरा आत्मा आनन्द चैतन्य भावप्राण का मरण होता है। आहाहा! 'कां अहो राची रहो।'

'लक्ष्मी अने अधिकार वधतां शुं वध्युं...' क्या बढ़ा?

मुमुक्षु : आँटा बढ़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : आंटा बढ़ा। 'शुं कुटुंब के परिवार...' बहुत कुटुंब मिला, २००-२००, ५००-५०० लोगों का कुटुम्ब परिवार। 'वधवापणुं संसारनुं...' वह तो जड़ परवस्तु मुझे मिली, ऐसी मान्यता संसार की वृद्धि का कारण है। आहाहा! उसका विचार 'नर देहने हारी जवो...' वह शब्द यहाँ चलता है न अपने? उस पर लिखा है। है न पाठ? मूल पाठ है, देखो! '**णिरत्थयं माणुसं जम्म**'। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा है। '**णिरत्थयं माणुसं जम्म**' भगवान! तुझे मनुष्य जन्म मिला और उसमें शरीर,

यौवन, लक्ष्मी, कान्ति, प्रभा, आबरू उसमें तुझे अभिमान हुआ कि यह मेरा है, तेरा मनुष्य जन्म निरर्थक है, प्रभु! आहाहा! समझ में आया? अपने स्वरूप की अधिकता नहीं बताकर, राग और पुण्य आदि परिणाम की अधिकता हृदय में लाकर अपना मनुष्य जन्म निरर्थक करता है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

सुन्दर कान्ति, **धन, सम्पदा प्राप्त करके इनके गर्व से मदोन्मत्त रहते हैं तो उन्होंने मनुष्यजन्म निष्फल खोया, मनुष्यजन्म में तो सम्यग्दर्शनादिक का अंगीकार करना...** वह चीज़ थी। भगवान पूर्णानन्द शान्ति का सागर है, शान्ति का प्रभु सागर आत्मा है। पुण्य-पाप के भाव से भिन्न है, ऐसा अनुभव करके दृष्टि करनी, वह मनुष्य जन्म का कार्य था। वह तो किया नहीं। आहाहा! समझ में आया? कान्तिभाई! कान्तिभाई को जानते हो? शान्तिभाई का भाई है। बालब्रह्मचारी है। १५०० का वेतन था, छोड़ दिया। नौकरी छोड़ दी। प्लेन में। प्लेन है मुम्बई में। १५०० का महीने का वेतन। डेढ़ हजार। नौकरी छोड़ दी। अब मुझे निवृत्ति लेनी है। काम नहीं करना है। नौकरी नहीं करनी है, धन्धा भी नहीं करना है। कहो, सेठ! आहाहा!

कहते हैं, मनुष्यजन्म तो भव का अभाव के लिये यह भव मिला है। उसमें भव के अभाव की अन्तर स्वभाव की दृष्टि की नहीं और राग में, पुण्य परिणाम में प्रेम रखकर जन्म गंवाया। तेरा मनुष्य जन्म निरर्थक है। आहाहा! पाँच, पच्चीस, पचास, साठ साल। कहो। बाद में भविष्य में अनन्त काल तो रहना है। अनन्त काल कहाँ रहेगा? भान तो है नहीं कुछ। चौरासी के अवतार में भटकेगा। अपना सम्यग्दर्शन विकार, पुण्य-पाप से रहित प्रभु पूर्णानन्द शुद्ध हूँ, ऐसी अन्तर्दृष्टि की नहीं, उसका ज्ञान किया नहीं, उसमें लीनता की नहीं। वह करना था, वह तो किया नहीं।

शील संयम पालना योग्य था... शील शब्द का अर्थ रागरहित स्वरूप में लीनता करनी, वह पालना था। शील अर्थात् अकेले शरीर से ब्रह्मचर्य नहीं। शरीर से ब्रह्मचर्य तो अनन्त बार पाला, वह वास्तविक चीज़ नहीं है, वह तो शुभभाव है, पुण्यभाव है, विकल्प है। अपना स्वभाव राग से रहित है, ऐसी दृष्टि करनी और उसमें लीनता रहनी, आंशिक भी हो, उसका नाम भगवान शील कहते हैं। ऐसा शील कभी एक समय भी किया नहीं। समझ में आया? कल कोई कहता था, गुजराती में आया था। कोई कहता

था। वहाँ है न? क्या कहते हैं? अंकलेश्वर। गुजराती आता है न? गुजरात समाचार में आया था। ... आकाश में आठ दिन... पेपर में आया था। एक मुर्दा चलता था, मुर्दा। ठाठडी। ठाठडी को क्या कहते हैं? अर्थी। चार आदमी उठाते थे और चार नारियेल थे। एक आदमी आगे-आगे अग्नि लेकर चलता था। और पीछे एक आदमी घास लेकर चलता था। पीछे एक स्त्री रोती थी। ऐसा आकाश में आठ दिन देखा। कल मिस्त्री कहता था। परमागम बनाता है न। वह कहता था, ये क्या है? मालूम नहीं। बराबर पढ़े तो मालूम पड़े। वहाँ अंकलेश्वर के आसपास। भरूच के पास अंकलेश्वर है न? लोगों ने देखा। आठ-दस दिन, आठ-दस दिन। क्या है? भूत प्रेत भी होता है, भूत प्रेत भी होता है। ऐसा कुतूहल करे (फिर) चले जाये। व्यन्तर होता है न? व्यन्तर। भूत प्रेत है। वह तो कुतूहल करके चले जाये। उसमें क्या है? अर्थी चलती है और पीछे एक स्त्री रोती थी, ऐसा देखा।

भगवान! यहाँ तो परमात्मा कहते हैं कि तेरी चीज़ आनन्दस्वरूप, उसमें तो तूने आनन्द देखा नहीं, माना नहीं, अनुभव नहीं। और पर में, रागादि में अनुभव करके मेरा माना (तो तू) शीलरहित है। आहाहा! अपना शील स्वभाव को जाना नहीं। चाहे तो साधु हुआ, परन्तु राग की एकताबुद्धि में अपना माना तो उसे शील है नहीं। समझ में आया? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पण आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द, कुण्ड समुद्र है। उस पर दृष्टि दी नहीं और अकेली पुण्य-पाप की क्रिया में अपने दृष्टि दी। समझ में आया? अपना शील खोया। अशील को अपना शील माना। **वह तो अंगीकार किया नहीं तब निष्फल ही गया।**

ऐसा भी बताया है कि पहली गाथा में कुमत, कुशास्त्र की प्रशंसा... ऐसा कहा था न? ... गाथा। जिसका अभिप्राय झूठा है, उसकी प्रशंसा करते हैं। आहाहा! जिसकी मान्यता ही उल्टी है। पुण्य परिणाम से धर्म मानते हैं, मनाते हैं, हित का पन्थ ऐसा है, ऐसा कहते हैं। उसकी प्रशंसा करना, उसकी श्रद्धा रखना, उसका अनुमोदन करना, वह पाप है। ऐसे **कुशास्त्र की प्रशंसा करनेवाले का ज्ञान निरर्थक कहा था, वैसे ही यहाँ रूपादिक का मद करो...** अपना निज रूप का विद्यमान चीज़ है, हयाती-मौजूद चीज़

है, उसका तो अनुभव प्रतीत नहीं। और जो आत्मा में नहीं है, ऐसा रूप की प्रतीति **करो तो यह भी मिथ्यात्व चिह्न है,...** मिथ्यात्व का वह लक्षण है। आहाहा! यह सब तो अजीव भाग है। भगवान तो अन्दर जीव भाग भिन्न है। अपने जीवस्वभाव की दृढ़ता मैं शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसे अनुभव की प्रतीति बिना 'यह मैं हूँ', ऐसे रूप का ग्रहण करे, अभिमान करे (वह) मिथ्यात्व का चिह्न है। यह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। समझ में आया? **जो मद करे उसे मिथ्यादृष्टि ही जानना...** लो। जाति, रूप, कुल आदि आठ बोल आते हैं न? उसका अभिमान करे तो उसको जानना कि जड़ को अपना माना। अपनी चैतन्यलक्ष्मी आनन्दकन्द प्रभु उसे तो प्रतीति में लिया नहीं, विश्वास किया नहीं, अनुभव किया नहीं, आश्रय लिया नहीं और पर के आश्रय में डूब गया। मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। आहाहा!

लक्ष्मी, रूप, यौवन,... पैसा, रूप, यौवन **कान्ति से मण्डित हो और शीलरहित व्यभिचारी हो...** राग को अपना मानना, अनुभवना वही व्यभिचारी जीव है। आहाहा! क्योंकि राग जो विकल्प है, वह विभाव है। विभाव की अपनी एकता करना, वही व्यभिचार है। आहाहा! समझ में आया? **लक्ष्मी, रूप, यौवन कान्ति से मण्डित हो और शीलरहित व्यभिचारी हो तो उसकी लोक में निन्दा ही होती है।** लोक में भी उसकी प्रशंसा होती नहीं। आहाहा!

गाथा-१६

आगे कहते हैं कि बहुत शास्त्रों का ज्ञान होते हुए भी शील ही उत्तम है –

वायरणछंदवइसेसियववहारणायसत्थेसु।
वेदेऊण सुदेसु य तेसु सुयं उत्तमं शीलं ।।१६।।

व्याकरणछन्दोवैशेषिकव्यवहारन्यायशास्त्रेषु।
विदित्वा श्रुतेषु च तेषु श्रुतं उत्तमं शीलम् ।।१६।।

है व्याकरण व्यवहार वैशेषिक सु न्याय रु छन्द के।
शास्त्रों श्रुतों का ज्ञान उनमें शील ही उत्तम कहें।।१६।।

अर्थ **– व्याकरण छंद वैशेषिक व्यवहार न्यायशास्त्र ये शास्त्र और श्रुत अर्थात् जिनागम इनमें उन व्याकरणादिक को और श्रुत अर्थात् जिनागम को जानकर भी इनमें शील हो, वही उत्तम है।**

भावार्थ **– व्याकरणादिक शास्त्र जाने और जिनागम को भी जाने तो भी उनमें शील ही उत्तम है। शास्त्रों को जानकर भी विषयों में ही आसक्त है तो उन शास्त्रों का जानना वृथा है, उत्तम नहीं है।।१६।।**

गाथा-१६ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि बहुत शास्त्रों का ज्ञान होते हुए भी शील ही उत्तम है :-

वायरणछंदवइसेसियववहारणायसत्थेसु।
वेदेऊण सुदेसु य तेसु सुयं उत्तमं शीलं।।१६।।

व्याकरण... पढ़ा हो, **छन्द...** पढ़ा हो, **वैशेषिक...** हो और व्यवहार में, संसार में डाह्या हो। डाह्या को क्या कहते हैं? शाणा (चतुर)। है १६वीं गाथा में? संसार में चतुर गिनने में आये कि ये भगवानदास तो संसार में होशियार ऐसा है, वैसा है। यह तो दृष्टान्त है, हाँ! सबको लागू पड़ता है न। ... आहाहा! व्याकरण में बड़ा पढ़ा हो। परन्तु आत्मा के भान बिना तेरा व्याकरण क्या करे? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसे छन्द। शास्त्र के छन्द ऐसे बोले कि लोगों को रंजन हो जाये। वैशेषिकमत है न? व्यवहार का जानपना। व्यवहार व्यहावरकुशल इसको कहते हैं। व्यवहारकुशल कहते हैं न? **न्यायशास्त्र...** पढ़ा हो। अष्टसहस्त्री आदि। ऐ... पण्डितजी! पढ़ा है या नहीं? अष्टसहस्त्री, प्रमेयकमल मार्तण्ड। संस्कृत में बड़ा ग्रन्थ है। संस्कृत का प्रोफेसर है। आहाहा! न्यायशास्त्र और शास्त्र। लो! जैन आगम। जिनागम को पढ़ा हो। उसमें क्या हुआ? अपना आत्मा राग और विकल्प से भिन्न है, ऐसी दृष्टि अनुभव नहीं किया तो वह शास्त्र का पढ़ना भी सब निरर्थक हुआ। आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जंगल में रहते थे।

नग्न दिगम्बर। मद्रास से ८० मील इस ओर पोन्नूरहिल नाम की छोटी पहाड़ी है। पोन्नूरहिल। वहाँ रहते थे। ध्यान में बहुत रहते थे। नीचे मन्दिर है। गाँव है। दो हजार वर्ष पहले का, हों! कुन्दकुन्दाचार्य के समय का। वहाँ रहते थे। नीचे भिक्षा के लिये निकलते थे, तब पहले दर्शन करने को वहाँ जाते थे। वह मन्दिर भी है। हमने देखा है। गये थे। मन्दिर है। पोन्नूरहिल के नीचे। नाम क्या है? पोन्नूर। गाँव का नाम पोन्नूर है। बहुत पुराना गढ़। पुराना गढ़ है और कहते थे, यहाँ कुन्दकुन्दाचार्यदेव आते थे, दो हजार वर्ष पहले, हों! वहाँ अन्यमत का मठ है। अन्यमत का। मठ में भी ऐसा लेख है कि यहाँ जैन का एक बड़ा मन्दिर था। और बहुत ... थी।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। यह तो मठ में लिखा है। मठ समझते हो? अन्यमति का मठ होता है न? उसमें ऐसा लेख है। वस्तु है या नहीं? वहाँ से भगवान के पास गये थे।

आचार्य कहते हैं, अकेले शास्त्र पढ़ने से भी क्या हुआ? और व्याकरण, छन्द (पढ़कर) बड़ा पण्डित हुआ, लाखों लोगों का रंजन कर दे। उसमें क्या हुआ? तेरा आत्मा तो रंजित हुआ नहीं। **श्रुत अर्थात् जिनागम इनमें व्याकरणादिक को और श्रुत जिनागम को जानकर भी, इनमें शील हो वही उत्तम है।** वह जाना परन्तु भगवान आत्मा शरीर, वाणी, मन और पुण्य-पाप के भाव से भिन्न है, ऐसा शील जो अन्तर दृष्टि प्रगट की हो तो ठीक है, नहीं तो अठीक है। समझ में आया? देखो! **जिनागम जानकर भी, इनमें शील हो वही उत्तम है।** नहीं तो निरर्थक है। आहाहा!

भावार्थ :- व्याकरणादि शास्त्र जाने और जिनागम को भी जाने... उसमें क्या आया? जिनागम शास्त्र है, पर है, परलक्ष्यी शब्दज्ञान है। **उनमें शील ही उत्तम है।** शील अर्थात् रागरहित अपने स्वभाव की दृष्टि और अनुभव, वही उत्तम है। **शास्त्रों को जानकर भी विषयों में आसक्त है...** शास्त्र को जाने और राग की एकता में रहे। ऐसा कहते हैं, हों! अन्दर में। **तो उन शास्त्रों का जानना वृथा है,...** राग को अपना मानकर राग में लीनता हुई, सब भोग का विषय है। आहाहा! आत्मा का आनन्द का अनुभव सिवा राग का अनुभव, वही विषय का अनुभव है। समझ में आया? **वृथा है, उत्तम नहीं है।**

आहाहा! जिनागम को निरर्थक किया। जिनागम को पढ़ने से क्या हुआ? पत्थर की शिला पर जिनागम लिखे। पत्थर की शिला पतली पानी में रखे तो? डूब जाये या रखती है? शास्त्र लिखा है उसमें। संगमरमर होता है न? संगमरमर पतला।

अपने यहाँ बनाते हैं न? परमागम बनाते है न? थोड़े समय में आनेवाला है। आरसपहाण। आरसपहाण कहते हैं न? संगमरमर। क्या कहते हैं? मकराणा... मकराणा। कल कहते थे, तार आया है। संगमरमर का पत्थर तैयार है। कल मिस्त्री आयेगा। पौने चार लाख अक्षर है न उसमें? संगमरमर में। समयसार, प्रवचनसार सब भगवान की वाणी है न। कुन्दकुन्दाचार्य (की) और उसकी टीका है उसमें। करीब चार लाख अक्षर है। कल मिस्त्री कहता था, तार आया है। तार आया है न? पत्र आया है? ठीक।

विषयों में आसक्त है भी उन शास्त्रों को जानना वृथा है,... अपना निज विषय दृष्टि ने बनाया नहीं और जो दृष्टि राग और पर विकार को विषय बनाती है, उसका सब शीलरहित है। शास्त्र पढ़ना आदि निरर्थक है, ऐसा कहते हैं। ओहो! समझ में आया? अपनी निज निधि आनन्द और शान्ति का सागर भगवान सिद्धस्वरूपी अन्दर आत्मा पड़ा है। उस ओर तो दृष्टि दी नहीं, श्रद्धा की नहीं, राग की क्रिया में सब मान लिया। कहते हैं कि तेरा शास्त्र पढ़ना भी निरर्थक है। सार्थक है भटकने में। भटकाना मिटने में निरर्थक है। आहाहा!

गाथा-१७

आगे कहते हैं कि जो शील गुण से मंडित हैं, वे देवों के भी वल्लभ हैं –

सीलगुणमंडिदाणं देवा भवियाण वल्लहा होंति।
सुदपारयपउरा णं दुस्सीला अप्पिला लोए।।१७।।

शीलगुणमंडितानां देवा भव्यानां वल्लभा भवंति।
श्रुतपारगप्रचुराः नं दुःशीला अल्पकाः लोके।।१७।।

नित शील गुण–मण्डित भविक के देव बल्लभ हो गये।
पर प्रचुर श्रुत–पारग दुश्शीली तुच्छ माना जगत में।।१७।।

अर्थ – जो भव्यप्राणी शील और सम्यग्दर्शनादि गुण से मंडित है, वह देवों के भी उनका देव भी वल्लभ होते हैं, उनकी सेवा देव भी करते हैं, जो श्रुतपारग अर्थात् शास्त्र के पार पहुँचे हैं, ग्यारह अंग तक पढ़े हैं, ऐसे बहुत हैं और उनमें कई शीलगुण से रहित हैं, दु:शील हैं, विषय–कषायों में आसक्त हैं, वे तो लोक में 'अल्पका' अर्थात् न्यून हैं, वे मनुष्यों के भी प्रिय नहीं होते हैं, तब देव कहाँ से सहायक हो ?

भावार्थ – शास्त्र बहुत जाने और विषयासक्त हो तो उसका कोई सहायक न हो, चोर और अन्यायी की लोक में कोई सहायता नहीं करता है, परन्तु शीलगुण से मंडित हो और ज्ञान थोड़ा भी हो तो उसके उपकारी सहायक देव भी होते हैं, तब मनुष्य तो सहायक होते ही हैं। शील गुणवाला सबका प्यारा होता है।।१७।।

गाथा–१७ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो शीलगुण से मण्डित हैं, वे देवों के भी वल्लभ हैं :- '...' वह कहते हैं।

सीलगुणमंडिदाणं देवा भवियाण वल्लहा होंति।
सुदपारयपउरा णं दुस्सीला अप्पिला लोए।।१७।।

अर्थ :- जो भव्यप्राणी शील... नाम रागरहित अपना श्रद्धा–ज्ञान आदि **और सम्यग्दर्शनादि गुण अथवा, (वही) शील गुण...** पहले आया था। शील, वही गुण है। पहले आया था न? **उससे मण्डित है...** अपना सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान और स्वरूप में एकाग्रता सहित है, **उससे मण्डित हैं, उनका देव भी वल्लभ होता है,...** उसके पास तो देव भी आते हैं। देखो! **उनकी सेवा करनेवाले सहायक होते हैं।** यह तो एक बहुमान बताते हैं, हों! नहीं आये तो कुछ नहीं। धर्मात्मा हो, और नहीं भी आये। यह तो एक महिमा (बताते हैं)। आगे कहेंगे, शरीर की सुन्दरतारहित, कुकुल में अवतरित हुआ हो, साधारण... हो, परन्तु अपने स्वभाव का ज्ञान है, चाण्डाल को लिया न?

रत्नकरण्ड श्रावकाचार में। चण्डाल। '...' देव कहने में आता है। शरीर कुबड़ा काला हो, लक्ष्मी कुछ नहीं हो, निर्धनता (हो), परिवार कुछ नहीं हो। परन्तु राग से रहित अपने स्वरूप का अनुभव, दृष्टि-सम्यग्दर्शन की। चाण्डाल को शील आ गया। आहाहा! समझ में आया? उसका देव भी वल्लभ होता है।

जो श्रुतपारग अर्थात् शास्त्र के पार पहुँचे हैं, ग्यारह अंग तक पढ़े हैं ऐसे बहुत हैं और उनमें कई शीलगुण से रहित हैं,... ग्यारह अंग पढ़े हो ऐसे तो बहुत है, ऐसा कहते हैं। बहुत लोग साधु होकर बहुत पढ़ते हैं, उसमें क्या आया? **शीलगुण से रहित हैं,...** अपना आत्मा का आनन्दस्वभाव, उसकी प्रतीति और अनुभव से रहित **दुःशील हैं, विषय-कषायों में आसक्त हैं तो वे लोक में 'अल्प का' अर्थात् न्यून हैं...** पाठ है न? '**अप्पिला**।' हीन है, हीन। चाहे तो बहुत शास्त्र पढ़े हो। आत्मा की दृष्टि किये बिना, राग से पृथक् हुए बिना अपना शील स्वभाव कभी सत्य प्रगट होता ही नहीं। उसके बिना सब दुःशील है।

मनुष्यों के भी प्रिय नहीं होते हैं, तब देव कहाँ से सहायका हो? मनुष्य में भी प्रिय न लगे। उतनी शीलता नहीं। स्वभाव, वीतरागी स्वभाव को यहाँ शील कहते हैं, हों! पुण्य-पाप के विकल्प है, वह अशील है। उससे रहित अपनी श्रद्धा शुद्ध चैतन्यद्रव्य की, ज्ञायक की और स्वसंवेदन का भान, उसको यहाँ शील कहने में आता है। ऐसा शील न हो तो लोक में **प्रिय नहीं होते हैं, तब देव कहाँ से सहायक हो?** आहाहा!

मुमुक्षु : पर की सहाय तो कहने मात्र है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सहायक कौन होता है? देव आते हैं, उतनी महिमा बताते हैं। उसकी सहाय कहाँ है धर्मी को? देव हो या इन्द्र हो। करे कौन? इन्द्र, इन्द्र के पास रहा, क्या कर सकता है? सहाय किसको करनी? धर्मी को तो देव आये तो भी तुम हमें क्या करोगे? हमारी ऋद्धि तो हमारे पास है, हमारी ऋद्धि तो हमारे पास है।

मुमुक्षु : उनकी महिमा के लिये बताया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये तो पुण्य की महिमा। ऐसा... है। देव भी वल्लभ होता है।

भावार्थ :- **शास्त्र बहुत जाने और विषयासक्त हो तो...** राग में एकत्व हो,

उसका कोई सहायक न हो, चोर और अन्यायी की लोक में कोई सहायता नहीं करता है,... बाहर में भी लोक में अन्यायी की कोई सहाय नहीं करता। **परन्तु शीलगुण में मण्डित हो और ज्ञान थोड़ा भी हो...** देखो! जानपना भले थोड़ा हो। दूसरे को समझने में आवे, ऐसा भी ज्ञान न हो। उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं। आहा! अपना स्वभाव का अनुभव हो, स्वसंवेदन अपना ज्ञान (हो), सम्यग्दर्शन सहित का वेदन, बस! थोड़ा ज्ञान हो तो भी उसको बड़ा कहने में आता है। **शास्त्र बहुत जाने और विषयासक्त हो तो उसका कोई सहायक न हो, चोर और अन्यायी की लोक में कोई सहायता नहीं करता है, परन्तु शीलगुण से मण्डित हो और ज्ञान थोड़ा भी हो तो उसके उपकारी सहायक देव भी होते हैं, तब मनुष्य तो सहायक होते ही है।** ...लौकिक में कद्र करनेवाले होते हैं या नहीं? **शील गुणवाला सबको प्यारा होता है।** बाहर की चीज़ से कोई प्यारा होता नहीं। आहाहा! सब कहते हैं, देखो!

गाथा-१८

आगे कहते हैं कि जिनके शील हैं, सुशील हैं, उनका मनुष्यभव में जीना सफल है, अच्छा है –

सव्वे वि य परिहीणा रूवणिरूवा वि पडिदसुवया वि।
सीलं जेसु सुसीलं सुजीविदं माणुसं तेसिं।।१८।।

सर्वेऽपि च परिहीनाः रूपविरूपा अपि पतितसुवयसोऽसि।
शीलं येषु सुशीलं संजीविदं मानुष्यं तेषाम्।।१८।।

हो सभी में परिहीन रूप विरूप यौवन-भ्रष्ट भी।
पर शील जिनमें सुशीली तो मनुज जीवित है वही।।१८।।

अर्थ – जो सब प्राणियों में हीन हैं, कुलादिक से न्यून हैं और रूप से विरूप हैं, सुन्दर नहीं हैं, 'पतितसुवयसः' अर्थात् अवस्था से सुन्दर नहीं है, वृद्ध हो गये हैं, परन्तु

जिनमें शील सुशील है, स्वभाव उत्तम है, कषायादिक की तीव्र आसक्तता नहीं है, उनका मनुष्यपना सुजीवित है, जीना अच्छा है।

भावार्थ **– लोक में सब सामग्री से जो न्यून हैं, परन्तु स्वभाव उत्तम है, विषय-कषायों में आसक्त नहीं हैं तो वे उत्तम ही हैं, उनका मनुष्यभव सफल है, उनका जीवन प्रशंसा के योग्य है।।१८।।**

गाथा-१८ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जिनके शील है-सुशील हैं, उनका मनुष्यभव में जीना सफल है, अच्छा है :-

सव्वे वि य परिहीणा रूवणिरूवा वि पडिदसुवया वि।
सीलं जेसु सुसीलं सुजीविदं माणुसं तेसिं।।१८।।

अब सुलटा लिया।

अर्थ :- जो सब प्राणियों में हीन हैं, कुलादिक से न्यून हैं... सर्व प्राणी में हीन। बाहर में कोई गिनती में नहीं आवे, ऐसा हो। परन्तु यदि आत्मा का शील अर्थात् राग से रहित सम्यग्दर्शन हो, वह सुशील है। वह वीतरागमार्ग में प्रशंसा करनेयोग्य है। समझ में आया? **जो सब प्राणियों में हीन हैं,...** देखो! भाषा ली न? **'सव्वे वि य परिहीणा'** रूप में नहीं, कण्ठ में नहीं, कुल में नहीं, जाति में नहीं,... गाँव में कोई हल्का आदमी गिनना हो। ओहो! **कुलादिक से न्यून हैं...** चाण्डाल भी हो, हरिजन हो। **और रूप से विरूप हैं...** शरीर एकदम काला-कुबड़ा। उसमें क्या हुआ? वह तो जड़ है। आहा! **विरूप हैं, सुन्दर नहीं है,...**

'पतितसुवयसः' अर्थात् अवस्था से सुन्दर नहीं है,... युवावस्था चली गयी हो और वृद्धावस्था हो गयी हो। आहाहा! देखो! **अवस्था से सुन्दर नहीं है, वृद्ध हो गये हैं,...** १०० साल का बूढ़ा हो गया हो, दाँत गिर गये हों, आँख फूट गयी हो, कान में सुनने की ताकत न हो। महीने में २५ रुपया कमाने की शक्ति न हो। उसमें क्या हुआ?

हें! बाहर को समकित में तो उड़ा दिया। बाहर की जिसको कीमत है, उसको अन्तर की कीमत है? अन्तर की कीमत है, उसको बाहर की कीमत है नहीं। आहाहा! आचार्य ने देखो न कितनी शैली से बात की है। वृद्ध हो गया हो। १०० साल का बूढ़ा।

परन्तु जिनमें शील सुशील है, स्वभाव... राग से रहित अपने स्वभाव की जिसकी सम्यग्ज्ञान सहित की सुशीलता अन्तर में प्रगट हुई। **कषायादिक की तीव्र आसक्तता नहीं है...** अनन्तानुबन्धी का कषाय छूट गया। अनन्त संसार का कारण जो मिथ्यात्व था और उसके साथ अनन्तानुबन्धी कषाय है, वह तो आत्मा की दृष्टि हुई, अनुभव हुआ तो छूट गया। समझ में आया? **उनका मनुष्यपना सुजीवित है,...** लो। '**सुजीविदं माणुसं**' ऐसा कहा है। भगवान! तेरा जीवन सफल है। आहाहा!

यहाँ तो आत्मा को ही भगवान कहते हैं। समयसार-७२ गाथा में आया न? अमृतचन्द्राचार्य। भगवान आत्मा... ऐसा कहकर बुलाया है। अमृतचन्द्राचार्य (ने)। समयसार-७२ गाथा। आस्रव अशुचि है, भगवान शुचि पवित्र है, ऐसे बुलाया है। पुण्य-पाप का विकल्प जो है, वह अशुचि है, मैल है। भगवान उससे रहित निर्मलानन्द है। सब आत्मा की बात करते हैं, हों! आस्रव है, वह अजीव है, अचेतन है। पुण्य-पाप का भाव जो है, वह तो अचेतन है। भगवान आत्मा चैतन्य का समुद्र है। ऐसे लिया है। पुण्य-पाप का भाव दुःखरूप है। भगवान आत्मा आनन्दरूप है। ऐसे तीन बोल का भेद करके छेद कर दिया। समझ में आया? भगवान आत्मा... ऐसा अमृतचन्द्राचार्य ने टीका में लिया है। भगवान आत्मा। शरीर, वाणी, मन तो जड़ है, उसकी तो यहाँ बात ही नहीं। परन्तु पुण्यभाव जो है दया, दान का, वह भी अचेतन जड़ है। भगवान उससे भिन्न चैतन्यमूर्ति प्रभु आनन्द का धाम है। ऐसा जिसको अशुचि से शुचि का भेदज्ञान हुआ, दुःख से आनन्द का भेदज्ञान हुआ, अचेतन राग से चेतन का भेदज्ञान हुआ, (वह) सुशील है। समझ में आया?

धर्मात्मा प्रशंसनेयोग्य है। देखो! कितनी बात ली है! '**सव्वे वि य परिहीणा**' ऐसे लिया है। '**सव्वे वि**' और '**परिहीणा**' पण्डितजी! दो शब्द लिये हैं। सर्व जीवों में भी '**परिहीणा**'। ऐसे। वह... है। हीन से हीन। आहाहा! सबसे... आहाहा! दुनिया से सबसे आहाहा! आचार्य ने स्वयं ने दो शब्द लिये हैं, '**सव्वे वि य परिहीणा**'। ओहोहो! अपना

आत्मा राग और विकल्प से भिन्न है, ऐसी जिसको दृष्टि और अन्तर का ज्ञान हुआ, तेरा मनुष्य जन्म सफल है, प्रभु! भले निर्धन हो, गरीब हो, बाँझ हो। बाँझिया समझते हो? पुत्र न हो। बाँझिया, जिसको पुत्र न हो। पुत्र... पुत्र। हमारे यहाँ बाँझिया कहते हैं। पुत्ररहित। पुत्ररहित बाँझ। वाँढा-स्त्री नहीं हो। वाँढा अर्थात् स्त्री न हो। अकेला हो, कोई स्त्री दे नहीं, उसमें क्या हुआ? आहा! आत्मा अन्दर में आनन्दकन्द प्रभु सच्चिदानन्द नाथ, जिसने पुण्य-पाप के राग से भिन्न होकर आत्मा की भेंट की, सफल है तेरा मनुष्यजन्म। यहाँ पच्चीस-पचास लाख मिले और धूल लाख मिले तो ऐसा हो जाये... आहा! हम तो बढ़ गये।

मुमुक्षु : बेड़ा पार हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी बेड़ा पार नहीं है। बेड़ा पार है, मोक्ष में से निकलकर संसार में।

मुमुक्षु : साते पीढ़ी तक कोई तकलीफ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी सात पीढ़ी नहीं है। ऐई! हिम्मतभाई! आहाहा! धूल का ढ़ेर है, यहाँ पड़ा रहेगा और तू चला जायेगा। वह चीज़ तेरी कहाँ है कि तेरे साथ आये। वह तो भिन्न है। वर्तमान भिन्न, भूत में भिन्न, भविष्य में भिन्न (है)। कहा न? वह चीज़ पूर्व में तो तेरे पास नहीं थी। ये शरीर, लक्ष्मी आदि पूर्व में तेरे पास तो नहीं थी, भविष्य में नहीं रहेगी, तो वर्तमान में तेरी कहाँ से हो गयी? समझ में आया? यह शरीर, बाह्य चीज़, कुटुम्ब, लक्ष्मी पूर्व में थी? पूर्व भव में थी? आयुष्य पूरा होने के बाद रहेगी? पूर्व में नहीं थी, बाद में नहीं रहेगी तो वर्तमान में तेरी कहाँ से हो गयी? आहाहा! खबर नहीं सत् की, खबर नहीं। सत् और असत् क्या चीज़ है? बाहर से तो सब मानते हैं, ऐसा करो और ऐसा करो। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, गरीब में गरीब आदमी हो। कुलहीन हो। आहाहा! रूपहीन हो, रूपहीन हो नहीं, परन्तु विरूप हो। ऐसा कहा न? रूप नहीं, परन्तु विरूप हो। काला-कुबड़ा शरीर, शीतला निकले हो, चेहरे पर खड्डे हो गये हो। आहाहा! उमर में वृद्ध हो गया हो, दाँत सड़ गये हों, आँख में छेद जैसा हो, मोतिया आया हो, एक आँख

में फूली हुई हो। फूली होती है न? किसी को तो बचपन से होता है। उसमें क्या हुआ? वह तो जड़ की दशा है, उसमें आत्मा को क्या? समझ में आया? आहाहा! भगवान आचार्य कहते हैं कि हीन में हीन मनुष्य हो। बाह्य दशा की अपेक्षा से, हों! परन्तु अन्तर की दृष्टि राग से भिन्न अपने अनुभव की दृष्टि हुई, सफल... सफल है। जाओ! स्वर्ग में से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष होगा। समझ में आया? '**सुजीविदं माणुसं**' तू जीया, भाई! आत्मा के जीवन से जीया। तेरा जीवन तेरा आत्मा का हुआ। राग और शरीर से मेरा जीवन था, उसका नाश हुआ तुझे। आहाहा! कहो, जादवजीभाई!

भावार्थ :- लोक में सब सामग्री से जो न्यून हैं... देखो! सब सामग्री से न्यून हो। इन्द्रियों का भी ठिकाना न हो, पाँच इन्द्रिय। अणीन्द्रिय भगवान आत्मा ठिकाने पर हो। आहाहा! समझ में आया? बाहर में बड़ी इज्जत हो, कीर्ति बड़ी हो। उसमें क्या हुआ? इज्जत नहीं हो तो उसमें हीनता क्या हुई? **परन्तु स्वभाव उत्तम है...** देखो! स्वभाव उत्तम का अर्थ? सम्यग्दर्शन स्वभाव उत्तम है। ऐसे कषाय की मन्दता का स्वभाव तो अनन्त बार हुआ, वह नहीं। नौवें ग्रैवेयक दिगम्बर साधु होकर गया, कितना स्वभाव उसका? राग मन्द... मन्द... मन्द... और चमड़ी निकालकर नमक छिड़के तो भी क्रोध न करे। वह चीज़ नहीं। अपना आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न है, उसकी दृष्टि और अनुभव, वह चीज़ है। समझ में आया?

विषय-कषायों में आसक्त नहीं हैं... सम्यग्दृष्टि को विषय-कषाय में रुचि है ही नहीं। चाहे तो छह खण्ड के राज में हो या चाहे तो सातवीं नरक में नारकी हो। रवरव नरक नीचे है न? रवरव। उसमें भी कोई समकिती है वहाँ। आनन्द है। आसक्त नहीं है। प्रतिकूलता में खेद प्रतिकूलता के कारण नहीं। सहनशक्ति कम के कारण हो जाये, वह दूसरी बात है। अन्तर में समकिती को तो आनन्द है। समझ में आया? वह आता है या नहीं? नारकी दुःख भोगत। बाह्य नारकीकृत दुःख भोगत, अन्तर सुख की गटागटी। आता है न वह? गटागटी। हटाहटी। वह चीज़ क्या है, लोगों को खबर नहीं। बाहर से मानते हैं, भगवान सच्चे, देव-गुरु सच्चे वह समकित। ये तो आत्मा अन्दर है, विकल्प दशा से भिन्न निर्विकल्प चीज़ है, उसकी दृष्टि हुई और शील स्वभाव जो था, वह प्रगट हुआ, तो कहते हैं कि बाहर में चाहे जैसी न्यूनता हो, तो भी वह उत्तम है।

उनका मनुष्यभव सफल है,... आहाहा! **उनका जीवन प्रशंसा के योग्य है।** बाहर में बड़े-बड़े अभिनन्दन दे। पैसेवाले पैसा खर्च करे। ऐ... सेठ! क्या देते हैं? अभिनन्दन-मानपत्र देते हैं। आपने हमारी कद्र की यह आपका बड़प्पन है। अन्दर तो मिठास लगती हो और बाहर में ऐसा बोले। ऐ... सेठ! आपने हमारी कद्र की, ... यह आपका बड़प्पन है। ऐसा बोले। ...अन्दर तो प्रसन्न-प्रसन्न है। आत्मा के आनन्द बिना पर का प्रेम कभी उसका जाये नहीं। समझ में आया? यहाँ यह कहते हैं, धर्मी को आत्मा का आनन्द आया है तो उसकी प्रीति कहीं चिपकती नहीं। है? उसको उत्तम शील और उत्तम धर्म कहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१९

आगे कहते हैं कि जितने भी भले कार्य हैं, वे सब शील के परिवार हैं –

जीवदया दम सच्चं अचोरियं बंभचेरसंतोसे।
सम्मद्दंसण णाणं तओ य सीलस्स परिवारो ।।१९।।

जीवदया दमः सत्यं अचौर्यं ब्रह्मचर्यसंतोषौ।
सम्यग्दर्शनं ज्ञानं तपश्च शीलस्य परिवारः ।।१९।।

प्राणी-दया दम सत्य ब्रह्म अचौर्य सन्तोषीपना।
सम्यक्त्व ज्ञान तपादि सब परिवार जानो शील का।।१९।।

***अर्थ* – जीवदया, इन्द्रियों का दमन, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, संतोष, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, तप – ये सब शील के परिवार हैं।**

***भावार्थ* – शील स्वभाव तथा प्रकृति का नाम प्रसिद्ध है। मिथ्यात्वसहित कषायरूप ज्ञान की परिणति तो दु:शील है, इसको संसारप्रकृति कहते हैं, यह प्रकृति पलटे और सम्यक् प्रकृति हो, वह सुशील है, इसको मोक्षसन्मुख प्रकृति कहते हैं। ऐसे सुशील के 'जीवदयादिक' गाथा में कहे, वे सब ही परिवार हैं, क्योंकि संसारप्रकृति**

पलटे तब संसारदेह से वैराग्य हो और मोक्ष से अनुराग हो, तब ही सम्यग्दर्शनादिक परिणाम हों, फिर जितनी प्रकृति हो, वह सब मोक्ष के सन्मुख हो, यही सुशील है। जिसके संसार का अन्त आता है, उसके यह प्रकृति होती है और यह प्रकृति न हो, तबतक संसारभ्रमण ही है, ऐसे जानना।।१९।।

प्रवचन-१८७, गाथा-१९-२०, शुक्रवार, माघ शुक्ल ३, दिनांक २९-०१-१९७१

अष्टपाहुड़ में शीलपाहुड़ चलता है। १८ गाथा पूरी हुई। १९। कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं, **आगे कहते हैं कि जितने भी भले कार्य हैं, वे सब शील के परिवार हैं:-** व्याख्या करेंगे।

जीवदया दम सच्चं अचोरियं बंभचेरसंतोसे।
सम्मद्दंसण णाणं तओ य सीलस्स परिवारो।।१९।।

अर्थ :- जीवदया,... अहिंसा। आत्मा में राग से रहित अपनी चीज़ की अनुभव दृष्टि हुई, उसमें राग रहित जो दशा उत्पन्न होती है, उसको यहाँ अहिंसा कहते हैं।

मुमुक्षु : दूसरे जीव की दया पालनी...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यहाँ नहीं है। ...पर की दया पालने का तो विकल्प है, राग है। पर की दया आत्मा पाल नहीं सकता। क्योंकि परद्रव्य स्वतन्त्र पदार्थ है। उसका जीवन रहना और जीवन छूटना, वह तो उसके आधीन है। कोई दूसरा पर को जीवित रख सकता है और दया पाल सकता है, ऐसी बात है नहीं। बराबर है? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : जीवदया...

पूज्य गुरुदेवश्री : जीवदया, वह आत्मा की दया। आत्मा जीव है या नहीं? भगवान आत्मा ज्ञान, आनन्द, शान्तस्वभाव निर्विकल्प वीतरागी स्वरूप आत्मा है। उसकी दया। विकल्प से, पुण्य-पाप के विकल्प से रहित अपने स्वभाव की दृष्टि में एकाग्र होना, वही राग की अनुत्पत्तिरूप अहिंसा कहने में आती है। अमृतचन्द्राचार्यदेव पुरुषार्थसिद्धि उपाय में ऐसा फरमाते हैं। पुरुषार्थसिद्धि उपाय।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह। कौन है ? पण्डितजी ने कहा। कण्ठस्थ है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के बाद अमृतचन्द्राचार्य (हुए), जो दोपहर को कलश-टीका चलती है न ? कलश उन्होंने अमृतचन्द्राचार्य ने बनाये, उसके पद्य बनारसीदास ने बनाये। अमृतचन्द्राचार्य ने पुरुषार्थसिद्धि उपाय बनाया। उसमें ऐसा कहा कि रागादि की उत्पत्ति का नहीं होना और अपना स्वभाव शुद्ध की उत्पत्ति वीतरागी दशा का होना, उसे संक्षेप में वीतराग अहिंसा कहते हैं। समझ में आया ? लोगों की व्याख्या दूसरी है, वीतराग की व्याख्या दूसरी है। भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप अनन्त-अनन्त शान्त अविकारी स्वभाव से भरा पड़ा आत्मा, उसमें दृष्टि करके स्वभाव की दृष्टि करके, विभाव की उत्पत्ति न होना, उसका नाम अहिंसा-जीव की दया है। सेठ!

इन्द्रियों का दमन... यहाँ क्या कहते हैं ? यह शील का परिवार है। शील की व्याख्या क्या ? वह अब नीचे कहेंगे। शील का सब परिवार। शील की व्याख्या नीचे करेंगे। **इन्द्रियों का दमन...** पाँच इन्द्रियों का दमन और अतीन्द्रिय आनन्द की दशा प्रगट करना, वह शील का परिवार है। शील किसको कहते हैं, उसका स्पष्टीकरण करेंगे। और **सत्य,...** सत्यस्वरूप भगवान आत्मा, ऐसी सत्य की परिणति प्रगट करना, वह शील का परिवार है। **अचौर्य,...** कोई भी चीज़ लेने का विकल्प का त्याग और अपनी स्वरूप की दृष्टि की स्थिरता, वह अचौर्य। **ब्रह्मचर्य,...** ब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप परमब्रह्म आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्दब्रह्म में चरना, रमना, वह ब्रह्मचर्य। **सन्तोष,...** इच्छा का अभाव करके शान्ति प्रगट करना, ऐसा सन्तोष।

सम्यग्दर्शन,... अपना अन्तर निजात्मा की अन्तर अनुभव करके प्रतीति, राग के रस को छोड़कर, विकल्प के प्रेम को छोड़कर, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प हो, उसकी रुचि छोड़कर अपना पूर्ण आत्मा... वह छहढाला में आता है न ? आत्मरुचि भला है।

मुमुक्षु : परद्रव्यतैं भिन्न आत्मरुचि सम्यक्त्व भला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। परद्रव्य से भिन्न अपने आत्मा की रुचि भला है।

परद्रव्य अर्थात् शुभ-अशुभराग है न विकल्प? दया, दान, व्रतादि के परिणाम, वह भी वास्तव में तो परद्रव्य है। अपना निज स्वभावभाव वह (नहीं), उस परद्रव्य से रहित अपना आत्मा जो निर्विकल्प शुद्ध आनन्द है, उसकी दृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

ज्ञान,... अपना ज्ञानानन्दस्वरूप, उसका ज्ञान करना। आत्मा पवित्र पिण्ड प्रभु है, उसका ज्ञान, वह ज्ञान। **तप...** अमृतस्वरूप भगवान आत्मा, इच्छा की उत्पत्ति नहीं होना और अतीन्द्रिय आनन्द की उग्र दशा उत्पन्न होना, उसका नाम भगवान तप कहते हैं। **ये सब शील के परिवार हैं।** ये सब शील का परिवार-सज्जन साथ में रहनेवाले हैं। ये सब अंगी हैं। अंगी नहीं कहते हैं? हमारे अंगी है। वैसे शील के ये सब अंगी हैं। साथ में रहनेवाले हैं। अब शील की व्याख्या।

भावार्थ :- शीलस्वभाव का तथा प्रकृति का नाम प्रसिद्ध है। तीन बोल लिये। शील कहो, स्वभाव कहो या प्रकृति कहो। समझ में आया? उसकी व्याख्या बाद में करेंगे, अभी तो नाम लेते हैं। शील को स्वभाव कहो, उसको प्रकृति (कहो), ये तीनों शील के प्रसिद्ध नाम हैं। जगत से दूसरी चीज़ है, भैया! बाहर में व्यवहार, व्यवहार इतना चला है कि उसके कारण इसका स्वरूप क्या है, उसकी प्रतीति भान नहीं है। कहते हैं, शील कहो, स्वभाव कहो, प्रकृति कहो।

मिथ्यात्वसहित कषायरूप ज्ञान की परिणति तो दु:शील है,... ऐसी व्याख्या आयी। जो अपना स्वभाव पूर्णानन्द सच्चिदानन्द सिद्ध आनन्दस्वरूप, उससे विरुद्ध रागादि विकल्प की प्रतीति करना कि उससे मुझे लाभ है, वह मेरी चीज़ है, ऐसा मिथ्यात्वभाव और साथ में राग-द्वेष का भाव, वह ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उसकी मिथ्यात्व और राग-द्वेष की दशा दु:शील है। यह दु:शील है। ज्ञानस्वभाव चैतन्यपिण्ड प्रभु, चैतन्य का नूर का पूरा आत्मा चैतन्य है। उसमें राग शुभ हो या अशुभ, वह मेरा है और शुभ से मुझे कल्याण होगा, ऐसी मान्यता मिथ्यात्व है और उसके साथ राग-द्वेष है, उसको परमात्मा दु:शील कहते हैं। ज्ञान को दु:शील बनाया। ज्ञान चैतन्यप्रभु तो ज्ञाता-दृष्टा का स्वभाव रखनेवाला है। ऐसा न मानकर उसने; मैं पर की क्रिया कर सकता हूँ, पर की दया पाल सकता हूँ, पर को मार सकता हूँ, मेरे में राग आया, वह राग भी मेरी

चीज़ है, राग से भी मुझे लाभ होगा;—ऐसी मिथ्यात्वसहित राग-द्वेष की प्रकृति का नाम दु:शील कहने में आता है। कहो, है ? सेठ! है या नहीं उसमें ? आहाहा!

ब्रह्मचर्य की व्याख्या तो बाहर की है। यह तो अन्तर चीज़ की बात है। परिणति है न ? ज्ञान की परिणति। अर्थात् चैतन्यप्रकाश का पूर प्रभु, उसकी दशा में विकार का होना और विकार मेरी चीज़ है, ऐसी मान्यता, वह ज्ञानस्वभाव में दु:शील प्रकृति स्वभाव है। समझ में आया ? मिथ्यात्वसहित अपना परिपूर्ण प्रभु आनन्द का धाम, उस ओर की सन्मुख दृष्टि का अभाव और पुण्य-पाप विकल्प, निमित्त और अल्पज्ञ सन्मुख अपनी दृष्टि, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

वस्तु भगवान आत्मा अनाकुल ज्ञानस्वरूप है। उससे अविनाभावी उसका ज्ञान है। अतीन्द्रिय आनन्द से अविनाभाव अर्थात् आनन्द ज्ञान बिना नहीं, ज्ञान आनन्द बिना नहीं। आहाहा! ऐसा अपना निज स्वभाव, उस स्वभाव में स्वभाव से विरुद्ध चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प हो, यह राग अपना है और मुझे लाभ करेगा, ऐसा मिथ्यात्वभाव, साथ में राग-द्वेष का भाव, वह दु:शील है। बड़ा कठिन काम, भाई! अरे! कभी उसने निज स्वभाव निर्मलानन्द सचित्त प्रभु (को जाना नहीं)। सचित्त प्रभु-जागृत प्रभु। परमाणु जड़ प्रभु है। जड़ प्रभु अर्थात् जड़ की शक्ति उसके पास है। वह शक्ति कोई दूसरे से लेता नहीं। जड़ेश्वर है, जड़ेश्वर। यह प्रभु चैतन्य ईश्वर है। आहाहा!

कहते हैं, मिथ्यात्व... मूल बात यहाँ है। चैतन्यबिम्ब प्रभु को, राग का शुभ-अशुभ विकल्प के साथ एकता माननी, उसका नाम दु:शील कहने में आता है। आत्मा ज्ञानस्वभाव की दु:शील प्रकृति, दु:शील स्वभाव, अज्ञानभाव है। ऐसा है, चन्द्रकान्तभाई! सूक्ष्म है। आहाहा!

मुमुक्षु : परमसत्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ही ऐसी है। उसमें क्या ? वस्तु पुकार करती है, मैं तो पवित्र आनन्द शुद्ध हूँ। उसमें विकल्प का अशुद्धभाव के साथ मिलान करना, एकत्वबुद्धि करनी, उससे लाभ मानना, राग को अपना माना, तब राग का कर्ता होता है और राग से लाभ माननेवाला राग को अपना स्वरूप मानता है, ऐसी मिथ्यात्वसहित प्रकृति और

मिथ्यात्वसहित कषाय। ज्ञान की अर्थात् आत्मवस्तु की विकारी मिथ्यात्व की परिणति **तो दु:शील है,...** संसार में भटकने की प्रकृति है। **इसको संसारप्रकृति कहते हैं,...** देखो! है? संसार कोई बाहर नहीं रहता। आहाहा! भगवान आत्मा अणीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, उसकी रुचि छोड़कर पुण्य-पाप का विकल्प का प्रेम करना और राग के साथ एकता करनी, वही संसारप्रकृति है। वह संसार स्वभाव है। आहाहा! समझना क्या चीज़ है, समझना व्यवहार है, ये भी मुश्किल पड़े। अभ्यास नहीं है। पहले अभ्यास किया सब बीड़ी आदि का। सेठ! बहुत मेहनत की है, कहते हैं। साईकिल चारों ओर घुमाते थे गाँवों में। फिर पैसे इकट्ठे हुए। उसके कारण होगा? धूल में भी नहीं है। वह तो पूर्व के पुण्य के रजकण...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...कहाँ होते हैं? वहाँ पड़े हैं। यहाँ है? साथ में आते हैं? अजीव अजीवपने अपने क्षेत्र में अपने भाव से रहा है। बराबर है? या तुम्हारे भाव से रहा है? वह अपने भाव से रहा है और तुम्हारे भाव से वह नहीं और उसके भाव से तुम नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ...कौन करता था? पुण्य समाप्त हो... एक बार कहा था, नानालालभाई है न? करोड़पति। नानालालभाई श्वेताम्बर थे। दिगम्बर हो गये न। नानालाल कालिदास जसाणी। गिरनार गये थे। (संवत्) १९९६ में गये थे न। १९९५ का चातुर्मास राजकोट में था। उसने मन्दिर बनाया है न। सवा लाख, डेढ़ लाख का। यह मन्दिर उसने बनाया था पहले। अभी तो बड़ा हो गया, पहले छोटा था। गिरनार गये थे। वहाँ इतनी कारीगरी है। एक प्रश्न उठा। सब साथ में थे। ...पत्थर में इतनी कारीगरी है कि जितने पत्थर निकाले उसमें से, भूका कहते हैं? (चूरा)। उतनी चाँदी देते थे। कारीगर को उतनी चाँदी। इतनी कारीगरी बारीक... बारीक... बारीक है। उसमें से जितना चूरा निकले उतनी चाँदी देते थे। चाँदी समझते हो न? रूपा। मजदूरी में उतनी चाँदी। तब मैंने कहा, देखो सेठ! करोड़पति, गुजर गये, बच्चे हैं। देखो! पैसा खर्च करने से समाप्त नहीं होते। पुण्य समाप्त होने से बिना खर्च किये समाप्त हो जायेंगे। ये शब्द कहे

थे। ९६-९६। क्या कहा? पैसा खर्च करने से समाप्त नहीं होते। क्योंकि वह तो पूर्व के पुण्य के कारण से आते ही हैं और पुण्य समाप्त हो गया तो बिन खर्च किये ही समाप्त हो जायेगा। बराबर है? ऐई! बहुत देखे हैं न। लाखोंपति, करोड़ोंपति। नहीं थे, उसे मिले हैं और मिले थे, उसके गये हैं। बहुत देखे हैं।

मुमुक्षु : पुरुषार्थ तो करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, राग का करता है, अधर्म का। राग है कि मैं ऐसा कमाऊँ, ऐसा कमाऊँ, ऐसे राग का पुरुषार्थ करता है। ...

यहाँ कहते हैं कि आत्मा का स्वभाव तो शुद्ध चिदानन्द प्रभु है। उसमें राग का मिलान करना, वह महामिथ्यात्व दु:शील संसारप्रकृति है। है उसमें? **इसको संसारप्रकृति कहते हैं,...** संसार अर्थात् चार गति में भटकने के भाव को कहते हैं। मिथ्यात्वसहित कषायभाव, जिसको दु:शील ज्ञान की परिणति आत्मा की अवस्था-दशा—उसे दु:शील कहते हैं और उसको संसारप्रकृति कहते हैं। तीनों आ गये—शील, स्वभाव और प्रकृति। मिथ्यात्वभाव का परिणमन वह स्वभाव, वह दु:शील और वह संसारप्रकृति। क्या? समझ में आया?

रागादि विकल्प है, वह विकार है। भगवान आत्मा तो निर्विकारी स्वभाव त्रिकाल शुद्ध आनन्दकन्द है। ऐसे आनन्द के साथ शुभ-अशुभराग को मिलाना कि मेरा है, मेरा कर्तव्य है, मैं रागसहित आत्मा हूँ, ऐसी एकत्वबुद्धि वह मिथ्यात्व की प्रकृति, संसार की प्रकृति, दु:शील प्रकृति है। बाह्य से भले ब्रह्मचर्य पालता हो, शरीर से। परन्तु अन्तर में राग की एकताबुद्धि है, वही मैथुन और मिथ्यात्व है। वीतरागमार्ग अलौकिक है, भाई! राग से मान रखा है, ऐसी चीज़ नहीं है। ऐसे तो अनन्त बार नौंवें ग्रैवेयक गया, पंच महाव्रत (पाले)। इन्द्राणी चलायमान करने आये तो भी चलायमान नहीं हो, ऐसा ब्रह्मचर्य था। परन्तु वह तो विकल्पवाला ब्रह्मचर्य था। अपना ब्रह्मानन्दस्वरूप प्रभु, उसमें एकाग्र होकर, छह काय का अभाव होकर शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति का प्रगट होना, उसका नाम ब्रह्मचर्य है, उसका नाम सुशीलपना है।

अब आया, **यह प्रकृति पलटे...** मैं रागादि नहीं। मैं तो शुद्ध चैतन्य ज्ञायक

आनन्दस्वरूप हूँ, ऐसा अन्तर में अनुभव हो तो वह प्रकृति पलट गयी। मिथ्यात्व की रागसहित की दुःशील प्रकृति पलटकर अर्थात् नाश होकर अपना आत्मा पवित्र शुद्ध आनन्द, उस आनन्द का स्वाद, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वादरूपी सम्यग्दर्शन, ज्ञान हुआ तो प्रकृति पलटी। **और सम्यक् प्रकृति हो,...** देखो! अपना जैसा शुद्ध स्वभाव है, ऐसा शुद्ध पर्याय में प्रगट होना, वह सुशील है। **यह प्रकृति...** यह प्रकृति अर्थात् संसारप्रकृति। मिथ्यात्व और रागसहित आत्मा मानना और वह मेरी चीज़ है, ऐसा मानना, वह संसारप्रकृति है। उससे रहित, प्रकृति पलटती है, वह मैं नहीं। मैं तो ज्ञायक चिदानन्द आत्मा हूँ। मेरा शरीर, वाणी, मन तो नहीं, कर्म तो नहीं परन्तु पुण्य-पाप की वृत्तियाँ जो उठती हैं, वह भी मेरी नहीं। आहाहा!

यह प्रकृति पलटे और सम्यक् प्रकृति हो, वह सुशील है, इसको मोक्षसन्मुख प्रकृति कहते हैं। देखो! पहले में संसारप्रकृति कहा था न? संसारप्रकृति कहा था न? यह मोक्षसन्मुख प्रकृति। प्रकृति अर्थात् स्वभाव। अपना पूर्णानन्द प्रभु, अकेले ज्ञानस्वभाव का भण्डार निज निधि, ऐसा अन्तर में अनुभव में प्रतीत करना, उसका नाम सम्यक् प्रकृति, सुशील, मोक्षसन्मुख प्रकृति कहते हैं। तीनों बोल लिये। आहाहा! यह तो अध्यात्म शास्त्र है। ऐसे ही पढ़ ले। आधे घण्टे में, एक घण्टे में पढ़ लिया। समझे नहीं कुछ। 'वांचे पर नहीं करे विचार।' ऐसा स्कूल में आता था। 'ते समझे नहीं सघळो सार।' ऐसे ही पढ़ ले, भाव क्या है और क्या कहना है, उसे समझ सके नहीं तो वह सब पढ़ना निरर्थक है।

कहते हैं, तीन बोल लिये। **यह प्रकृति पलटे...** रागसहित मैं हूँ, रागवाला हूँ, ऐसी मिथ्यात्व प्रकृति पलटे अर्थात् व्यय हो **और सम्यक् प्रकृति हो...** और शुद्ध आनन्द ज्ञानमूर्ति हूँ, ऐसा वेदन आत्मा का अतीन्द्रिय स्वाद आया, उसका नाम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सुशील है। वह मोक्षसन्मुख है। अन्तर में स्वभाव सन्मुख हुआ, अल्प काल में उसको मोक्ष होगा। समझ में आया? पण्डित जयचन्द्र ने ऐसे अर्थ किये हैं, लो। **इसको मोक्षसन्मुख प्रकृति कहते हैं।** वस्तु वीतरागमूर्ति आत्मा प्रभु है। उसका स्वभाव सन्मुख होकर, विभाव से विमुख होकर, अपने स्वभाव का वेदन श्रद्धा-ज्ञान में

आना, उसका नाम सुशील, मोक्षसन्मुख प्रकृति, सम्यक् प्रकृति और मिथ्यात्व के पलटनस्वरूप प्रकृति कहने में आता है। समझ में आया?

ऐसे सुशील के... ऐसे सुशील के। ऐसे सुशील का अर्थ क्या? कि जो मिथ्यात्व प्रकृति का नाश करके, स्वभाव सन्मुख की प्रकृति अर्थात् स्वभाव की प्रकृति—दशा प्रगट की, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति अथवा स्वभाव की एकता प्रगट की, राग की एकता छूट गयी, **ऐसे सुशील के 'जीवदयादिक' गाथा में कहे वे सब ही परिवार हैं,...** ऐसी दशा में जीवदयादि, अहिंसादि भाव सुशील का परिवार है। अरे.. अरे..! अगमनिगम की बातें। भगवान! तेरी चीज़ ही ऐसी है। ... अन्दर में भगवान पड़ा है, पूर्णानन्द, सो आत्मा। ऐसे आत्मा की सन्मुख होकर अन्तर स्वभाव की अनुभवदशा में प्रतीत, स्थिरता, एकाग्रता (होनी), उसको सुशील कहते हैं। ऐसे सुशील का यह सब परिवार है। अहिंसा,... है न? जीवदया। इन्द्रियदमन, इन्द्रियदमन हुआ। अतीन्द्रिय भगवान आत्मा का अनुभव-वेदन किया तो इन्द्रियदमन हो गया। आहा! इन्द्रिय को वहाँ जलाना, छेदना नहीं है। रूप नहीं देखना है, इसलिए आँखें बन्द कर दो; सुनना नहीं हो तो कान में लकड़ी डालो—ऐसा नहीं है। अतीन्द्रिय आनन्द की दृष्टि में जहाँ आत्मा आया (तो) इन्द्रिय का दमन हो गया। समझ में आया? ... वह सब कहते हैं, ऐसा करो, ऐसा करो। समझ में तो आये। ये तो अभी समझ में बैठना कठिन। अनादि का अभ्यास नहीं है, उल्टा अभ्यास है। ... अनादि से दुःख के पंथ पर चला है। कहा न पहले? संसारप्रकृति। आहाहा!

संसारप्रकृति स्वभाव से विरुद्ध है और सुशील प्रकृति स्वभाव के सन्मुख एकाग्रता है। **संसारप्रकृति पलटे, तब संसारदेह से वैराग्य हो...** देखो! संसारप्रकृति पलटे। संसार कौन? मिथ्यात्व प्रकृति संसारप्रकृति। तब स्वभाव सन्मुख हो तो संसार अर्थात् चार गति से उदास हो जाये। देह से भी (उदास) हो जाये। **संसार देह से वैराग्य हो...** राग से, चार गति से और देह। वैराग्य... वैराग्य... पर से भिन्न, सो वैराग्य। वैराग्य का अर्थ ऐसा नहीं है कि स्त्री-पुत्र को छोड़कर चल पड़े। **संसार देह से वैराग्य हो,...** वैराग्य का अर्थ-राग ऐसा जो संसार, उससे विरक्त हुआ और स्वभाव में एकत्व हुआ तो संसार और देह से वैराग्य हुआ। संसार और देह से जो राग था, राग का राग था और देह मेरा

है, ऐसी प्रीति थी, उसे छोड़ दिया। मैं देह भी नहीं और संसार-रागप्रकृति मैं नहीं— ऐसा हो, वह वैराग्य है। उसका नाम वैराग्य कहते हैं।

मुमुक्षु : सब व्याख्या...

पूज्य गुरुदेवश्री : सब व्याख्या अलग है। सत्य की व्याख्या ही अलग है। है न? देखो न! कितना... लिखा है।

संसार देह से वैराग्य... सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यक्प्रकृति हुई, स्वभावसन्मुख हुआ तो विभाव से वैराग्य हुआ। **और मोक्ष से अनुराग हो...** पूर्ण आनन्द की प्राप्ति में जिसकी रुचि जम गयी। मैं तो पूर्ण आनन्द प्राप्त करूँ, वह मेरा मोक्ष है। ऐसे पूर्ण आनन्द की प्राप्ति में अनुराग अर्थात् प्रेम हुआ **तब ही सम्यग्दर्शनादिक परिणाम हो,...** लो। तब सम्यग्दर्शन-ज्ञान परिणाम होता है। सम्यग्दर्शन स्वभावसन्मुख की प्रकृति प्रगट हुई तो वह सम्यग्दर्शन हुआ। स्वभावसन्मुख आत्मा का ज्ञान हुआ, वह ज्ञान हुआ। **सम्यग्दर्शनादिक परिणाम हो, फिर जितनी प्रकृति हो, वह सब मोक्ष के सन्मुख हो,...** अर्थात् प्रकृति अर्थात् स्वभाव। जितना अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य ऐसे निर्मल परिणाम सब स्वभाव सन्मुख हुए। वह सब शील का परिवार है। अन्दर में गहरे-गहरे राग में रस-प्रेम (है), चाहे तो शुभराग हो या अशुभ, वह दुःशील प्रकृति है और स्वभाव का प्रेम और एकत्वता, वह मोक्षप्रकृति है। वह सुशील है। यह सब सुशील का परिवार है। सुशील हुआ हो तो न।

सम्यग्दर्शनादिक जितने परिणाम हों, फिर जितनी प्रकृति हो... प्रकृति अर्थात् स्वभाव, **वह सब मोक्ष के सन्मुख हो,...** जितना परिणाम धर्म का है, वह सब परिणाम स्वसन्मुख है, मोक्ष सन्मुख है। परसन्मुख की दशा गयी, स्वसन्मुख दशा हुई। राग उत्पन्न होता है तो पर की ओर के लक्ष्य से उत्पन्न होता है। वह प्रकृति दृष्टि में से छूट गयी और स्वभाव सन्मुख प्रकृति हुई। तब सम्यक् परिणाम आदि **मोक्ष के सन्मुख हो, यही सुशील है।** यही सुशील है, वजन दिया। वही सुशील है। दूसरे को सुशील कहने में आता नहीं। यह तो निश्चय की बातें। निश्चय अर्थात् सच्चा, निश्चय अर्थात् सत्य। निश्चय अर्थात् यथार्थ, निश्चय अर्थात् वास्तविक, निश्चय अर्थात् जैसा है, वैसा है। **यही सुशील है।**

जिसके संसार का अन्त आता है... अन्त... अन्त-किनारा।

मुमुक्षु : अन्त आना होगा तब आयेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्त आना होगा... परन्तु यह करे, तब अन्त आयेगा न। कहाँ से अन्त आयेगा? किनारा। ओट कहते हैं न? ओट। समुद्र में पानी पीछे जाता है, उसे ओट कहते हैं। भर्ती आती है। तुम्हारे में बाढ़ कहते हैं न? बाढ़। बाढ़ को भर्ती कहते हैं। पीछे जाता है, उसको हमारे में ओट कहते हैं। तुम्हारे में क्या कहते हैं? भाटा। वैसे यह संसार का भाटा है। संसार अन्दर में रहा नहीं। आहाहा! संसार का किनारा आ गया। स्वभाव सन्मुख हुआ, अन्तर्दृष्टि हुई, संसार का किनारा आ गया। समझ में आया? संसार का भाटा आता है। संसार का अन्त, परिभ्रमण का अन्त और स्वरूप की सामग्री, श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति आदि सामग्री की प्रगटता।

उसके यह प्रकृति होती है... तब यह प्रकृति होती है। **और यह प्रकृति न हो तब तक संसार भ्रमण ही है,...** कहते हैं कि राग से भिन्न निर्विकल्प अपना स्वरूप, ऐसी अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और रमणता न हो, तब तो संसारप्रकृति ही है। **संसार भ्रमण ही है,...** चौरासी के अवतार में कहाँ-कहाँ भटकता है। मिथ्यात्व रागसहित की प्रकृति हुई, राग से मेरा स्वरूप... ऐसी प्रकृतिवाला कहाँ-कहाँ भटकेगा, रुलेगा। समझ में आया? देव मरकर पशु में जाये, पशु मरकर नरक में जाये, यहाँ से राजा हो, राजा मरकर नरक में जाये। मिथ्यात्व प्रकृति का तो ऐसा स्वभाव है। राजा मरकर सुअर हो। ओहो! राजा मरकर नारकी हो। यह सब संसारप्रकृति है। सन्ध्या का रंग है, सन्ध्या का रंग। क्षणमात्र में अन्धेरा हो जाता है। स्वरूप की दृष्टि का अनुभव भान नहीं और राग की एकता की प्रकृति का संसार पड़ा है, चौरासी में (भटकेगा)। भवजल समुद्र में डूबता है। गळका खाता है, गळका। गळका समझे? क्या कहते हैं? गोता। हमारे काठियावाड़ में गळका खाता है, कहते हैं। मुँह में पानी आ जाये। आहाहा!

संसार भ्रमण ही है,... बहुत अच्छा लिखा है। १९वीं गाथा। पण्डित जयचन्द्र... पहले के पण्डित भी ऐसे थे। गृहस्थाश्रम में हो तो भी वस्तुस्थिति में क्या है? चीज़ क्या है, उसका भान तो होता है या नहीं? गृहस्थाश्रम गृहस्थाश्रम में रहा। ...कहाँ से हो

गया ? ओहो! **ऐसे जानना**। ऐसा जानना, लो। ऐसा जानो। जब तक राग से एकताबुद्धि है, तब तक संसारप्रकृति संसार भ्रमण है। राग से भिन्न होकर स्वभाव की एकता हुई, वह मोक्ष सन्मुख सुशील प्रकृति हुई। तब धर्म मार्ग हुआ। काम, बापू! बहुत कठिन काम। भाई! सत्य वस्तु ऐसी चीज़ है। वर्तमान में तो गड़बड़ हो गयी, बहुत गड़बड़।

गाथा-२०

आगे शील ही तप आदिक हैं, ऐसे शील की महिमा कहते हैं –

सीलं तवो विसुद्धं दंसणसुद्धी य णाणसुद्धी य।
सीलं विसयाण अरी सीलं मोक्खस्स सोवाणं।।२०।।

शीलं तपः विशुद्धं दर्शनशुद्धिश्च ज्ञानशुद्धिश्च।
शीलं विषयाणामरिः शीलं मोक्षस्य सोपानम्।।२०।।

है शील ही तप शुद्ध दर्शन शुद्धि ज्ञान विशुद्धि है।
है शील विषयों का रिपु सत् शील शिव सोपान है।।२०।।

अर्थ – शील ही विशुद्ध निर्मल तप है, शील ही दर्शन की शुद्धता है, शील ही ज्ञान की शुद्धता है, शील ही विषयों का शत्रु है और शील ही मोक्ष की सीढ़ी है।

भावार्थ – जीव-अजीव पदार्थों का ज्ञान करके उसमें से मिथ्यात्व और कषायों का अभाव करना यह सुशील है, यह आत्मा का ज्ञानस्वभाव है, वह संसारप्रकृति मिटकर मोक्षसन्मुख प्रकृति हो तब इस शील ही के तप आदिक सब नाम हैं ह्न निर्मल तप, शुद्ध दर्शन ज्ञान, विषय-कषायों का मेटना, मोक्ष की सीढ़ी ह्न ये सब शील के नाम के अर्थ हैं, ऐसे शील के माहात्म्य का वर्णन किया है और यह केवल महिमा ही नहीं है, इन सब भावों के अविनाभावीपना बताया है।।२०।।

गाथा-२० पर प्रवचन

आगे शील ही तप आदिक है... देखो! शील तपादिक है। यह उपवास आदि करना, वह सब तो बाहर की चीज़ है। आहाहा! **शील ही तप आदिक है...** पहले में परिवार कहा था न? भाई! वह शील का परिवार है। यहाँ तो कहते हैं, शील है, वही तप आदिक है। परिवार ये स्वरूप उसका है। आहा! बड़ी व्याख्या, भाई! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली पूरे जगत से निराली।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है, शैली संक्षिप्त भाषा में गागर में सागर भर दिया है। गागर में सागर। संक्षिप्त भाषा में बहुत भर दिया, बहुत। एक गाथा में इतना भरा है, देखो!

सीलं तवो विसुद्धं दंसणसुद्धी य णाणसुद्धी य।
सीलं विसयाण अरी सीलं मोक्खस्स सोवाणं ।।२०।।

अर्थ :- शील ही विशुद्ध निर्मल तप है,... लो। वही तप है। अपना स्वभाव राग से भिन्न करके, स्वभाव सन्मुख में स्थिर होना, वही शील और वही तप है। है या नहीं? **शील ही विशुद्ध निर्मल तप है,...** जैसे सुवर्ण-सोना गेरु से ओपता है, शोभता है। गेरु होता है न? गेरु और लवण-नमक। नमक और गेरु, सोने पर लगाये तो सोना ओपता है। सोनागेरु कहते हैं। तुम्हारी भाषा नहीं आती, भूल गये, पहले तो सब आता था। सोनागेरु कहते हैं, सोनागेरु। सोना को लगाते हैं। ऐसे भगवान आत्मा, कहते हैं कि राग से भिन्न होकर अपने शुद्ध स्वरूप में स्थिर हो, वह ओपता है, आत्मा ओपता है, शोभता है, उसका नाम शील और उसका नाम तप कहते हैं। आहाहा! शीलपाहुड़।

'**सीलं तवो**' ऐसे लिया है न? शील ही तप है। तप वह शील है, ऐसे नहीं। लोग तो मानते हैं कि उपवास किया, वह तप है, ऐसा नहीं। वह तप ही नहीं है। अपना भगवान शुद्ध चिदानन्द राग से रहित की अन्तर्मुख दृष्टि होकर उसमें मोक्ष स्वभाव सन्मुख प्रयत्न होता है, वही शील, वही तप है। समझ में आया? कान्तिभाई! '**सीलं तवो विसुद्धं**' ऐसा शब्द है न? तीन पद है '**सीलं तवो विसुद्धं**'। अर्थात् जो शील पहले

कहा, सुशील स्वरूप भगवान आत्मा का, राग के विकल्प से, विभाव से भिन्न होकर स्वभाव सन्मुख की दृष्टि, ज्ञान का स्वभाव हुआ, वह शील है, वही तप है। ऐसा शील नहीं है, वहाँ तप है नहीं। उपवास आदि तप नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य! **विशुद्ध निर्मल तप है,...** आहा!

शील ही दर्शन की शुद्धता है,... समकित की शुद्धि का शील यही है। भगवान आत्मा अपना पूर्ण आनन्द सन्मुख की अनुभव दृष्टि हुई, विभाव से हट गया, ऐसा जो शील, वही सम्यग्दर्शन की शुद्धि। यही सम्यग्दर्शन की शुद्धि (है)। आहाहा! दर्शनशुद्धि, है न? दर्शनशुद्धि से आत्मसिद्धि। यह वाक्य कुन्दकुन्दाचार्य का है, अष्टपाहुड़। बड़े शब्दों में लिखा है, देखो! दर्शनशुद्धि से ही आत्मसिद्धि। समझ में आया? वह यहाँ का ट्रेडमार्क है। कापड़िया-कपड़े का व्यापार करते हैं न? कपड़े पर लगाते हैं न? बीड़ी में भी लगाते होंगे। बालक बीड़ी। दरवाजे पर वहाँ लगाया था न? मल्हारगढ़। मल्हारगढ़ आये थे न? दोनों भाई थे, सब थे। तुम थे या नहीं? लगाया था, बालक बीड़ी। सेठ ने कहा, आओ, देखो। ...साथ में बैठे थे। सब बताते थे। कहते हैं कि वह चिह्न है तो पर का है। यह तो दर्शन की शुद्धि, वह आत्मा की शुद्धता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन की शुद्धि। भगवान अन्तर पूर्ण स्वरूप, एक-एक गुण की पूर्ण शक्ति, ऐसी अनन्त शक्ति का संग्रहालय आत्मा, संग्रहालय है वह। आहाहा! ज्ञान अनन्त, दर्शन अनन्त, चारित्र अनन्त, शान्ति ऐसे स्वभाव की शक्ति अनन्त हैं। ऐसी शक्ति संख्या से अनन्त हैं और एक-एक शक्ति में अपरिमित सामर्थ्य है। ऐसा अनन्त गुण का संग्रहालय आत्मा, उसके सन्मुख दृष्टि हुई, विभाव से दृष्टि हट गयी, वह शील ही सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया?

शील ही दर्शन की शुद्धता है... आत्मा का स्वभाव सन्मुखता का भान नहीं और कहे कि हमें सम्यग्दर्शन है, हम समकिती श्रावक हैं। मार्ग ऐसा नहीं है, प्रभु! तेरा मार्ग दूसरा है। आहा! वह पैसे से नहीं मिलता। पैसे से यह मार्ग मिले या नहीं? अन्तर लक्ष्मी से मिलता है। **शील ही विशुद्ध निर्मल तप है,...** शील की यह व्याख्या—स्वभाव सन्मुख का अनुभव और राग से विमुख हुआ, उसका नाम शील और सम्यग्दर्शन कहते हैं। और सम्यग्दर्शन बिना जो कुछ करने में आये, सब बिना अंक के शून्य हैं। समझ में आया? **शील ही दर्शन की शुद्धता है,...**

शील ही ज्ञान की शुद्धता है,... देखो! यह जानपना, शास्त्र पढ़ा आदि कुछ नहीं, कहते हैं। अपना भगवान शुद्ध आत्मा के सन्मुख होकर एकाग्रता का वेदन करना, वही शील और वही ज्ञान की शुद्धि है। आहाहा! सम्यक् स्वसंवेदन अन्तर ज्ञान होना, वही ज्ञान की शुद्धि है। देखो तो सही भाषा! ऐई! चेतनजी! शील है, सो ही ज्ञान की शुद्धता है। अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प से एकता तोड़कर अनन्त गुण की सिद्धि की ओर एकता हुई और सम्यग्दर्शन, ज्ञानादि हुआ, ऐसी जो सुशीलता, वही ज्ञानशुद्धि है। ज्ञान में निर्मलता उसके कारण प्रगट हुई है। आहाहा!

शील ही विषयों का शत्रु है... भगवान आत्मा अपने में सन्मुख हुआ, वह स्वविषय हुआ, स्वविषय की दृष्टि, अनुभव हुआ तो परविषय का वह शत्रु है। रागादि की उत्पत्ति का वह शत्रु है। आहाहा! समझ में आया? कितना याद रखना? एक घण्टे में कितनी बात आये। याद क्या, वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। समझ में आया? सत्य बात तो ऐसी है। शील है। शरीर, राग, एक समय की पर्याय, उसकी सन्मुखता छोड़कर, स्वसन्मुखता हुई, उसमें सुशीलता प्रगट हुई, उसका नाम विषय का शत्रु है। विषय का प्रेम रहा नहीं। सम्यग्दर्शन हुआ तो ९६ हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़ा समकिती विषय के रस रहित है। नीरस है। समझ में आया? आहाहा! स्वभाव का भान हुआ, सुशीलता हुई, तो कहते हैं कि विषय का विकल्प जो है, उसका तो सुशील शत्रु है। आहा! धर्मीजीव को ऐसा शुभभाव आता है तो कहते हैं कि वह तो काला नाग जैसा लगता है। आहा! दुःख... दुःख... दुःख। आत्मा का आनन्द का अनुभव धर्मी को हुआ तो विषय का वह शत्रु है। समझ में आया? आहाहा! यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! भाषा बहुत सादी है, भाषा कोई ऐसी नहीं है, पण्डित लोगों जैसी भाषा नहीं है। संस्कृत आदि (नहीं है)। यह तो सादी भाषा है, सादी। आहा! **शील ही विषयों का शत्रु है,...** भगवान स्वभाव सन्मुख दृष्टि करके एकाग्र हुआ तो विभाव का तो वह शत्रु है। वह परविषय है। समझ में आया?

शील ही मोक्ष की सीढ़ी है। सोपान। है न? '**सीलं मोक्खस्स सोवाणं।**' स्वभाव राग से रहित, दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम भी विभाव है, उससे भी रहित मेरी चीज़ है। ऐसी दृष्टि अपने स्वभाव में सन्मुख हुई तो कहते हैं कि यह शील ही मोक्ष की

सीढ़ी है। मोक्ष का सोपान-सीढ़ी। बस, चढ़कर चले जाओ पूर्णानन्द में। आहाहा! मुक्ति की पगडण्डी है, पगथिया। पगथिया कहते हैं? सीढ़ी। राग से विमुख, स्वभाव से सन्मुख, अन्तर्मुख दृष्टि हुई, भान हुआ, सुशील प्रगट हुआ, वह शील ही मोक्ष-पूर्ण आनन्द की सीढ़ी है। सुशील में आगे बढ़ते-बढ़ते मोक्ष होगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अलौकिक बात है। कान्तिभाई ने तो निवृत्ति ली है न। उसके लिये तो ली है। १५०० का महीने का वेतन मिलता था। छोड़ दिया, छोड़ दी नौकरी। धूल में भी वहाँ नहीं है। पाँच हजार का वेतन और दस हजार का वेतन धूल है, मिट्टी है। उसके सन्मुख प्रकृति कि यह ठीक है, वही संसारप्रकृति है, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा के सन्मुख हुआ सुशील प्रकृति है। आहाहा! कौन-सी शैली ली है, देखो न! '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**' भूतार्थ भगवान त्रिकाल स्वभाव, उसका आश्रय करने से सुशीलपना अर्थात् सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है और वह सम्यग्दर्शन आदि शील है और वह शील है, मोक्ष की सीढ़ी है। आहाहा! अच्छी बात कही है, दो गाथा बहुत अच्छी चली।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१८८, गाथा-२०-२१, शनिवार, माघ शुक्ल ४, दिनांक ३०-०१-१९७१

शीलपाहुड़ चलता है। उसकी २०वीं गाथा। उसका भावार्थ। अर्थ कल चल गया। शील किसको कहते हैं, वह बात चलती है।

भावार्थ :- जीव अजीव पदार्थों का ज्ञान करके... लो, पहले ज्ञान करके आया। ज्ञान बिना जानना कैसे? यह आत्मा शुद्ध आनन्द और ज्ञानस्वरूप है। अजीव, शरीर, वाणी, मन, ये सब अजीवतत्त्व है। और अन्दर में शुभ-अशुभ विकल्प जो पुण्य-पाप का राग होता है, वह भी वास्तव में तो अजीव है। जीव का स्वभाव नहीं। समझ में आया? जीव, अजीव दो बात ही यहाँ ली है। एक ओर भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द और ज्ञान का पिण्ड प्रभु आत्मा है और एक ओर पुण्य-पाप का विकल्प-राग, शरीर, वाणी, मन सब अजीव है। दो का ज्ञान करके, दोनों भिन्न-भिन्न वस्तु है, ऐसा ज्ञान करके **उसमें से**

मिथ्यात्व और कषायों का अभाव करना, वह सुशील है,... सुशील की व्याख्या। भगवान आत्मा, वह तो चैतन्यपिण्ड अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मस्वरूप है। उसमें पुण्य-पाप का विकल्प आदि जो राग है, उसमें हितबुद्धि, अपनत्वबुद्धि जो रखता है, वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? पुण्य-पाप का विकल्प जो राग और शरीरादि परवस्तु है, उसमें जो हितबुद्धि रखता है या वह मेरा है, उससे हित होगा, उसका नाम मिथ्यात्व है। वह मिथ्यात्व और कषाय—राग-द्वेष का भाव, उसका अभाव करना। उसका नाम सुशील है। भगवान परमात्मा उसको सुशील कहते हैं।

अपना आत्मा ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप है, उसको पुण्य-पाप का विकल्प अर्थात् राग से भिन्न करके अपने ज्ञानानन्दस्वभाव में दृष्टि हो और शुद्धता प्रगट हो, उसका नाम परमात्मा सुशील कहते हैं। यह धर्म है। बड़ी कठिन बात। सुशील है न? देखो! **मिथ्यात्व और कषायों का अभाव...** अपने स्वरूप में शुद्ध चिद्घन आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने ऐसा आत्मा को देखा है कि वह तो पूर्ण आनन्द और शुद्ध है। जो अशुद्धता पुण्य-पाप की, शरीरादि है, वह तो पर है, विकार है, दुःख है। ऐसा दो के बीच भेदज्ञान करके अपने में राग की एकताबुद्धि जो है, वह मिथ्यात्व है, उसका नाश करके, शुद्ध चैतन्य भगवान आत्मा आनन्द में एकता होकर सम्यग्दर्शन प्रगट करके, स्वरूप में जो अकषायभाव का परिणमन हुआ, उसका नाम भगवान सुशील कहते हैं। आहाहा! भाषा समझ में आती है न? हिन्दी है, परन्तु साधारण हिन्दी है। हमारे सेठ आये हैं, वह गुजराती नहीं समझते; इसलिए हिन्दी चलता है। क्यों? समझ में आया?

सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिसको एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल का ज्ञान-केवलज्ञान हुआ। केवलज्ञान द्वारा जो जाना, वह वाणी द्वारा आया। वाणी द्वारा ऐसा आया कि भगवान! तुम तो आत्मा हो न, प्रभु! और आत्मा तो शुद्ध चैतन्यघन निर्मलानन्द वीतरागस्वरूप और आनन्दस्वरूप को आत्मा कहते हैं। और शरीर-वाणी-मन, ये तो जड़ अजड़तत्त्व धूल है। तो अजीवतत्त्व से अपना स्वरूप भिन्न जानकर और अन्दर में पुण्य-पाप शुभ-अशुभराग होता है, दया, दान, व्रत, भक्ति का शुभराग और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना पापराग, दोनों आस्रवतत्त्व है। उससे भी भिन्न जानकर। समझ में आया? समझ में आता है न? सेठ! थोड़ी भाषा... आहाहा!

यहाँ बहुत सूक्ष्म बात ली है। जैनदर्शन का रहस्य क्या है, वीतराग मार्ग का मूल मर्म क्या है (वह बात ली है)। बाहर से मानते हैं, वह वीतरागमार्ग नहीं। अन्तर में चैतन्यज्योति भगवान आत्मा प्रज्ञाब्रह्म, सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो सर्वज्ञपना प्रगट किया, वह अन्तर में सर्वज्ञपना है, उसमें से प्रगट किया। सर्वज्ञस्वभावी आत्मा, उसमें पुण्य और पाप का राग का स्वभावभाव नहीं है और पुण्य-पाप के रागभाव में आत्मस्वभाव नहीं है। समझ में आया? ऐसा दोनों के बीच भेदज्ञान करके मिथ्यात्व का नाश कर, राग से मुझे लाभ है अथवा राग मेरी चीज़ है, शरीर मेरी चीज़ है, पुण्य परिणाम मेरी चीज़ है, वह मान्यता मिथ्यात्व है। पोपटभाई! इसमें पैसे-बैसे तो कहीं नहीं आते। पैसे तो बाहर रह गये। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अजीव का है, पैसा तो अजीवतत्त्व है, अजीवपने रहा है। वह लक्ष्मी आत्मापने नहीं रही है और शुभ-अशुभभाव है, वह तो आस्रवपने रहे हैं। आत्मतत्त्व नहीं है। आहाहा!

भावार्थ :- जीव अजीव पदार्थों का ज्ञान करके उसमें से मिथ्यात्व और कषायों का अभाव करना... अर्थात् पुण्य-पाप का विकल्प मेरा है, ऐसी दृष्टि छोड़कर मैं तो ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य वस्तु हूँ, ऐसी अन्तर में दृष्टि करना, उसे मिथ्यात्व का और कषाय का अभाव कहने में आता है। समझ में आया? अपूर्व है। अनन्त काल से कभी किया नहीं। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो' परन्तु आत्मा क्या चीज़ है और राग एवं विकल्प से भिन्न क्या है, उसका अन्तर में स्वसन्मुख होकर अपना ज्ञान और आनन्द का अनुभव कभी किया नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, अपना स्वभाव... कहेंगे, **यह आत्मा का ज्ञानस्वभाव है...** देखो! भगवान आत्मा तो चैतन्यब्रह्म ज्ञानस्वरूपी है, वह तो। चैतन्य इसका स्वभाव है। पुण्य-पाप राग उसका स्वभाव नहीं है। आहाहा! भगवान सर्वज्ञ ने कहा कि तेरा स्वभाव ही ज्ञानस्वभाव है। यह स्वभाव,... है? **वह संसारप्रकृति मिटकर...** देखो! क्या कहते हैं? जो ज्ञानस्वभाव आत्मा है, उसमें से राग, पुण्य-पाप, विकल्प से हित है और मेरा है, ऐसी बुद्धि का अभाव करना। वह संसारप्रकृति थी। कौन-सी संसारप्रकृति? राग,

पुण्य-पाप, शरीर, वाणी, मन आदि सब मेरी चीज़ है—ऐसी मान्यता थी, वह संसारप्रकृति, संसारस्वभाव, दु:खरूप भाव था। उसको मिटाकर। **संसारप्रकृति मिटकर...** भगवान आत्मा चैतन्य तो ज्ञानस्वभाव है। उस स्वभाव में जितना पुण्य-पाप का विकल्प मेरा है, ऐसी मान्यता (थी), वह संसारप्रकृति थी, मिथ्यात्व प्रकृति थी, दु:खरूप स्वभाव था। उसे मिटाकर।

भगवान आनन्दस्वरूप चैतन्यप्रभु, वह पर में सुख मानता था। पुण्य-पाप के राग में सुख, लक्ष्मी में सुख, शरीर में सुख, स्त्री आदि के विषय में सुख, वह संसारप्रकृति मिथ्यात्व थी। समझ में आया? वह ज्ञानस्वभाव नहीं। ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा, उसमें संसारप्रकृति खड़ी की कि राग में सुख है, पुण्य में सुख है, विषयों में सुख है, शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श उस ओर का झुकाव करने से जो राग होता है, उसमें ठीक है, सुख है, उसका नाम संसारप्रकृति मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? यह संसारप्रकृति मिटकर। पर में सुख नहीं। मेरा सुख पर में नहीं। पुण्य-पाप का शुभ-अशुभभाव हो, उसमें भी मेरा सुख नहीं है, विषयों में सुख नहीं है। शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शरीरादि में सुख नहीं, सुख तो मेरे चैतन्यस्वभाव में है। ऐसी दृष्टि करके **संसारप्रकृति मिटकर मोक्षसन्मुख प्रकृति हो...** आहाहा! अपना स्वभाव जो ज्ञानस्वभाव है, अपने स्वभाव सन्मुख हुआ, उसका नाम मोक्षसन्मुख हुआ। आहाहा! समझ में आता है या नहीं?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं न? पर की ओर दृष्टि है, स्व की ओर लेना। सेठ! आहाहा! बहुत संक्षेप में भगवान परमात्मा सुशील की व्याख्या करते हैं। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्यदेव संक्षेप में तत्त्व क्या है, यह समझाते हैं। देखो न!

संसारप्रकृति मिटकर... उसका अर्थ क्या? जो पुण्य-पाप के विकल्प से लेकर पर है, उसमें बुद्धि थी, उस बुद्धि को छोड़कर। **मोक्षसन्मुख प्रकृति हो...** अपना भगवान राग से मुक्त है, शरीर से रहित है, वाणी से रहित है, लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार से रहित है। ऐसा पर से रहित है और अपने आनन्द से सहित है। यह कुटुम्ब आदि कुछ रहता नहीं। रहता है, नहीं रहता ऐसा नहीं। उसमें रहते हैं। यहाँ कहाँ घुस गया है? आत्मा में है क्या? आत्मा में पुण्य-पाप का विकल्प उठता है, वह भी नहीं।

आहाहा! समझ में आया? भगवान परमात्मा तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ प्रभु ऐसा फरमाते हैं, इन्द्रों और गणधरों के बीच परमात्मा ऐसा कहते थे, वह वाणी है यह। समझ में आया?

संसारप्रकृति मिटकर मोक्षसन्मुख प्रकृति हो... ओहोहो! इतने में तो सब भर दिया है। अपना शुद्धस्वरूप सच्चिदानन्द—सत्-शाश्वत्, चिद्-ज्ञान और आनन्द का पिण्ड प्रभु, उसके सन्मुख दृष्टि करना और राग से विमुख दृष्टि करना, उसका नाम मोक्षसन्मुख प्रकृति कहने में आता है। आहाहा! दिशा पलट जाती है, ऐसा कहते हैं। अज्ञान में दिशा और दशा पुण्य-पाप राग, शरीरादि में मैं हूँ, ऐसी दिशा पर ओर है तो दशा विकारी प्रकृति है। पण्डितजी! अरे! यह संसारप्रकृति की रुचि अन्तर में से छोड़कर, स्वभाव चिदानन्द सच्चिदानन्द प्रभु सिद्ध समान अपना स्वरूप, उस ओर दृष्टि लगाना, तो मोक्षसन्मुख प्रकृति हुई। अपना ज्ञानभाव स्वभाव सन्मुख, आत्मा सन्मुख हुआ। जो पर सन्मुख था, वह प्रकृति संसार थी। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, बहुत संक्षेप में अर्थ किया है। एक ओर आतमराम और एक ओर पुण्य, पाप, राग से लेकर पूरा गाँव। आत्मा के स्वभाव को छोड़कर रागादि परवस्तु है, उसमें अपनी बुद्धि मानना, वह संसारप्रकृति है। चार गति में रुलने का दुःखरूप भाव है। आहाहा! उसे छोड़कर, उस ओर की दिशा, दशा की वृत्ति छोड़कर भगवान आत्मा पूर्णानन्द शुद्ध, शुद्ध-पवित्र, उसके सन्मुख स्वभाव त्रिकाली ध्रुव के सन्मुख अपनी प्रकृति अर्थात् ज्ञान की पर्याय का उस ओर झुकना। बात नहीं है, हों! यह मात्र बात नहीं है। भाषा से समझ में आये ऐसा नहीं है। आहाहा!

भगवान आत्मा ध्रुव स्वरूप अपना है, ध्रुव। नित्यानन्द अनादि-अनन्त सत्‌रूप शुद्ध पवित्र का पिण्ड प्रभु, उसके सन्मुख अपनी ज्ञान की वर्तमान दशा को, ज्ञान स्वभाव है उसका, उस दशा को अन्तर सन्मुख करना और पुण्य-पाप के विषय में सुखबुद्धि छोड़ना, वह संसारप्रकृति छूटकर, वह प्रकृति संसार है। स्त्री-पुत्र को छोड़ा इसलिए संसार छूटा ऐसा है नहीं। समझ में आया? ऐसा तो अनन्त बार स्त्री, कुटुम्ब को छोड़कर साधु हुआ। अन्दर में भान नहीं है कि चीज़ क्या है। वह तो साधु ही नहीं है। स्वरूप का साधन करे, वह साधु। अपना स्वरूप ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द प्रभु, जैसा परमात्मा

सर्वज्ञ ने प्रगट किया, केवली ने अरिहन्त परमात्मा ने; ऐसा अपना स्वभाव है। ऐसे स्वभाव सन्मुख दृष्टि करना, उसे मोक्ष सन्मुख स्वभाव कहने में आता है। आहाहा!

मोक्षसन्मुख प्रकृति हो तो तब... क्या होता है, अब यह कहते हैं। **इस शील ही के तप आदिक सब नाम हैं...** शील कहो, ज्ञान कहो, सम्यग्दर्शन कहो, शान्ति कहो, वीतरागता कहो, यह सब शील-सुशील के नाम हैं। अन्तर स्वभावसन्मुख की दृष्टि हुई और ज्ञान सम्यक् हुआ, श्रद्धा सम्यक् हुई, शान्ति हुई, आनन्द आया इन सबको यहाँ सुशील का परिवार कहने में आता है। बड़ी बात! भगवान! तूने तेरी चीज़ क्या है, यह कभी सुना नहीं। अन्तर में क्या चीज़ है? उस चीज़ सन्मुख हुए बिना पर की सन्मुखता कभी जाती नहीं, टलती नहीं। पोपटभाई! आहाहा!

ऐसी प्रकृति अपना परमात्मा परम स्वरूप शुद्ध चिदानन्द के सन्मुख दृष्टि करता है तो परसन्मुख एकताबुद्धि मिथ्यात्व का नाश होता है। मिथ्यात्व का नाश होता है। समझ में आया? **तब इस शील ही के तप आदिक सब नाम है...** आत्मा के स्वभाव सन्मुख का ज्ञान, श्रद्धा, स्थिरता हुई तो उसको तप कहो, शील कहो, सम्यग्दर्शन कहो, निर्मल शुद्ध कहो, सम्यग्ज्ञान कहो, सब उसके नाम हैं। समझ में आया? **निर्मल तप...** है? यह निर्मल तप है। यह उपवास करे, उसमें तो राग की मन्दता हो तो पुण्य बँधे, वह तप नहीं है। भगवान आत्मा परमानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु, उस ओर की एकाग्रता होकर जो शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, स्वभाव शील प्रगट हुआ, उसका नाम यहाँ तप कहते हैं। समझणुं कांई? समझणुं कांई, हमारी गुजराती भाषा है। थोड़ा गुजराती बीच में आती है न। समझ में आया—यह तुम्हारी हिन्दी भाषा है। यहाँ तो गुजराती... उसमें थोड़ी-थोड़ी आ जाये। समझ में आये ऐसी है, भैया! बहुत सीधी बात है। यह तो सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकर ने कहा हुआ मार्ग है। उसमें कोई फेरफार है नहीं। लोगों को सुनने मिले नहीं, विचार में कहाँ से ले और दृष्टि कहाँ से करे। बहुत अच्छा। मार्ग तो ऐसा है, भैया! तीन काल तीन लोक में परमात्मा का मार्ग तो यही है। ऐसे कोई फेरफार करे तो नहीं हो सकता। क्यों, डालचन्दजी! आहाहा!

एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ। भगवान आत्मा परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव महाविदेह में विराजते हैं। सीमन्धर परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं।

तीर्थंकरदेव केवली। लाखों केवली विराजते हैं। तीर्थंकर बीस है। सभा में इन्द्र आते हैं। इन्द्र आते थे। कुन्दकुन्दाचार्य भगवान यहाँ से वहाँ संवत् ४९ में गये थे। संवत् ४९। कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि सन्त थे, वे वहाँ गये थे। आठ दिन वहाँ रहे थे। वहाँ से आकर यह बनाया है। सेठ! यह सन्देश लाये हैं। परदेश में जाते हैं पिताजी तो लड़का कहता है, पिताजी! क्या लाये? हमारे लिये क्या लाये? हमारे लिये क्या लाये? घड़ी लाये हो? सोने की। वैसे यह भगवान के पास गये थे, वहाँ से यह लाये हैं। सेठ! आहाहा! यह घड़ी वहाँ से आयी है न। स्वीट्जरलैण्ड से आयी है। स्वीट्जरलैण्ड, मलूकचन्दभाई का लड़का न्यालभाई,... यहाँ आते हैं तो रोते हैं, अरर! हमें यह समागम नहीं है।... छोटा लड़का है। घड़ी का बड़ा व्यापारी। हम एक देखने को गये थे। नयी बनाते हैं। घड़ी का बड़ा व्यापार। इस घड़ी का व्यापार कभी किया नहीं। आत्मा का कांटा पर की ओर, राग की ओर झुक गया है, वह मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। आत्मा का कांटा ध्रुव की ओर मोड़ना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

निर्मल तप, शुद्ध दर्शन... भगवान आत्मा परमानन्द अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, उसकी दृष्टि हुई, वही सम्यग्दर्शन है। वही ज्ञान है। अपना आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द है, ऐसी दृष्टि हुई, वही ज्ञान है, उसका नाम ज्ञान। बाकी पढ़ा-लिखा शास्त्र का हो तो भी वह ज्ञान नहीं है, पढ़े-लिखे को ज्ञान कहते ही नहीं। पण्डितजी! **विषय-कषायों का मेटना,...** विषय और कषाय, पर ओर का झुकाव छोड़ना **मोक्ष की सीढ़ी...** है। मोक्ष की पहली सीढ़ी है। आहाहा! अपना पूर्ण आनन्द प्रभु, उसकी ओर दृष्टि करना, वह मोक्ष की पहली सीढ़ी है। **ये सब शील नाम के ही अर्थ हैं,...** ये सर्व शील नाम के अर्थ हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, शान्ति, चारित्र, तप। परन्तु शील स्वभाव प्रगट हो, उसके ही सब नाम हैं। **ऐसे शील के माहात्म्य का वर्णन किया है...** भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा शील का माहात्म्य वर्णन किया।

और यह केवल महिमा ही नहीं है... ऐसा कहते हैं। **इन सब भावों के अविनाभावीपना बताया है।** महिमा नहीं परन्तु साथ में जहाँ-जहाँ अपना निज स्वभाव सन्मुख दृष्टि होकर मिथ्यात्व का नाश हुआ, उस स्वभाव में यह सब चीज़ होती है। तप निर्मल, श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति उसके साथ शील और शील के साथ वह भाव है। इसके

बिना यह नहीं और उसके बिना यह नहीं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन, ज्ञान स्वभाव जो प्रगट हुआ—शील, तो उस शील के साथ सम्यग्दर्शन, ज्ञान है। और सम्यग्दर्शन, ज्ञान के साथ वह शील है। अविनाभाव—एक के बिना दूसरा नहीं और दूसरे के बिना एक नहीं। उसका नाम अविनाभाव है। आहा!

अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्य है, उससे अनादि से च्युत है और पुण्य-पाप, राग, शरीरादि मेरा माना है, वह मिथ्यात्वभाव है। ऐसे मिथ्यात्व को छोड़कर जो स्वभाव -सन्मुख की प्रकृति हुई, उसका नाम शील कहने में आता है। वह शील-स्वभाव निर्मल हुआ वह। इस शील के साथ उसको तप कहो, उसको दर्शन कहो, उसको ज्ञान कहो, उसको शान्ति कहो, उसको वीतरागता कहो, उसको मोक्षमार्ग कहो, सब उसमें आ जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : जीवदया...

पूज्य गुरुदेवश्री : जीवदया यह। जीव की दया-आत्मा की दया। कल चला था। राग की अनुत्पत्ति होना और अपने आनन्द की वीतराग पर्याय का उत्पन्न होना, उसका नाम अपने जीव की दया कहने में आता है। पर की दया कौन कर सकता है? उसका आयुष्य हो तब तक जीये, आयुष्य नहीं हो तो मर जाये। क्या तू उसको आयुष्य दे सकता है? समझ में आया? तेरी दया पालना, उसका नाम दया। कभी दया पाली नहीं।

मुमुक्षु : दूसरे की पालने में फुरसत ही नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : फुरसत कहाँ, कुछ खबर ही नहीं है। कहाँ जाना, किस ओर जाना, क्या करना कुछ खबर नहीं। मान लिया, थोड़ी भक्ति की, पूजा की, दया की तो हो गया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं। सेठ! बात ऐसी है, भैया! आहाहा!

यह वीतराग का मार्ग, सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग पूरी दुनिया से अलग चीज़ है। लो, २०वीं गाथा पूरी हुई। २१।

गाथा-२१

आगे कहते हैं कि विषयरूप विष महा प्रबल है –

जह विसयलुद्ध विसदो तह थावरजंगमाण घोराणं।
सव्वेसिं पि विणासदि विसयविसं दारुणं होई।।२१।।

यथा विषयलुब्धः विषदः तथा स्थावरजंगमान् घोरान्।
सर्वान् अपि विनाशयति विषयविषं दारुणं भवति।।२१।।

विष घोर त्रस-स्थावरों का विनाशक त्यों विषय-विष।
है सभी विषयासक्त का बहु विघातक दारुण विषय।।२१।।

अर्थ – जैसे विषय सेवनरूपी विष विषयलुब्ध जीवों को विष देनेवाला है, वैसे ही घोर तीव्र स्थावर जंगम सब ही विष प्राणियों का विनाश करते हैं तथापि इन सब विषों में विषयों का विष उत्कृष्ट है, तीव्र है।

भावार्थ – जैसे हस्ती, मीन, भ्रमर, पतंग आदि जीव विषयों में लुब्ध होकर विषयों के वश हो नष्ट होते हैं, वैसे ही स्थावर का विष मोहरा सोमल आदिक और जंगम का विष सर्प घोहरा आदिक का विष इन विषों से भी प्राणी मारे जाते हैं, परन्तु सब विषों में विषयों का विष अति ही तीव्र है।।२१।।

गाथा-२१ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि विषयरूप विष महाप्रबल है :- आहाहा! क्या कहते हैं? शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शरीरादि इन सबका झुकाव है न राग का, वह राग ही विषय है, जहर है। वह बात कहते हैं, देखो!

जह विसयलुद्ध विसदो तह थावरजंगमाण घोराणं।
सव्वेसिं पि विणासदि विसयविसं दारुणं होई।।२१।।

'**विसदो**' जहर का देनेवाला, ऐसा कहते हैं। '**लुद्धं**' शब्द प्रयोग किया है।

विषय का सेवना विष है-जहर है। विषय की व्याख्या क्या? अपना आनन्दस्वभाव को छोड़कर पर की ओर का विषय-राग उठता है, वही विषय है। इस राग का सेवन करना, वह जहर है। समझ में आया? स्त्री का देह है, उसको कोई आत्मा भोग नहीं सकता। वह तो अरूपी आत्मा है और वह रूपी चीज़ है। माँस है, हड्डी है, चमड़ा है, जड़ धूल। उसको आत्मा छू सकता नहीं, आत्मा तो अरूपी है। उसको भोगता नहीं। शब्द, रूप, रस, गन्ध है, वह भी जड़ है। उसको भी आत्मा भोग सकता नहीं, अज्ञानी भी नहीं भोग सकता। मात्र उस ओर का झुकाव का राग उत्पन्न हुआ, विकल्प, उसको भोगता है, वह जहर है। समझ में आया? पाँच-दस लाख की कमाई हो जाये तो कहे, आज करो मिष्टान्न। दस लाख पैदा हुए हैं। धूल में भी नहीं है, सुन तो सही। जहर है। विकल्प उठा है कि यह ठीक है, वह जहर है, ऐसा कहते हैं। पोपटभाई! ये सब आपको पैसेवाले कहते हैं, क्या करना? कल तो एक ने बड़ा नाम दे दिया। ...जयन्तीभाई गये या हैं? गये? है? ...मिले नहीं। पोपटभाई के पास पाँच करोड़ हैं। मैंने कहा, करोड़ की बात रहने दो, पैसा है उसके पास। लोग कहते हैं। परन्तु पैसा उसके पास कहाँ है? पैसा पैसे में है। उसके पास तो पैसा मेरा है, ऐसी ममता उसके पास है। पोपटभाई! अकेले में बात करते थे। यहाँ कहते थे, ये सेठ के पास पाँच करोड़ है। मैंने कहा, करोड़ की बात रहने दो, पैसा है, ऐसा लोग कहते हैं। लोग कहते हैं। पैसा कहाँ आत्मा का था?

वही बात तो यहाँ कहते हैं, अजीव मेरा है—ऐसी मान्यता राग का जहर है। यह विषय का भोगना है। समझ में आया? आहाहा! वीतराग का मार्ग बड़ा कठिन, भाई! यह तो जड़ मिट्टी-धूल है। वह तो धूल होकर रही है। धूल को आत्मा भोगता है? स्त्री के शरीर को आत्मा भोग सकता है? मोसम्बी, दाल, भात, शाक, लड्डू आत्मा खा सकता है? वह तो जड़ है। जड़ की पर्याय तो मूर्त और अजीव है। आत्मा कैसे भोगे उसको? परन्तु उस ओर का झुकाव का पुण्य-पाप का विकल्प जो राग है, उसको यहाँ विषय कहते हैं। और उस विषय का अनुभव जहर है, ऐसा कहते हैं। ऐई! मार्ग भारी भैया! क्या कहा? देखो!

विषय का सेवन ही जहर है। अपना स्वविषय छोड़कर, अपना आनन्द ध्रुव स्वरूप का विषय-ध्येय को छोड़कर, जितना पर को ध्येय बनाकर राग-द्वेष करता है,

वह सब विषय है। यह विषय का सेवन करता है, वह जहर का अनुभव करता है। समझ में आया? बड़ी कठिन व्याख्या, भाई! भगवान कहते हैं, तू अरूपी है न, प्रभु! यह सब तो रूपी जड़ मिट्टी-धूल है। अरूपी रूपी को कैसे स्पर्शे? कैसे छुए? अरूपी रूपी को कैसे छुए? कभी छुए नहीं तीन काल-तीन लोक में। आहाहा! मात्र उस ओर का झुकाव-वलण-पर ओर की दिशा-यह मैं, यह मैं—ऐसा जो पुण्य-पाप का विकल्प उठता है, उसको विषय कहते हैं और उस विषय का भोग जहर है। आहाहा! बड़ी कठिन बात। अभी तो उसके घर की बात समझनी कठिन पड़ती है। आहाहा!

विषय-लुब्ध जीवों को... शब्दार्थ है। लुब्ध शब्द पड़ा है न? विषय-लुब्ध। क्योंकि ज्ञानी धर्मात्मा है, उसको विषय बाहर है और उसमें थोड़ी आसक्ति होती है। परन्तु लुब्ध नहीं है। धर्मी को पंचेन्द्रिय के विषय में सुखबुद्धि उड़ गयी है। भरत चक्रवर्ती हो, (तीन) तीर्थंकर थे, ९६ हजार पद्मनी जैसी स्त्रियाँ थी, भोग की वृत्ति उठती थी थोड़ी, परन्तु उस वृत्ति में सुखबुद्धि नाश हो गयी थी। सुखबुद्धि नहीं, सुख नहीं, सुख नहीं। सुखलुब्ध नहीं। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि विषय में लुब्ध नहीं है। विकल्प आता है, उसको जानने-देखने में स्वयं रहता है। आहाहा! भारी बात, भाई!

शील की व्याख्या है, देखो! शील। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज शील की व्याख्या करते हैं। आहाहा! शील अर्थात् ब्रह्म। ब्रह्मानन्द आत्मा, ब्रह्मानन्द आत्मा उसका ब्रह्म अर्थात् आनन्द में लीन होना, उसका नाम स्वभाव और शील है। और राग एवं पुण्य-पाप में लीन होना, उसका नाम विषय और जहर है। आहाहा! न्याय से समझना पड़ेगा न। पहले समझे तो सही क्या चीज़ है। समझे बिना मार्ग निकलेगा कहाँ से? ऐसे ही अन्ध होकर अनादि से चला जाता है। चार गति में भटकता है। दुःखी है, दुःखी। आहाहा!

विषय-लुब्ध जीवों को... पाठ में लुब्ध है न। सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव है, वह अपने स्वभावसन्मुख की दृष्टि में परसन्मुख की वृत्ति में लुब्ध नहीं है। समझ में आया? इन्द्र समकिती है। शकेन्द्र सौधर्म का इन्द्र। करोड़ों-अरबों अप्सरायें हैं, समकिती है। आत्मज्ञान है। और उसकी पटरानी रानी जो है-शचि... शचि, वह समकिती है, दोनों एकावतारी हैं। पति-पत्नी भगवान के ज्ञान में आया है या दोनों समकिती हैं और वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। सौधर्म इन्द्र। बत्तीस लाख विमान है। चन्द्र, सूर्य के

ऊपर वैमानिक (देवलोक) है। सौधर्म का इन्द्र शकेन्द्र है और उसकी रानी शचि है। दोनों आत्मज्ञानी हैं और वहाँ से निकलकर अन्तिम भव मनुष्य का है। मनुष्य भव में मोक्ष जानेवाले हैं।

कहते हैं कि समकिती को स्वभाव सन्मुख दृष्टि पड़ी है। उसमें विषय सन्मुख की वृत्ति में लुब्ध नहीं है, उसमें सुखबुद्धि नहीं है। आहाहा! समझ में आया? दृष्टि के फर्क में दिशा बदल जाती है। पर के ऊपर, विकार पर दृष्टि है तो दृष्टि मिथ्यात्व है। और स्वभाव पर दृष्टि होकर सम्यक् हुआ तो दिशा पलट गयी। चाहे तो विकल्प शुभ-अशुभ हो, सुखबुद्धि नहीं, हितबुद्धि नहीं, अपनत्व की बुद्धि नहीं, इष्टबुद्धि नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

विषय-लुब्ध जीवों को विष देनेवाला है,... जिसकी बुद्धि में अपना भगवान नित्यानन्द प्रभु शुद्ध ध्रुव दृष्टि में लिया नहीं और दृष्टि में तो पुण्य-पाप का विकल्प और राग है, वह विषय में लुब्ध है, वह जहर है। उसको जहर का अनुभव है। आत्मा का अनुभव तो अमृत का है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु है, उस ओर दृष्टि हुई, वह तो आत्मा का आनन्द का वेदन है। उसका नाम अविषय वेदन, परविषय बिना का वेदन है। अज्ञानी को अपने निज स्वरूप की ओर की दृष्टि का अभाव है, पर के ऊपर दृष्टि है। शुभाशुभ राग विकल्प, बस। वह दुःखमय है, जहर है। बराबर है? ये सब पैसेवाले को दुःखी कहते हैं यहाँ।

मुमुक्षु : आचार्य तो ऐसा कहे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : आचार्य हो तो क्या आचार्य झूठ कहते हैं? जैसा है, वैसा कहते हैं। नहीं हो तो न्याय लाओ। न्याय करना पड़ेगा या नहीं? ऐई! सेठ! सन्त सत्य बात कहते हैं या असत्य कहते हैं?

भगवान! दो विषय है। एक विषय स्व और एक विषय पर। जब स्वविषय सम्यग्दर्शन से आत्मा को पकड़ा नहीं, आत्मा में आनन्द है, ऐसा अनुभव नहीं है तो उसको परविषय राग-द्वेष के विषय में लक्ष्य है। उसमें लक्ष्यबुद्धि है, वह मिथ्याबुद्धि है और जहर है। आहाहा! यह रीति कभी सुनी नहीं। अपनी कल्पना से सुनकर अच्छा हुआ, अच्छा करते हैं (मान लिया)। धूल भी करता नहीं। किसको अच्छा कहना

और किसको बुरा कहना, उसका विवेक बड़ा है। उसका विवेक बड़ा विवेक है। समझ में आया ?

कहते हैं, **विष देनेवाला है, वैसे ही घोर तीव्र स्थावर-जंगल सब ही विष...** है। कहते हैं कि तीव्र स्थावर... स्थावर-एकेन्द्रिय, ये ... सोमल होते हैं न ? वह जहर है, जंगमरूप जहर है। सर्प का जहर। **प्राणियों का विनाश करते हैं...** सर्प का जहर स्थावर सोमल आदि। **तथापि इन सब विषों में विषयों का विष उत्कृष्ट है...** आहाहा ! भगवान आत्मा आनन्दस्वभाव को भूलकर पुण्य-पाप के राग में लुब्ध हुआ, बड़ा जहर हुआ। आहा ! चैतन्य भावप्राण का लूंट पड़ता है उसमें। अपना जीवन शुद्ध आनन्द, उसमें विषय की रुचि-प्रेम, पुण्य-पाप की रुचि का प्रेम, वह अपनी शान्ति को मार डालता है। आहाहा ! समझ में आया ?

यह तो न्याय से बात है। उसमें कोई तोड़-मरोड़कर बात नहीं करनी है। लॉजिक से-न्याय से जैसी चीज़ है, वैसी कहने में आती है। भैया ! समझ में आये ऐसी बात है। लॉजिक से समझ में आये ऐसी बात है। ऐसा नहीं है कि समझ में आया ? ऐसे ही मान लेना ऐसी चीज़ नहीं। क्या है, कैसे है, यह प्रकार समझकर मानना वह चीज़ है। भैया ! ऐसे ही मान लो। ऐसा माना तो क्या माना ? ...वस्तु की चीज़ क्या है, दुःख क्या है, उसका भास हुआ नहीं तो मानना किसको ? समझ में आया ?

ऐसी सत्य बात भगवान कुन्दकुन्दाचार्य प्रसिद्ध करते हैं। जगत के पास प्रसिद्ध करते हैं। प्रभु ! तेरा आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु है न। उस ओर की रुचि हो, तब तो आनन्द का वेदन हो, अमृत का वेदन हो। परन्तु तेरी रुचि विषय में पर में है। शुभ-अशुभराग विषय है, पर है, वह जहर है। वह अनुभव जहर है। आत्मा के अमृत का लूटनेवाला भाव है। ऐसा मार्ग बड़ा कठिन, भैया ! मार्ग ऐसा है। भारी कहो कि हल्का कहो, अनादि का है ऐसा है। समझ में आया ? जादवजीभाई ! ये सब तुम्हारे पैसेवाले को दुःखी कहते हैं यहाँ तो।

मुमुक्षु : ऐसा ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही है ? इनके लड़के का लड़का है, भैया ! बहुत पैसेवाला

है। हुण्डी का धन्धा है उसको। हुण्डी का-ब्याज का धन्धा है, कलकत्ता। बड़ा गृहस्थ है। उसके लड़के का लड़का है। बारह वर्ष की उम्र है। ऐसा बोले, ऐसा बोले... ...उसका लड़के का लड़का, बारह वर्ष की उम्र है। परन्तु यह बात करते हैं तो ओहोहो! वस्तु ऐसी है। ऐसा बोलता है। देखा है? पण्डितजी! संस्कारी है ऐसा लगता है, संस्कारी जीव है। है तो गृहस्थ, दिखाव बड़ा सुन्दर है। बारह वर्ष की उम्र अभी पूरी हुई। यहाँ था, अभी गया। यहाँ बैठता था, समयसार लेकर बैठता था। समयसार लेकर बैठे। ऐसी ही वस्तु है, वस्तु ऐसी है। दूसरी वस्तु हो नहीं सकती। उसमें क्या पूछना? मैंने एकबार ऐसा कहा, दिलीप! उसका नाम दिलीप है। आत्मा को छोड़कर मैं शरीर, वाणी, मन का कर्ता हूँ, पुण्य-पाप का कर्ता हूँ, ऐसा माने वह पागल जैसा है, हों! पागल जैसा है। (तो कहा), नहीं, नहीं। जैसा नहीं, उपमा नहीं, पागल ही है। भैया! पागल जैसा नहीं, जैसा तो उपमा है, पागल ही है। नौतमभाई! लड़के को देखा ना? यहाँ सामने बैठता था। उसका पिताजी कलकत्ता है न? उसके पिताजी के पिताजी यहाँ रहते हैं। ब्याज का धन्धा है, हुण्डी का। लड़का ऐसा है कि धड़ाके से बोले। पागल जैसा है, कहा। पागल जैसा नहीं, पागल ही है। जैसा तो उपमा है। डालचन्दजी! लड़का बहुत जोर लेकर आया है, हों! भाग्यशाली...

यहाँ कहते हैं, आहाहा! बाह्य सोमल आदि है, सर्प का जहर तो प्राण का नाश करे। **तथापि इन सब विषों में विषयों का विष...** तो अपना अन्तर आनन्द का प्राण का नाश करता है। यह बाहर का विष तो जड़ का नाश करे। पुण्य-पाप के राग में प्रेम और उसमें एकत्वबुद्धि, ऐसा मिथ्यात्वभाव आत्मा की शान्ति का, आनन्द का प्राण का नाश कर देता है। समझ में आया? बाहर का उत्साह मिट जाये। ऐसा है, वैसा है, धूल भी नहीं है, सुन तो सही प्रभु! तेरी प्रभुता में अन्दर में अनन्त आनन्द पड़ा है। जो परमात्मा को अनन्त आनन्द प्रगट हुआ, सर्वज्ञ अरिहन्त को, (वह) कहाँ से आया? बाहर से आता है? अन्दर में पड़ा है, वह आया है। समझ में आया? आहाहा!

इसने कभी स्वसन्मुख देखा ही नहीं। क्या मैं हूँ, कैसे हूँ, कहाँ हूँ, कैसे हूँ, उसके सन्मुख देखे बिना परसन्मुख की प्रकृति पुण्य-पाप का रागादि देखने में आया और उसमें रहा, वह जहर का अनुभव है। आहाहा! बराबर है? पण्डितजी! सुखी

कहते हैं न? पैसेवाला सुखी है, उसको दो करोड़ है, पाँच करोड़ है, धूल करोड़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! तेरे पास तो अनन्त आनन्द की लक्ष्मी है। वह तो पैसे की चीज़ है। अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति का सरोवर प्रभु आत्मा है। ऐसी अनन्तता कि अनन्त आनन्द निकाल लो तो भी अनन्त आनन्द, अनन्त आनन्द निकालो तो भी अनन्त आनन्द समाप्त नहीं हो। ऐसी तेरी चीज़ है। ऐसा स्वसन्मुख दृष्टि न करके, परसन्मुख में पर की पर्यायबुद्धि में रागबुद्धि में रुककर राग को वेदता है, वह विषय को वेदता है, जहर को वेदता है। समझ में आया? आहाहा! **सब विषों में विषयों का विष उत्कृष्ट है, तीव्र है।** ऐसा कहते हैं।

भावार्थ :- जैसे हस्ती,... हाथी। **मीन,...** मच्छ। **पतंग आदि जीव विषयों में लुब्ध होकर विषयों के वश हो नष्ट होते हैं...** नाश हो जाते हैं बाहर में। दीपक देखकर पतंग मर जाता है, एकदम से। ऐसे सुन्दर दिखे। ...जैसा दीपक। एक-एक इन्द्रिय के वश। हाथी स्पर्श के वश। हथिनी को अनुकूल देखकर पीछे जाता है और नीचे गड्ढे में गिर जाता है। एक-एक विषय के वश हुआ। हाथी मर जाता है। मीन-मच्छ। कांटे में आटा लगाते हैं न? आटा। लोहे का... पानी में डालते हैं न? हमने तो वहाँ पालेज में नजरों से देखा है। हमारे पालेज में है न? पालेज में नदी नहीं है। पालेज में हमारे वहाँ तालाब है। मुसलमान का गाँव है-पालेज। हमारी दुकान गाँव में। ...वह कांटे में आटा लगाते हैं। आटा। आटा खाने आये, उसमें फँस जाये, खींच ले मछली को। तालाब है, तालाब बड़ा।

कहते हैं, एक-एक (विषय में) हाथी, भ्रमर। फूल की सुगन्ध लेने अन्दर घुस जाता है। शाम होते ही बन्द हो जाता है। हाथी आकर खा जाता है। एक-एक विषय में लीन होकर मर जाते हैं। पतंग दीपक में। **विषयों में लुब्ध होकर...** यहाँ लुब्ध की व्याख्या है, हों! ९६ हजार स्त्री भरत चक्रवर्ती भोगता है, ऐसा कहने में आता है। भोगता नहीं। आहाहा! गजब बात है! राग से उदास है, पर से उदास है। सम्यग्दृष्टि पर से उदास है, यह नहीं, यह नहीं। मेरा आनन्दस्वभाव भगवान तो मेरे पास है। मेरा आनन्द तो मेरे में है। विकल्प में और पर में ज्ञानी को आनन्द की गन्ध दिखती नहीं। अज्ञानी को पर में गन्ध दिखती है, वह जहर है। समझ में आया? बहुत सीधी बात है। परन्तु

लोगों ने टेढ़ी करके ऐसी कर दी है कि सत्य क्या है, समझ में ही नहीं आये। विषय में मर जाये।

वैसे ही स्थावर का विष मोहरा,... मोहरा होता है न सर्प का? **सोमल आदिक...** ये गारुड़ी रखते हैं न? सर्प का मोहरा होता है? गारुड़ी सर्प होता है न? गारुड़ी सर्प को रमानेवाले। उसके पास मोहरा होता है। जहर। **सोमल आदि और जंगम का विष सर्प, घोहरा आदिक का-इन विषों से भी प्राणी मारे जाते हैं, परन्तु सब विषों में विषयों का विष अति ही तीव्र है।** अपने अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव की दृष्टि छोड़कर राग का पुण्य-पाप का परिणाम में एकाकार हुआ, वही महा जहर है। समझ में आया? **विषयों का विष अति ही तीव्र है।** अति तीव्र। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय प्राणी, अपने आनन्दस्वभाव को पीठ देकर, हटकर रागादि विकल्प जो विभाव है, उसमें रस आता है, अति तीव्र जहर है। और उसमें ठीक है, ऐसा मानते हैं। समझ में आया? तो उसमें आत्मा में आनन्द है, वह मानते नहीं। देखो! यह धर्म-अधर्म का लक्षण।

अधर्मी का लक्षण, चाहे तो पंच महाव्रत धारण करता हो और बाहर में साधु हुआ हो, परन्तु जिसको राग में रुचि और राग से लाभ माननेवाला है, उस राग में उसको जहर का अनुभव है। मिथ्यात्व का अनुभव है। आहाहा! विषकुम्भ कहा है न? समयसार में। शुभभाव को विष का घड़ा कहा है। शुभभाव है न? पुण्यभाव विष का घड़ा। समयसार, मोक्ष अधिकार, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य वीतरागी मुनि है तो सत्य है ऐसा प्रसिद्ध करते हैं। बात तो यह है। तुमको जँचे, न जँचे, स्वतन्त्र हो। शुभभाव विष का घड़ा। पण्डितजी! है समयसार में? भगवान आत्मा अमृत का घड़ा। घड़ा समझे न? घट... घट। अमृतकुम्भ। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का अमृतकुम्भ है। ऐसी अन्तर्दृष्टि हुई तो आनन्द का वेदन है। समकिती को बाहर में स्त्री आदि देखते हैं, परन्तु उसका है नहीं, उसका वेदन है नहीं, उसका भोग भी समकिती को है नहीं। वह ज्ञाता का ज्ञेय है। आहाहा! अज्ञानी को एकाकार... आहाहा! कैसा मजा! अरे... धूल भी नहीं है, सुन तो सही। मिथ्यात्व का जहर है। समझ में आया?

गाथा-२२

आगे इसी का समर्थन करने के लिए विषयों के विष का तीव्रपना कहते हैं कि विष की वेदना से तो एकबार मरता है और विषयों से संसार में भ्रमण करता है –

वारि एक्कम्मि य जम्मे मरिज्ज विसवेयणाहदो जीवो।
विसयविसपरिहया णं भमंति संसारकंतारे।।२२।।

वारे एकस्मिन् च जन्मनि गच्छेत् विषवेदनाहतः जीवः।
विषयविषपरिहता भ्रमंति संसारकांतारे।।२२।।

विष वेदनाहत जीव मरता इक जनम में एकदा।
संसार-वन में विषय-विष-हत भटकता रहता सदा।।२२।।

अर्थ – विष की वेदना से नष्ट जीव तो एक जन्म में ही मरता है, परन्तु विषयरूप विष से नष्ट जीव अतिशयतया-बारबार संसाररूपी वन में भ्रमण करते हैं। (पुण्य की और राग की रुचि वही विषयबुद्धि है।)

भावार्थ – अन्य सर्पादिक के विष से विषयों का विष प्रबल है, इनकी आसक्ति से ऐसा कर्मबन्ध होता है कि उससे बहुत जन्म मरण होते हैं।।२२।।

गाथा-२२ पर प्रवचन

आगे इसी का समर्थन करने के लिये विषयों के विष का तीव्रपना कहते हैं कि - विष की वेदना से तो एकबार मरता है और विषयों से संसार में भ्रमण करता है :- बाहर के जहर से तो एक बार देह छूटे। लो! श्रेणिक राजा समकिती था, आत्मज्ञानी था। क्षायिक समकिती! भगवान के भक्त और आत्मभाव। जहर पिया देह छोड़ने को। आत्मा तो शान्त और आनन्द का भान है उसको। उसके आत्मा का मरण हुआ नहीं। श्रेणिक राजा। श्रेणिक राजा है न? आत्मा का भान हुआ था। मैं तो आत्मा आनन्द हूँ। रानी आदि तो परचीज़ है। उसकी ओर झुकाव वृत्ति है, वह तो जहर है। मेरा स्वरूप

उससे भिन्न है। ऐसा भान था। सिर फोड़कर मर गये न। मरे नहीं, ऐसा कहते हैं। वह तो बाहर से एकबार देह छूटा। आहाहा! पहले नरक में है। आत्मा आनन्द में है। वहाँ से निकलकर पहले तीर्थंकर होंगे। श्रेणिक राजा। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति। नीचे है पहला नरक। चौरासी हजार की स्थिति है, ढाई हजार गये, साढ़े इक्यासी हजार बाकी रहे। वहाँ से निकलकर पहले तीर्थंकर तीन लोक के नाथ होंगे। आत्मज्ञान और समकित था इस कारण से। त्याग नहीं था, चारित्र नहीं था। समझ में आया? आत्मा का ज्ञान हुआ कि मैं तो आनन्द हूँ। रागादि दु:खरूप है। ऐसा विवेक हो गया। तीर्थंकर हुए। जैसे महावीर भगवान थे, वैसे होंगे। आगामी चौबीसी के पहले। यह पंचम काल है। उसके बाद छठवाँ; फिर पहला, दूसरा, तीसरा। भरतक्षेत्र में होंगे। यह प्रताप सम्यग्दर्शन का। आत्मा की आनन्द की दृष्टि हुई, उसके प्रताप से तीर्थंकर होंगे। केवलज्ञान होगा, तीर्थंकर की प्रकृति है। समझ में आया? और अज्ञानी मुनिव्रत पाले, पंच महाव्रत पाले। परन्तु वह पंच महाव्रत का विकल्प राग है। राग को ठीक मानता है, वह जहर पीता है। आहाहा! बाह्य का सोमल आदि तो एकबार मरण करे, परन्तु यह मिथ्यात्व का जहर तो अनन्त मरण को करे। उससे भी तीव्र है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१८९, गाथा-२२ से २४, रविवार, माघ शुक्ल ६, दिनांक ०१-०२-१९७१

शीलपाहुड़, २२वीं गाथा।

वारि एक्कम्मि य जम्मे मरिज्ज विसवेयणाहदो जीवो।
विसयविसपरिहया णं भमंति संसारकंतारे।।२२।।

संस्कृत... है न। संस्कृत में नहीं। क्या कहते हैं? देखो!

अर्थ :- विष की वेदना से नष्ट जीव तो एक जन्म में ही मरता है... जहर खाने से एक बार मरता है। सर्प का जहर हो, मोहरा का जहर हो तो एक बार मरे। **परन्तु**

विषयरूप विष से नष्ट जीव अतिशयता-बारबार संसाररूपी वन में भ्रमण करता है। अर्थात् आत्मा का अशीलपना जो है (अर्थात्) राग-राग, पुण्य और पाप का राग है न, राग? वही विषय का सेवन है। समझ में आया? राग का सेवन, वह विषय का सेवन है, जहर का सेवन है। उससे अनन्त जन्म-मरण होते हैं, ऐसा कहते हैं।

जैसे ३१वीं गाथा में कहा न, इन्द्रिय किसे कहना? यह जड़ इन्द्रिय। यह मिट्टी है, वह जड़ इन्द्रिय है और खण्ड-खण्ड इन्द्रिय। एक-एक इन्द्रिय एक-एक विषय करे, ऐसे ज्ञान के अंश को इन्द्रिय कहते हैं। उसे इन्द्रिय कहते हैं और विषयों को भी इन्द्रिय कहते हैं। शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श को भी इन्द्रिय कहते हैं। तीन को इन्द्रिय कहा है। कौन से तीन? कहा न? यह जड़ इन्द्रिय, यह मिट्टी है न? यह धूल। यह जड़ इन्द्रिय। और एक-एक इन्द्रिय के विषय को जाननेवाला ज्ञान—खण्ड-खण्ड ज्ञान, वह भी इन्द्रिय है। और शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श बाहर की चीज़, वह भी इन्द्रिय है। तीन को इन्द्रिय कहा। ऐसे यहाँ विषय शब्द से शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श का वेदन नहीं कर सकता, वह तो जड़ है। उसकी ओर का जो राग होता है, उसे वेदता है, वह विषय को वेदता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

अज्ञानी अनादि से विषय का विष, अपना अमृतस्वरूप भगवान, सुखानन्दस्वरूप। अपना सुख-आनन्दस्वरूप, उसका विषय, रुचि, प्रेम छोड़कर उससे पुण्य और पाप के विकल्प राग, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हो या हिंसा, झूठ, चोरी के परिणाम हों, वे दोनों राग हैं। राग का वेदन करना, वह विषय का वेदन है। पोपटभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा नहीं सुना था।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं सुना था? प्रतिक्रमण तो बहुत किये थे।

मुमुक्षु : उसमें ऐसा नहीं आता था।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आता था। बात सच्ची। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू!

भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव ने कहा, वह तो आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। उसकी रुचि छोड़कर पाँच इन्द्रियों के विषयों की ओर के झुकाव

का राग, उस राग का एकत्वपना; स्वभाव और राग का एकपना—ऐसी जो मान्यता, वह विषय का सेवन है। आहाहा! कान्तिभाई! दुनिया को धर्म क्या, अधर्म कैसे होता है, उस अधर्म की भी खबर नहीं। आहाहा! यहाँ तो धर्म और अधर्म दोनों की ही व्याख्या है। भगवान आत्मा अपना आनन्द और सुखस्वरूप का प्रेम छोड़कर जिसे आत्मा के आनन्दस्वभाव से उल्टा पुण्य-पाप का शुभ-अशुभभाव और उसके निमित्त शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श का जिसे प्रेम है, एकत्वबुद्धि है, वह विषय का ही सेवन करनेवाला है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म व्याख्या। जहर के खाने से एक बार मरे, परन्तु राग का जहर पुण्य-पाप का, यह मेरा है। राग विकल्प है शुभ-अशुभ, वह मेरा है—यह मिथ्यात्वरूपी जहर अनन्त जन्म-मरण को करता है, ऐसा कहते हैं। चन्द्रकान्तभाई! ऐसा है। वीतरागमार्ग क्या है, यह अभी लोगों को खबर नहीं।

यहाँ तो दूसरे प्रकार से कहते हैं कि कोई भी पुण्यपरिणाम दया, दान, व्रत, भक्ति के हों, उसे परमार्थ धर्म माने, वह जैसे मिथ्यादृष्टि है, वैसे इस राग की एकत्वबुद्धि करनेवाला भी मिथ्यादृष्टि है। पण्डितजी! गजब व्याख्या, भाई! इस शील के सामने अशील की व्याख्या है नहीं। शील अर्थात् भगवान आत्मा आनन्द का नाथ, उसकी एकाग्रता में आनन्द का वेदन, अकषायभाव का वेदन, उसका नाम शील कहा जाता है। आहाहा! शरीर से ब्रह्मचर्य पालता हो, परन्तु अन्दर में शरीर का ब्रह्मचर्य मैं पालता हूँ, ऐसा जो विकल्प उठता है, उस राग के साथ जिसकी एकता है, वह अब्रह्मचारी है। ऐई! प्रकाशदासजी! कठिन बात, भाई! समझ में आया? ऐई! कान्तिभाई! यह तुम्हारा दृष्टान्त। यह तो बालब्रह्मचारी है। जेठालालभाई! बालब्रह्मचारी है। मासिक वेतन पन्द्रह सौ था। पन्द्रह सौ वेतन छोड़ दिया-नौकरी छोड़ दी। मासिक पन्द्रह सौ वेतन। (नौकरी) छोड़ दी। हमारे नौकरी नहीं करना। बालब्रह्मचारी है, परन्तु अन्दर विकल्प उठे। कान्तिभाई! यह तो ऐसी बात है। जेठालालभाई! ऐसा मार्ग है। अभी इसे ख्याल में, समझ में (तो ले)। अज्ञान में कहाँ क्या चीज़ है, और क्या छोड़नेयोग्य है और क्या आदरनेयोग्य है, इसकी खबर नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि जिसे रागभाव चाहे तो पुण्य का, दया, दान, दान, व्रत, भक्ति का हो। परन्तु राग के साथ जिसकी आत्मस्वभाव की एकताबुद्धि है, वह अब्रह्मचारी

अशीलवाला है। आहा! लो, यह महाव्रत के परिणाम। कहो, देवानुप्रिया! महाव्रत के परिणाम तो विकल्प है। अहिंसा, सत्य आदि राग। उस राग से मुझे लाभ होगा, ऐसा माननेवाला अब्रह्मचारी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? आहाहा! पाँचों का... आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्म आचरण मानता है, वही मिथ्यात्वभाव, अशीलभाव, कुशीलभाव, मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बात सूक्ष्म है, भगवान! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड अनाकुल शान्तरस का सागर आत्मा है। लो, भाई! सागर है आत्मा। थोड़ी गुजराती सीख लेना। तुम्हारे पिताजी ने रात्रि में दलाली की थी कि पोपटभाई आयेगा तो गुजराती चलेगी। यहाँ तो तुम्हारा मकान किया है तो गुजराती चलना चाहिए। ऐई! सेठ! पूरे परिवार को यहाँ लाना है। किसलिए डाले दो लाख? तो थोड़ी यहाँ गुजराती सीख लेना। गुजराती में जैसा चलता है, वैसा हिन्दी में नहीं चलता। समझ में आया? आहाहा!

जहर खानेवाला एक बार मरता है परन्तु विषय सेवन करनेवाला अनन्त बार मरता है। इसका अर्थ क्या? आहाहा! अन्तर वीतरागमूर्ति आत्मा भगवान इन्द्रिय से-विकल्प से गम्य नहीं (होता), ऐसा चैतन्य भगवान का प्रेम छोड़कर उससे विरुद्ध राग, चाहे तो व्रत का राग हो, तप का। यह तपस्या करूँ, सामायिक करूँ, प्रौषध करूँ, प्रतिक्रमण करूँ, ऐसा जो विकल्प है, वह तो राग है। ऐई! जयन्तीभाई! आहाहा! वह तो वृत्ति का उत्थान है, राग है। राग का सेवन है, वही विषय का सेवन है, ऐसा कहते हैं। वह अनन्त जन्म-मरण को करेगा। आहाहा! कठिन मार्ग, भाई!

विषयरूप विष से नष्ट जीव... जिसे पाँच इन्द्रिय के विषय और विषय की ओर के राग में ठीक लगता है, मजा आता है। वह विषय का अर्थी, विषय का सेवन करनेवाला अनन्त भव में जन्म-मरण में भटकेगा। समझ में आया?

भावार्थ :- अन्य सर्पादिक के विष से विषयों का विष प्रबल है,... सर्प के जहर से आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध राग का जहर, उसकी एकत्वबुद्धि का अशीलपना महा अनन्त जन्म-मरण को प्राप्त करायेगा। पण्डितजी! कठिन बात, भाई! **इनकी आसक्ति**

से... आसक्ति अर्थात् यहाँ रुचि लेना। सम्यग्दृष्टि जीव-धर्मी, आत्मा के आनन्द का प्रेम और आनन्द का स्वाद समकिती धर्मी को होता है, इसलिए धर्मी छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द का भोग ले, ऐसा दिखता है, तथापि उसमें सुखबुद्धि नहीं है। उसे अशील नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! पोपटभाई!

सम्यग्दर्शन और अनन्तानुबन्धी का अभाव, ऐसी जो अन्तर निर्मल परिणति का भाव, वह शील है। वह शील को सेवन करता है। वह स्त्री के सेवन को सेवन नहीं करता। आहाहा! वह तो उसे राया, उसका ज्ञान कर लिया। राग का ज्ञान किया। राग मेरा, ऐसा नहीं माना। आहाहा! समझ में आया? बापू! मार्ग ऐसा है। यह साधारण लोग कहे, हम धर्म करते हैं। सामायिक किया, प्रौषध किये, प्रतिक्रमण किये, अपवास किये, तपस्यायें की सूख गये। धूल भी धर्म नहीं, सुन न! तेरा सब लंघन है। ऐई! जयन्तीभाई! मार्ग ऐसा है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा मार्ग फरमाते हैं। इस प्रकार ही होता है, दूसरा हो किस प्रकार? आहाहा!

आत तो सवेरे जरा वह विचार आया था। इन्द्रिय को तीन कहा न? ऐसे राग, उसका विषय वह सब विषय है। इन्द्रियों में तीन कहा न? ३१ गाथा में नहीं? भगवान की वाणी विषय इन्द्रिय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परद्रव्य है न? वह वाणी, वह इन्द्रिय और वाणी को जाननेवाला खण्ड-खण्ड ज्ञान, वह इन्द्रिय और यह जड़ इन्द्रिय है ही यह तो। यह तो मिट्टी है, यह तो धूल है। तीनों को भगवान ने इन्द्रिय कहा है। और उस इन्द्रिय को अपनी माने, उसे इन्द्रिय के ज्ञानवाला जड़ और अचेतन कहा है। समझ में आया? आहाहा! अपने... ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : सच्ची बात...

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य ही यह है। डालचन्दजी! आहाहा!

भगवान आत्मा सत्स्वरूप, आनन्दस्वरूप सर्वज्ञ तीर्थंकर ने कहा वह, हों! अज्ञानियों ने माना, वह नहीं। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान, उन्होंने आत्मा को कहा, वह यह आत्मा तो आनन्द की मूर्ति, अनाकुल शान्त का रसकन्द है। उसकी जिसे दृष्टि-रुचि हुई, उसे विषय की रुचि

रोम-रोम में कहीं नहीं है। आहाहा! अस्थिरता का राग है, परन्तु रुचि नहीं। अन्दर यह न हो... न हो... न हो... न हो... ऐसा अन्दर हुआ करता है। समझ में आया? यह न हो... न हो। वहाँ अज्ञानी को यह हो... यह हो... यह मजा... मजा... मजा लगता है, वही महामिथ्यात्व का जहर चढ़ गया है। सर्प के जहर से भी यह जहर अनन्त जन्म-मरण को करे ऐसा है। आहाहा! अरे! इसके घर में क्या है और पर में क्या मानता हूँ, इसकी इसे खबर नहीं होती। धर्म करते हैं, धर्म। धूल में भी धर्म नहीं, सुन न!

कहते हैं, देखो अब। **बहुत जन्म-मरण होते हैं।** आहाहा! शीलपाहुड़ में तो गजब बात की है। शीलपाहुड़। समझ में आया? क्या कहा भगवान? ऐसा कहा... आहाहा! गजब बात करते हैं। पहले आया था न? भाई! ज्ञान और शील को विरोध नहीं है। पहले से बात है। ज्ञान और शील को विरोध नहीं है। जहाँ शील है, वहाँ ज्ञान है; जहाँ ज्ञान है, वहाँ शील है। शील की व्याख्या? शील की व्याख्या क्या? भगवान आत्मा सच्चिदानन्द ज्ञानानन्दस्वरूप, उसे पुण्य के-पाप के विकल्प से भिन्न करके, पृथक् करके स्वरूप में एकाग्रता हो, वीतरागी दशा हो, उसे शील कहा जाता है। आहाहा! और राग का भाग उठे, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा ऐसी जो वृत्ति का उत्थान हो, वह राग है। उस राग के साथ जिसकी एकताबुद्धि है, भगवान निर्मलानन्द, सच्चिदानन्द शुद्ध आनन्दकन्द के साथ राग की एकताबुद्धि है, वही मैथुन है, वही मिथ्यात्व है। लो, और रात्रि में नव कहे थे। रात्रि में कहे या नहीं? आहाहा! भाई! तेरी बादशाही अलग चीज़ है अन्दर।

भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का रस का कन्द है, प्रभु! आहाहा! ऐसे आनन्द के रस के प्रेम को-रुचि को छोड़कर जिसने शुभराग में एकताबुद्धि की है, उसका नाम मिथ्यात्व है, उसका नाम अशील है, उसका नाम हिंसा है, उसका नाम असत्य है, उसका नाम चोरी है, उसका नाम अब्रह्म है, उसका नाम परिग्रह है। आहाहा! ऐई! जयन्तीभाई! आहाहा! और जिसे भगवान आत्मा शुद्ध परमानन्द की मूर्ति से विरुद्ध राग में जिसे प्रेम है, शुभराग हो (उसका) प्रेम है, उसे आत्मा के प्रति क्रोध है। आहाहा! इसने वीतराग का मार्ग सुना नहीं। बाहर में मानकर बैठ गया कि यह धर्म है और यह धर्म है और यह धर्म है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा अपने स्वभाव का प्रेम अर्थात् आश्रय अर्थात् रुचि छोड़कर जिसे वह शुभराग चाहे तो दया, दान, व्रत का, पूजा का, भक्ति का विकल्प है वह सब। उसका जिसे प्रेम और एकत्वबुद्धि है, उसे स्वभाव के प्रति क्रोध है। उसने मैं बड़ा हूँ, ऐसा माना है। भगवान आत्मा बड़ा है, ऐसा नहीं माना। मान है। वह कपटी है। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति आत्मा त्रिकाली शुद्ध सहज स्वरूप की रुचि छोड़कर राग की रुचि करनेवाला मायावी / कपटी है। और वह राग के प्रेमवाला लोभी-अनन्तानुबन्धी लोभी है। प्रकाशदासजी! यह तुम्हारे उत्तर चलते थे, उसमें से यह सब अधिक चला। आहाहा!

कल वह दृष्टान्त दिया था न? गधेडा का। गधेडा होता है न गधेडा? वह मर जाये तो चमड़ी होती है न... उसमें मैसूर को लपेटा हो। मैसूर डाला हो मैसूर। कल का मैसूर था न? वह बराबर नहीं था। भाव बराबर लिया होगा परन्तु घोटाला किया लगता है। ...संसारी ऐसे ही होते हैं। तुम्हारा भाव बहुत ऊँचा था।

मुमुक्षु : जामनगर का देखा... और इस ओर...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी कथन दूसरे हैं। हमारे रामजीभाई कहते। हमारे रामजीभाई है न, रामजी रूपशी, वहाँ के परिचित सही न। उन्होंने यह देखा हो न सब। कहाँ गये रामजीभाई? आहाहा! वहाँ कहीं देखा हुआ तो कहे यह उनका नहीं। उनकी जाति का नहीं। उसका भाव लिया होगा।

इसी प्रकार यहाँ भाव है राग का, उसमें आत्मधर्म माना, यह बिगाड़ है, ऐसा कहते हैं। राग है राग, विकल्प चाहे तो भगवान की भक्ति तीन लोक के नाथ की। वह परद्रव्य है। उनके ऊपर के झुकाव का राग, वह शुभराग है। उस राग को अपने रूप माने और राग की एकताबुद्धि माने, वह अशील है, मिथ्यादृष्टि है, मूढ़ है। वह उसे जहर चढ़ा है। वह अनन्त संसार में भटकेगा, ऐसा कहते हैं। जेठालालभाई! ऐसा मार्ग है। आहाहा! वह तो वीतरागमार्ग है। केवली परमात्मा का कहा हुआ। केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं। आहाहा!

अरे! इसकी जाति से विरुद्ध क्या है और इसकी जाति क्या है, उसकी इसे खबर नहीं होती और इसे धर्म हो तथा जन्म-मरण मिटे, वह किस प्रकार बने? आहाहा!

गाथा-२३

आगे कहते हैं कि विषयों की आसक्ति से चतुर्गति में दु:ख ही पाते हैं –

णरएसु वेयणाओ तिरिक्खए माणवेसु दुक्खाइं।
देवेसु वि दोहग्गं लहंति विसयासिया जीवा।।२३।।

नरकेषु वेदना: तिर्यक्षु मानुषेषु दु:खानि।
देवेषु अपि दौर्भाग्यं लभंते विषयासक्ता जीवा: ।।२३।।

है नरक में बहु वेदना मानव तिर्यग में बहुत दुख।
देवों में भी दौर्भाग्य पावे जीव विषयासक्त सब।।२३।।

अर्थ – विषयों में आसक्त जीव नरक में अत्यंत वेदना पाते हैं, तिर्यंचों में तथा मनुष्यों में दु:खों को पाते हैं और देवों में उत्पन्न हों तो वहाँ भी दुर्भाग्यपना पाते हैं, नीच देव होते हैं, इस प्रकार चारों गतियों में दु:ख ही पाते हैं।

भावार्थ – विषयासक्त जीवों को कहीं भी सुख नहीं है, परलोक में तो नरक आदिक के दु:ख पाते ही हैं, परन्तु इस लोक में भी इनके सेवन करने में आपत्ति व कष्ट आते ही हैं तथा सेवन से आकुलता; दु:ख ही है, यह जीव भ्रम से सुख मानता है, सत्यार्थ ज्ञानी तो विरक्त ही होता है।।२३।।

गाथा-२३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि विषयों की आसक्ति से चतुर्गति में दु:ख ही पाते हैं :- २३। २३-२३ (गाथा)।

णरएसु वेयणाओ तिरिक्खए माणवेसु दुक्खाइं।
देवेसु वि दोहग्गं लहंति विसयासिया जीवा।।२३।।

विषयासक्त जीव की व्याख्या ही दूसरी है। पुण्य और पाप का विकल्प जो राग,

उसमें एकता, वह विषयासक्त है। आहाहा! समझ में आया? धर्मी जीव तो आत्मा के आनन्द का रसीला, उसे विषय का राग होने पर भी उसका रस नहीं। जैसे गन्ने का रस खाकर कूचा निकाल डालते हैं, उसी प्रकार धर्मी जीव की पहली शुरुआत में अतीन्द्रिय आनन्द के रस के प्रेम में राग के विषय का कूचा अन्तर से छोड़ दिया है। समझ में आया? सेठ! ऐसी बात है, भाई! तुम्हारे से छोटे सेठ यहाँ अधिक रहते हैं। फिर तुम्हारे शरीर का ठिकाना नहीं होता। देरी-देरी से आते हो। आहाहा! कल बहुत बात चली। शरीर का (कारण) कल था, नहीं तो कुछ दूसरा कारण होगा।

यहाँ तो कहते हैं, **विषयों में आसक्त जीव...** है, आसक्त की व्याख्या यह। एकताबुद्धि। भगवान आत्मा अणीन्द्रिय, अतीन्द्रिय रस का कन्द / पिण्ड प्रभु आत्मा है। उसे राग का विकल्प, वह जहर है। उस राग की जिसे रुचि और राग की जिसे स्वभाव में एकता है, वह नरक में जायेगा। आहाहा! गजब! समझ में आया? **नरक में अत्यन्त वेदना पाते हैं,...** अपना आनन्दस्वभाव, अपनी निज निधि अनन्त शान्त आदि रस के गुण का पिण्ड, उसका अनादर करके जिसने राग का ही आदर करके उपादेय माना है, कहते हैं कि वह नरक की अत्यन्त वेदना चार गति में भटकेगा। समझ में आया? आहाहा! ककड़ी के चोर को फाँसी की सजा नहीं यह, हों!

मुमुक्षु : गुनाह प्रमाण सजा होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुनाह प्रमाण फाँसी है, भगवान! आहाहा!

अपने अनन्त-अनन्त पवित्र गुण, सिद्ध समान अपना स्वरूप ही शुद्ध है। उसके साथ राग की एकताबुद्धि करके इसने व्यभिचार किया, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! चेतनजी! यह काम भारी कठिन। सेठ कहते हैं, कठिन है। सुना नहीं न कभी। सब सुना यह सब घोटाले सुने हैं सब। आहाहा! अभ्यास नहीं। आहाहा! उल्टा अभ्यास, प्रभु! आहाहा!

यह तो वीतरागमार्ग है। वीतराग तो ऐसा कहे, तीन लोक के नाथ वीतराग ऐसा कहते हैं, मेरे सन्मुख देखकर तुझे विकल्प होगा, भगवान! तू वह छोड़कर अन्तर में देख। आहाहा! यह वीतराग कहे, हों! ऐई! कान्तिभाई! तीन लोक के नाथ परमात्मा

जाननेवाले की अपेक्षा से नाथ, हों! स्वामी-ब्वामी नहीं, कोई किसी का। ज्ञान के नाथ हैं। वह भगवान ऐसा फरमाते हैं। यह देखो कुन्दकुन्दाचार्यदेव ऐसा कहते हैं। भगवान के पास गये थे, वह लाकर यह बात करते हैं। आहाहा! भगवान का सन्देश यह है प्रभु! कि यह आत्मा अपने सुख का, आनन्द का स्वभाव त्रिकाली सदानन्दी प्रभु, नित्यानन्दी नाथ, उसकी जिसने रुचि छोड़कर स्वभाव से विरुद्ध ऐसे शुभराग की भी रुचि की और एकत्वबुद्धि की, तो कहते हैं कि चार गति के दुःख उसका फल है। देखो! देव भी लेंगे। क्योंकि शुभभाव होता है। परन्तु एकत्वबुद्धि है तो मिथ्यात्व है। और शुभभाव में जरा पुण्य बँधे तो स्वर्ग आदि में जाये। उसमें धूल में स्वर्ग में भी क्या है ढ़ोर में? सब समान है। स्वर्ग में भी विषय के अंगारों से वे सुलग रहे हैं। समझ में आया? चक्रवर्ती बड़े-बड़े राजा, सेठिया, अरबोंपति राग के अंगारों में सुलग रहे हैं। आहाहा! स्वरूप शान्त और अनाकुल स्वरूप, राग की क्रिया बिना का तत्त्व, उसके स्वभाव से हटकर राग के भाव में आता है, और उसे हितकर मानता है। कहते हैं कि वह राग के अंगारे में सिंक रहा है। ऐई! पोपटभाई! आहाहा! सब सुखी कहते हैं न? तुमको यह सब पैसेवालों को। आहाहा!

मुमुक्षु : जीव पैसेवाला, शरीरवाला नहीं, रागवाला नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग भी कैसा? राग स्वरूप उस भगवान आत्मा का? आहाहा! शुद्ध सदा निर्मलानन्द प्रभु, उसका राग रूप कुरूप। कुरूप को अपना रूप मानना, वह विषय का सेवन करनेवाला (है), भले बाहर से विषय न सेवन करता हो। परन्तु विषय उसके फल में उसे विषय आनेवाले और उन्हें भोगेगा। इसलिए राग को ही यहाँ विषय कहा है। आहाहा! भारी काम परन्तु लोगों को कठिन।

तिर्यंचों में तथा मनुष्यों में दुःखों को पाते हैं... चार गति मिलेगी, ऐसा कहते हैं। देव में भी '**देवेसु वि दोहग्गं**' ऐसा है न? **दुर्भाग्यपना पाते हैं,...** हल्के देव होते हैं। वह देव मरकर वापस गधा होगा।

मुमुक्षु : वह हो और वह बड़ा देव कहे, हो गधा।

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे न, गधा हो। हाथी होता है। गधा न होने दे परन्तु हाथी

होता है। बड़ा देव होता है न? वह हल्के देव को कहे, हाथी हो, घोड़ा हो।

मुमुक्षु : अपनी सवारी करने के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : सवारी करने के लिये।... भगवान का जन्म होता है, देखो न। भगवान का जन्म हो, तब इन्द्र आता है या नहीं? ऐरावत हाथी। लाख योजन ऊँचा। वह हाथी कहीं तिर्यंच नहीं है। देव है। देव का हल्का जीव है, उसे हाथी का रूप धारण करना पड़ता है। ऊपर इन्द्र सवारी करता है। दु:खी है, दु:खी है। वहाँ सुख कहाँ था धूल में? आहा! समझ में आया?

देवों में उत्पन्न हों तो वहाँ भी दुर्भाग्यपना पाते हैं, नीच देव होते हैं,... आहाहा! **इस प्रकार चारों गतियों में दु:ख ही पाते हैं।** चार गति में दु:ख है। सुख तो मोक्ष में है। आत्मा मोक्षस्वरूप ही है। चार गति के दु:ख। एक ही बात है। एक ओर संसार तथा एक ओर भगवान आत्मा। संसार शब्द से (आशय) राग से लेकर यह दुनिया की सब चीज़ और भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड परमानन्द एक राम। यह आतमराम और एक ओर पूरा गाँव। शुभ विकल्प से लेकर सब गाँव। उसका जिसे एक भी राग की रुचि का प्रेम है, एकत्वबुद्धि है, (वह) अशील में है, कुशीली है। कहा नहीं? पुण्य के अधिकार में नहीं? पुण्य अधिकार में। कुशील... संसार में प्रवेश करे, उसे सुशील कैसे कहना? आहाहा! पुण्यभाव, शुभभाव, वह संसार में प्रवेश करे, उसे सुशील कैसे कहना? वह पुण्यभाव कुशील है। आहाहा! कठिन काम, भाई! कहते हैं, **चार गतियों में दु:ख ही पाते हैं।**

भावार्थ :- विषयासक्त जीवों को कहीं भी सुख नहीं है,... कहाँ सुख? सुख तो भगवान आत्मा में है। आनन्द का तो सागर सरोवर है यह तो प्रभु। आहाहा! यह हंस मोती का चारा चरे। वह दाना नहीं खाता। हंस दाना नहीं खाता, हों! इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि धर्मी जीव, सम्यग्दृष्टि जीव उसे कहते हैं कि जो आत्मा के आनन्द का चारा चरे। आहाहा! वह राग का चारा चरनेवाला हंस नहीं है, वह तो कौआ है। समझ में आया? राग के प्रेम में तू लुट गया है, प्रभु! ऐसा कहते हैं। लुटकर मानता है, मुझे मजा है। अब उसका क्या करना? पोपटभाई!

विषयासक्त जीवों को कहीं भी सुख नहीं है,... दो प्रकार कहेंगे। **परलोक में तो**

नरक आदि के दु:ख पाते ही हैं परन्तु इस लोक में भी इनके सेवन करने में आपत्ति व कष्ट आते ही हैं। इन्द्रिय की ओर का झुकाव भाव है, वही आकुलता है, वह दु:ख है, जहर है। वह जहर का प्याला पीता है। आहाहा! समझ में आया? **इस लोक में भी इनके सेवन करने में आपत्ति व कष्ट आते ही हैं।** फिर शरीर बिगड़े और फिर अलग। परन्तु जो अन्दर आकुलता होती है सेवन करने में, वही दु:ख है। और उसके फल में बन्धन होकर चार गति में भटकेगा। वहाँ भी आकुलता है। चार गति दु:खरूप है। स्वर्गादि सब दु:खरूप है। अज्ञानी मानता है कि स्वर्ग में सुख है। धूल भी नहीं। सुख तो आत्मा में है। सम्यग्दृष्टि स्वर्ग में हो या नरक में हो, वह सुख में है। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि त्यागी हो और भोगी हो तो भी वह दु:ख में है। आहाहा! प्रकाशदासजी! भारी कठिन काम। आहाहा!

एक ओर आत्माराम तथा एक ओर राग से लेकर यह पूरा गाँव। कहते हैं कि जिसे राग की एकताबुद्धि है, उसे आत्मा के आनन्द का अनादर है। वह अशील प्राणी है, शील बिना का है। शील तो नरक में भी होता है। नारकी जीव को शील होता है। शील की व्याख्या यह है। राग से रहित और स्वभाव की एकता की दृष्टि का परिणमन, शान्ति का (परिणमन), उसे शील कहा जाता है। वह शील नरक में भी है। आहाहा! समझ में आया? और नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार दिगम्बर साधु होकर गया तो वह अशील था। आहाहा! कुशीली था। 'मुनिव्रत व्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो पे (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' आहाहा!

यहाँ तो ऐसा माने कि हम भगवान की भक्ति करेंगे, उसमें हमें निर्जरा होगी। कहते हैं कि मिथ्यात्व का व्यभिचारी है। बात कठिन है, बापू! भाई! आहाहा! समझ में आया? उसमें निर्जरा हो, धर्म हो। अरे! भगवान! परद्रव्य (के ऊपर) लक्ष्य जाने से कहाँ वीतरागता होगी? वहाँ तो राग होगा। चाहे तो अरिहन्त हो और सिद्ध हो। उनकी ओर के झुकाव की वृत्ति हो, परन्तु है तो राग। उस राग से मुझे धर्म होगा, निर्जरा होगी, वह राग की एकताबुद्धिवाला अशील कुशीली है। हें! आहाहा! ऐसा मार्ग है। मार्ग ही ऐसा है। वह कहीं किसी का कल्पित नहीं है। अनादि-अनादि सनातन वीतराग मार्ग, इस प्रकार से वस्तु के स्वरूप की स्थिति है। यह कहीं वीतरागमार्ग कोई पक्ष है और

दूसरे भी धर्म हैं, ऐसा कुछ नहीं। यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। समझ में आया?

तथा सेवन से आकुलता दु:ख ही है,... सेवन की आकुलता है और शरीर भी वैसा हो जाये, ऐसा कहना है। शरीर में रोग आदि हो, जीर्ण हो जाये। **यह जीव भ्रम से सुख मानता है,...** आहाहा! कहाँ सुख में मिथ्यात्व ले गये। सुन्दर स्त्री, लक्ष्मी, करोड़ों रुपये, सुन्दर महल, मकान, करोड़ों के बाग-बगीचे, सुन्दर रूप। आयेगा इसमें, हों! तुरन्त आयेगा। २५वीं गाथा में। शरीर सुन्दर सब अवयव। क्या है? वह तो जड़ है, भाई! वह तो मिट्टी है। मिट्टी के आकार मिट्टी से ही भरे हैं। वह आत्मा का आकार नहीं। वह कहीं आत्मा की चीज़ नहीं। वह तो मिट्टी-जड़ की चीज़ है। आहाहा! समझ में आया? यों भी नहीं कहते कि कुछ पके तब, मेरी मिट्टी पकाऊ है, ऐसा नहीं कहते? मिट्टी पकाऊ है, नहीं कहते? पकती है जब? चमड़ी पकती है। चमड़ी पक जाती है न, तो हमारी काठियावाड़ी भाषा में कहते हैं कि मेरी मिट्टी पकाऊ है। मिट्टी अर्थात् यह। पकाऊ है। यह तो मिट्टी है। यह कहाँ आत्मा था। यह तो धूल के आकार हैं। आहाहा! दीमक के नहीं होते बड़े राफड़ा? दीमक-दीमक। छोटी जीवांत होती है। दीमक के रापडा तुम नहीं समझते? छोटी-छोटी जीवांत होती है न? दीमक-दीमक। धूल निकाले। वैसे यह धूल के ढेर हैं। आहाहा!

कहते हैं, **जीव भ्रम से सुख मानता है, सत्यार्थ ज्ञानी तो विरक्त ही होता है।** क्या कहते हैं? विरक्त की व्याख्या—एकताबुद्धि धर्मी को होती नहीं। राग के, विकल्प के जहर के साथ धर्मी की एकत्वबुद्धि नहीं होती। विरक्त ही है। आहाहा! पश्चात् बाहर के विषय हों, परन्तु वह तो ज्ञाता का ज्ञेय है। धर्मी को छियानवें हजार स्त्रियाँ भगवान तीर्थंकर को (चक्रवर्ती तीर्थंकर को) थी। चक्रवर्ती को छियानवें हजार (स्त्रियाँ)। नहीं, हमारी है नहीं, हम उनके नहीं। उसकी जरा आसक्ति का राग, उसके हम नहीं, राग हमारा नहीं। हम तो राग से भिन्न भगवानस्वरूप हैं। आहाहा! उसे राग में रस ज्ञानी को उड़ गया है। अज्ञानी को राग में रस चिपटा है एकाकार। इतना अन्तर है। समझ में आया?

सत्यार्थ ज्ञानी तो विरक्त ही होता है। सच्चा ज्ञानी जिसे राग से भिन्न दशा-भान हुआ है, वह राग की, स्वभाव के साथ की एकताबुद्धि जिसे टूट गयी है। तो धर्मी तो व्यवहार से मुक्त है। व्यवहार से मुक्त है। आहाहा! समझ में आया? २३ हुई।

गाथा-२४

आगे कहते हैं कि विषयों को छोड़ने से कुछ भी हानि नहीं है –

तुसधम्मंतबलेण य जह दव्वं ण हि णराण गच्छेदि।
तवसीलमंत कुसली खवंति विसयं विस व खलं।।२४।।

तुषधमद्‌बलेन च यथा द्रव्यं न हि नराणां गच्छति।
तपः शीलमंतः कुशलाः क्षिपंते विषयं विषमिव खलं।।२४।।

तुष दूर करने से मनुज का द्रव्य कुछ जाता नहीं।
तप-शीलवान कुशल विषय-खल तजें विष-वत् मान ही।।२४।।

अर्थ – जैसे तुषों के चलाने से, उड़ाने से मनुष्य का कुछ द्रव्य नहीं जाता है, वैसे ही तपस्वी और शीलवान् पुरुष विषयों को खल की तरह क्षेपते हैं, दूर फेंक देते हैं।

भावार्थ – जो ज्ञानी तप शील सहित हैं, उनके इन्द्रियों के विषय खल की तरह हैं, जैसे ईख का रस निकाल लेने के बाद खल नीरस हो जाते हैं, तब वे फेंक देने के योग्य ही हैं, वैसे ही विषयों को जानना, रस था वह तो ज्ञानियों ने जान लिया तब विषय तो खल के समान रहे, उनके त्यागने में क्या हानि? अर्थात् कुछ भी नहीं है। उन ज्ञानियों को धन्य है जो विषयों को ज्ञेयमात्र जानकर आसक्त नहीं होते हैं।

जो आसक्त होते हैं, वे तो अज्ञानी ही हैं, क्योंकि विषय तो जड़पदार्थ हैं, सुख तो उनको जानने से ज्ञान में ही था, अज्ञानी ने आसक्त होकर विषयों में सुख माना। जैसे श्वान सूखी हड्डी चबाता है तब हड्डी की नोंक मुख के तलवे में चुभती है, इससे तालवा फट जाता है और उसमें से खून बहने लगता है तब अज्ञानी श्वान जानता है कि यह रस हड्डी में से निकला है और उस हड्डी को बारबार चबाकर सुख मानता है, वैसे ही अज्ञानी विषयों में सुख मानकर बारबार भोगता है, परन्तु ज्ञानियों ने अपने ज्ञान ही में सुख जाना है, उनको विषयों के त्याग में दुःख नहीं है, ऐसे जानना।।२४।।

गाथा-२४ पर प्रवचन

२४। **विषयों को छोड़ने से कुछ भी हानि नहीं है :-** कहते हैं कि छिलका, जैसे छिलका होता है न छिलका? फोतरा को क्या कहते हैं? छिलका। जैसे छिलका उड़ा देते हैं, उसमें कोई नुकसान है?

मुमुक्षु : यह तो स्पष्ट हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट हो जाये। सुपड़ा होता है न सुपड़ा? सुपड़ा कहते हैं? वह मूँग आदि के छिलके होते हैं न? ऐसे करते-करते उड़ा देते हैं। न निकले तो धप्पा मारे नीचे तो छिलके उड़ जाते हैं। यह तो देखा हुआ हो, उसकी बात है। यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि छिलका-छिलका उड़ाने में कुछ नुकसान नहीं है, वहाँ तो लाभ है। अकेला माल हो जाता है, और छिलका उड़ा देते हैं। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान चैतन्य आनन्द का नाथ, वह माल तो दृष्टि में धर्मी को रह जाता है और पुण्य-पाप के विकल्प, वे छिलके-थुंथा को उड़ा देता है। वे मुझमें नहीं हैं। मैं उनका नहीं, वे मुझमें नहीं। आहाहा! यह तो कुछ पुरुषार्थ है? कितना पुरुषार्थ है इसमें? लोगों को इसकी खबर नहीं पड़ती। यह उपवास किया, अमुक किया, अमुक किया और तपस्या हो गयी। हमने पुरुषार्थ किया। धूल भी किया नहीं, सुन न! भटकने के रास्ते हैं वे सब। आहाहा! ऐई! पोपटभाई! अपवास-बपवास किया था न कभी? थोड़े से किये होंगे थोड़े-थोड़े। भाई! हम भी करते थे, हों, दुकान में। पर्यूषण में, हों! पर्यूषण में आठ दिन होवे न, पानी बिना के, हों! अपवास। (संवत्) १९७० के वर्ष पहले। कुछ खबर नहीं होती कि क्या वस्तु का स्वरूप है। मानते कि अपने धर्म हो गया। आहाहा! बापू! यह वस्तु नहीं। भगवान आत्मा अनाकुल शान्ति के रसकन्दवाला प्रभु, कहते हैं कि उसे फोतरा-छिलका उड़ाने में कुछ नुकसान है? माल रह जायेगा और छिलके उड़ जायेंगे।

तुसधम्मंतबलेण य जह दव्वं ण हि णराण गच्छेदि।
तवसीलमंत कुसली खवंति विसयं विस व खलं।।२४।।

उसमें... शब्द था न इसमें '**गच्छेदि**' शब्द प्रयोग किया है। २२-२२... सरी गया अर्थात् '**गच्छेदि**' ऐसा। है न संस्कृत? '**वारि एक्कम्मि य जम्मे मरिज्ज**' '**मरिज्ज**' का अर्थ किया '**गच्छेदि**'। नहीं? सरी गया। स्वभाव में से सरी गया, निकल गया बाहर।... शब्द ऐसा प्रयोग करते हैं। सरी गया। आहाहा! ऐसे जिसने आत्मा के आनन्द के स्वभाव का प्रेम और दृष्टि करके पुण्य-पाप के छिलके जिसने उड़ा दिये, उसमें नुकसान नहीं परन्तु लाभ है, कहते हैं। समझ में आया? '**धम्मंतबलेण य जह दव्वं ण हि णराण गच्छेदि**' वह '**गच्छेदि**' शब्द आया न, इसलिए याद आया। यह '**गच्छेदि**' शब्द आया न इसमें? २४ में। इसलिए उसमें '**गच्छेदि**' का याद आ गया। शरीर का अर्थ '**गच्छेदि**' किया।

अर्थ :- '**तवसीलमंत कुसली खवंति विसयं क्सि व खलं॥**' **जैसे तुषों के चलाने से, उड़ाने से मनुष्य का कुछ द्रव्य नहीं जाता है,...** छिलका और तुष निकाल डालने में कुछ नुकसान नहीं है। माल रह जायेगा। आहाहा! **वैसे ही तपस्वी और शीलवान पुरुष...** तप शब्द से (आशय) इच्छा निरोधरूप आत्मा के आनन्द की दशा। तप अर्थात् अपवास-बपवास, वह यहाँ तप नहीं। आत्मा ही अखण्डानन्द प्रभु अपनी शुद्धि से तपे, शोभे। आनन्द से जिसमें आत्मा शोभता है, आत्मा आनन्द से शोभता है, उसका नाम तप कहते हैं। समझ में आया? गजब! एक-एक की व्याख्या अलग। वीतराग की सब व्याख्या अलग।

तुषों को चलाने से, उड़ाने से मनुष्य का कुछ द्रव्य नहीं जाता है,... लक्ष्मी जाये उसमें कुछ? **वैसे ही तपस्वी...** अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्य की रागरहित शीलवान दशा, वह **विषयों को खल की तरह क्षेपते हैं,...** खल... खल... खल... खल होती है न खल? तिल में से खल नहीं निकलती? खल-खल कहते हैं न? खल कहते हैं। किसान लोग खल कहते हैं। हमारे (गुजराती में) खोल कहते हैं। वे लोग खल लाये? खल लाये? ऐसा कहे। खल। इसी प्रकार आत्मा में पुण्य और पाप की खल दुष्टाई है। आहाहा! **विषयों को खल की तरह क्षेपते हैं,...** उस राग को खल की भाँति दृष्टि में छोड़ देते हैं। आहाहा! समझ में आया?

विषयों को खल की तरह क्षेपते हैं,... यहाँ व्याख्या स्थूल करते हैं न कि बाहर

से विषय छोड़े, यह छोड़े और यह छोड़े। यह बात है ही नहीं। वह विषय तो ऐसे बाहर से तो अनन्त बार छोड़े। अभव्य ने भी अनन्त बार स्त्री-पुत्र-परिवार छोड़कर ब्रह्मचर्य पालन किया। वह ब्रह्मचर्य नहीं, वह विषय छोड़ा नहीं। श्रीमद् में भी आता है न? 'जो नव वाड विशुद्ध से पाले शील सुखदाय।' विशुद्ध से शब्द अन्दर पड़ा है। ऐसे के ऐसे नव वाड़ पालन करे, वह नहीं। वह तो राग है। कान्तिभाई! श्रीमद् में आता है। श्रीमद् के वाक्य कितने ही बहुत गूढ़ हैं, गम्भीर हैं। ऊपर से अर्थ करे और अन्दर गर्भ को समझे तो सब गोते खाये। अपने ब्रह्मचर्य पालो नव वाड़ से। परन्तु किस प्रकार? विशुद्ध से। अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागता सहित जो पालन करे, उसे ब्रह्मचर्य पालनेवाला कहते हैं। समझ में आया? 'भव उसका फिर लव लहे...' आता है न? 'तत्त्व वचने...'

कहते हैं कि अपने आत्मा के आनन्द के प्रेम से धर्मी इस विषय के राग को छोड़ने से क्या लाभ है? और छोड़ने से उसमें नुकसान क्या है? बिल्कुल राग छूटने से, राग की एकता छूटने से सम्यग्दर्शन और आनन्द की प्राप्ति होती है। समझ में आया? गजब भाई! बाहर से सब माँडकर बैठे हो न। अपवास करे, दया पाले, सामायिक की, प्रौषध की। धूल भी नहीं, भगवान! तुझे खबर नहीं, भाई! तेरे स्वभाव में राग नहीं, राग की एकताबुद्धि छोड़ना और स्वभाव की एकता करना, इसका नाम बाहर राग का त्याग कहा जाता है। आहाहा! **क्षेपते हैं, दूर फेंक देते हैं।** खल की तरह दूर फेंक देते हैं। खल-खल निकाल डालते हैं।

भावार्थ :- जो ज्ञानी तप शील सहित हैं... धर्मी इच्छा बिना के आत्मा के भानवाला है और रागरहित स्वभाव की एकता का जिसे अन्तर स्वभाव का शीलपना अरागीपना, निरोगपना, शुद्धपना प्रगट हुआ है, उसे **इन्द्रियों के विषय खल की तरह हैं;...** उसे तो इन्द्रिय के विषय खल की भाँति है। **जैसे ईख का रस निकाल लेने के बाद...** साठा-साठा गन्ना-गन्ना। गन्ने का रस निकाल ले। आहाहा! वे मर गये न कितने ही? ... कोई बात करते थे। गन्ने का कूचा बहुत कूचा पड़े थे। उसमें तापणी करके सुलगा। बहुत लोग मर गये। चारों ओर कूचा होते हैं न? रस बिना के कूचा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो ठीक। परन्तु यह तो यह छिलका सुलगनेयोग्य है। इसमें से रस चूसनेयोग्य नहीं। आहाहा!

ईख का रस निकाल लेने के बाद खल-चूसे नीरस हो जाते हैं... उसमें खल चूसने से क्या हो? छिलके में क्या है? **तब वे फेंक देने के योग्य ही हैं,...** छिलका तो फेंक देने के लिये होता है। **वैसे ही विषयों को जानना।** क्या कहते हैं? **विषयों को जानना। रस था, वह तो ज्ञानियों ने जान लिया...** रस तो आत्मा का आनन्द रस है, उसे जान लिया। उसमें (-राग में) तो रस है नहीं। **रस था, वह तो ज्ञानियों ने जान लिया, तब विषय तो खल के समान रहे,...** देखो! रस तो आत्मा का आनन्द, वह रस है। विषय का विकल्प है, वह तो छिलका है। छोड़ दे। आहाहा! देखो! यह वस्तु का स्वरूप। लोगों ने बाहर की कल्पना (की है), इसलिए ऐसा लगे यह। सत्य तो ऐसा ही है। जो सत्य की खबर न हो और कहीं-कहीं असत्य में भरकर माने कि हम कुछ सत्य करते हैं। **अर्थात् कुछ भी नहीं है।** लो! रस ले लिया, फिर छोड़ दिया।

उन ज्ञानियों को धन्य है जो विषयों को ज्ञेयमात्र जानकर आसक्त नहीं होते हैं। देखो! रागादि हों परन्तु उन्हें ज्ञेयरूप से जाने। ज्ञानी अपनेरूप से माने नहीं। शब्द, रूप, रस, गन्ध और राग सब आत्मा के ज्ञान का परज्ञेय है। परज्ञेय, हों! स्वज्ञेय अपना आत्मा। **उन ज्ञानियों को धन्य है जो विषयों को ज्ञेयमात्र जानकर आसक्त नहीं होते हैं। जो आसक्त होते हैं, वे तो अज्ञानी ही हैं,...** देखो! भाषा यह है। उस अस्थिरता की आसक्ति लेना नहीं। श्रद्धा की आसक्ति। समझ में आया? राग की जाति विकल्प विभाव के साथ जिसे एकता है, उसे यहाँ राग की आसक्ति है, वह अज्ञानी है। वह तो अज्ञानी है। आहाहा! समझ में आया?

क्योंकि विषय जो जड़ पदार्थ हैं। सुख तो उनको जानने से ज्ञान में ही था,... उसमें सुख नहीं था। परन्तु जाना कि यह है, ऐसा ज्ञान किया अपना और पर का, उसमें आनन्द था। विषय को अर्थात् राग को जाना और आत्मा को जाना। ऐसा जानने के भाव में सुख था। उस राग में सुख नहीं था। आहाहा! लो! **अज्ञानी ने आसक्त होकर विषयों में सुख माना।** लो! इसका दृष्टान्त देंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१९०, गाथा-२४ से २६, मंगलवार, माघ शुक्ल ७, दिनांक ०२-०२-१९७१

शीलपाहुड़। बीच में है। **अज्ञानी ने आसक्त होकर विषयों में सुख माना।** वहाँ है। है न बीच में? यहाँ तो आत्मा में आनन्द है, उसे भूलकर पुण्य-पाप के राग में या विषयों में सुख मानता है, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ अज्ञानी है।

मुमुक्षु : इस बात में छनावट नहीं हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : छनावट हुई या नहीं? आत्मा में आनन्द है, उसे भूलकर चाहे तो पुण्य के भाव में, पाप के भाव में या विषयों में सुखबुद्धि रहे, वह मिथ्यात्व के लक्षण हैं। मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि सुख आत्मा में है और पर में नहीं। यह कहते हैं, देखो!

आसक्त होकर.. आसक्त अर्थात् यहाँ रुचि की बात है। ज्ञानी को अस्थिरता की आसक्ति होती है, वह अलग बात है। परन्तु उसमें सुख है, ऐसी रुचि अथवा वह पुण्य का भाव भी मुझे हितकर है, वह भाव भी विषय का मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? अज्ञानी आसक्त अर्थात् विषय में सुखबुद्धि से, **विषयों में सुख माना। जैसे श्वान (कुत्ता) सूखी हड्डी चबाता है...** सूखी हड्डियाँ। **तब हड्डी की नोंक मुख से तालवे में चुभती है,...** नोंक यहाँ चुभे। **इससे तालवा फट जाता है और उसमें से खून बहने लगता है,...** रक्त निकले रक्त। वह रक्त को चाटता है। मानता है कि हड्डी में से रक्त आता है। आहाहा! समझ में आया?

तब अज्ञानी श्वान जानता है कि यह रस हड्डी में से निकला है... हड्डी में से रक्त-खून... खून निकला। खून कहीं हड्डी में से नहीं निकला। उसकी नोंक चुभी (इसलिए) यहाँ से निकला। तालुवा में से निकला। **और उस हड्डी को बारबार चबाकर सुख मानता है...** बारम्बार हड्डी को चबाये। **सुख मानता है; वैसे ही अज्ञानी विषयों में सुख मानकर...** शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श की ओर का झुकाव, राग में सुख माने। कहो, समझ में आया? यह तो शील पर एकदम अन्दर उतारा है। नारकी जीव है, वह भी सम्यग्दृष्टि है तो वह विषय से विरक्त है। समझ में आया? पण्डितजी! सम्यग्दृष्टि जीव विषय से विरक्त है। आहाहा! इसका अर्थ कि विषय में सुखबुद्धि उड़ गयी है।

समझ में आया? समकिती नरक में भी विषय से विरक्त है। है इसमें, देखो! अन्दर है न पृष्ठ? ३२ गाथा है। ३२वीं गाथा। '**जाए विसयविरत्तो**' नारकी जीव भी (जो) समकिती है, उसे विषय की रुचि-प्रेम नहीं। इसलिए राग की रुचि से छूटा है, वह विषय से विरक्त है और बाह्य भोग का त्याग हो, परन्तु अन्दर में जिसे राग की रुचि है, उसे विषय की ही रुचि है। भाषा ऐसी ली है नरक में। देखा! शील तो लिया परन्तु शील कैसे? वह तो विषय से विरक्त है इसलिए। देखो! विषय से विरक्त। स्त्री-पुत्र नहीं छोड़े उसने।

मुमुक्षु : होवे उसे तो छोड़ना चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे, उसे तो छूटे हुए ही पड़े हैं। छोड़ना है कहाँ? अन्दर में आत्मा के आनन्द की रुचि करके इसने राग की रुचि का भाव छोड़ा है, उसे विषय विरक्त कहा जाता है। सेठ!

मुमुक्षु : बाहर की बात नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ बाहर की बात नहीं। बाहर में तो समकिती को छियानवें हजार स्त्रियाँ होती हैं, उनमें राग होता है परन्तु राग में रस नहीं है, सुखबुद्धि नहीं है। इसमें बड़ा अन्तर है। समझ में आया? देखो न! यहाँ तो ऐसा कहा। नरक के जीव को विरक्ति है। अब उसका अर्थ क्या करेंगे, वहाँ वे लोग? विषय से विरक्त का अर्थ?

मुमुक्षु : वहाँ कुछ खाने-पीने का है नहीं, इसलिए विषय से विरक्त ही होते हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : खाने-पीने की बात कहाँ है? वहाँ राग का रस नहीं है।

मुमुक्षु : यहाँ तो खाने-पीने का... छोड़ना।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़े क्या? धूल छोड़े। राग छोड़नेयोग्य है। और राग भी आत्मा के प्रेम की रुचि में स्थिर होने से छूट जाता है। ऐसी बात है।

यहाँ तो पाँच इन्द्रिय के विषयों में सुखपना दिखता है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। कहीं मजा लगे। कीर्ति सुनकर, शरीर का स्पर्श करके, मैसूर खाकर, सुन्दर रूप देखकर। समझ में आया? अच्छी सुगन्ध, सुगन्धी फूलझाड़ में बैठा हो और उसे ठीक लगे। यह बहुत अच्छा है। तो कहते हैं कि उसे विषय की ही रुचि है। आहाहा! उसे आत्मा की रुचि नहीं है। आहाहा! पोपटभाई! बहुत आया यह तो। आहाहा! आत्मपदार्थ

भगवान आत्मा के अतिरिक्त किसी भी चीज़ विकल्प से लेकर पर, उसमें जिसे हितबुद्धि, ठीकबुद्धि, मजाबुद्धि पड़ी है, वह सब विषय से विरक्त नहीं है। विषय में लोलुपी है, ऐसा कहते हैं।

यह रस हड्डी में से निकला है और उस हड्डी को बारबार चबाकर सुख मानता है; वैसे ही अज्ञानी विषयों में सुख मानकर बारबार भोगता है,... बारम्बार। मानो शरीर की हड्डियाँ, माँस में स्पर्श कर कुछ सुख है, ऐसा मानता है, वह बारम्बार जड़ को, पर को भोगना चाहता है। सूक्ष्म बात है। समझ में आया? एक रोटी भी अच्छी मीठी लगे। रोटी-रोटी-रोटी। अन्दर ठीक लगे। पूरणपोली गर्म-गर्म फलफलती करके ऊपर डाले घी में डुबोकर चिमटे से उठाकर डाले ऐसे। उसमें घी लेकर और अरबी के पत्ते यहाँ लेकर, चटनी इकट्ठी हो ठीक सी। नींबू का रस डालकर (खाये)। भारी मजा। जड़ में मजा माननेवाला मूढ़ है। पण्डितजी! मिथ्यादृष्टि है। देव-गुरु-शास्त्र को माने। राग से। राग और प्रीति है, उसे कहते हैं कि विषय का ही रस है। आहाहा! गजब बात है! वीतरागमार्ग....

मुमुक्षु : बाहर के पदार्थ में सुख...

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख कहाँ था? धूल में। ऐई! पोपटभाई! छह-छह लड़के और ऐसे बैठे हों अन्दर और छह बहुएँ बैठी हों बीच में। बीच में बैठा हो बापू। उसकी माँ बैठी हो लड़के की। आहाहा! उसमें फिर झूले में झूलता हो और वे सब नीचे बैठे हों। मजा चलती हो ऐसी बातें। आहाहा! कहते हैं, कहीं उसमें मिठास वेदन करे, वह उसके आत्मा के आनन्द का अनादर करता है। सुजानमलजी! आहाहा! ऐसा मार्ग है। आहाहा! देखो!

कहते हैं, **ज्ञानियों ने अपने ज्ञान ही में सुख जाना है,...** अपना आत्मा भगवान अमृत का सागर डोलता है। अमृत का समुद्र आत्मा है। आहाहा! जिसके स्वाद में इन्द्र के इन्द्रासनों के भोग भी जिसे जहर जैसे लगते हैं। जेठालालभाई! ऐसा मार्ग है। सुनने को मिले ऐसा नहीं। यह करो और यह करो और यह करो। आहाहा! उसमें तुम्हारे अफ्रीका में... आहाहा! कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन न, प्रभु! स्वविषय सम्यग्दर्शन का तो आत्मा है। सम्यग्दर्शन का विषय-ध्येय तो आत्मा है। उसकी रुचि छोड़कर जिसने

यह आत्मा के अतिरिक्त विकल्प से लेकर किसी भी चीज़ में ठीक, हित, मजा, सुख, मुझे ठीक पड़ता है—ऐसा जहाँ पर में, राग में लगे, कहते हैं कि वह विषय का लोलुपी है। वह मिथ्यादृष्टि है। वह जैन को मानता नहीं। आहाहा! जैन तो वीतरागस्वरूप आत्मा का आनन्द, वह जैनपना है। समझ में आया? 'जिन सोही है आत्मा' वीतराग आनन्दमूर्ति आत्मा। काम, कुम्भ, चित्रावेली। लो! चित्रावेली आयी, चेतनजी! चित्रावेली ईंडुरी करे न ईंडुरी। इसके ऊपर घड़ा रखे। जो निकालना हो वह निकालकर। मैसूर जामनगर से मँगाना पड़े न उसे।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी रुपया नहीं। आत्मा में वह चित्रावेली भगवान आत्मा है कि जिसकी अन्तर एकाग्रता होने से अमृत का आनन्द झरता है। आहाहा! वह चित्रावेली है। अन्य चित्रावेली तो सब लोगों में भ्रमणा उपजावे, ऐसी है। उसे ऐसा हो जाये, अपने हों न ऐसी चित्रावेली। ज्ञानार्णव के कर्ता शुभचन्द्राचार्य हुए न? उनके भाई ने योग का बहुत साधन किया। जंगल में से रसायन प्राप्त किया। रसायन की एक बोतल। शुभचन्द्राचार्य हुए है न, यह ज्ञानार्णव के कर्ता। उनके भाई राजकुमार है। दीक्षा ले ली।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... नहीं, यह तो शुभचन्द्राचार्य के भाई ने।

मुमुक्षु : वे दूसरे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे दूसरे। यह दूसरे। यह शुभचन्द्राचार्य... यह शुभचन्द्राचार्य के भाई ने योग साधकर जंगल में रसायन प्राप्त किया। अपने तो रसायन आया था आत्मा। समयसार नाटक में आया था।

जिसने आत्मा को परसन्मुख की दृष्टि बदलकर अन्तर्मुख में दृष्टि की, उसने चित्रावेली प्रगट की। उसका आनन्द निकला ही करे... निकला ही करे... सादि-अनन्त आनन्द निकले तो भी समाप्त न हो। ऐसे भगवान आत्मा के आनन्द का जिसे रस है, उसे विषय का रस पूरे लोक का छूट गया है। और जिसे विषय अर्थात् राग में रुचि और प्रेम

है, उसने पूरे अमृतसागर आत्मा का अनादर कर डाला है। समझ में आया? भारी बातें ऐसी, भाई। परन्तु यह खाने-पीने के साधन हों, स्त्री जवान हो, शरीर बड़ा मोटा अपना शरीर भी मोटा हो गधे जैसा मोटा, ऊँचा स्थूल। आहाहा! जैसे गधा धूल में आलोटता है न? धूल में आलोटता है। खुजली आवे न खुजली? इसलिए वहाँ उसे कहाँ... गधा... गधा... धूल में लोटता है। उसी प्रकार अज्ञानी गधे जैसा अपने आत्मा के आनन्द की रुचि छोड़कर राग की धूल में लोटता है। क्या कहलाता है? लोटता है। आहाहा! गजब काम, भाई! ऐसा धर्म महँगा पड़े, कौनसा? ऐई! ...तुम्हारा नाम। उसका पुत्र, ऐसा कहता है, महँगा बहुत धर्म। तुम्हारा जयवन्त कल कहे। सुनता तो है इतना। धर्म महँगा बहुत कठिन। बात सच्ची, हों! परन्तु है इसके घर की चीज़। परन्तु यह कभी उस रास्ते गया नहीं। वह रास्ता कभी देखा नहीं और बाहर के रास्ते में भटका-भटक करता है, इससे उसे कठिन लगता है। आहाहा! पोपटभाई! आहाहा!

ज्ञानियों ने अपने ज्ञान ही में सुख जाना है,... देखो! धर्मी जीव उसे कहते हैं कि जिसने आत्मा में आनन्द जाना है। वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकर भगवान के मार्ग की यह पद्धति है। जादवजीभाई! **उनको विषयों के त्याग में दुःख नहीं है,...** उस तुष का दृष्टान्त दिया था न? छिलका। छिलका होता है न छिलका? दाना रखकर छिलके को उड़ा दे। सुपड़ा में। सुपड़ा होता है न? ठीक होता होगा न महिलाओं को छिलका निकालने में? माल-माल रह गया, और छिलके निकल गये। इसी प्रकार धर्मी को रागरूपी छिलके का विषय छोड़ने में उसे खेद नहीं होता। आहाहा! यह तो भारी मार्ग, भाई! वह तो कहे, भाई! दया पालो, व्रत करो, पूजा करो, भक्ति करो, यात्रा करो और दान करो-जाओ। दानवीर। ऐई! सेठ! इन सेठियाओं को दानवीर कहे। दस-दस हजार रुपये खर्च करे, पच्चीस-पच्चीस हजार खर्च करे। अभी बाईस हजार दिये हैं न कहीं? अखबार में आया था। क्या कहलाता है तुम्हारे? सागर में। एक कमरा-कमरा में। अभी अखबार में आया था। और फिर मनोहरलालजी को प्रार्थना की उन्होंने कि अब तुम यहाँ रहो। ऐसा अखबार में आया था। यहाँ तो अखबार सब बातें करे। सेठ!

मुमुक्षु : अनुकूल हो वह लिख डाले अखबार में।

पूज्य गुरुदेवश्री : ले। इसलिए वह तो बराबर नहीं, ऐसा कहना चाहते हैं।

अखबार में आया है कहीं। आठ–दस दिन पहले पढ़ा था। भाई ने कहा था। शोभालालजी! तुमने कहा नहीं था? भाई ने बाईस हजार रुपये दिये। अखबार में आया था। कहा था आठ दिन पहले। तुम्हारे गुरु ने कहा है, उसे सम्हालना। ऐसा सेठ भगवानदास ने कहा है। ऐसा अखबार में आया था। सच्चा–झूठा कौन जाने। कहो, समझ में आया? अखबारवाला सब डाले न, सेठ! आहाहा!

जैसे स्त्री को दाना में से छिलका–तुष निकालने का खेद नहीं है, उसी प्रकार धर्मी को राग का विषय छोड़ने का खेद नहीं है। आत्मा आनन्दमूर्ति है, ऐसी दृष्टि हुई, इसलिए विषय सम्बन्धी का राग, उसका रस छोड़ना, वह उसे दुःख नहीं है, खेद नहीं है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म सन्धि। धर्म की सूक्ष्म सन्धि। वीतराग में, हों! यह। वीतराग के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं नहीं है। कान्तिभाई! **ऐसे जानना।** लो! **त्याग में दुःख नहीं है,...**

गाथा–२५

आगे कहते हैं कि कोई प्राणी शरीर के सब अवयव सुन्दर प्राप्त करता है तो भी सब अंगों में शील ही उत्तम है –

***वट्टेसु य खंडेसु य भद्देसु य विसालेसु अंगेसु।**
अंगेसु य पप्पेसु य सव्वेसु य उत्तमं सीलं।।२५।।

वृत्तेषु च खंडेषु च भद्रेषु च विशालेषु अंगेषु।
अंगेषु च प्राप्तेषु च सर्वेषु च उत्तमं शीलं।।२५।।

हों भद्र गोल विशाल खण्डात्मक सु प्राप्त शरीर के।
अंगों में सर्वोत्कृष्ट उत्तम शील ही इस देह में।।२५।।

अर्थ – **प्राणी के देह में कई अंग तो वृत्त अर्थात् गोल सुघट प्रशंसायोग्य होते**

* 'वट्ठे' पाठान्तर।

हैं, कई अंग खंड अर्थात् अर्द्ध गोल सदृश प्रशंसा योग्य होते हैं, कई अंग भद्र अर्थात् सरल सीधे प्रशंसा योग्य होते हैं और कई अंग विशाल अर्थात् विस्तीर्ण चौड़े प्रशंसा योग्य होते हैं, इस प्रकार सब ही अंग यथास्थान सुन्दर पाते हुए भी सब अंगों में यह शील नाम का अंग ही उत्तम है, यह न हो तो सब ही अंग शोभा नहीं पाते हैं, यह प्रसिद्ध है।

***भावार्थ* – लोक में प्राणी सर्वांग सुन्दर हो, परन्तु दुःशील हो तो सब लोक द्वारा निंदा करने योग्य होता है, इसप्रकार लोक में भी शील ही की शोभा है तो मोक्ष में भी शील ही को प्रधान कहा है, जितने सम्यग्दर्शनादिक मोक्ष के अंग हैं, वे शील ही के परिवार हैं, ऐसा पहिले कह आये हैं।।२५।।**

गाथा-२५ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि कोई प्राणी शरीर के अवयव सुन्दर प्राप्त करता है, तो भी सब अंगों में शील ही उत्तम है :- तो वहाँ भी सम्यग्दर्शन और राग के अभावरूपी भाव, वह उत्तम शील है। शरीर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

वट्टेसु य खंडेसु य भद्देसु य विसालेसु अंगेसु।
अंगेसु य पप्पेसु य सव्वेसु य उत्तमं सीलं।।२५।।

अर्थ :- प्राणी के देह में कई अंग तो वृत्त अर्थात् गोल सुघट प्रशंसायोग्य होते हैं,... मस्तक आदि गोल सुघट। सुघट। बराबर घट्ट। घड़ी हुई जैसी चीज़ हो, वैसा सिर। प्रशंसा करनेयोग्य है। **कई अंग खण्ड अर्थात् अर्ध गोल...** कपाल आदि **अर्ध गोल सदृश प्रशंसायोग्य होते हैं,...** बराबर ऐसा चाहिए, वैसा कपाल। कपाल कहते हैं न? सिर गोल। **कई अंग भद्र अर्थात् सरल सीधे प्रशंसायोग्य होते हैं...** नाक, आँख ऐसे अवयव सुन्दर, सुकोमल, कोमल, वे प्रशंसायोग्य हैं। **और कई अंग विशाल अर्थात् विस्तीर्ण चौड़े प्रशंसायोग्य होते हैं,...** छाती, साथळ। साथळ कहते हैं न यह? जाँघ चौड़ी हो, पुष्ट हो, ऐसा शरीर का प्रत्येक अंग जिस-जिस स्थान में चाहिए, वह सुन्दर और आकृतिवाला सुघट हो। मानो मोर के पंख घड़े हुए हों। मानों किसी ने घड़े हों। घड़े हैं किसी ने? इसी प्रकार शरीर के अंग ऐसे सब हों। **इस प्रकार सब ही अंग**

यथास्थान... जहाँ चाहिए, वहाँ उस प्रकार से। '**अंगेसु यह पप्पेसु**' यह लिखा। पहले अंग के नाम लिये थे, पश्चात् '**अंगेसु यह पप्पेसु**' ऐसे अंगों को प्राप्त होने पर भी **अंगों में यह शील नाम का अंग ही उत्तम है,...** आहाहा! रागरहित अपना स्वभाव, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें एकाग्रता, वह उत्तम शील, वह शील है। वह शोभा है। जड़ की शोभा कहीं शोभा नहीं है। आहाहा! देखो! आचार्य ने कितना डाला है!

एक गोल हो चाहिए वहाँ, अर्ध गोल हो चाहिए वहाँ, सरल हो चाहिए वहाँ, ऐसा और विस्तीर्ण प्रशंसायोग्य हो। कान देखो तो कुण्डल जैसे हो। कुण्डल, मानो कुण्डल हो ऐसा बराबर। नाक देखो तो गरुड़ की उसके जैसी नाक। जाँघ देखो तो केले के वृक्ष जैसी। शरीर देखो तो विशाल छाती आदि चौड़ी। वह सब अंग तो मिट्टी जड़ के हैं। उसमें जिसे आत्मा की श्रद्धा होकर राग से रहित ज्ञान और वैराग्य शक्ति जगी है, वह उत्तम शील है। निर्जरा अधिकार में आता है न। इसमें भी आता है आगे। आगे कहा है। ३२ गाथा में है। लो, इसमें है, हों! नरक है न नरक? इसमें है।

सम्यग्दृष्टि के ज्ञान और वैराग्य की शक्ति नियम से होती है, वह वैराग्यशक्ति है वही शील का एकदेश है... आहाहा! राग के विकल्प की रुचि का अभाव और आत्मा के स्वभाव की रुचि का सद्भाव, उसे शील कहा जाता है। कहो, प्रकाशदासजी! आहाहा! वह नरक में भी है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान और वैराग्यशक्ति समकिती को नरक में भी है। कितने बोल रखे हैं, देखो, नरक में। शील, विषय से विरक्त और वैराग्यशक्ति ज्ञानसहित, यह समकिती को नरक में भी है। और मिथ्यादृष्टि साधु हुआ हो, दिगम्बर नग्न मुनि... यह कहेंगे इसमें तुरन्त, जिसे उस राग का प्रेम है, राग की रुचि है, राग के स्वाद में मिठास है, वह कुशीली है। विषय में लीन है। और अशीली है, उसे शील नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यह न हो तो सब ही अंग शोभा नहीं पाते हैं,... आवळ (एक वनस्पति) के फूल। आवळ होती है न आवळ के फूल? आवळ समझते हैं आवळ? आवळ नहीं होती जंगल में? पीले फूल। पीले फूल। आवळ होती है। हरे पत्ते और फूल। सुगन्ध जरा भी नहीं।

मुमुक्षु : केशू का फूल।

पूज्य गुरुदेवश्री : केशू नहीं, वह तो सुगन्धवाला। यह तो आवळ होती है। हमारे। यह चमार लोग आवळ में से पानी... दोरडा कहते हैं ? वह चमड़े में काम आता है। चमड़े में काम आवे। फूल देखो तो ऐसे पीले लगें। सुगन्ध की गन्ध नहीं। यहाँ है सब आवळ जंगल में है। हमारी भाषा में आवळ के फूल कहलाते हैं। अब तुम्हारी हिन्दी में भाई कुछ कहते हैं। दोयडा। होगा। अपन तो यहाँ जानते हैं न ? आवळ के फूल।

ऐसा कहते हैं कि अंग-उपांग सब हों परन्तु उसमें सम्यग्दर्शन और राग की रुचि का अभाव न हो तो वे सब आवळ के फूल जैसे हैं। आवळ तो समझते हो न ? आवळ तो बहुत होती है। जंगल में होती है। यहाँ भी है, इस मोहल्ले में। चमार लोग बहुत ले जाते हैं। आवण को। आवण के फूल फूले हुए। इसी प्रकार अज्ञानी बाहर के पुण्य के फल शरीर आदि में फूल गया। आहाहा! परन्तु यदि आत्मा में आनन्द की रुचि और राग की रुचि का अभाव, वह यदि न हो तो कुछ शोभा नहीं है। सब अवयवों की राख हो जानेवाली है। आहाहा! श्मशान में राख हो जाती है। जिस मुँह से नागरवेल के पान चबाये हों, ऐसे बैठा हो, वहाँ कौवे चौंच मारेंगे। समझ में आया ? वह मुर्दा हो वहाँ कौवे... होते हैं। आँख फाड़े। अकस्मात मर गया हो जंगल में, लो न। और कौन कहाँ मर गया हो, यह खबर नहीं होती। अकेला चला गया हो कहीं और मर गया हो। हो गया। कौवे नोंचे। फिर खबर पड़े वहाँ स्नान निकाले। स्नान समझते हो ? मर गया हो, ऐसी खबर आवे, फिर सब इकट्ठे होकर नहाने जाये न, उसे हमारे (गुजराती में) सनान कहते हैं।

मुमुक्षु : मृत्युस्नान।

पूज्य गुरुदेवश्री : मृत्युस्नान। कहीं मर गया हो। आहाहा! खस में हम थे एक बार। खस-खस है न ? बोटाद के पास। हम उतरे थे। वहाँ काठी लोग निकले हो... हो करते। कहा, क्या है ? यह खस। बोटाद के पास। उनका लड़का बाहरवटिया था। बाहरवटिया—डाकू। जंगल में किसी ने मार डाला। मुर्दा पड़ा था। यह खबर पड़ी तो यह स्नान निकाला है। मुर्दा-बुर्दा तो कहाँ हाथ आवे ? वह तो नोंच खाया होगा वहाँ। रसिकभाई के मकान में उतरे थे। वहाँ निकले काठी लोग। रोते हो...हो... कहा, क्या है यह ? कि इनका लड़का डाकू में चढ़ा हुआ। डाकू। उसे जंगल में किसी ने मार डाला

होगा। मुर्दा है। मुर्दे की खबर पड़ी इतना, बस। कौन जलाता था वहाँ। परन्तु वह कहते थे, हों! रसिक, हों रसिक। छोटी उम्र में हमारे साथ पढ़ता था। वह रास्ता खड़ा रखे एकदम। आवे। क्या है तुम्हारे पास? लाओ जरा। लाओ अमुक, पहले से ऐसा लुटेरा लड़का होगा। ऐसे संस्कार लेकर पैदा हुआ। पूनमचन्द का तुम्हारे नहीं? ...रसिक-रसिक। वह कहता था कि वह लड़का पहले से हमारे साथ पढ़ता था। कोई न हो, दो व्यक्ति मिल जाये रास्ते में, दो व्यक्ति मिल जाये। ... लो! पहले से लुटेरा। बालवय की उम्र से। काठी। फिर यह डाकू हुआ और किसी ने मार डाला जंगल में, जूनागढ़ के आसपास। कुत्ते बेचारे खा गये होंगे। यहाँ खबर पड़ी तो स्नान निकाला, हो...हो... करते। आहाहा! मनुष्यपना पाया काठी के घर में। ऐसे लक्षण।

यहाँ तो कहते हैं कि यह तो और स्थूल है। परन्तु सूक्ष्मरूप से अन्दर में जिसे राग का रस और प्रेम है, वह भी आत्मा के स्वभाव का डाकू है। समझ में आया? आहाहा! भारी बात! आहाहा! यह कहेंगे, देखो!

भावार्थ :- लोक में प्राणी सर्वांग सुन्दर हो परन्तु दुःशील हो तो सब लोक द्वारा निन्दा करनेयोग्य होता है, इस प्रकार लोक में भी शील ही की शोभा है... लोक में भी बाहर राग मन्द हो, कषाय मन्द हो, ऐसे की लौकिक में तो शोभा है। **तो मोक्ष में भी शील ही को प्रधान कहा है,...** मोक्ष में भी शील, आत्मस्वभाव-वीतराग आत्मा का स्वभाव, उसकी शक्ति में से एकाग्र होकर वीतरागता की व्यक्तता निकले, उसका नाम शील। यह मोक्ष में भी शील को प्रधान कहा है। **जितने सम्यग्दर्शनादिक मोक्ष के अंग हैं, वे शील ही के परिवार हैं...** यह आ गया था अपने। सम्यग्दर्शन आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्द की रुचि, अनुभव और उसकी परिणति अर्थात् दशा, वे सम्यग्ज्ञानादि, वह तो मोक्ष के अंग हैं। **वे शील ही के परिवार हैं...** वह शील का परिवार है।

मोक्ष का मार्ग निर्विकल्प स्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह शील का परिवार है, शील के अंग हैं, शील के सज्जन हैं। आहाहा! **ऐसा पहले कह आये हैं।** पहले आ गया है। शील का गुण नहीं आया? शील के गुण। वह तो पहली गाथा में ही आया था। शील के गुण कहेंगे। शील और गुण कहेंगे अथवा शील के गुण कहेंगे, ऐसा दो बार आ गया है पहले। पश्चात् आ गया दोबारा।

गाथा-२६

आगे कहते हैं कि जो कुबुद्धि से मूढ़ हो गये हैं वे विषयों में आसक्त हैं, कुशील हैं, संसार में भ्रणम करते हैं –

पुरिसेण वि सहियाए कुसमयमूढेहि विसयलोलेहिं।
संसार भमिदव्वं अरयघरट्टं व भूदेहिं।।२६।।

पुरिषेणापि सहितेन कुसमयमूढ़ैः विषयलोलैः।
संसारे भ्रमितव्यं अरहटघरट्टं इव भूतैः।।२६।।

दुर्मत विमोहित विषय-लोभी जन इतर जन साथ में।
अरहट घटी के भ्रमण-वत् ही भटकता भव-चक्र में।।२६।।

अर्थ – जो कुसमय अर्थात् कुमत से मूढ़ हैं, वे ही अज्ञानी हैं और वे ही विषयों में लोलुपी हैं, आसक्त हैं, वे जैसे अरहट में घड़ी भ्रमण करती है, वैसे ही संसार में भ्रमण करते हैं, उनके साथ अन्य पुरुषों के भी संसार में दु:खसहित भ्रमण होता है।

भावार्थ – कुमती विषयासक्त मिथ्यादृष्टि आप तो विषयों को अच्छे मानकर सेवन करते हैं। कई कुमती ऐसे भी हैं, जो इस प्रकार कहते हैं कि सुन्दर विषय सेवन करने से ब्रह्म प्रसन्न होता है (यह तो ब्रह्मानन्द है), यह परमेश्वर की बड़ी भक्ति है, ऐसा कहकर अत्यंत आसक्त होकर सेवन करते हैं। ऐसा ही उपदेश दूसरों को देकर विषयों में लगाते हैं, वे आप तो अरहट की घड़ी की तरह संसार में भ्रमण करते ही हैं, अनेक प्रकार के दु:ख भोगते हैं, परन्तु अन्य पुरुषों को भी उनमें लगाकर भ्रमण कराते हैं, इसलिए यह विषयसेवन दु:ख ही के लिए है, दु:ख ही का कारण है, ऐसा जानकर कुमतियों का प्रसंग न करना, विषयासक्तपना छोड़ना, इससे सुशीलपना होता है।।२६।।

गाथा-२६ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि... देखो! अब जरा क्या डालते हैं? **कुबुद्धि से मूढ़ हो गये हैं, वे विषयों में आसक्त हैं, कुशील हैं, संसार में भ्रमण करते हैं :-** यहाँ तो कहते हैं कि

कुमति जिसकी है और कुशास्त्र को माननेवाले हैं, वे विषय में लोलुपी हैं। क्योंकि कुमत और कुशास्त्र में तो राग से लाभ मनाया हो, विकार से सुख मनाया हो। कुदेव-कुगुरु-कुधर्म को मानने से धर्म मनाया हो। समझ में आया? देखो!

पुरिसेण वि सहियाए कुसमयमूढेहि विसयलोलेहिं।
संसार भमिदव्वं अरयघरट्टं व भूदेहिं।।२६।।

अर्थ :- जो कुसमय अर्थात् कुमत से मूढ़ हैं, वे ही अज्ञानी हैं... आहाहा! **विषयों में लोलुपी हैं-आसक्त हैं....** इस संसार में भ्रमे। क्या कहते हैं? कहते हैं, कुमत और कुशास्त्र में तो राग से लाभ मनाया होता है। विकार से लाभ मनाया होता है। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र ने। उन्हें जो माननेवाले हैं, वे विषय के लोलुपी हैं, राग के लोलुपी हैं। आहाहा! कुमत और कुशास्त्र माननेवाले। देखो! ऐसा एक ओर ऐसा माने कि स्वयं ब्रह्मचर्य पालता हो और उनके गुरु स्त्री-पुत्रवाले हों। समझ में आया? इसका अर्थ क्या हुआ? प्रशंसा तो की उसकी। अब्रह्म की प्रशंसा तो पड़ी है। समझ में आया? ईश्वर को माने। और ईश्वर हिंसा करे, ईश्वर राक्षसों को मारे। अब उसे अच्छा माना तो उसको अच्छा माना। उस भाव को अच्छा माना। कुमत को माननेवाले को विषय के लोलुपी हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

कुसमय अर्थात् कुमत मूढ़ हैं... जिसकी मति मूढ़ हो गयी है। जो कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को माने, उसकी तो अज्ञान में मति विमोहित हो गयी है। वह तो अज्ञानपना, यही विषय का लोलुपीपना है। आहाहा! समझ में आया? और **विषयों में लोलुपी हैं-आसक्त हैं,...** देखो! वे, ऐसा। जो अज्ञानी मूढ़ कुमत और कुशास्त्र के माननेवाले, वे **विषयों में लोलुपी हैं...** ऐसा यहाँ आचार्य ने डाला है। आहाहा! क्योंकि कुशास्त्र और कुगुरु ने तो राग में और पुण्य में धर्म मनाया है। इससे उनके माननेवाले विषय के लोलुपी हैं। समझ में आया? मार डाला। यह शील के अर्थ में कुशीलपना हुआ। मिथ्यात्वभाव, मिथ्यागुरु, मिथ्याशास्त्र और मिथ्यामति, वह सब कुशीलपना है, ऐसा कहते हैं। बाहर से भले शरीर से ब्रह्मचर्य पालता हो। आहाहा! अन्तर में अनाकुल आनन्द का धाम प्रभु, उसकी जिसे रुचि नहीं और ऐसे भाव की कुमत की, कुशास्त्र की रुचि है और कुमत और कुशास्त्र में तो यह पर के विषय में ही लाभ मनाया है। विषय

शब्द से रागादि में ही लाभ मनाया है। प्रकाशदासजी! यह पंच महाव्रत के परिणाम विषय हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भारी गजब बात है। कुशास्त्र और कुमतियों ने उसमें धर्म माना है, वे कुशीली हैं, कहते हैं। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य की बात सौ टंच का सोना। सौ टंच कहते हैं न? सोना-सोना। सौ टंच। आहाहा!

यहाँ ऐसा कहना चाहते हैं कि जिसकी मति मिथ्यात्व है और जिसके कुशास्त्र है, उन कुशास्त्र को माननेवाले को आत्मस्वभाव का अनादर होकर राग और विकार के रसवाले हैं, वे सब कुशल्या है। सुजानमलजी! आहाहा!

मुमुक्षु : कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र...

पूज्य गुरुदेवश्री : कुशास्त्र माने और उसने मनाया है राग को लाभ। आहाहा! वीतरागमत और वीतराग शास्त्र ने तो मनाया है वीतरागता।

कुसमय अर्थात् कुमत से मूढ़ हैं वे ही अज्ञानी हैं और वे ही विषयों में लोलुपी हैं.... ऐसा कहते हैं। वह विषय में लोलुपी ही है। क्या कहा यह? जिसमें कुशास्त्र और कुमति है, उसके माननेवाले विषय में लोलुपी है। क्योंकि वे सब राग के रस में ही पड़े हैं। आहाहा! वे विकार के रसास्वादी हैं। वे विषय के लोलुपी हैं। आहाहा! समझ में आया? बाहर से भले ब्रह्मचर्य पालते हों परन्तु जिसे कुशास्त्रों ने कहा हो हमें मानो। सर्वज्ञ परमात्मा को छोड़कर अल्पज्ञ प्राणी ने कहे हुए तत्त्व और कहा हुआ मार्ग जिसे रुचता है, वे विषय के लोलुपी हैं। पण्डितजी! वर्तमान में तो विषय सेवन न करते हों, ब्रह्मचारी हों, लो! आहाहा! आचार्य तो गजब बात करते हैं न!

वैसे ही संसार में भ्रमण करते हैं,... किस प्रकार भ्रमे? **अरहट में घड़ी भ्रमण करती है, वैसे ही संसार में भ्रमण करते हैं,...** अरहट है न अरहट? ऊपर से पानी निकले और नीचे से भराये। ऊपर से निकले और नीचे से भराये।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, नौ नौ कोटि से करण, कारण, अनुमोदन में उसे राग का प्रेम है। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र माननेवाले मिथ्यात्वी हैं और वे मिथ्यात्व करे, मिथ्यात्व करावे, मिथ्यात्व को अनुमोदन करे। यहाँ तो उसे विषय का लोलुपी कहते हैं। आहाहा! चार गति में भ्रमेगा। समझ में आया?

यहाँ तो कुमत और कुशास्त्र कहकर सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ मार्ग और सर्वज्ञ परमात्मा देव, उनके साधनेवाले गुरु और उन्होंने कहा हुआ आत्मधर्म, वह सुशील है। आत्मा भगवान अनाकुल आनन्द का सागर, राग की विकल्प की क्रिया से रहित, उसका जिसे स्वभाव का भान, रुचि, दृष्टि नहीं, उसे यहाँ कुशील कहा गया है। कहो, समझ में आया? जैन का साधु हो बाहर से। परन्तु अन्दर में जिसे पुण्यपरिणाम में प्रेम है, रुचि है, कहते हैं कि वह कुशीली है। आत्मा के स्वभाव का अनादर करके राग के रस में घिर गया है और वह उसकी कुमति है। और कुशास्त्र का कहना है, उसे मानता है। समझ में आया?

संसार में दुःखसहित भ्रमण होता है। चार गति में भ्रमण करेगा। भगवान आत्मा अखण्ड आनन्द का तत्त्व प्रभु ध्रुव, उसके ध्येय को नहीं बतलानेवाले और राग और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा में लाभ बतलानेवाले वे सब कुशीली हैं, मूल तो ऐसा कहते हैं। जिसमें आत्मा के स्वभाव का आश्रय लेने का कथन नहीं है और राग तथा पर का आश्रय लेने का कथन है और उसमें धर्म मनाया है, वे सब कुमत और कुशास्त्र के सेवन करनेवाले कहे जाते हैं। आहाहा! कठिन काम भारी। आचार्य के हृदय में यह है। सत्शास्त्र तो वीतरागता बतलाता है। आत्मा की स्वतन्त्रता बतलाकर वीतरागता प्रगट कर, यह कहता है। कुशास्त्र तो राग और पर के विषय से लाभ माने, ऐसा बतावे। समझ में आया? मार्ग की जाति की भात अलग जाति है। कहो, मोहनभाई! आहाहा! जिसके मत में वस्तु वीतराग चैतन्यस्वभावी आनन्दमूर्ति परिपूर्ण वस्तु का आश्रय लेने का जिसने कहा नहीं और उससे विरुद्ध जिसके कथन हैं, वे सब मिथ्यादृष्टि, कुमति के कुशीली हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

उनके साथ अन्य पुरुषों के भी संसार में दुःखसहित भ्रमण होता है। यह ऐसी प्ररूपणा और श्रद्धा करायेगा कि दूसरे जीव को भी चार गति में भटकने का होगा। आहाहा! अपना निजानन्द प्रभु का आश्रय करके शीलपना जो वीतरागपना प्रगटे, वह भले स्त्री के विषय में दिखाई दे तो भी वह सुशीली प्राणी है। और स्त्री के विषय से बाहर से छूटे हुए हैं परन्तु जिन्हें कुमत और राग के प्रेम में जिसका रस है, वे सब कुशीली हैं। पोपटभाई! कठिन बातें ऐसी। सुनी थी? वहाँ नहीं थी वढवाण में?

मुमुक्षु : एकेन्द्रिया दो इन्द्रिया...

पूज्य गुरुदेवश्री : एकेन्द्रिया दो इन्द्रिया, पंचेन्द्रिया इच्छामि पडिकमणा नहीं? एकेन्द्रिया, दो इन्द्रिया, त्रिइन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया... जादवजीभाई! किया है न? सामायिक की थी या नहीं? उसमें है न? जीविया ववरोविया तस्स मिच्छामि दुक्कडम। आहाहा!

प्रभु कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि जिसके मत में अखण्ड द्रव्यस्वभाव का आश्रय लेने का नहीं और अखण्ड द्रव्य में अनन्त आनन्द और महा गुण का समाज पिण्ड प्रभु है एक-एक स्वतन्त्र, ऐसा जिसके मत में नहीं, उसके मत में तो खण्ड-खण्ड आत्मा मनाया हो या राग से लाभ मनाया हो, पर विषय के आश्रय से उसे धर्म मनाया हो, वे सब कुमतिया, कुशीली है। आहाहा!

अन्य पुरुषों के भी संसार में दुःखसहित भ्रमण होता है। ऐसे को माननेवालों को... कठिन काम, बापू! शीलपाहुड़ में तो गजब काम किया है, हों! शीलपना और कुशीलपने की दो व्याख्या ही पूरी अलग प्रकार की है।

भावार्थ :- कुमति विषयासक्त मिथ्यादृष्टि आप तो विषयों को अच्छे मानकर सेवन करते हैं। इसका अर्थ कि राग को भला मानकर सेवन करते हैं, वे विषय में रुचिवाले हैं। आसक्त लेना है न। **मिथ्यादृष्टि आप तो विषयों को अच्छे मानकर सेवन करते हैं। कई कुमति ऐसे भी हैं जो इस प्रकार कहते हैं कि सुन्दर विषय सेवन करने से ब्रह्म प्रसन्न होता है,...** लो! आया। सेठ! तुम्हारा रजनीश। भोगानन्द में ब्रह्मानन्द है। अर..र..! भगवान! गजब किया है न! देखो! लिखा है।

सुन्दर विषय सेवन करने से ब्रह्म प्रसन्न होता है,... आहाहा! एक बार सुना था (संवत्) १९७० में। चातुर्मास बोटाद था। वर्षा थी न। दिशा को बहुत दूर जाना पड़े, पानी बहुत हो न? बाहर ठेठ गाँव में से दूर जाना पड़े। उसमें बहुत वर्षा आयी और बाबा का मन्दिर था। वर्षा आयी इसलिए अन्दर जाना पड़ा। थोड़ी देर खड़ा रहा। वह बाबा बोला अन्दर से। तब तो अभी २४ वर्ष की उम्र थी न। (संवत्) १९७० के वर्ष। परमात्मा को प्रसन्न करना, दुःख न देना। ऐसा कि यह सब समझे न? साधुपना,

अनुकूलता न खाना, अनुकूलता न हो तो परमात्मा को प्रसन्न रखो। तो परमात्मा प्रसन्न हो। वह बोटाद का बाबा था।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : खाना-पीने से मानो। दु:ख नहीं देना आत्मा को। कष्ट नहीं देना। कष्ट देने से आत्मा अप्रसन्न होता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होता। ऐसा बोला था बेचारा। ऐसे तो वह शरीर तब तो छोटी उम्र न! २३-२४ वर्ष की उम्र। १९७० की बात है। इसलिए वह बेचारा शरीर देखकर कि आहाहा! यह तो कितना कष्ट देता है। लोंच करावे, गर्म पानी (पीवे), नंगे पैर चले, यह तो परमात्मा को अप्रसन्न करता है, दु:खी करता है। वह मिठास से बोलता था। परन्तु उसे ऐसा कि यहाँ महाराज आये हैं... ऐसा मानता था, वह बोलता था। खाना, पीना और प्रसन्न विषय सेवन करना। इससे आत्मा प्रसन्न रहे। आहाहा! लिखा है न, देखो न!

सुन्दर विषय सेवन करने से ब्रह्म प्रसन्न होता है, यह परमेश्वर की बड़ी भक्ति है,... ठीक! आहाहा! पाखण्ड का कोई पार है? **ऐसा कहकर अत्यन्त आसक्त होकर सेवन करते हैं। ऐसा ही उपदेश दूसरों को देकर...** जैसा माने, वह दे न दूसरे को उपदेश? **विषयों में लगाते हैं,...** लो! पर में लगावे, मूल तो (यह) कहना है। परसन्मुख उसका झुकाव कराकर राग में आसक्त करे। **वे आप तो अरहट की घड़ी की तरह संसार में भ्रमण करते ही हैं,...** वह तो भटकनेवाले हैं और गति में-निगोद आदि में जानेवाले हैं। **अनेक प्रकार के दु:ख भोगते हैं परन्तु अन्य पुरुषों को भी उनमें लगाकर भ्रमण कराते हैं,...** लो! यजमान ले जाये साथ में। कहते हैं न कुछ तुम्हारे आता है न कबीर आदि में?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो कबीर का श्लोक था। अकेला न जाये, वह यजमान को साथ में लेकर जाये। ऐसा श्लोक है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, एक साखी थी। हमको वहाँ पुस्तक आयी थी।

मुमुक्षु : ...यजमान जाये साथ में...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ऊपर कबीर का श्लोक है। और अपने ज्ञानार्णव में है। अपने ज्ञानार्णव में हैं।

मुमुक्षु : ...यजमान।

पूज्य गुरुदेवश्री : यजमान। अपने ज्ञानार्णव में है। कुगुरु नरक में अकेले नहीं जाते। यजमान को साथ में लेकर, दाता को साथ में लेकर जाते हैं। चल तू भी साथ में। साथ ले जाये। हम अकेले नहीं जायेंगे। सबके साथ जायेंगे। ऐसा है। इसने अनन्त काल ऐसे ही बिताया है।

विषयसेवन दुःख ही के लिये है, दुःख ही का कारण है,... आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर का झुकाव तो आकुलता और दुःख है। **ऐसा जानकर कुमतियों का प्रसंग न करना,...** ऐसा कहा। समझ में आया? कुमति का प्रसंग न करना। **विषयासक्तपना छोड़ना, इससे सुशीलपना होता है।** आहाहा! निमित्त की रुचि, राग की रुचि छोड़नी, ऐसा कहते हैं। और स्वभाव की दृष्टि करनी, यह सुशीलपना है। निमित्त और राग की रुचि रखना, वह कुशीलपना है। आहाहा! यह २६ में कहा, लो! हो गया समय। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-२७

आगे कहते हैं कि जो कर्म की गांठ विषय सेवन करके आप ही बाँधी है, उसको सत्पुरुष तपश्चरणादि करके आप ही काटते हैं –

आदेहि कम्मगंठी जा बद्धा [१]विसयरागरंगेहिं।
तं छिन्दन्ति कयत्था तवसंजमसीलयगुणेण।।२७।।

आत्मनि कर्मग्रंथिः या बद्धा विषयरागरागैः।
तां छिन्दन्ति कृतार्थाः तपः संयमशीलगुणेन।।२७।।

जो कर्म-ग्रन्थी आतमा में विषय-राग से बद्ध है।
वह शील संयम तप गुणों से सुकृतार्थी छेदते।।२७।।

अर्थ – जो विषयों के रागरंग करके आप ही कर्म की गांठ बाँधी है, उसको कृतार्थ पुरुष (उत्तम पुरुष) तप संयम शील के द्वारा प्राप्त हुआ जो गुण उनके द्वारा छेदते हैं, खोलते हैं।

भावार्थ – जो कोई आप गांठ घुलाकर बाँधे उसको खोलने का विधान भी आप ही जाने, जैसे सुनार आदि कारीगर आभूषणादिक की संधि के टांका ऐसा झाले कि यह संधि अदृष्ट हो जाय, तब उस संधि को टाँके का झालनेवाला ही पहिचानकर खोले वैसे ही आत्मा ने अपने ही रागादिक भावों से कर्मों की गांठ बाँधी है, उसको आप ही भेदविज्ञान करके रागादिक के और आप के जो भेद हैं, उस संधि को पहिचानकर तप संयम शीलरूप भावरूप शस्त्रों के द्वारा उस कर्मबंध को काटता है, ऐसा जानकर जो कृतार्थ पुरुष हैं, वे अपने प्रयोजन के करनेवाले हैं, वे इस शीलगुण को अंगीकार करके आत्मा को कर्म से भिन्न करते हैं, यह पुरुषार्थी पुरुषों का कार्य है।।२७।।

---

१. संस्कृत प्रति में – 'विषयराय मोहेहि' ऐसा पाठ है छाया में 'विषय राग मोहै' है।

प्रवचन-१९१, गाथा-२७ से २९, शनिवार, माघ कृष्ण १०, दिनांक २०-०२-१९७१

जो कर्म की गाँठ विषय-सेवन करके आप ही बाँधी है, उसको सत्पुरुष तपश्चरणादि करके आप ही काटते हैं :- इसमें दृष्टान्त देंगे।

आदेहि कम्मगंठी जा बद्धा विसयरागरंगेहिं।
तं छिन्दन्ति कयत्था तवसंजमसीलयगुणेण ।।२७।।

क्या कहते हैं ? शील स्वभाव है न इसमें ?

अर्थ :- जो विषयों के रागरंग करके आप ही कर्म की गाँठ बाँधी है... इतना सिद्धान्त है। अर्थात् राग से रंगा हुआ अर्थात् मिथ्यात्वभाव ऐसा कहते हैं। जिसे आत्मा के स्वभाव का विषय नहीं है और जिसे अकेला राग ही विषय है, विषय का जो राग, वह राग ही जिसका अकेला विषय है और राग में ही जो रंगा हुआ है, नीचे '**विषयरागमोहैः**' शब्द पड़ा है। वह बराबर है। नीचे संस्कृत में। '**विषयरागमोहैः**' मूल तो यह शब्द है। रागरंग यह... अर्थात् क्या ? कि आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप सुखरूप है, उसका विषय अर्थात् ध्येय न बनाकर, अनादि से विषय के कार्य का कारण जो राग, उस राग में जिसकी एकत्वबुद्धि है, वह विषय के राग से रंगा हुआ है। समझ में आया ?

समकिती विषय के राग से रंगा हुआ नहीं है। यहाँ यह बात है। जिसे आत्मा के स्वभाव की रुचि नहीं, दृष्टि नहीं और जिसे उस राग का भाव शुभ-अशुभराग है न, राग ? वही परविषय है और उस राग का जिसे रंग है, उसे मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया ? **जो विषयों के रागरंग करके...** राग का जिसे रंग चढ़ गया है। भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द और शान्ति का स्वरूप, उसकी जिसे दृष्टि सुखबुद्धि आत्मा में हुई नहीं, वह राग में सुखबुद्धि से रंगा हुआ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

कर्म की गाँठ बाँधी है,... जो राग के रंग के कारण मिथ्यात्व से कर्म की गाँठ जो बँधी थी। यह सिद्धान्त सिद्ध किया पहले कि शील से विरुद्ध, वह कुशील है। राग जो विकल्प है शुभ और अशुभराग, वह राग ही विषय है और राग का जिसे रंग है, उसे मिथ्यात्वभाव है। जिसे राग का रस है, उसे यहाँ राग से रंगा हुआ कहा जाता है। समझ में आया ?

जो विषयों के रागरंग करके... अथवा राग के मोह से, राग में सावधानी के कारण **आप ही कर्म की गाँठ बाँधी...** देखो भाषा। कर्म के उदय का जोर था, इसलिए ऐसे कर्म की गाँठ बाँधने का कारण हुआ, ऐसा नहीं है। वर्तमान में यह गड़बड़ी चलती है न, पण्डितजी! जैसा कर्म का उदय आवे, वैसा विकार हो और वह विकार कर्म के कारण से होता है। ऐसा नहीं, भाई! तुझे खबर नहीं। भगवान आत्मा अपना शान्त आनन्द अनाकुल आनन्द की रुचि का भाव नहीं जिसे, वह अपने उल्टे पुरुषार्थ से राग में रुचि करता है। उसे कर्म का कारण है, इसलिए उल्टा पुरुषार्थ करता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! इतने तो शब्द प्रयोग किये, देखो न! '**आदेहि कम्मगंठी**' ऐसा कहा है न? अपने से गाँठ बाँधी है, ऐसा कहते हैं। कर्म के कारण नई गाँठ बाँधता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! वह कुशील है। आत्मा कुशीली हुआ अर्थात् राग के, विकल्प के रस में चढ़ा। वह कुशीली है। गजब! समझ में आया? भले वह स्त्री आदि के विषय को सेवन न करता हो, तथापि जिसे राग में रंग राग का चढ़ गया है। उसने मिथ्यादृष्टिरूप से जो कर्म की गाँठ स्वयं के उल्टे पुरुषार्थ से बाँधी थी। इतना सिद्धान्त पहला। समझ में आया?

जो विषयों के... पर विषय। उनका **राग रंग करके...** उनके राग में रंगा हुआ। भगवान के प्रेम से-शुद्ध आनन्द के रंग से छूट गया हुआ। जिसे आत्मा में आनन्द है, उसका जिसे रंग नहीं, उसकी जिसे रुचि नहीं, आत्मा में आनन्द है—ऐसी जिसे दृष्टि नहीं, वह विषय के राग में रंगा हुआ, स्वयं ही रंगा हुआ नये कर्म को बाँधता है। ऐसा है। एक पद में तो कितना रखा, देखो! राग के रंग से, स्वयं राग में रंगा हुआ, ऐसा कहा। इसलिए उसे कर्म बँधते हैं। पण्डितजी! देखो! उसमें है मोह से। है? '**विसयरागरंगेहिं**' यहाँ '**रागरंगेहिं**' किया है। राग का राग। इसका अर्थ राग का मोह। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि में राग का राग नहीं होता। राग होता है, परन्तु उसका रागरस नहीं होता। जहररूप से देखकर इस राग को छोड़ना चाहता है समकिती। गृहस्थाश्रम में हो तो भी (छोड़ना चाहता है)। समझ में आया? इसका ऐसा अर्थ कर डाले कि विषय छोड़े, वह धर्मी हो गया बाहर में। परन्तु विषय छोड़े कहाँ? छूटे हुए ही पड़े हैं। बाँधा है तो इसने राग की एकता को बाँधा है। वास्तव में तो वह विषय है।

स्वभाव शुद्ध आनन्द प्रभु, उसकी अन्तर एकता, अभेदता करना, वह तो शील और सुशील स्वभाव है। सम्यग्दर्शन, वह तो शील स्वभाव, सुशील स्वभाव है। समझ में आया? अपना ध्रुव स्वभाव अनाकुल आनन्द का धाम आत्मा है। सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव ने यह आत्मा अतीन्द्रिय उन्होंने प्रगट किया था। ऐसा ही आत्मा ध्रुवरूप से नित्यानन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का धाम है, उसका जिसे रस नहीं, उसकी रुचि नहीं, उसका प्रेम नहीं, उसका आश्रय नहीं, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? वह स्वयं कर्म की गाँठ बाँधता है। जड़ बँधता है, उसके कारण से, परन्तु राग के रंग से भावबन्ध स्वयं बाँधता है। ऐसा। गाँठ। तब कर्म के रजकण कर्म के कारण से बँध जाते हैं। आहा! बहुत विवाद। जगत को सत्य समझना... वस्तु तो ऐसी है परन्तु न्याय से देखे तो इसे जँचे, ऐसी है।

मुमुक्षु : ऐसा ही हो न। वस्तु न जँचे, ऐसा होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होगा। वस्तु भगवान शुद्ध चैतन्य ज्ञान का पिण्ड, ध्रुव। कल दोपहर में आया था न? अनादि अनन्त प्रत्येक पर्याय में वस्तु तो ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ऐसी सुन्दर चली आती है। अनादि-अनन्त ऐसा ध्रुव स्वभाव भगवान आत्मा, उसका जिसे अन्तर में रस नहीं, ऐसे स्वभाव का जिसे अन्तर में प्रेम नहीं, उसे यह आत्मस्वभाव से विरुद्ध ऐसा विकल्प अर्थात् राग, राग का जिसे रंग चढ़ गया है। अज्ञानी राग का रसीला है। ज्ञानी आत्मा के आनन्द का रसीला है। आहाहा! वह विषय की वासना आवे परन्तु रस नहीं है। इतना पुरुषार्थ नहीं, इसलिए छूट नहीं सकता, तो जरा राग आता है। परन्तु अन्दर निषेध है। यह नहीं। अरे! यह कब छूटे? समझ में आया? इसमें मजा है और ऐसे का ऐसा राग को रखूँ, ऐसी दृष्टि धर्मी को नहीं होती। आहाहा!

अज्ञानी ने भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति का तो विषय-ध्येय तो कभी किया नहीं। इससे धर्मी राग की आसक्ति में नहीं। वह (अज्ञानी) तो राग की आसक्ति अर्थात् राग में रंग गया हुआ, उसने बांध भरी है ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? मिथ्यात्व और समकित की व्याख्या बहुत अलौकिक है। समझ में आया? मिथ्यात्व जैसा जगत में महापाप नहीं। और उस मिथ्यात्व की व्याख्या जगत ने संक्षिप्त और

साधारण कर डाली। आहाहा! कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र मानना, नव तत्त्व न मानना, उन्हें मानना वह मिथ्यात्व। ऐसा नहीं, भाई! मिथ्यात्व की व्याख्या सूक्ष्म है। आत्मा शुद्ध पवित्र स्वभाव की मूर्ति आत्मा तो जिन सो ही आत्मा है। जिन और आत्मा में कुछ अन्तर नहीं है। ऐसी वस्तु की दृष्टि का अभाव है, उसे राग के रस का रंग होता ही है। ऐसा कहते हैं। नवनीतभाई! ऐसी कठिन वस्तु। आहाहा!

उसको कृतार्थ पुरुष... लो! अब सुलटा लेते हैं। ऐसे जो अज्ञानी अनादि से शुद्ध आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा का रस और प्रेम छोड़कर, उस पुण्य के विकल्प के रस में पड़े हैं, वह विषय के तीव्र रस में है, कहते हैं। पण्डितजी! कठिन बात, भाई! आहाहा! यह गाँठ बाँधी है जिसने स्वयं अपने उल्टे पुरुषार्थ से, वह स्वयं सुलटे पुरुषार्थ से छेद सकता है। समझ में आया? कृतार्थ अर्थात् समकिती मूल लेना है। कृत -अर्थ—जिसने प्रयोजन सिद्ध किया है। समझ में आया? आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण शुद्ध चैतन्य आनन्द की मूर्ति का जिसे अनुभव और दृष्टि हुई है, जिसे आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द है, वह जिसे प्रिय लगा है, उस जीव को समकिती कहें या कृतार्थ कहें, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जो अनन्त काल में प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ था, वह प्रयोजन सिद्ध किया। कृत-अर्थ—प्रयोजन। कार्य जो द्रव्यस्वभाव भगवान आत्मा को साधा, उसे श्रद्धा में लिया, उसे वर्तमान ज्ञान की दशा में ज्ञेयरूप से अनुभव किया। आहाहा! वह कृतार्थ पुरुष है। जो कार्य अनन्त काल में नहीं किया था, वैसा किया। समझ में आया? व्रत, नियम और संयम और ऐसे अनन्त बार शुभभाव किये, परन्तु वह कहीं कृतार्थ नहीं है। वह तो अकृतार्थ है। उस राग के कार्य को कृतार्थ मानना, वही मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! प्रकाशदासजी! भारी बातें ऐसी। आहाहा!

आचार्य शीलपाहुड़ में कितना रचते हैं! आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली कोई परमेश्वर के जैसी उनकी सब शैली है। ओहोहो! भाई! तूने तेरे आनन्द के ज्ञायक स्वभाव को भूलकर तूने राग के रंग में कर्मगाँठ बाँधी, प्रभु! तो जहाँ तूने बाँधी, वहाँ अब तू तोड़। बाँधे, वह तोड़े। आहाहा! समझ में आया? यह तो धीर की बातें हैं। आगे कहेंगे कि जानेपने से यदि मोक्ष होता हो, अकेले जानपने से तो शक्तिपुत्र शंकर को होना

चाहिए। नव पूर्व का ज्ञान था। समझ में आया? परन्तु राग के रस से भिन्न पड़कर आत्मा के ज्ञान का रस जिसे आया नहीं, उसे कुशीली कहा जाता है। समझ में आया? भारी खेल, भाई! अन्दर और अन्दर क्रीड़ा है सब। ऐसा वहाँ मूर्तिपूजक में सुनने को नहीं मिलता। मिलता है? वहाँ तो पैसा हो। धूल हो। आहाहा!

कहते हैं, भाई! परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की यह ध्वनि है। उस ध्वनि में से ये शास्त्र रचे हैं। आहाहा! अभी यहाँ स्वयं कहेंगे। यह मेरा नहीं है। यह तो अनन्त बुद्ध ने कहा हुआ-तीर्थंकरों ने कहा हुआ मैं कहता हूँ। समझ में आया? लिंगपाहुड़ में आ गया न। २७ गाथा। २ और ७ = ९। दोपहर में ९ आया और यह भी ९ आया। ऐई! इस बार इसे बोणी अलग प्रकार की होती है यह। नवनीतभाई! नवनीतभाई, पोपटभाई सब उपस्थित हैं न? आहाहा! प्रभु! गजब बात डाली, हों!

कृतार्थ पुरुष (-उत्तम पुरुष).... इसकी व्याख्या कृतार्थ की। उत्तम पुरुष, ऐसा। वह धर्मी उत्तम पुरुष है। सम्यग्दृष्टि, वह उत्तम पुरुष है। इसके अतिरिक्त दूसरे उत्तम पुरुष नहीं है। **(उत्तम पुरुष) तप, संयम, शील के द्वारा प्राप्त हुआ...** पुण्य अर्थात् पवित्रता। **जो गुण उसके द्वारा छेदते हैं-बोलते हैं।** गाँठ बाँधी, उसे खोल डालता है।

मुमुक्षु : पुण्य को गुण कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण होगा, किसमें है?

मुमुक्षु : संयमशील गुण...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो है परन्तु उन्होंने डाला है यह। छापने की भूल है। यह गुण चाहिए। मूल तो पवित्रता है। फिर पवित्र का अर्थ किया पुण्य शब्द का। इन्होंने ऐसा डाला। उन्होंने और पुण्य शब्द रखा। अपने अब अर्थ मैंने तो पवित्रता किया। '**सीलयगुणेण**' है न?

मुमुक्षु : गुण है, गुण।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु यह तप आ गया है अन्दर, कहते हैं। '**तवसंजम-सीलयगुणेण**' यह तप, शील, संयम के गुण द्वारा छेदता है, ऐसा लेना। '**गुणेण**' है न?

जैसे वह '**विसयरागरंगेहिं**' वैसे यहाँ '**तवसंजमसीलयगुणेण**' इच्छा निरोध आत्मा का आनन्द, अतीन्द्रिय सुख की दृष्टि और अतीन्द्रिय सुख में लीनता, ऐसा जो शील स्वभाव और ऐसा जो गुण, उसके द्वारा वह कर्म की गाँठ खोल डालता है। वापस इस तप शब्द का अर्थ कोई ऐसा ले लेवे कि अपवास-बपवास, वह यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो स्वभाव आनन्दमूर्ति प्रभु का भान है, उसमें आनन्द की उग्रता करता है, उसके द्वारा कर्म की गाँठ गलती है और जलती है। गजब व्याख्या ऐसी। वीतराग का मार्ग सर्वज्ञ का... आता है न? सर्वज्ञ का मार्ग... क्या आता है? सर्वज्ञ का धर्म सुशरण।

सर्वज्ञ का धर्म सुशर्ण जानी, आराध्य आराध्य प्रभाव आणी।

श्रीमद् में आता है। पढ़ा है या नहीं? खबर नहीं होगी, कुछ याद नहीं होगा। 'सर्वज्ञ का धर्म सुशर्ण जानी...' कवि है न, इसलिए (ऐसा कहते हैं)...

सर्वज्ञ का धर्म सुशर्ण जानी, आराध्य आराध्य प्रभाव आणी।
इसके बिना कोई न बाह्य स्हाशे।
अनाथ एकान्त सनाथ होगा, इसके बिना कोई बाह्य न स्हाशे।

कहो, मलूकचन्दभाई! है? यह पक्षघात हुआ तो किसी ने बाँह नहीं पकड़ी। खड़े थे सब। और रह गया आयुष्य था। नहीं तो एक अटैक आवे तो वापस दूसरा जाये। अरे रे! देखो न शान्तिभाई चले गये, उनकी माँ के पहले। स्थिति पूरी हो उसमें क्या वहाँ एक समय का फेर। आहाहा! यहाँ एक समय का फेर। राग के रस में पड़ा, उसे आनन्द के रस में लाना एक समय में लाया जाता है। राग की मृत्यु और आनन्द का जीवन। समझ में आया? चेतनजी! यह कहा है, आचार्य का हेतु तो राग का मोह है और यहाँ राग का अभाव है। अर्थात् कि गुण का भाव है, ऐसा।

मुमुक्षु : भेदज्ञान ही कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहते हैं न। इसका अर्थ ही यह किया है। स्वयं ही किया न इतना शब्द पाठ में। फिर तो अर्थ विशेष करेंगे।

यह तो पाठ ही इतना है न, देखो ने! '**आदेहि कम्मगंठी जा बद्धा**' जिसने बाँधी। विषय, राग के रस से, '**तं छिन्दन्ति कयत्था**' जिसने आत्मार्थ साधा, वह उसे छेदता है।

'**तवसंजमसीलयगुणेण**' कुशील से बाँधे हुए कर्म सुशील से खिरते हैं। लो! वह धर्मध्यान में नहीं आता? धर्मध्यान में आता है, नहीं? भाई! मिथ्यात्व से बाँधे हुए कर्म समकित से खिरते हैं। अव्रत से बाँधे हुए कर्म व्रत से खिरते हैं। यह व्रत से, उसमें आया। कषाय से बाँधे हुए कर्म अकषाय से खिरते हैं। धर्मध्यान का कायोत्सर्ग आता है। धर्मध्यान का कायोत्सर्ग आता है। सुना है या नहीं प्रतिक्रमण के समय?

मुमुक्षु : बहुत कायोत्सर्ग में...

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत कायोत्सर्ग वापस उसके साथ सुना है। उसमें आता है। अमुक में बाँधे कर्म इससे खिरते हैं, उससे बाँधे हुए कर्म इससे खिरते हैं, ऐसा आता है। धर्मध्यान कायोत्सर्ग में आता है। ऐसा यहाँ यह सिद्ध किया है।

अज्ञान के रागरस से बाँधे हुए कर्म ज्ञान के आनन्दरस से उसे खोलकर छोड़ डालता है। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव का मार्ग बहुत सूक्ष्म है। लोगों के पास धर्म को दूसरे प्रकार से परोसा है। यह वहाँ वींछिया में कहा था। बहुत लोग थे न। बापू! धर्म के नाम से धर्म परोसा नहीं। दूसरा परोसा है। समझ में आया? मैसूर का नाम लिया और छिलकों की रोटियाँ दीं। इसी प्रकार धर्म के नाम से पुण्य और दया, दान और व्रत की क्रिया पुण्य की परोसकर धर्म मनाया है।

मुमुक्षु : वह तो बन्धन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस बन्धन के कारण उसने अबन्ध के परिणामरूप से सिद्ध किये हैं, उन लोगों ने। आहाहा!

कहते हैं, **भावार्थ :- जो कोई आप गाठ घुलाकर बाँधे...** घुलाई अर्थात् ठीक से बाँधे। गाँठ ऐसी बाँधे न ऐसे ऊपर उसकी रेण न दिखाई दे। इस जगह रेण लिया, वह न दिखाई दे। सोनी बाँधे न सोना? **उसको खोलने का विधान भी आप ही जाने, जैसे सुनार आदि कारीगर आभूषणादिक की सन्धि के टांका ऐसा झाले...** टाँका ऐसा मारे। **कि वह सन्धि अदृष्ट हो जाये,...** दो स्वर्ण के कांठा इकट्ठे हुए हैं, ऐसा न दिखाई दे। ऐसी सन्धि भरे। सोना का छोर होता है न? एक सोने का इस ओर तथा एक दूसरी ओर, दोनों इकट्ठे हुए हों (उसे) ऐसी सन्धि भरे कि सन्धि दिखाई न दे। समझ में आया? वह स्वयं

को खबर हो कि मैंने इस जगह सन्धि भरी है। देखो! यह दृष्टान्त। समझ में आया? **आभूषणादिक की सन्धि के टांका ऐसा झाले कि वह सन्धि अदृष्ट हो जाये,...** साँध ही अदृश्य हो जाये। **तब उस सन्धि को टाँके का झालनेवाला ही पहिचानकर बोले,...** उसे खबर हो कि मैंने इस जगह (सन्धि की है)। उसका लक्षण उसे ख्याल में होता है। यह तो दृष्टान्त हुआ।

वैसे ही आत्मा ने अपने ही रागादिक भावों से कर्मों की गाँठ बाँधी है... लो! आत्मा ने आत्मा के शुद्ध आनन्दस्वभाव के अतिरिक्त राग के रस के कारण उसने स्वयं ही कर्म बाँधे हैं। वह राग के रस की सन्धि से बाँधे, उसे आत्मा के रस की सन्धि से छेद डालता है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह ऐसी अपूर्व की बातें हैं। समझ में आया? जिसने आत्मा के आनन्द के ध्रुव का विषय नहीं बनाया और जिसने एक अंश वर्तमान दशा और राग के रस में जिसने मिथ्यात्व से आत्मा बाँधा है, वही द्रव्यदृष्टि करके खोल डाल, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पर्यायदृष्टि से बाँधा हुआ भाव, वह वस्तुदृष्टि से उसे खोलकर छेद डालता है। आहाहा! काम कठिन, भाई! है तो इसके घर का परन्तु अभ्यास नहीं, इसलिए यह तो ग्रीक-लेटिन (अद्‌भुत अटपटा) जैसा लगे। यह क्या कहते हैं धर्म ऐसा? व्रत पालने का कहे, यात्रा करने का कहे, सूर्यास्त पूर्व भोजन का कहे, कन्दमूल न खाने का कहे, पाँच परबी ब्रह्मचर्य पालना, ऐसा कहे, छह परबी हरितकाय नहीं खाना, ऐसा कहे, वह तो समझ में भी आवे, हों! यह सब आता था। आहाहा! भाई! वह तो सब विकल्प की बातें हैं—शुभराग की। उस राग का जिसे रस है, वह मिथ्यात्व है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

आत्मा ने अपने ही रागादिक भावों से... और राग तो आत्मा का नहीं था, ऐसा कहते, राग तो कर्म के कारण से हुआ कर्म का है। यहाँ तो कहते हैं, तूने स्वयं राग किया था, इसलिए **अपने ही रागादिक भावों से कर्मों की गाँठ बाँधी है, उसको आप ही भेदविज्ञान करके रागादिक के...** देखो! राग और आत्मा, ऐसा। भेदज्ञान करके विकल्प-राग और आत्मा। जो दो भेद है। उसमें दो के बीच भेद है। आता है न उसमें, वह मोक्ष अधिकार में। सूक्ष्म सन्धि है। उसमें डाला है। उसे पकड़कर बीच में छैनी मार। राग की उत्पत्ति बहिर्लक्ष्य से होती है, स्वभाव अन्तर्लक्ष्यी पड़ा है। उसकी सन्धि

देखकर भेदज्ञान करके **आप ही भेदज्ञान करके...** आप ही बाँधे। राग की एकताबुद्धि से स्वयं ने ही बाँधे अभेद से। स्वयं ही राग से भिन्न करके स्वयं ही खोलो। ऐसा कहते हैं। बराबर है पण्डितजी? कर्म के जोर से बाँधे हैं? गोम्मटसार में आता है। बहुतों में यह बात आती है। आहाहा!

आत्मा ने अपने ही रागादिक भावों से कर्मों की गाँठ बाँधी है, उसको आप ही भेदविज्ञान करके रागादिक के और आपके... वापस भेदज्ञान की व्याख्या की। **रागादिक के और आपके जो भेद हैं...** चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र के प्रति का राग और आत्मा दोनों भिन्न चीज़ है। आहाहा! प्रशस्त राग है या नहीं? ऐसा। परन्तु प्रशस्त राग भी है न? प्रशस्त भी वह दुश्मन है। उसे प्रशस्त क्यों कहा? तीव्र राग की अपेक्षा से उसे प्रशस्त कहा। बाकी है तो वह जहर और वैर। वैरी-आत्मा के स्वभाव का विरोधी है। वह व्यवहार कारण हो, निश्चय कार्य हो—ऐसा कैसे बने? विरोधी भाव कारण और अविरोधी भाव कार्य। समझ में आया? भारी कठिन लोगों को।

यहाँ तो कहते हैं कि जिससे भेद करना है, उससे आत्मा को लाभ हो, यह किस प्रकार बने? समझ में आया? जिससे तो भेद करना है। चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का, पंच महाव्रत का विकल्प-राग हो, उस राग से तो भिन्न कराना है, करना है। है। अब उसे राग के कारण अन्दर में भेदज्ञान हो और आत्मा का निश्चय हो, यह तो भ्रमणा है। आहाहा! **जो भेद हैं, उस सन्धि को...** राग और अपना भेद है, ऐसा यहाँ कहते हैं, हों! अर्थात् दोनों एक नहीं हैं। तूने एक माना है। राग का विकल्प और निर्विकल्प चैतन्यघन दोनों को एकपना माना है। एकरूप है नहीं। एकरूप हो तो भिन्न पड़े नहीं। इसलिए भेद है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बहुत सरस गाथा। आहाहा!

रागादिक के और आपके जो भेद हैं, उस सन्धि को पहिचानकर... विकल्प उठता है, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का हो। अरे! गुण-गुणी के भेद का विकल्प हो राग, परन्तु उस राग और अपना भेद पहिचानकर **सन्धि को पहिचानकर...** भेद की सन्धि अर्थात् राग-विकल्प और आत्मा दो है। दो है, उन दो में भेद है। दो में एकपना नहीं है। दो में एकपना कैसे होगा? तब तो दो रहते नहीं। समझ में आया?

रागादिक के और आपके जो भेद हैं, उस सन्धि को पहिचानकर... यह क्या कहते हैं ? दो है, उन्हें दोरूप से जानकर। राग है, वह बहिर्लक्ष्यी उठता है। यह अन्तर है। दोनों में भेद है। दो की एकता हुई ही नहीं। दो भिन्न हैं, उन्हें भिन्नरूप से जानकर, **पहिचानकर तप, संयम, शीलरूप-भावरूप शस्त्रों के द्वारा...** देखो! उस गुण का अर्थ यहाँ फिर भाव कर डाला।

तप, संयम, शीलरूप-भावरूप... वहाँ इससे हुआ पुण्य, ऐसा नहीं लिया। **तप, संयम, शीलरूप-भावरूप शस्त्रों के द्वारा...** आहाहा! ठीक! आत्मा के स्वभाव सन्मुख की दृष्टि, ज्ञान, संयम, स्वभाव ऐसे भावशस्त्रों द्वारा **कर्मबन्ध को काटता है,...** इससे कर्म कटते हैं। यह अपवास-बपवास किया और पाँच-पाँच अपवास किये, कर्म कटे। बापू! समय चला जायेगा, भाई! छेतरपिण्डी में जायेगा। आहाहा! कितने ही बाबा आते हैं न? लाओ सोना। पीतल का सोना कर दे। पीतल का सोना कर दे। थोड़ा बहुत दे पहले। फिर अधिक ले खोटा दे और सच्चा लेकर भाग जाये। परन्तु यहाँ आया किसलिए वह? लोहे का सोना करना हो तो वह आया किसलिए यहाँ? उसके घर में करे नहीं? परन्तु दुनिया ठगाई करनेवाले के पास जाती है और ठगा जाती है। सस्ता माल (लेना है)। पच्चीस तोला पीतल लाओ तुम्हें सोना कर दें। कर दे क्या, वह घर में सोना रखा हो थोड़ा बहुत, हों! वह दे उसे। उसे ऐसा हो कि ओहो! यह तो सच्चा लगता है। ऐसा करते-करते वह अधिक दे तो उठाकर भाग जाये। बनता है न? ऐसे बहुत बाबा होते हैं, ठग।

मुमुक्षु : अभी-अभी तो बहुत बनाव बनते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत ऐसा बनता है।

ऐसा जानकर जो कृतार्थ पुरुष हैं, वे अपने प्रयोजन के करनेवाले हैं,... व्याख्या की। कृतार्थ की व्याख्या **अपने प्रयोजन के करनेवाले हैं,...** अपना पुरुषार्थ शुद्ध आनन्दघन प्रभु अथवा ज्ञायकभाव स्वभाव, उस ओर का पुरुषार्थ, वह प्रयोजन पुरुषार्थ है। आहाहा! राग के पुरुषार्थ को वीर्य का कार्य ही नहीं कहा। आत्मा के वीर्य का व्यवहाररत्नत्रय कार्य कहा नहीं। आहाहा! वह तो नपुंसक है, कहते हैं। व्यवहाररत्नत्रय शुभ उपयोग

का कार्य नपुंसक का है। आत्मा के वीर्य का नहीं। आहाहा! कठिन लगे हों, पण्डितजी! लोग तूफान-तूफान करे। झगड़ा करे। अरे! नहीं, ऐसा नहीं। ऐसा है। भले भगवान हो तेरे घर में। आहाहा! अज्ञान के नाम से अनादि से लुटाया है। खोट में है, घाटे में है और मानता है कि हम पैसेवाले हैं।

अपने प्रयोजन के करनेवाले हैं, वे इस शीलगुण को अंगीकार करके... शीलगुण को आया यहाँ। अपने आत्मा के स्वभाव को स्वभावरूप शुद्ध, उसके गुण से **आत्मा को कर्म से भिन्न करते हैं, यह पुरुषार्थ पुरुषों का कार्य है।** लो! वह पुरुषार्थ पुरुष का कार्य है। पुरुष अर्थात् आत्मा।

गाथा-२८

आगे जो शील के द्वारा आत्मा शोभा पाता है, उसको दृष्टान्त द्वारा दिखाते हैं -

उदधी व रदणभरिदो तवविणयंसीलदाणरयणाणं।
सोहेंतो य ससीलो णिव्वाणमणुत्तरं पत्तो।।२८।।

उदधिरिव रत्नभृतः तपोविनयशीलदानरत्नानाम्।
शोभते य सशीलः निर्वाणमनुत्तरं प्राप्तः।।२८।।

हो रतन-युत पर जलधि-वत् तप दान-शील विनय-रतन।
हैं शील से शोभित इसी से प्राप्त उत्तम मोक्ष-पद।।२८।।

अर्थ - जैसे समुद्र रत्नों से भरा है तो भी जलसहित शोभा पोता है, वैसे ही यह आत्मा तप, विनय, शील, दान - इन रत्नों में शीलसहित शोभा पाता है क्योंकि जो शीलसहित हुआ उसने अनुत्तर अर्थात् जिससे आगे और नहीं है, ऐसे निर्वाणपद को प्राप्त किया।

भावार्थ - जैसे समुद्र में रत्न बहुत हैं तो भी जल ही से 'समुद्र' नाम को प्राप्त करता है, वैसे ही आत्मा अन्य गुणसहित हो तो भी शील से निर्वाणपद को प्राप्त करता है, ऐसे जानना।।२८।।

गाथा-२८ पर प्रवचन

आगे जो शील के द्वारा आत्मा शोभा पाता है, उसको दृष्टान्त द्वारा दिखाते हैं :-

उदधी व रदणभरिदो तवविणयंसीलदाणरयणाणं।
सोहेंतो य ससीलो णिव्वाणमणुत्तरं पत्तो।।२८।।

इसमें शील तो डाला है जरा। तथापि वापस वह भिन्न किया।

अर्थ :- जैसे समुद्र रत्नों से भरा है... स्वयंभूरमणसमुद्र के अन्दर नीचे रत्न भरे हैं। रेत की जगह रत्न हैं। **तो भी जलसहित शोभा पाता है,...** अकेले पत्थर से नहीं शोभता। जल भरा हो तो समुद्र शोभता है। पानी भरा हो तो शोभता है। **वैसे ही यह आत्मा तप, विनय, शील, दान इन रत्नों में शीलसहित शोभा पाता है,...** सब स्वभाव सन्मुख की दृष्टि और स्थिरता होवे तो शोभता है। यह जल है। आहाहा! तप, विनय आदि चाहे जो क्रिया हो परन्तु उस रत्न में शील, स्वभावसन्मुख की दृष्टि और रमणता वह शील, यह होवे तो वह शोभता है।

क्योंकि जो शीलसहित हुआ, उसने अनुत्तर... कहते हैं। जो आत्मा के रागरहित स्वभावसन्मुख होकर शील प्रगट किया, स्वभाव प्रगट किया, सम्यग्दर्शन किया, अनन्तानुबन्धी का अभाव प्रगट किया, वह जीव आगे बढ़कर **अनुत्तर अर्थात् जिससे आगे और नहीं है, ऐसे निर्वाणपद को प्राप्त किया।** मोक्ष को वह प्राप्त करता है। ऐसा शील है। शील स्वभाव, चैतन्य का निर्दोष विकाररहित वीतरागी स्वभाव, उसे प्रगट करना, इसका नाम शील कहा जाता है। गजब भाई!

भावार्थ :- जैसे समुद्र में रत्न बहुत हैं तो भी जल ही से समुद्र नाम को प्राप्त करता है,... कहो, समझ में आया? कहते हैं कि बाहर की प्रवृत्ति की क्रिया के बहुत प्रकार भले हों, परन्तु स्वभावसन्मुख का शील हो तो उस व्यवहार को व्यवहार कहा जाता है। नहीं तो कुछ शोभा व्यवहार की है नहीं। **जल ही से समुद्र नाम को प्राप्त करता है, वैसे ही आत्मा अन्य गुणसहित हो तो भी शील से ही निर्वाणपद को प्राप्त करता है,...** आत्मा का शुद्ध आनन्दस्वभाव ज्ञान चैतन्य का नूर, उसका स्वभाव शुद्ध, उससे

वह निर्वाण को पाता है। शुभराग से निर्वाण नहीं, परन्तु बन्धन है। और शुद्धस्वभाव से आत्मा के पवित्र स्वभाव के आश्रय से (मुक्ति है)। राग में तो जुड़ान हो गया कर्म के निमित्त का। व्यभिचारी भाव हो गया। और रागरहित स्वभावभाव से अव्यभिचारी शील हुआ। वह शील हुआ। गजब व्याख्या! आहाहा!

कितने ही कहते हैं, परन्तु यह सब जहाँ हो वहाँ निश्चय... निश्चय... ऐसा कहते हैं। परन्तु भाई! निश्चय अर्थात् सच्चा है, भाई! व्यवहार तो एक आरोपित कथनवाले कथन आते हैं, उसमें भ्रमा जायेगा तो उलझ जायेगा। आत्मा हाथ नहीं आयेगा। आहाहा! कहो, समझ में आया? राग में आत्मा नहीं। आत्मा तो रागरहित स्वभाव में है। उस स्वभाव की दृष्टिवन्त शील से निर्वाण को प्राप्त करे। **ऐसा जानना**। लो! ऐसा जानना। है न? '**णिव्वाणमणुत्तरं पत्तो सोहेंतो य ससीलो**।' ऐसा। शील तो उसमें भी डाला था पाँचवें में। तप, विनय, शील, दान। परन्तु उन सबमें भी शील मुख्य। समझ में आया? तब उसके तपादि कहलाये न। नहीं तो किसके तपादि थे?

कहते हैं, पूर्ण ब्रह्म प्रभु आत्मा, ऐसा चैतन्य रत्नाकर, उसका स्वभाव जिसने प्रगट किया है, उस स्वभाववाला निर्वाण को पाता है। उस स्वभाव बिना चाहे जितनी व्रत, तप आदि की क्रिया हो राग की, उससे धर्म नहीं होता और मुक्ति नहीं पाता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

गाथा-२९

आगे जो शीलवान पुरुष हैं, वे ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं, यह प्रसिद्ध करके दिखाते हैं –

सुणहाण गद्दहाण ण गोवसुमहिलाण दीसदे मोक्खो।
जे सोधंति चउत्थं पिच्छिज्जंता जणेहि सव्वेहिं।।२९।।

शुनां गर्दभानां च गोपशुमहिलानां दृश्यते मोक्षः।
ये शोधयंति चतुर्थं दृश्यतां जनैः सर्वैः।।२९।।

क्या दिखे शिव स्त्री गधा गो श्वान आदि पशु को?
चतुर्थ को जो शोधते शिव उन्हें देखो सब जनो।।२९।।

***अर्थ* – आचार्य कहते हैं कि यह सब लोग देखो – श्वान, गर्दभ इनमें और गौ आदि पशु तथा स्त्री, इनमें किसी को मोक्ष होना दीखता है क्या ? वह तो दीखता नहीं है। मोक्ष तो चौथा पुरुषार्थ है, इसलिए जो चतुर्थ पुरुषार्थ को सोधते हैं, उन्हीं के मोक्ष का होना देखा जाता है।**

***भावार्थ* – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष – ये चार पुरुष के प्रयोजन कहे हैं यह प्रसिद्ध है, इसी से इनका नाम पुरुषार्थ है ऐसा प्रसिद्ध है। इसमें चौथा पुरुषार्थ मोक्ष है, उसको पुरुष ही सोधते हैं और पुरुष ही उसको हेरते हैं, उसकी सिद्धि करते हैं, अन्य श्वान, गर्दभ, बैल, पशु, स्त्री इनके मोक्ष का सोधना प्रसिद्ध नहीं है जो हो तो मोक्ष का पुरुषार्थ ऐसा नाम क्यों हो। यहाँ आशय ऐसा है कि मोक्ष शील से होता है, जो श्वान, गर्दभ आदिक हैं, वे तो अज्ञानी हैं, कुशीली हैं, उनका स्वभाव प्रकृति ही ऐसी है कि पलटकर मोक्ष होनेयोग्य तथा उसके सोधने योग्य नहीं है, इसलिए पुरुष को मोक्ष का साधन शील को जानकर अंगीकार करना, सम्यग्दर्शनादिक हैं, वह तो शील ही के परिवार पहिले कहे ही हैं, इस प्रकार जानना चाहिए।।२९।।**

गाथा-२९ पर प्रवचन

आगे जो शीलवान पुरुष हैं, वे ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं... शीलवान की व्याख्या लोग इतनी ही करे कि यह ब्रह्मचर्य पाले, स्त्री छोड़ दी है और बालब्रह्मचारी हुए शीलवान। यह व्याख्या नहीं है।

मुमुक्षु : यह संकुचित व्याख्या है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी संकुचित व्याख्या है, यथार्थ नहीं। शरीर का ब्रह्मचर्य आदि वह तो एक विकल्प है, वह तो शुभराग है। प्रकाशदासजी! भारी ऐसा कठिन काम। ऐसी बात है।

प्रभु! आनन्दस्वभाव जिसका और ज्ञानस्वभाव जिसका, वह स्वभाव छोड़कर कोई विकल्प के साथ व्यभिचार-एकत्व करे, वह कुशील और व्यभिचार है। और वह

आत्मा अपने शुद्ध ज्ञान और आनन्दस्वभाव में सन्मुख होकर दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता करे, वह सुशील है, वह ब्रह्मचर्य है। उसे सुशील कहा जाता है। समकिती सुशील है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अभी आगे आयेगा न? नहीं आया, नहीं? आगे आयेगा। ३२ में। ३२ गाथा में। भगवान ने कहा है।

नारकी जीव भी शीलवान है तो मरकर निकलकर तीर्थंकर होगा, लो! शीलवान है नारकी जीव। वैसे तो नपुंसक है। शरीर में। अन्दर आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, जिसका उसने अन्दर से पता लिया है और उसके शील में वह रहता है। आत्मा का शील शुद्ध स्वभाव में रहा हुआ है। वास्तव में नारकी राग और उसके—नरक के क्षेत्र में निश्चय से रहा ही नहीं। ऐई! कहो, समझ में आया या नहीं? प्रेमचन्दभाई के लड़के? मास्टर हो न? सिहोर के पास?

मुमुक्षु : देवगणा।

पूज्य गुरुदेवश्री : देवगणा। यह सब समझने जैसा, हों! यह तुम्हारे पठन-बठन नहीं। आहाहा!

सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर तीर्थंकरदेव का यह सन्देशा आया है। अच्छे घर की कन्या की सगाई आवे तो पूरा घर प्रसन्न होता है न? कि करोड़पति का सम्बन्ध है। लो! कुछ लायेगी यदि कन्या आयेगी तो दस लाख। क्योंकि उसके कोई लड़का नहीं है, कोई अमुक नहीं है। ऐसा करके प्रसन्न होता है।

मुमुक्षु : नजर पैसे पर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ उसकी नजर जाती है। उसे गलगलिया होता है। सम्बन्ध तो पक्का है, अब अपने किसे पसन्द करना? कन्या भले साधारण हो परन्तु पाँच करोड़ की मालदार की कन्या है और उसके वापस लड़का नहीं है। कदाचित् अभी दस-बीस लाख दे और बाद में उसका उत्तराधिकार मिल जायेगा अपने को। सम्बन्ध आया वहाँ प्रसन्न हो। यह भगवान का सन्देशा आया है। आहाहा! भाई! तेरे घर में आत्मा है न? वह आनन्द की मूर्ति है। उसके साथ सम्बन्ध कर उसके साथ। तो तेरा विवाह-सिद्धपद की प्राप्ति होगी। उसमें प्रसन्न हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अब यहाँ जरा पुरुष को मोक्ष होता है, स्त्री को मोक्ष नहीं होता, यह सिद्ध करते हैं। **आगे जो शीलवान पुरुष हैं, वे ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं, यह प्रसिद्ध करके दिखाते हैं :-**

सुणहाण गद्दहाण ण गोवसुमहिलाण दीसदे मोक्खो।
जे सोधंति चउत्थं पिच्छिज्जंता जणेहि सव्वेहिं।।२९।।

अर्थ :- आचार्य... कुन्दकुन्दाचार्य महाराज... आहाहा! देखो सब जीव को। **'सव्वेहिं' यह सब लोग देखो...** सर्वजन देखो, ऐसा कहते हैं। सब जन को देखो तुम। यह कुत्ते को कभी मोक्ष होगा? श्वान को। गधे को होगा? **इनमें और गौ...** गाय। उसे मोक्ष होगा? पशु को होगा? **स्त्री इनमें किसी को मोक्ष होना दिखता है क्या?** ऐसा कहते हैं, लो! जो स्त्री का शरीर है, उसे भी मोक्ष नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। लो! उसमें तो कहते हैं कि स्त्री मोक्ष पधारी। मल्लिनाथ स्त्री थे, चन्दनबाला स्त्री, मरुदेवी स्त्री मोक्ष पधारे। लो!

मुमुक्षु : भगवान की माता तो मोक्ष जाये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान की माता कहाँ थी।

मुमुक्षु : कोई नाम न ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम ले उसमें शुभराग है। आहाहा!

कहते हैं कि ऐई! कहीं तुमने उसमें मोक्ष देखा? ऐसी भाषा करते हैं, देखो तो सही! गधे में, पशु में, श्वान में, गाय में और स्त्री में **इनमें किसी को मोक्ष होना दिखता है क्या?** सनातन वीतरागमार्ग का यह वर्णन है। समझ में आया? फिर श्वेताम्बर निकले। भगवान के पश्चात् छह सौ वर्ष में। स्थानकवासी तो अभी निकले पाँच सौ वर्ष हुए। वीतरागमार्ग में ऐसा कहते हैं, परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर (कहते हैं), ऐई! कहीं स्त्री को मोक्ष दिखा? स्त्री को मोक्ष होता नहीं। ऐई! तो क्या अभी तक सुना था वह सब? चन्दनबाला, मरुदेवी हाथी के हौदे मोक्ष प्राप्त हुए। नहीं आता? हाथी के हौदे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो और तीर्थंकर थे। उन्हें मोक्ष। भगवान की वाणी नहीं,

भाई! वह तो अपने स्वच्छन्द की वाणी है। भगवान की वाणी तो यह है। आहाहा! कहाँ से लावे? वाडा में ऐसे बँधे हुए हो न, उसे दूसरी सूझ नहीं पड़ती। आचार्य पुकार करते हैं। जैसे गधे को और कुत्ते को मुक्ति नहीं, वैसे स्त्री को मुक्ति नहीं होती। स्त्री को साधुपना नहीं होता। जिसे स्त्री की देह हो, उसे तीन काल में साधुपना नहीं आता और उस स्त्री को साधु माने, साध्वी माने, स्वयं मिथ्यादृष्टि है और माननेवाले भी मिथ्यादृष्टि हैं। उन्हें जैन की श्रद्धा नहीं है। आहाहा! कहाँ गये जयन्तीभाई, नहीं आये? जयन्तीलाल हरिचन्द कहाँ है? नहीं आये जयन्तीभाई? क्यों?

मुमुक्षु : तबीयत ठीक नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तबीयत ठीक नहीं होगी। कहो, समझ में आया?

यह भारी वाडा (सम्प्रदाय) की रीति कठोर पड़े। नये लोगों को। मार्ग तो यह है, भगवान! पक्ष का मार्ग नहीं, पन्थ का मार्ग है। आहाहा! देह से पुरुष हो, उसकी मुक्ति होगी। पुरुष के कारण नहीं। वह पुरुष मोक्ष का पुरुषार्थ करे, उसे मोक्ष होता है। स्त्री को मुक्ति नहीं होती। स्त्री पुरुषार्थ मोक्ष का पुरुषार्थ शोध सकती ही नहीं, कर सकती ही नहीं, ऐसा कहते हैं। वहाँ ऐसी बातें कर दी—मरुदेवी को मोक्ष हो गया। हाथी के हौदे बैठे हो गया। इसलिए एक कंकड़ से कितने पक्षी मारे। स्त्री की मुक्ति, हाथी के हौदे मुक्ति, वस्त्रसहित मुक्ति। भाई! वीतराग के मार्ग से विरुद्ध है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के मार्ग से विरुद्ध है। समझ में आया? मोहनभाई नहीं आते? मोहनवालजी।

देखो! यह कुन्दकुन्दाचार्य महाराज तीर्थंकर के पथानुगामी। 'मंगल भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी'—आता है न? मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। श्वेताम्बर में स्थूलभद्रार्यो कहते हैं। पूरी बात (बदल डाली)। आहाहा! क्या हो? वाडा बाँधकर ऐसा पक्का पक्ष बाँधा कि उसे उसमें से—मिथ्यात्व में से छूटना कठिन पड़े। ऐई! प्रकाशदासजी! यह बहुत घूमे हैं यह तो, हों! बहुत घूमे हैं। बातें करे। आर्यसमाज में, अमुक में, तेरापन्थी में, स्थानकवासी में। एक मन्दिरमार्गी में नहीं गये लगते।

मुमुक्षु : जाना बाकी है अब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अब नहीं। गये नहीं, ऐसी बात है। अब नहीं।

मुमुक्षु : छह महीने...

पूज्य गुरुदेवश्री : थे। ठीक। परन्तु थोड़ा। आहाहा!

यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, भाई! **इनमें किसी को मोक्ष होना दिखता है क्या ? वह तो दिखता नहीं है। मोक्ष तो चौथा पुरुषार्थ है,...** धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, ऐसे चार। धर्म अर्थात् पुण्य; अर्थ अर्थात् पैसा; काम अर्थात् विषय; मोक्ष— इन चार में प्रधान तो मोक्ष है। उस पुरुषार्थी जीव को पुरुषार्थवाले को मोक्ष होता है। **मोक्ष तो चौथा पुरुषार्थ है, इसलिए जो चतुर्थ पुरुषार्थ को शोधते हैं...** जो अन्दर का मोक्ष का अन्दर पुरुषार्थ शोधता है, खोजता है, ढूँढ़ता है **उन्हीं के मोक्ष होना देखा जाता है।** उसे मोक्ष होना दिखता है। यह गधे और स्त्री को मोक्ष हुआ, ऐसा नहीं दिखता। क्योंकि वह मोक्ष शोध सकते ही नहीं। आहाहा! वैसे तो गधे, कुत्ते को पाँचवाँ गुणस्थान होता है ऐसे को कहते हैं, भाई! ऐसी स्त्री इकट्ठी डाली उसका कारण है। आहाहा! गधा, कुत्ता आदि हो, पाँचवाँ गुणस्थान पा सकते हैं। बाहर से ढाई द्वीप बाहर बहुत पशु हैं। आत्मज्ञान, आत्मदर्शन उपरान्त शान्ति की विशेष उग्रता। स्त्री भी पाँचवाँ गुणस्थान पा सकती है, यदि जैनदर्शन के सच्चे पन्थ में हो तो। मिथ्या पन्थ में तो वह समकित भी नहीं पा सकती। समझ में आया ? आहाहा! क्या होगा ? गुलाबचन्दभाई! वह तुम्हारी भतीजी है न ? पोपटभाई की भतीजी है। लो, तुम्हारे भाई की भतीजी है, इनके भाई की पुत्री है, अरे! क्या करना ? पछताते हैं। लोग एकदम खोटे उत्साह में आकर वस्त्र बदले और साधु हो जाये। फिर अन्दर में देखे वहाँ घोटाला हो। ठिकाना न हो, श्रद्धा का ठिकाना न हो। यहाँ की कुछ बाहर बात आयी है। आहाहा! कार्यकर्ता थे न ? ... थे न धर्म के। उनके मामा धर्मशीभाई संघ के प्रमुख थे। आहाहा!

आचार्य महाराज ऐसा कहते हैं, तुम्हें खबर नहीं पड़ती। कुत्ते को और स्त्री को मोक्ष दिखता है तुझे ? अन्तर का स्वभाव का पुरुषार्थ शोधने की योग्यता पुरुष को ही होती है, ऐसा कहना है, हों! मोक्ष दूसरे को होता नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१९२, गाथा-२९ से ३१, रविवार, माघ कृष्ण ११, दिनांक २१-०२-१९७१

गर्दभ इनमें और गौ आदि पशु तथा स्त्री इनमें किसी को मोक्ष होना दिखता है क्या ? इन्हें मोक्ष नहीं होता। स्त्री को मोक्ष नहीं होता। यहाँ देह की बात है, हों! स्त्री का देह लेना यहाँ। **वह तो दिखता नहीं है।** कुत्ते को, गाय को, पशु को, स्त्री को मोक्ष नहीं होता। उन्हें मोक्ष नहीं होता, यह तो प्रसिद्ध है, ऐसा यहाँ कहते हैं। सर्वजन देखो। **मोक्ष तो चौथा पुरुषार्थ है,...** ...आयेगा। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मोक्ष तो चौथा महापुरुषार्थ है। **इसलिए जो चतुर्थ पुरुषार्थ को शोधते हैं...** अन्तर में केवलज्ञान और पूर्ण प्राप्ति को अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सहित शोधता है, उसे मोक्ष होता है। **उन्हीं के मोक्ष का होना देखा जाता है।** स्त्री आदि को मोक्ष नहीं होता। श्वेताम्बर कहते हैं न? उसका यहाँ निषेध है। यह कल आया था।

भावार्थ :- धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पुरुष के ही प्रयोजन कहे हैं... पुरुष के प्रयोजन चार। पुण्य, एक लक्ष्मी और विषय और मोक्ष—चार। **यह प्रसिद्ध है, इसी से इनका नाम पुरुषार्थ है, ऐसा प्रसिद्ध है। इनमें चौथा पुरुषार्थ मोक्ष है, उसको पुरुष ही शोधते हैं...** पुरुष शब्द से यह शरीर लेना यहाँ। पुरुष का वेदवाला यहाँ नहीं। वह तो स्त्रीवेद का उदय हो अन्दर। समझ में आया? **पुरुष ही शोधते हैं...** सम्प्रदायवाले को जरा अर्थ में ठीक न लगे। पुरुषार्थ है न? पुरुषार्थ शब्द वीर्य, वह पुरुषार्थ है। चौथा पुरुष कहाँ से निकाला? पुरुषार्थ में पुरुष, पुरुष वह यह शरीर है जिसका—ऐसा जो पुरुष वह आत्मा में शोधकर मोक्ष को प्राप्त करता है। जिसका शरीर स्त्री का, श्वान का या गधे का हो, वह अन्तर पुरुषार्थ करके मोक्ष नहीं शोध सकता, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है।

पुरुष ही शोधते हैं और पुरुष ही उसको हेरते हैं-उसकी सिद्धि करते हैं... अन्तर में चारित्रसहित है न? तो चारित्र तो पुरुषदेह हो, उसे होता है। पण्डितजी! आहाहा! **पुरुष ही उसको हेरते हैं-उसकी सिद्धि करते हैं,...** पुरुषशरीर। यह जीव अन्तर में खोज-शोधकर मुक्ति की सिद्धि करे।

मुमुक्षु : हेरि अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : शोधे। **उसको हेरते हैं-उसकी सिद्धि करते हैं,...** पुरुष शोध-खोजकर, अन्दर शोधकर, अन्तर पूर्ण स्वरूप को शोधकर मुक्ति करे।

अन्य श्वान, गर्दभ, बैल पशु, स्त्री इनके मोक्ष का शोधना... देखो! आया। हेरि अर्थात् शोधना। **शोधना प्रसिद्ध नहीं है,...** वह प्रसिद्ध नहीं है। यहाँ तो शील का अधिकार है न? इसलिए चारित्र का शीलसहित हो। चारित्र तो पुरुष को होता है, ऐसा। समझ में आया? स्त्री को चारित्र नहीं होता। समझ में आया? ... **मोक्ष का पुरुषार्थ ऐसा नाम क्यों हो? यहाँ आशय ऐसा है कि मोक्ष शील से होता है,...** मोक्ष है, वह आत्मा के वीतरागी सम्यग्दर्शनसहित चारित्र से होता है। **जो श्वान, गर्दभ आदिक हैं, वे तो अज्ञानी हैं, कुशीली हैं,...** मिथ्यादृष्टि है, उसकी बात है। **उनका स्वभाव-प्रकृति ही ऐसी है...** उसकी तो स्वभाव की प्रकृति ही ऐसी है। **कि पलटकर मोक्ष होनेयोग्य तथा उसके शोधनेयोग्य नहीं है,...** मोक्ष होनेयोग्य और उसे शोधनेयोग्य नहीं। अन्तर में केवलज्ञान प्राप्त हो, ऐसा पुरुषार्थ उसे नहीं होता। **इसलिए पुरुष को मोक्ष का साधन शील को जानकर...**

मुमुक्षु : अज्ञानी को कुशील ही गिना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उसके साथ... अज्ञानी तो कुशील ही है न! परन्तु श्वान को पाँचवाँ गुणस्थान हो सकता है। परन्तु यहाँ चारित्र नहीं है, इतना सिद्ध करना है। तिर्यंच को पाँचवाँ गुणस्थान हो सकता है परन्तु चारित्र का जो पुरुषार्थ है, वह तो पुरुष को ही हो सकता है, दूसरे को नहीं होता। इतना साबित करना है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दूसरी अपेक्षा से तो कुशील विरुद्ध कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस अपेक्षा से कुशील नहीं। यहाँ तो सीधे एकदम कुशीली की बात लेकर बात रखी है। पाँचवें गुणस्थानवाला कुशीली नहीं। मिथ्यादृष्टि ही कुशीली है। जिसे आत्मस्वभाव शुद्ध चैतन्य के साथ राग के विकल्प की एकता है, वही कुशीली है। समझ में आया? अब यहाँ उसके अर्थ में साधारण अर्थ कर डाला। गर्दभ और कुशील। अज्ञानी हो वह कुशीली है, ऐसा करके यहाँ निषेध किया।

पुरुष को मोक्ष का साधन शील को जानकर अंगीकार करना,... यहाँ पुरुषदेह

की बात है। इसलिए जरा इसमें चर्चा करना चाहे तो थोड़ी हो सकती है। सामनेवाला कहे, परन्तु इसमें पुरुषपना फिर देह का कहाँ डाला ? परन्तु यहाँ आवश्यक है। यहाँ वह मोक्ष का कारण ऐसा जो शील, मोक्ष का कारण ऐसा जो शील, वह तो पुरुषदेहवाला हो, उसे ही हो सकता है। स्त्रीदेहवाले को वह नहीं हो सकता। स्त्री का देह हो, उसे तो मुनिपना हो नहीं सकता। बहुत तो सच्चे पंथ में हो तो पंचम गुणस्थान हो सकता है। छठवाँ नहीं हो सकता। तो केवल तो हो नहीं सकता। देखो ! कहते हैं।

सम्यग्दर्शनादिक है, वह तो शील ही के परिवार पहिले कहे ही हैं... आत्मा का अनुभव, उसमें प्रतीति और स्वरूप में रमणता, वह सब शील का परिवार है। शील की समृद्धि, शील की ऋद्धि है। आहाहा ! भगवान आत्मा अपना निर्मल शुद्ध चैतन्यस्वभाव, पुण्य और पाप के रागरहित स्वभाव, उस स्वभाव की दृष्टि, अनुभव और स्थिरता को यहाँ शील कहा जाता है। समझ में आया ? मिथ्यादृष्टि चाहे तो पंच महाव्रत पालता हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो, शरीर से आजीवन ब्रह्मचर्य पालता हो तो भी उसे कुशीली कहा जाता है। क्योंकि जो आत्मा का ब्रह्म आनन्दस्वभाव शील, उसका जिसे सेवन नहीं, उसे तो वह राग का सेवन है। शुभराग हो, उसका सेवन है, वह भी कुशील है, ऐसा कहते हैं।

सम्यग्दर्शनादिक है, वह तो शील ही के परिवार पहिले कहे ही हैं... तो शील में चारित्र आया उसमें। और चारित्र तो पुरुष को ही होता है। स्त्री को या गाय, भैंस आदि को चारित्र नहीं होता। होना चाहिए न, ऐसा हो ? ...अर्थात् ? इसकी दृष्टि में तो आना चाहिए न कि पुरुष का देह हो, उसे ही मोक्ष का पुरुषार्थ हो सकता है। ऐसा इसकी श्रद्धा में तो आना चाहिए न ? समझ में आया ? पोपटभाई ! लो, ऐसा है। यह तो शीलपाहुड़ की रचना वर्तमान पंचम काल के लिये की है न, तो पंचम काल के प्राणी विरुद्ध मान ले कि स्त्री का देह हो और साधु हो जाये, साधु हो तो मोक्ष (हो जाये)।

मुमुक्षु : ...होवे तो भले हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता ही नहीं। कहाँ से हो ? साधु हो नहीं, फिर मोक्ष कहाँ से हो ? ऐसा यहाँ कहना है। चारित्र ही जहाँ होता नहीं स्त्री का देह हो तो। तो उसे फिर मुक्ति कैसे हो ? ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : अपने ऐसे झगड़े में किसलिए पड़ना।

पूज्य गुरुदेवश्री : झगड़े की कहाँ बात है? यह वस्तुस्थिति है। ...भाई! ऐसे झगड़े में किसलिए पड़ना? ऐसा (ये) कहते हैं, देखो!

मुमुक्षु : यशोविजयजी ऐसा कहते हैं, उस काल में कहाँ होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस काल में चारित्र होता है या नहीं? चारित्र, वह मोक्ष का कारण है। चारित्र होता है या नहीं? और चारित्र मोक्ष का कारण है। चारित्र स्त्री को नहीं होता, ऐसा सिद्ध करना है। इसलिए उसका मोक्ष नहीं है, ऐसा है।

गाथा-३०

आगे कहते हैं कि शील के बिना ज्ञान ही से मोक्ष नहीं है, इसका उदाहरण कहते हैं –

जइ विसयलोलएहिं णाणीहि हविज्ज साहिदो मोक्खो।
तो सो सच्चइपुत्तो दसपुव्वीओ वि किं गदो णरयं।।३०।।

यदि विषयलोलैः ज्ञानिभिः भवेत् साधितः मोक्षः।
तर्हि सः सात्यकिपुत्रः दशपूर्विकः किं गतः नरकं।।३०।।

यदि विषय लोलुप ज्ञानियों ने मोक्ष साधा हो तो फिर।
दश पूर्व-धारी रुद्र क्यों कर नरक में जन्मा कथन?।।३०।।

अर्थ **– जो विषयों में लोल अर्थात् लोलुप आसक्त और ज्ञानसहित, ऐसे ज्ञानियों ने मोक्ष साधा हो तो दशपूर्व को जाननेवाला रुद्र नरक को क्यों गया ?**

भावार्थ **– शुष्क कोरे ज्ञान ही से मोक्ष किसी ने साधा कहें तो दश पूर्व का पाठी रुद्र नरक क्यों गया? इसलिए शील के बिना केवलज्ञान ही से मोक्ष नहीं है, रुद्र कुशील सेवन करनेवाला हुआ, मुनिपद से भ्रष्ट होकर कुशील सेवन किया, इसलिए नरक में गया, यह कथा पुराणों में प्रसिद्ध है।।३०।।**

गाथा-३० पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि शील के बिना ज्ञान ही से मोक्ष नहीं है, इसका उदाहरण कहते हैं:- देखो! अब इसमें सिद्धान्त सम्यग्दर्शन का देते हैं। यह तो कल अर्थ... भावार्थ थोड़ा (लिया)।

मुमुक्षु : भावार्थ नहीं चला था।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं चला था।

जइ विसयलोलएहिं णाणीहि हविज्ज साहिदो मोक्खो।
तो सो सच्चइपुत्तो दसपुव्वीओ वि किं गदो णरयं।।३०।।

अर्थ :- जो विषयों में लोल अर्थात् लोलुप-आसक्त... आसक्ति का अर्थ दृष्टि। आसक्ति समकिती को होती है, वह आसक्ति यहाँ नहीं। जिसे राग का रंग है। जिसे राग का रस चढ़ा है। वह विषय का लोलुपी है, ऐसा सिद्ध करना है। ज्ञानी को राग होता है परन्तु राग का राग नहीं होता। उसमें सुखबुद्धि उड़ गयी है। इसलिए सम्यग्दृष्टि सुशील है और बाहर से पंच महाव्रत पालनेवाला अन्दर में राग की एकता करनेवाला, उसे कुशीली कहा है। वह कुशील है। जैसा उसका पवित्र स्वभाव भगवान आत्मा का है, ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता ऐसे स्वभाव की एकता, वह सुशील है। उस स्वभाव के साथ छोटे में छोटे राग के कण की एकता, वह कुशील है। समझ में आया?

जो विषयों में लोल अर्थात् लोलुप-आसक्त और ज्ञानसहित... जानपना हो, नौ पूर्व का क्षयोपशम हो, परन्तु वह क्षयोपशम ज्ञान की एकतावाला नहीं, राग की एकतावाला है, इसलिए उस ज्ञान से मोक्ष नहीं होता। समझ में आया? **विषयों में लोल अर्थात् लोलुप-आसक्त और ज्ञानसहित ऐसे ज्ञानियों ने मोक्ष साधा हो तो दश पूर्व को जाननेवाला रुद्र नरक को क्यों गया?** दस पूर्व का ज्ञान। भले थोड़ा न्यून हो, दस पूर्व में, तथापि ज्ञान का इतना तो विकास। दस पूर्व के अन्दर जितना। परन्तु शील नहीं, वह राग के साथ एकतावाला ज्ञान था। परविषय जो वस्तु है राग, जिसके साथ एकतावाला ज्ञान, इसलिए वह ज्ञान, ज्ञान नहीं कहा जाता। समझ में आया? भारी मार्ग वीतराग का।

ज्ञानियों ने मोक्ष साधा हो... अर्थात् क्या? अकेला जानपना आया तो जानपना ज्ञेय को बताता है इतना। अन्तर में स्वभावसन्मुख का आश्रय होकर स्वविषय बनाया नहीं, वह ज्ञान, अज्ञान है। राग को विषय बनाया हुआ ज्ञान है। समझ में आया?

मुमुक्षु : उसमें कुछ दिखा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लिखा है न, यह क्या लिखा? अर्थ। आयेगा उसमें। मिथ्यात्व कषाय। ३१ गाथा में आयेगा। **मिथ्यात्व कषाय का मिटना ही शील है।** समझ में आया? वस्तु यहाँ नरक में शील सिद्ध करना है, यहाँ तो। वह बाद में आयेगा ३२ में। नरकगति में समकिती शीलवान है। और महाव्रतधारी साधु राग की एकतावाला कुशीली है। ऐई! प्रकाशदासजी! गजब बातें। मार्ग तो ऐसा है, ऐसा है। किसी के लिये कुछ दूसरा हो जाये?

कहते हैं, दस पूर्व का जाननेवाला हो। क्षयोपशम, वह समुद्र। परन्तु जहाँ स्वरूप के अनुभव की दृष्टि नहीं और राग की एकता के अनुभव की दृष्टि है तो उसके बिना भी उसकी मुक्ति नहीं होती। आहाहा! चन्दुभाई! यह यहाँ लेना है, हों! परलक्ष्यीज्ञान दस पूर्व का हो गया, तथापि राग का विकल्प सूक्ष्म है, उसके साथ एकता का कुशीलपना इसने छोड़ा नहीं, इसलिए ऐसे ज्ञानी का भी मोक्ष नहीं होता। अर्थात् उसे समकित नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जैसे कषाय की मन्दता उग्र हो तो भी उसकी एकताबुद्धिवाले को सम्यग्दर्शन नहीं, इसलिए कुशीली है, इसी प्रकार ज्ञान की दस पूर्व की ऋद्धि प्रगट हुई हो, परन्तु जिसे अन्तर राग की एकता है अथवा वह परलक्ष्यीज्ञान, वह मेरा ज्ञान है, ऐसी एकताबुद्धि है। आहाहा! समझ में आया? परलक्ष्यीज्ञान, वह कुशील है। आहाहा! चैतन्य भगवान शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु की अन्तर में दृष्टि होकर जो ज्ञान हो, उस ज्ञान को सुशीलज्ञान और मोक्ष का कारण कहते हैं। जानपना बहुत है, इसलिए मोक्ष के मार्ग में है, ऐसा नहीं है—ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया?

जैसे कषाय की मन्दता बहुत हो तो वह मोक्ष के मार्ग में है, ऐसा नहीं है। उसी प्रकार यहाँ ज्ञान का उघाड़ बहुत हो, परन्तु अन्तर में भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रस प्रभु, उसकी सन्मुखता हुई नहीं। स्वभाव की विमुखता होकर ऐसे दस पूर्व के ज्ञान की भूमिका में राग की एकता पड़ी है, इसलिए वह मुक्ति का कारण नहीं है। वह

कुशील ज्ञान है। आहाहा! कठिन बात, भाई! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली तो ठेठ को स्पर्श करे ऐसी है। आहाहा! जैसे अकेली शुभक्रियावाला मुक्ति का अधिकारी नहीं, उसी प्रकार अकेला शुष्कज्ञानी भी मोक्ष का अधिकारी नहीं। ऐसा सिद्ध करना है। अहो! अनाकुल आनन्द की मूर्ति प्रभु ऐसे आनन्द का स्वभाव, जिसके सन्मुख होकर प्रगट हुआ नहीं, उसे नव पूर्व का ज्ञान भी कुशील और अज्ञान कहा जाता है। कहो, पण्डितजी! गजब बात, भाई!

कोरे ज्ञान ही से मोक्ष किसी ने साधा कहें तो दस पूर्व का पाठी रुद्र नरक क्यों गया ? लो, ठीक! कोरा ज्ञान अर्थात्? जिसमें सम्यग्दर्शन सम्मिलित नहीं है, जिसमें स्वद्रव्य का आश्रय लिया नहीं है। आहाहा! **कोरे ज्ञान ही से मोक्ष किसी ने साधा कहें...** यह होती है न बाहर की चर्चा, वार्ता बड़ी मानो होशियार... ओहोहो! यह मानो ज्ञान है और यह मोक्ष का मार्ग है। ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा ज्ञान का उघाड़ तो अनन्त बार हुआ है। नौवें ग्रैवेयक गया, नौ पूर्व का ज्ञान अनन्त बार हुआ, परन्तु वह तो कुशीलवान है। जो ज्ञान स्व को स्पर्शा नहीं, चैतन्य भगवान आनन्दकन्द प्रभु को जिसने ज्ञान का विषय बनाकर स्पर्श नहीं किया, वह ज्ञान कुशील है। ऐसे ज्ञान से यदि मुक्ति हो, तब तो वह रुद्र नरक में कैसे गया? **दस पूर्व का पाठी रुद्र नरक क्यों गया ?** दृष्टि में मिथ्यात्व था। आहाहा! विषय अर्थात् राग में जिसका रस था, मोहरस में-राग में पड़ा था। वह उघाड़ का ज्ञान उसे किंचित् तारने को समर्थ नहीं हुआ।

जिसे अन्दर में सूक्ष्म भी राग की मिठास है, ऐसा कहते हैं मूल तो। ज्ञानी को राग होता है परन्तु उसकी मिठास नहीं है। निरुपाय से अन्दर जुड़ जाता है। समझ में आया? पूरा चलता नहीं, स्थिरता होती नहीं। इसलिए ऐसा भाव आ जाता है। उसमें एकताबुद्धि नहीं है। अन्तर निषेध... निषेध... निषेध... समझ में आया? कठिन मार्ग, भाई! ऐसा मार्ग! प्रवीणभाई!

कोरे ज्ञान ही से मोक्ष किसी ने साधा... कोरा ज्ञान अर्थात्? जिसने आत्मा के आनन्द का स्पर्श नहीं किया, सम्यग्दर्शन नहीं है, स्व का आश्रय किया नहीं। समझ में आया? उसे ऐसे ज्ञान के उघाड़ में तो अभिमान हो जाता है (कि) हम भी जानते हैं। वह कुशीलपना है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली ठेठ को तोड़ डाले ऐसी।

विपरीतता की जरा भी ऊंधाई हो तो कहे, तेरा ज्ञान सब उल्टा। अन्तर द्रव्य का स्पर्श किया नहीं, द्रव्य की ओर जो झुका नहीं, भले अल्प ज्ञान हो परन्तु द्रव्य सन्मुख के झुकाव का ज्ञान नहीं तो उस ज्ञान को हम ज्ञान ही नहीं कहते। परद्रव्य से भिन्न आया न उसमें ? आतमरुचि भला है... पश्चात् ?

मुमुक्षु : आपरूप को जानपनो...

पूज्य गुरुदेवश्री : 'आपरूप को जानपनो...' भाई ! छहढाला में आता है।

मुमुक्षु : परद्रव्य से भिन्न आत्मरुचि सम्यक्त्व भला है...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहना है। आपरूप को जानपनो ज्ञान, वह जानपना भला है। आहाहा ! ....भाई ! मार्ग कोई अलग है। यह मार्ग जिसे सुनने को भी नहीं मिलता और उल्टे रास्ते चढ़ गया, उसे वापस (मुड़ना कठिन है)। भाई ने कहा नहीं कल ?

मन मृगलाने पाछा वाळजो रे लाल...
सरोवर कांठे रे मृगला तरस्या रे लाल...
झांझवाना पाणीमां झांवा नाखे...

झांझवा के पानी में। रमेश ने वहाँ... कागज अभी ले गया। कहाँ गया ? वह ले गया भाई अभी अतुल। कहीं उसके हाथ में आया तो कहे मैं ले जाऊँ। बुआ को लिखना होगा। है ? नहीं। यह देशी भाषा अपने को आती नहीं परन्तु उसने... ओहोहो ! अन्तिम बोला था। लड़का है न ? वह अपना भजनवाला, भाई ! भजनमण्डली नहीं ? घाटकोपर। कमल-कमल।

सरोवर कांठे मृगला तरस्या रे लोल...
दोड़े हाँफे झांझवाना जलनी काज
अरे रे साचा वारी अेने न मणे रे लोल।

वारी (अर्थात्) पानी।

साचा पाणी रे अेने नहि मणे रे लोल।
अेम मनना ते मृगलाने पाछा वाळजो रे लोल।

मृगला मनना मृगलाने पाछा वाळजो रे लोल।
दोरी आतम सरोवर वाट....

चैतन्य सरोवर आनन्द के ज्ञान से भरपूर भगवान, वहाँ जोड़ दे न भाई! इस मन के मृग में यह उघाड़ हुआ और वहाँ जोड़ा है, वह कहीं ज्ञान नहीं है, ऐसा कहते हैं। यहाँ पढ़कर, सुनकर बराबर रच देता है वह। ऐसा होशियार है। यह जब बोला परसों दोपहर में मन्दिर में। परसों नहीं, परसों तो यहाँ आया, उस दिन। परन्तु वह तो गड़गड़ाहट करे। कण्ठ की ऐसी देशी कोई है... अपने को तो विशेष कुछ आता नहीं। परन्तु वह तो अन्तिम शब्द करके वापस उस ओर के पहले के साथ ऐसा मिला देता है ऐसा कुछ। ऐसा कहा न? देखो न! 'अेम मृगला मनना ते मृगलाने पाछा वाळलो रे लोल।' ऐसे बाहर है, उसे अन्दर ला न, भाई! 'जोडी दो आतम सरोवर... अेने मळशे...' उसके साथ वापस रचता है। 'अेने मळशे आतमसुख अमूला रे लोल।' यह सब बहिनों ने लिख लेना। फिर बोलना सब सीखना। है अच्छा, हों!

मुमुक्षु : आत्मधर्म में छाप देना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।

मिथ्यात्व मूण अंतरे पड्या रे लोल।
डाखला तोडे वृक्ष न सुकाय,
मिथ्यात्व मूण अंतरे पड्या रे लोल,
डाखला तोडे वृक्ष न सुकाय।
तमे लेजो सम्यक् कुहाडी हाथमां रे लोल। है न?
ते मार्ग जुदा जगतथी संतना रे लोल।
अे मार्ग जुदा जगतथी संतना रे लोल।
जगत साथ मींढवणी न थाय। जगतनी साथे मींढवणी न थाय।*

●●●

* यह प्रवचन 31 मिनिट का ही उपलब्ध है।

गाथा-३२

आगे कहते हैं कि यदि नरक में भी शील हो जाय और विषयों में विरक्त हो जाय तो वहाँ से निकलकर तीर्थंकर पद को प्राप्त होता है –

जाए विसयविरत्तो सो गमयदि णरयवेयणा पउरा।
ता लेहदि अरुहपयं भणियं जिणवड्ढमाणेण।।३२।।

यः विषयविरक्तः सः गमयति नरकवेदनाः प्रचुराः।
तत् लभते अर्हत्पदं भणितं जिनवर्द्धमानेन।।३२।।

यदि विषय से हो विरक्ति तो प्रचुर नारक वेदना।
सहते निकल अरहंत पद पाते जिनेश्वर ने कहा।।३२।।

अर्थ – विषयों से विरक्त है, सो जीव नरक की बहुत वेदना को भी गँवाता है, वहाँ भी अति दुःखी नहीं होता है और वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होता है, ऐसा जिन वर्द्धमान भगवान् ने कहा है।

भावार्थ – जिनसिद्धान्त में ऐसे कहा है कि तीसरी पृथ्वी से निकलकर तीर्थंकर होता है, यह भी शील का माहात्म्य है। वहाँ सम्यक्त्व सहित होकर विषयों से विरक्त हुआ भली भावना भावे, तब नरक वेदना भी अल्प हो जाती है और वहाँ से निकलकर अरहंतपद प्राप्त करके मोक्ष पाता है, ऐसा विषयों से विरक्तभाव वह शील का ही माहात्म्य जानो। सिद्धान्त में इस प्रकार कहा है कि सम्यग्दृष्टि के ज्ञान और वैराग्य की शक्ति नियम से होती है, वह वैराग्यशक्ति है, वही शील का एकदेश है, इस प्रकार जानना।।३२।।

प्रवचन-१९३, गाथा-३२-३३, सोमवार, माघ कृष्ण १२, दिनांक २२-०२-१९७१

३२वीं। **नरक में भी शील हो जाये और विषयों से विरक्त हो जाये तो वहाँ से निकलकर तीर्थंकर पद को प्राप्त होता है** :- नरक में भी शील है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : तीर्थंकर होवे उसे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! सब जीव को। तीर्थंकर हो, उसे हो। यह तो ऐसा माहात्म्य बताते हैं। नरक में भी आत्मा का अनुभव और आत्मा की अन्तर विषय की दृष्टि की है, उसे यहाँ शील कहा जाता है। अनन्तानुबन्धी का अभाव है न? स्वरूप की दृष्टि है पूर्ण आनन्द शुद्ध और अनन्तानुबन्धी के अभाव का आचरण है। कितने ही कहते हैं न चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण नहीं होता। पण्डितजी! यहाँ तो कहते हैं, शील है। चौथे गुणस्थान में शील है। देखो!

जाए विसयविरत्तो सो गमयदि णरयवेयणा पउरा।
ता लेहदि अरुहपयं भणियं जिणवड्ढमाणेण ।।३२।।

अर्थ :- विषयों से विरक्त है... इसका अर्थ क्या? विषय अर्थात् रागादि परवस्तु, उससे जिसने दृष्टि फिरायी है, वह विषय से विरक्त है। विषय की आसक्ति होने पर भी विषय से समकिती विरक्त ही है। क्योंकि सम्यग्दर्शन में पूर्ण आत्मा शुद्ध आनन्द ऐसी जो दृष्टि हुई है, उसमें अनन्तानुबन्धी के क्रोध, मान—द्वेष; माया, लोभ—राग का अभाव हुआ है। इतना सम्यग्दर्शनसहित नरक में भी उस जाति का शील होता है। है इसमें? समझ में आया? **विषयों से विरक्त है...** व्याख्या यह है, विषय से विरक्त का अर्थ।

मुमुक्षु : नरक में कुछ खाने-पीने का, सोने का, बैठने का...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकल्प है न जो राग, उससे विरक्त है, वह विषय से विरक्त है, ऐसा कहना है। समझ में आया? स्वविषय की दृष्टि जहाँ हुई, इसलिए परविकल्प से लेकर पूरी दुनिया से धर्मी की दृष्टि विरक्त है। गजब बात, भाई! समझ में आया? '**विसयविरत्तो**' पहले यह शब्द आ गया है। मुनि के लिये '**विसयविरत्तो**' आया था। २१६ पृष्ठ पर है। यहाँ नारकी जीव का आता है। शब्द तो वह के वह हैं। २१६ पृष्ठ पर है, देखो! '**विसयविरत्तो**' ७९ गाथा है।

विसयविरत्तो समणो छद्दसवरकारणाइं भाऊण।
तित्थयरणामकम्मं बंधइ अइरेण कालेण।

देखो! यहाँ ऐसा कहा। साधु विषय से विरक्त है। यह सोलह प्रकार की भावना का विकल्प होता है, इससे उसे तीर्थंकरगोत्र बँध जाता है। देखो! वह विषय से तो

विरक्त है। आहा! समझ में आया? समकिती... अपने आया था, नहीं? समयसार में। निश्चय में लीन है और व्यवहार से मुक्त है। गजब भाई! समझ में आया? सम्यग्दर्शन अर्थात् पूरा चैतन्य का महा पहाड़ जिसने श्रद्धा-ज्ञान में उठाया है। और जिसे परसन्मुख की पीठ हो गयी है। स्व के ओर की सन्मुखता में विकल्प से लेकर पूरी दुनिया के प्रति उपेक्षा और विरक्तपना दृष्टि में और वर्तमान दशा में वर्तता है। गजब! समझ में आया? लोगों को सम्यग्दर्शन की कीमत नहीं है। बाह्य त्याग करे, उसकी कीमत है, अज्ञान में।

कहते हैं कि नरक के अन्दर भी नारकी जीव, नारकी का जीव। तीसरे नरक तक की यहाँ बात है। तीर्थंकरगोत्र होता है न, बाहर निकले इसलिए। आगे में तो तीर्थंकरगोत्र नहीं होता। पहले, दूसरे, तीसरे नरक में गया हुआ जीव, परन्तु यदि वह सम्यग्दर्शन है, आत्मा अखण्ड आनन्द अभेद शुद्ध ऐसी दृष्टि हुई है अनुभव में और उसे तीव्र जो अनन्तानुबन्धी का राग और द्वेष, उससे विरक्त है। समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें तो सम्यग्दृष्टि को दृष्टि में पूरी दुनिया का त्याग है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

विषयों से विरक्त है सो जीव नरक की बहुत वेदना को भी गँवाता है- पहली, दूसरे, तीसरे नरक तक कोई गया हो समकित लेकर। पहले में जाये। परन्तु फिर जाकर वहाँ समकित पावे। कहते हैं कि नरक की तीव्र वेदना को गँवाता है। अर्थात् उसे अनन्तानुबन्धी का राग-द्वेष नहीं है। आहाहा! उसे तीव्र वेदना नहीं होती। आहाहा! वास्तव में तो वह मन्द वेदना है। उससे विरक्त है। अरे! कठिन बात, भाई! समझ में आया?

भगवान आत्मा जहाँ ज्ञान में ज्ञेय हुआ आत्मा, श्रद्धा में श्रद्धायोग्य हो गया। श्रद्धा को आत्मा का आश्रय मिला। वह पर का जो आश्रय था, वह छूट गया। दया, दान, व्रत या शुभभाव का जो आश्रय था, वह छूट गया। तब आत्मा अखण्ड अभेद का आश्रय हुआ, तब उसे सम्यग्दर्शन में पर के ओर की उदासीनता है। राग और सर्व... से हटकर उद-आसन है। उसका आसन लगाया है वस्तु में। आहाहा! समझ में आया?

विषयों से विरक्त.... श्रेणिक राजा अभी नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति

में। परन्तु वे विषय से विरक्त हैं। कठिन, भाई! यहाँ सम्यग्दृष्टि थे और विषय से विरक्त नहीं थे। यह क्या? आसक्ति के राग से विरक्त नहीं थे। परन्तु यहाँ सम्यक्त्व हुआ, तब से पूर्णानन्द अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, अनन्त... अनन्त... अनन्त गुण का स्वभाव शुद्ध का पिण्ड, उसका जहाँ अनुभव होकर प्रतीति हुई, तो उसके अतिरिक्त का कोई भी विकल्प हो, पूरी दुनिया चौदह ब्रह्माण्ड, उन सबसे धर्मी का-समकिती का जीव विरक्त है। समझ में आया? यह चीज़ क्या है, इसका लोगों को माहात्म्य नहीं है। और बाहर से कहे कि यह छोड़ा, त्यागा, स्त्री छोड़ी, पुत्र छोड़े। वे तो छूटे हुए ही पड़े थे। छोड़ा है, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा!

अन्तर में भगवान आत्मा जिसके गुण की संख्या का पार नहीं और एक-एक गुण के अनन्त सामर्थ्य का पार नहीं। क्या कहा, समझ में आया? जिसकी शक्ति अर्थात् गुण आत्मा का, उसकी संख्या का पार नहीं। ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं और एक-एक शक्ति का अपरिमित बेहद शक्ति सामर्थ्य है। ऐसे अनन्त सामर्थ्यवाली शक्ति का एकरसरूप द्रव्य, उसकी जहाँ दृष्टि हुई, कहते हैं कि उसे अपने अतिरिक्त पूरी दुनिया जो है, उससे तो समकिती विरक्त है। समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है, भाई! नहीं वह? श्वेताम्बर की चर्चा। ऐसा कि यह वस्त्र छोड़े नहीं, तो ऐसा कि आसक्ति छूटी नहीं, उसकी उस प्रकार की। यदि ऐसा तुम कहो कि पर का त्याग। तो पर का त्याग सम्यग्दृष्टि में सब त्याग हो गया है। परन्तु आसक्ति का त्याग नहीं, तब तक उसे साधुपना नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं न। पाँचवें अध्याय में सिद्ध करते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उन्होंने तो कहा हो। परन्तु इन्होंने तो स्पष्टीकरण करके कहा है। मोक्षमार्ग है। वहाँ है पाँचवाँ, अभी याद आ गया।

क्या कहा? कि मुनि को यदि वस्त्र-पात्र नहीं छूटे, तो वस्त्र-पात्र के प्रति राग छूटा नहीं, तो वह मुनि नहीं। तब कहे, उन्होंने तो छोड़ा है। क्या छोड़ा है? पर की ममता। ऐसा सामनेवाले का तर्क है। पर मेरे हैं, ये ममता तो सम्यग्दर्शन में ही छूट गयी है। राग, वस्त्र, स्त्री मेरे हैं, यह तो दृष्टि सम्यक् हुई, तब से छूट गयी है। ऐसी ममता तो

समकिती को होती नहीं। परन्तु जिसे आसक्ति की जो ममता है, वह जब तक न छूटे, तब तक उसे मुनिपने की प्राप्ति नहीं होती। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, उस आसक्ति के त्याग की यहाँ बात नहीं है। आसक्ति का आश्रय और दृष्टि छूट गयी है। समझ में आया? एक ही परमात्मा अपना निर्मल पूर्ण स्वभाव, उसका ही जहाँ आश्रय लेकर परिणमन सम्यक्त्व का हुआ (तो) कहते हैं कि वह जीव नरक में हो तो भी उसे नरक की तीव्र वेदना का वेदन नहीं है। क्योंकि वहाँ गँवाया है, तीव्र वेदन। जो वह राग और द्वेष तीव्र अनन्तानुबन्धी के थे, वह तो मिथ्यात्व के साथ गये हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **विषयों से विरक्त है, सो जीव नरक की बहुत वेदना को भी गँवाता है:-** श्रेणिक राजा। पहले नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति है, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार का वचन है। वह तो अपने ज्ञान, आनन्द आदि दशा में वह आत्मा है। राग में और क्षेत्र में है नहीं। कठिन काम भाई! आहाहा! परन्तु निमित्तपना वहाँ है, यह बतलाने के लिये ऐसी शैली होती है। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में श्रेणिक राजा नरक में हैं। आहाहा! यह सब कथन संयोगों में, कहाँ संयोग कितना है, यह बतलाना है। बाकी सम्यग्दृष्टि तो परक्षेत्र, परकाल, परभाव, विकल्प पूरी दुनिया से अन्तर्दृष्टि में विरक्त है। उसमें—पर में है ही नहीं। आहाहा! पण्डितजी! गजब बात, भाई! अज्ञानी कुछ भी विकल्प से और राग से निवृत्त ही नहीं हुआ। वह पूरी दुनिया की प्रवृत्ति में पड़ा है। जिसे राग का रस और प्रेम है, वह पूरी दुनिया की प्रवृत्ति में पड़ा है। उसने आत्मा को छोड़ दिया है।

मुमुक्षु : जंगल में होवे तो भी?

पूज्य गुरुदेवश्री : जंगल में नग्न होकर बैठा हो। अट्ठाईस मूलगुण पालता हो और नग्नमुनि दिगम्बर द्रव्यलिंगी हो जैन का, तो भी पूरी दुनिया को चिपटा है वह। कुछ जरा भी त्याग नहीं और विरक्त नहीं। अरे भाई बहुत।

मुमुक्षु : ...एकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकता है न यह। ऐसा है नहीं और ऐसा है।

कहते हैं, **विषयों से विरक्त है...** वह नरक का जीव। नारकी विषय से विरक्त है। उसका अर्थ क्या ? यह भगवान वर्धमान प्रभु कहते हैं। देखो ! है शब्द ? इसलिए तो यह कुन्दकुन्दाचार्य को शब्द भगवान का डालना पड़ा। '**जिणवड्ढमाणेण भणियं**' महावीर परमात्मा तीर्थंकरदेव ने ऐसा कहा है कि नरक में रह हुआ परन्तु जो आत्मदर्शन है, आत्मज्ञान है, आत्म अनुभव है, वह समकित है तो उस नरक की तीव्र वेदना से उसने वेदना गँवायी है। और वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होनेवाले हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

जीव नरक की बहुत वेदना को... शब्द पड़ा है न ? '**पउरा गमयदि णरयवेयणा**' प्रचुर वेदना गँवाता है। थोड़ी है, तथापि उससे तो दृष्टि से तो विरक्त है। परन्तु अस्तिपना थोड़ा धराता है। समझ में आया ? **वेदना को भी गँवाता है-वहाँ भी अति दुःखी नहीं होता...** आहाहा ! सम्यग्दर्शन अर्थात् क्या ? दुनिया को कुछ उसकी (कीमत नहीं है)। बाहर में यह देव-गुरु-शास्त्र को मानो, छह काय जीव को मानो, नव तत्त्व को मानो- हो गया समकित। अब ले लो व्रत और तप। यह चारित्र।

मुमुक्षु : ऐसा ही उपदेश है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अभी ऐसा ही उपदेश है। अभी चलता है न। आहाहा ! भाई ! वर्धमान तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ महावीर का यह उपदेश नहीं।

महावीर परमात्मा तो ऐसा कहते हैं कि जिसे आत्मा के स्वभाव का अनन्त... अनन्त... अनन्त... बेहद स्वभाव और बेहद शक्तियों का एकरूप ऐसा परमात्मा जिसे श्रद्धा-ज्ञान में मिला, श्रद्धा-ज्ञान में जिसे ऐसा परमात्मा प्राप्त हुआ, उस परमात्मा की भेंट से, पूरी दुनिया से जिसकी एकता छूट गयी है। वजुभाई ! आहाहा ! अरे ! वस्तु के स्वरूप की मूल चीज़ न समझे और इसे धर्म हो जाये ? ऐसे का ऐसा अनन्त काल से ठगाया है।

कहते हैं कि **वहाँ भी अति दुःखी नहीं होता और वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होता है...** देखो ! क्योंकि नरक में भी तीव्र वेदना की ओर का भाव छूट गया है और आत्मा के आनन्द का वेदन प्रगट हुआ है। आहाहा ! सम्यग्दृष्टि को नरक में भी अनन्त

गुण का पिण्ड, उसका प्रत्येक का अंश प्रगट-व्यक्त वेदन में आ जाता है। आहाहा! समझ में आया? शक्तिरूप से तो है ही न, वह तो अभव्य को भी है और मिथ्यादृष्टि को भी है। आहाहा! परन्तु वह वस्तु जो है, उसकी दृष्टि को अन्तर्मुख होने से, उन जितने गुणों की संख्या है, उनका प्रगट अंश वेदन में आ जाता है।

इसलिए श्रीमद ने कहा न? 'सर्व गुणांश, वह समकित।' परन्तु उसकी व्याख्या समझे नहीं। 'सर्व गुणांश, वह समकित।' आहाहा! तो सर्व गुणांश में चारित्रगुण उसमें नहीं आया भाई? ऐई! सम्यग्दर्शन का अंश आया-श्रद्धा में। अंश है न? पर्याय तो अंश है न? त्रिकाल तो श्रद्धा शक्ति गुण है। चारित्र त्रिकाल है, उसका अंश आया; आनन्द त्रिकाल है, उसका अंश आया; स्वच्छता का अंश आया, प्रभुता का अंश आया। उसे पूरी राग की पामरता और पूरी दुनिया से धर्मी-सम्यग्दृष्टि जीव-चौथे गुणस्थान में... नरक में चौथा गुणस्थान है न? वहाँ तो पाँचवाँ-छठवाँ होता नहीं, तथापि यह कहते हैं कि नरक के विषय से विरक्त, तीव्र दुःख से छूटा है, वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होगा। समझ में आया? यह शील का माहात्म्य है। यह शील, हों! नौ बाड़ से ब्रह्मचर्य पाले, वह नहीं। वह तो पर की विकल्प की जाति है। वह नहीं। आहाहा!

वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होता है, ऐसा जिन वर्धमान ने कहा है। है? कुन्दकुन्दाचार्य को भी अन्दर आधार देना पड़ा। आहाहा! प्रभु! हमें तो तुम्हारे वचन भी प्रमाण हैं। ना, नहीं चलता, ऐसा कहते हैं, हों! यह त्रिलोकनाथ तीर्थंकर वर्धमानस्वामी अन्तिम प्रभु ऐसा फरमाते हैं कि जिसे पर से, राग से, पुण्य से, विकल्प से, शरीर से, पर से विरक्तता हो गयी और स्वभाव में रक्तता हुई, स्वभाव में रक्तता और पर से विरक्तता, ऐसा नरक में (रहा हुआ) समकिती जीव को भी विषय से विरक्त कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

अरे! वीतराग का मार्ग, सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ मार्ग लोगों ने तहस-नहस कर डाला है। कुछ न कुछ मार्ग को रूप दिया। बापू! उनका मार्ग अलग होता है। भाई! देखो न! गाथा कैसी रखी है! आहाहा! वे कहते हैं कि समकित में तो श्रद्धा होती है। दूसरा उसमें ऐसा नहीं होता शीला और यह तीन स्वरूपाचरण और... भाई! यह शील

कहो या स्वरूपाचरण कहो। नीचे दृष्टान्त देंगे। वह निर्जरा का अधिकार आता है न? ज्ञान और वैराग्य की शक्ति समकिती को होती है। भाई! निर्जरा में। यह बात यहाँ मिलाते हैं। चौथे में भी यह होता है, ऐसा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। भले... परन्तु है न, वस्तु है न। मुनि को सर्वदेश है... ओहोहो! अलौकिक दशा!

कहते हैं कि सम्यग्दर्शन आत्मा का भान हुआ, आत्मा की पहिचान हुई, आत्मा के भगवान स्वभाव की भेंट हुई, उसे शील होता है। ज्ञान होता है और शील होता है। पुण्य और पाप से विरक्त है, उसे यहाँ वैराग्य गिनने में आता है। आहाहा! आता है न पुण्य-पाप में? पुण्य-पाप के विकल्प से धर्मी विरक्त है, वैरागी है। वहाँ वैरागी कहा। यह तो सब वह का वह है। समझ में आया? यह तो अन्तर्मुख के मार्ग की बातें, प्रभु! आहाहा! नेमिचन्दजी! बाहर के झगड़-तूफान अरे प्रभु! ऐसा सच्चा हो तो कहे नहीं, वह तो श्रद्धामात्र है और वह भी समकिती तब कहलाये कि बाह्य विषय का त्याग करे तो समकिती कहलाये। और ऐसा कहे। ७२ गाथा कर्ताकर्म (अधिकार, समयसार) की आती है न, परन्तु वह तो अभिप्राय से विरक्त है, ऐसा वहाँ कहना है। जैसे यहाँ कहना है, वैसा ही वहाँ कहना है। इसका अर्थ रतनचन्दजी यह करते हैं। ७२ गाथा है न उसमें। विषय से न निवृत्ते तो वह ज्ञानी नहीं। परन्तु उसका अर्थ क्या? (विषय से निवृत्त) हुआ है। विषय अर्थात् परवस्तु के राग को ध्येय बनाया था, उसे बदल डाला है। वह विषय से विरक्त कहा जाता है। आहाहा! शब्द के अर्थ में अन्तर, भाव में अन्तर, इसलिए सब पूरा बदल जाये। चक्र फिर जाता है। समझ में आया?

यह जिन वर्धमान भगवान ने कहा है। भगवान ने इससे अलग भाषा है न? भगवान ने कहा है। ऐसा परमात्मा त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ प्रभु, उन्होंने तीन काल-तीन लोक देखे हैं, उन्होंने यह कहा है। कोई कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं या हमने कहा है, ऐसा नहीं, यह तो वर्धमान भगवान ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भावार्थ :- जिनसिद्धान्त में ऐसा कहा है कि तीसरी पृथ्वी से निकलकर तीर्थंकर

होता है... तीसरे नरक में से निकलकर तीर्थंकर होता है। समझ में आया? चौथे फिर नहीं होता। चौथे में निकला हुआ केवल(ज्ञान) पाता है, तीर्थंकर नहीं होता। पाँचवें का निकला हुआ साधु होता है, केवल(ज्ञान) नहीं पाता। छठवें का निकला हुआ श्रावक हो परन्तु साधु नहीं होता। ऐसी सब उसकी मर्यादायें हैं। समझ में आया? सातवें का निकला हुआ मनुष्य नहीं होता। तिर्यंच होता है। आहाहा! ऐसा जितना-जितना पाप का तीव्र वेग के कारण गया है, उसके प्रमाण में निकलने की गति में भी अन्तर है। आहाहा!

जिनसिद्धान्त में ऐसा कहा है कि तीसरी पृथ्वी से निकलकर तीर्थंकर होता है... नरक में से निकलकर तीर्थंकर होता है। यह पहले नरक में से तो निकलकर होंगे। श्रेणिक राजा आगामी चौबीसी में पहले त्रिलोकनाथ तीर्थंकर (होनेवाले हैं)। जिनकी माता के गर्भ में आने से पहले छह महीने तो इन्द्र उनकी माँ की सेवा करेंगे। सब गाँव साफ करेंगे। बड़े महापुरुष आवे, तब जैसे गाँव साफ करते हैं न? वैसे पूरे इन्द्र आकर, हों! आहाहा! वे नरक में हैं अभी श्रेणिक राजा। वहाँ से निकलकर आगामी चौबीसी के पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं। कहते हैं कि तीसरे नरक से भी निकलकर तीर्थंकर होते हैं।

वह यह शील ही का माहात्म्य है। ऐसा कहते हैं, देखो न! यह शील का माहात्म्य है। स्वरूप स्वभाव का शीलपना प्रगट हुआ है। विभाव का कुशीलपना जिसकी दृष्टि में से टल गया है। समझ में आया? पण्डितजी! गजब व्याख्या, भाई! पुण्य का विकल्प है, दया, दान, व्रत का वह भी विभाव और वह कुशीलपना है। आहाहा! धर्मी जीव को उस कुशीलपने से दृष्टि छूट गयी है। आसक्ति हो, वह तो परचीज़ रूप से है। समझ में आया? यह शील का माहात्म्य है। नरक में से निकलकर भी तीर्थंकर होते हैं और समकित बिना तीर्थंकर होते नहीं। आहाहा! यहाँ पंच महाव्रत पालता हो, नग्न मुनि हो तो भी वह दृष्टि मिथ्यात्व है, राग से लाभ मानता है, दृष्टि में राग ही उसका विषय है। चैतन्य विषय नहीं। तो कहते हैं कि वह यहाँ पड़ा मिथ्यादृष्टि निगोद पन्थ में जाता है। नरक में पड़ा समकिती तीर्थंकरपद में जाकर सिद्धपद में जायेगा। आहाहा! पण्डितजी! अरे! ऐसी बातें परन्तु दुनिया से बहुत उल्टी, हों! दुनिया के गज छोटे, उल्टे और छोटे

सब। उससे माप करे, वह माप नहीं चलता, भाई! परमेश्वर ने कहा, उस गज से नापे तो नाप आता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नाप चाहिए न।

वहाँ सम्यक्त्वसहित होकर विषयों से विरक्त हुआ भली भावना भावे... देखो! धर्मी जीव तो आत्मा समकितसहित है और विषय अर्थात् राग से तो विरक्त है। **भली भावना भावे...** वह राग की भावना नहीं भाता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शुद्ध चैतन्य पुण्य-पाप के विकल्परहित ऐसी जो दृष्टि हुई है, तो वह स्वभाव की भावना करता है। वह राग की भावना नहीं करता। राग है और राग हो, परन्तु राग है, वह ठीक है और राग हो, ऐसी भावना समकिती को नहीं होती। समझ में आया? दूसरा अर्थ लें तो व्यवहार है, वह हो और व्यवहार मेरा बढ़ो, ऐसी भावना नहीं होती। आहाहा! उसकी भावना तो आत्मा आनन्द और शुद्ध है, उसकी शुद्धता बढ़ो। ऐसी भावना-अन्दर एकाग्रता होती है। ओहोहो! भावना फेर से भाव फेर। अज्ञानी राग की भावना (करता है)। क्योंकि चीज़ तो देखी नहीं। वस्तु क्या है, वह तो ज्ञान में आयी नहीं। इसलिए राग ज्ञान में आया है। शुभ, दया, दान, व्रतादि। उसकी उसे भावना है कि यह हो और यह बढ़ो।

मुमुक्षु : शुभभाव बढ़ो।

पूज्य गुरुदेवश्री : बढ़ो। आहाहा! यह तो मिथ्यादृष्टि की भावना है।

सम्यग्दृष्टि अर्थात् वस्तु जैसी है, वैसी शुद्ध चैतन्य, ऐसी दृष्टि होने से उसकी भावना शुद्धता को बढ़ाने की है। इससे **भली भावना भावे...** है। देखा! वह राग की भावना नहीं भाता। आहाहा! नरक में, हों! यहाँ तो कहते हैं। ध्रुव शुद्ध परम आनन्द प्रभु की जहाँ अन्दर दृष्टि हुई अर्थात् वही मेरा स्वरूप है, इसलिए उसे बढ़ाने की शुद्धता की भावना होती है। राग तो घट जाता है। सहज। यहाँ (एकाग्रता) बढ़ने से राग घट जाता है। उसे बढ़ाना और रखना, यह भावना समकिती को नहीं होती। आहाहा! जिसे पर जाना, उसे कैसे मेरा माने? और जिसे पर जाना, उसे बढ़ो और वृद्धि होओ, ऐसा कैसे माने? समझ में आया?

सम्यक्त्वसहित होकर विषयों से विरक्त हुआ भली... नरक में विषय से विरक्त हुआ। अब क्या व्याख्या करेंगे इसमें विषय की? यह विषय के पाँच इन्द्रिय के भोग छोड़े हैं और उसे विरक्ति हुई है? वहाँ कहाँ भोग छूटना और विरक्ति है? ऐसे शब्द के अर्थ ही उल्टे करते हैं कितने ही। यहाँ तो परविषय की रुचि छूट गयी है। चाहे तो शुभराग तीर्थंकरगोत्र का हो, उसकी रुचि छूट गयी है और वह ठीक है, उसे बढ़ो, वह भाव नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

भली भावना भावे तब नरकवेदना भी अल्प हो जाती है... स्वभाव सन्मुख की ही जहाँ भावना है, इसलिए नरक में भी वेदना अल्प रह जाती है। यहाँ ज्ञान कराना है न? वास्तव में वह वेदना इसकी चीज़ में नहीं। वेदना में यह नहीं। यह तो आत्मा में है। परन्तु उसे वेदना थोड़ी है, ऐसा ज्ञान कराकर उसकी अपूर्णता बतलानी है। आहाहा! समझ में आया? गजब मार्ग ऐसा। **भली भावना भावे तब नरकवेदना भी अल्प हो जाती है और वहाँ से निकलकर अरहन्तपद प्राप्त करके मोक्ष पाता है,...** आहाहा! श्रेणिक राजा नरक में है। उसकी शुद्ध भावना है। विकल्पमात्र से दृष्टि में से स्थिरता के अंश में इतनी अस्थिरता भी चली गयी है। इसलिए वहाँ से निकलकर तीन लोक का नाथ होगा। चारित्र नहीं था। यहाँ भी नहीं था और वहाँ भी नहीं है। जिसे चारित्र कहते हैं, वह नहीं था परन्तु यह शील कहते हैं, वह था। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा जीव तीर्थंकर होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थंकर होगा। आहाहा! ऐसा वर्धमान भगवान कहते हैं, देखो न! आहाहा! समझ में आया?

वेदना भी अल्प हो जाती है और वहाँ से निकलकर अरहन्तपद प्राप्त करके मोक्ष पाता है,... अरिहन्त शब्द से यहाँ तीर्थंकर है। समझ में आया? **ऐसा विषयों से विरक्तभाव वह शील का ही माहात्म्य जानो।** देखो! यह राग का भाव जो पुण्य का है, उससे दृष्टि बदल गयी है, उसमें एकत्व रहा नहीं, वही शील और शील का माहात्म्य है। समझ में आया? कहो, वीरचन्दभाई! ऐसा गोष्ठी में तो सुनाई न दे। ३२ वर्ष में आये हों देश में। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई!

मुमुक्षु : ...वर्णन हो सके ऐसा है ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वस्तु अलौकिक है। 'ऐसा मार्ग वीतराग का कहा श्री वीतराग। समवसरण के मध्य में श्री सीमन्धर भगवान।' आहाहा!

कहते हैं कि अरे! एक बार समकित और शील का माहात्म्य तो सुन! आहाहा! यह नरक में भी ऐसे आत्मा का समकित है, आत्मा का आश्रय लेकर हुआ है। वह आश्रय कहेंगे। पाँच आचार में आश्रय आत्मा का है। तो वह पाँच आचार कहे जाते हैं। जिसे विकल्प में पर का आश्रय है, वह वास्तव में आचार है नहीं। यह आयेगा अभी। ३४वीं गाथा में है। ३४ में है। '**सम्मत्तणाणदंसणतववीरियपंचयारमप्पाणं**।' जिसे आत्मा का आश्रय है, ऐसा कहकर शुद्ध आचार बतलाना है। और पाँच आचार जो विकल्पवाले हैं, उसमें आत्मा का आश्रय नहीं। पण्डितजी! वहाँ उसमें तो पर का लक्ष्य है। जिसमें आत्मा का आश्रय नहीं, वह आचार, आचार ही नहीं कहलाता, ऐसा कहते हैं। भाई! समझ में आया? ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य यह पाँच पर्याय में आत्मा का आश्रय होवे तो आचार है। इन पाँच में यदि पर का आश्रय आया तो वह आचार स्व का आचार नहीं है। आहाहा! भारी वर्णन! शीलपाहुड़, लो!

मुमुक्षु : स्वभाव को बताते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव को बताते हैं। देवानुप्रिया! बात तो ऐसी है। मार्ग तो यह है।

सिद्धान्त में इस प्रकार का कहा है कि सम्यग्दृष्टि के ज्ञान और वैराग्य की शक्ति नियम से होती है,... यह निर्जरा अधिकार में कहा न? अस्ति का जहाँ ज्ञान हुआ, वहाँ राग की नास्ति होती ही है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्यघन आनन्द का नाथ, ऐसी अस्ति महासत्ता की जहाँ प्रतीति भान होकर हुई, तब रागादि की उसमें नास्ति होती ही है, ऐसा कहते हैं। आंशिक अस्थिरता रही, वह प्रश्न नहीं। उसमें रागादि की नास्ति ही होती है। आहाहा! अस्तिरूप से ज्ञान हुआ और नास्तिरूप से वैराग्य हुआ। इतना राग का अभाव हुआ। समझ में आया? अरे! ऐसी अस्ति और नास्ति। मार्ग तो ऐसा है, भाई! यह किसी का कल्पित कर माने, ऐसा मार्ग

नहीं है। यह तो परमात्मा वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ इन्द्रों और गणधरों के समक्ष में ऐसा वाणी में आता है। वही वाणी यह है। समझ में आया?

पंच महाव्रत के विकल्प, कहते हैं कि उस राग से तो समकिती विरक्त है। वह राग मेरा (है, ऐसा) मानता नहीं। उसके बदले पंच महाव्रत के विकल्प / राग से धर्म हो, वह चारित्र। गजब किया है। आत्मा को घात करने का गजब किया है। आत्मा... जादवजीभाई! कलकत्ता में छुरा लगता है और मारते हैं, ऐसा कोई कहता था। भाई का पत्र है। जयन्तीभाई का। प्रवीणभाई कहते थे। वह बढ़ गया है। आहाहा! उसके अज्ञान में अराजकता इतनी बढ़ गयी है। भाई कहते थे। बाहर की तरह अराजकता, कोई स्वामी नहीं; उसी प्रकार धर्म की अराजकता इतनी बढ़ी है कि आत्मा स्वामी सिर पर नहीं। आहाहा! उसे सीधे क्रियायें, दया, दान, व्रत, भक्ति, तप जिसमें आत्मा स्वामी नहीं, आत्मा जिसका राजा नहीं, वह तो राग, दोष है। आहाहा! उसमें धर्म माना है और मनाया है, वह धर्म की आराजकता हो गयी है।

पाठ ही ऐसा है न। **सम्यग्दृष्टि के ज्ञान और वैराग्य की शक्ति नियम से होती है,...** वहाँ वैराग्यशक्ति, वह स्वरूपआचरण नहीं? ऐई! है न आंशिक स्वरूप में। प्रतीति यह है, वहाँ इस ओर से हटा है न इतना। पूरे राग के सब भाग से हट गया है। आहाहा! पूरी दुनिया से हट गया है। पूरा अस्तित्व ऐसा महाप्रभु का अस्तित्व जिसमें एक पर्याय की तीन काल जाने, ऐसी अनन्त पर्याय का अस्तित्व जहाँ ज्ञान में है, ऐसे महाअस्तित्व का जहाँ स्वीकार निर्विकल्परूप से हुआ, वहाँ सब रागादि का अन्दर नास्तिरूप से परिणमन है। वह उसका शील है। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि के ज्ञान और वैराग्य की शक्ति नियम से होती है,... ऐसा यहाँ कहा है। निश्चय से होता है। आहाहा! है न, कलश है न, गाथा है। **वह वैराग्यशक्ति...** गाथा में आया न वहाँ पुण्य-पाप के अधिकार में। पुण्य-पाप के विकल्प से वैराग्य, उसे वैराग्य कहना। आता है न। '**विरागसंपत्तो**' सब कहा है समयसार में। ओहोहो! समुद्र भरा है समयसार में। परन्तु उसे समझने के लिये धीरज चाहिए। धीरज चाहिए, धीरज चाहिए। भाई! यह कहीं ऊपर-ऊपर से उतावल से चला जाये और समझ जाये, (ऐसा

मार्ग नहीं है)। आहाहा! धीरज का अर्थ अनन्तानुबन्धी का अभाव। समुद्र का पानी एक सली को छुआकर खाली करना, कितनी धीरज चाहिए? पूरा समुद्र, वह पानी हाथ से नहीं। सली से डुबोकर ऐसे एक बूँद इस ओर लेना। वह समुद्र खाली करना। उतावलिया हो तो कर सकता ही नहीं कुछ। ऐसा भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का समुद्र जिसे अस्ति में लेना है, और राग से जिसे खाली मानना है। समझ में आया?

लो, इसमें तो कहते हैं कि गुरु के आश्रय से धर्म नहीं होता, ऐसा कहते हैं। क्योंकि वे परद्रव्य हैं। परद्रव्य का आश्रय लेने जायेगा तो राग हुए बिना नहीं रहेगा। धर्मी तो उस परद्रव्य के आश्रय से होता राग, उससे विरक्त है। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसी श्रद्धा का जहाँ ठिकाना नहीं, उसे सम्यक्त्व कैसे हो? और उसे अनुभव कैसे हो? आहाहा! क्या हो? समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि के ज्ञान और वैराग्य की शक्ति नियम से होती है, वह वैराग्यशक्ति है, वही शील का एकदेश है... स्पष्टीकरण कितना सरस किया है। सम्यग्दर्शन में वैराग्य होता है। वैराग्य का अर्थ? समझ में आया? पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न पड़ा है। वह वैराग्य। वह शील है। समझ में आया? **ऐसे जानना**। लो! यह है, समयसार में है। वह पुण्य-पाप के अधिकार में नहीं? '**विरागसंपत्तो**' वह वैराग्य कहा है यहाँ। कितनी गाथा? पुण्य-पाप न? पहले होगी शुरुआत में, नहीं? वैराग्य प्राप्त छूटता है, वह। '**रत्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि जीवो विरागसंपत्तो**।' १५०। वह '**विरागसंपत्तो**' की व्याख्या यह है। समझ में आया? **रागी जीव कर्म बाँधता है और वैराग्य को प्राप्त...** देखो! यहाँ विरक्त शब्द प्रयोग किया है, भाई! **वह सामान्यरूप से रागीपने के निमित्तपने के कारण शुभ और अशुभ दोनों कर्म को अविशेषरूप से बन्ध के कारणरूप से सिद्ध करते हैं। और इसलिए दोनों कर्म का निषेध करते हैं**। विरक्त है। अधर्मी, अज्ञानी राग में रत है और स्वभाव से विरक्त है। धर्मी स्वभाव में रक्त है और राग से विरक्त है। सम्यग्दर्शन से लेकर, हों! चौथे से। '**विरागसंपत्तो**' ऐसा लिया। वह '**विरागसंपत्तो**' कहलाता है। यह स्त्री, पुत्र छोड़े, तिरस्कार से भागे, वस्त्र बदले, हो गये वैरागी (यह नहीं)। ऐई! समझ में आया?

गाथा-३३

आगे इस कथन का संकोच करते हैं –

एवं बहुप्पयारं जिणेहि पच्चक्खणाणदरसीहिं।
सीलेण य मोक्खपयं अक्खातीदं य लोयणाणेहिं।।३३।।

एवं बहुप्रकारं जिनैः प्रत्यक्षज्ञानदर्शिभिः।
शीलेन च मोक्षपदं अक्षातीतं च लोकज्ञानैः।।३३।।

यों विविध भाँति कहा जिन प्रत्यक्ष-दर्शी लोक के।
ज्ञाता जिनेन्द्रों ने अतीन्द्रिय मोक्ष पद हो शील से।।३३।।

अर्थ – एवं अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार तथा अन्य प्रकार (बहुत प्रकार) जिनके प्रत्यक्ष ज्ञान दर्शन पाये जाते हैं और जिनके लोक अलोक का ज्ञान है, ऐसे जिनदेव ने कहा है कि शील से-अक्षातीत जिसमें इन्द्रियरहित अतीन्द्रिय ज्ञान सुख है, ऐसा मोक्षपद होता है।

भावार्थ – सर्वज्ञदेव ने इस प्रकार कहा है कि शील से अतीन्द्रिय ज्ञान सुखरूप मोक्षपद प्राप्त होता है, अतः भव्यजीव इस शील को अंगीकार करो, ऐसा उपदेश का आशय सूचित होता है, बहुत कहाँ तक कहें इतना ही बहुत प्रकार से कहा जानो।।३३।।

गाथा-३३ पर प्रवचन

आगे इस कथन का संकोच कहते हैं :- ३३ गाथा।

एवं बहुप्पयारं जिणेहि पच्चक्खणाणदरसीहिं।
सीलेण य मोक्खपयं अक्खातीदं य लोयणाणेहिं।।३३।।

देखो न, कितना जोर देते हैं!

अर्थ :- एवं अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार तथा अन्य प्रकार... यह पूर्व में कहा वह और

विशेष कहना है वह सब। जिनदेव ने कहा है। वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकर भगवान ने कहा है। शील से मोक्षपद है। लो! शील से मोक्ष है। यह पूर्व में कहा, वह शील, हों! ऐसे ब्रह्मचर्य शरीर से पालन करे, वह शील नहीं। आजीवन बालब्रह्मचारी हो तो वह शील नहीं। आहाहा! वह तो विकल्प है, राग है। उसमें आया न कि अनुभूति, वह ज्ञान है। बारह अंग का ज्ञान, वह विकल्प है। आहाहा! कहाँ डाला! यह शरीर का आजीवन ब्रह्मचर्य पालना, वह तो विकल्प है। आत्मा के अन्तर में दृष्टि करके शीलपना अर्थात् शुद्धता प्रगट करना, इसका नाम शील और ब्रह्मचर्य है। समझ में आया?

एवं अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार तथा अन्य प्रकार (-बहुत प्रकार)... शील से मोक्षपद है। कैसा है मोक्षपद? '**अक्षातीतं**' इन्द्रिय से अतीत है। यहाँ इन्द्रिय से अतीत हुई दृष्टि को शील प्रगट हुआ है, उसके फल में इन्द्रिय से अतीत ऐसे मोक्षपद को पाता है। ऐसा कहते हैं। राग और इन्द्रियाँ खण्ड-खण्ड और जड़ तथा उनके सब निमित्त, सबको इन्द्रिय कहा है न? भगवान की वाणी को भी इन्द्रिय कहा है। आहाहा! गजब बात है। भगवान की वाणी आत्मा के लिये इन्द्रिय है। क्यों?-कि इन्द्रिय का विषय है, इसलिए उसे इन्द्रिय कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? अर्थात् जो खण्ड इन्द्रिय, जड़ इन्द्रिय और उसका विषय, उनकी रुचि को छोड़कर जिसने आत्मा को विषय बनाया है, ऐसा जो शीलभाव, सम्यग्दर्शन में रागरहित की इतनी स्थिरता का भाव, वह अतीन्द्रिय पद है। शील। उसका फल अतीन्द्रिय पद मोक्ष है। उसका फल अतीन्द्रिय मोक्षपद है। समझ में आया? यह बातें ऐसी महँगी लगती हैं। आहाहा!

'नहीं रे राचुं रे आतमसारमां...' यह आती है कथा। राजा का कुँवर जहाँ दीक्षित होता है। ऐसे पद्मिनी जैसी स्त्रियाँ, नीचे नीलमणि के... यह क्या कहलाते हैं? टाईल्स। नीलमणि की टाईल्स और पद्मिनी जैसी स्त्रियाँ। माता को कहते हैं, माँ! मुझे कहीं बाहर में चैन नहीं पड़ता। मेरा चैन पड़ने का स्थान मैंने देख लिया है। मेरे स्थिरता का स्थान मैंने देख लिया है। माता! मुझे कहीं चैन नहीं पड़ता। अन्यत्र कहीं मेरी वृत्ति स्थिर नहीं होती। माता! आज्ञा दे, आज्ञा दे। हम वन में चले जायेंगे। आहाहा! भरे घर को छोड़कर... यह भरा खोटा था। भरा घर तो भगवान आत्मा है। उस घर में हम स्थिर होना चाहते हैं, माता! आहाहा! रोवे। माँ! रोना हो तो रो माँ! फिर से हम अवतार नहीं करेंगे, माँ! हम

फिर से अवतार नहीं करेंगे। दूसरी माँ रोवे ऐसा अवतार अब हमारे नहीं होगा। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह वैराग्य अर्थात् यह बाहर का नहीं; भानसहित की बात है। आहाहा! मेरा मूल्यवान क्षण जाता है, माता! मेरे स्वरूप के साधन का काल जाता है, माता, हों! मुझे विलम्ब न कर। माँ कहती है, बेटा! जा उस रास्ते। हमें भी वह रास्ता हो, बापू! आहाहा! माता आज्ञा देकर ऐसा कहती है। भाई! जा, बापू! तेरे स्वभाव के पंथ में जा, भाई! हमें यह पंथ होओ। ऐसा कहकर आज्ञा देती है, हों! नवनीतभाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि धर्मी को समकित में शील प्रगट हुआ है, इतना तो वैराग्य उसे शुरु हो गया है। समझ में आया? उस शील से तो मोक्षपद पायेगा। उससे परपद पायेगा नहीं। तीर्थंकरपद पायेगा, इसका यहाँ इनकार किया है। यहाँ तो मोक्षपद पायेगा। आहाहा! नेमिचन्दजी! आहाहा! ऐसा मार्ग लोगों को सुनने को मिलता नहीं और लोगों को जँचता नहीं। विरोध करे, अरे! भगवान! किसका विरोध करता है, भाई? किसका विरोध है? भाई! तुझे नुकसान है ऐसे काल में। यह तो सत्यस्वरूप ऐसा है। वस्तु की जाति ऐसी है। यह वस्तु की प्रसिद्धि होती है। यह कोई मार्ग हमारा है और पक्ष का है, ऐसी प्रसिद्धि नहीं होती। प्रकाशदासजी! प्रकाशदासजी बहुत बार कहते हैं कि वस्तु का परिचय दिया जाता है। बात सच्ची है। यह तो कोई पक्ष का परिचय नहीं। वस्तु का परिचय दिया जाता है, बापू! वस्तु ऐसी है, प्रभु! आहाहा!

कैसा है मोक्षपद? '**अक्षातीतं**' इसके ऊपर से जरा आया। इन्द्रिय से अतीत। इन्द्रिय से अतीत का जहाँ भान हुआ, वह इन्द्रिय से अतीतपद को ही पायेगा। इन्द्रिय आदि स्वर्गादि के पद को पायेगा नहीं। **इन्द्रियरहित अतीन्द्रिय ज्ञान सुख है, ऐसा मोक्षपद होता है।** इन्द्रिय से रहित अतीन्द्रिय ज्ञान आत्मा का केवलज्ञान, अतीन्द्रिय सुख है, उसे मोक्ष कहते हैं। मोक्ष कहते हैं अर्थात् बैंकुण्ठ में भगवान है और उनके पास जाना, फिर भगवान की भक्ति करना और प्रतिदिन वहाँ थाली में लड्डू मिले। आहाहा!

मुमुक्षु : वहाँ से तो आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आते हैं न। हमारे साधु को आहार-पानी दोगे तो बैकुण्ठ में तुमको आहार-लड्डू मिलेंगे, जाओ। अभी लड्डू रखना है न वहाँ भी। आहाहा! अरे! धर्म की व्याख्या पूरी बदल डाली।

कहते हैं, और कहनेवाले जिनदेव कैसे हैं? ऐसा जो कहनेवाले परमात्मा वीतराग वर्धमान भगवान कैसे हैं? यह तो समुच्चय है पूरा। '**पच्चक्खणाणदरसीहिं**' और '**लोयणाणणेहिं**' लोक का जिसे ज्ञान है और प्रत्यक्ष जिसे ज्ञान हुआ है केवली प्रभु परमात्मा को, वे ऐसा स्वरूप वर्णन करते हैं। आहाहा! **जिनके प्रत्यक्ष ज्ञान-दर्शन पाये जाते हैं...** तीन काल-तीन लोक जिन्हें प्रत्यक्ष है। **और जिनके लोक-अलोक का ज्ञान है....** अन्तिम शब्द है न? '**लोयणाणेहिं**' उसमें आ गया है, हों! परन्तु ऐसा कि लोक के जाननेवाले, वे लोक के जाननेवाले ऐसा कहते हैं। जगत में चीज़ जो जगत में है, उसे जाननेवाले भगवान ऐसा कहते हैं कि स्वरूप की दृष्टि और राग से आंशिक जो स्थिर हुआ, वह शील है और वह शील नरक में हो तो भी वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होता है। ऐसा शील का-सम्यक्त्व का माहात्म्य है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१९४, गाथा-३३ से ३७, मंगलवार, माघ कृष्ण १३, दिनांक २३-०२-१९७१

३३वीं गाथा का भावार्थ। ३३वीं गाथा है न।

भावार्थ :- सर्वज्ञदेव ने इस प्रकार कहा है... सर्वज्ञ परमेश्वर, तीर्थंकर भगवान सर्वज्ञ ने ऐसा कहा है **कि शील से अतीन्द्रिय ज्ञान सुखरूप मोक्षपद प्राप्त होता है...** शील अर्थात् आत्मा शुद्ध पवित्र की दृष्टि और ज्ञान की एकाग्रता ऐसा जो शील। परिपूर्ण शुद्ध स्वरूप जो आत्मा का, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकाग्रता, वह शील। उस शील से—उस शील द्वारा **अतीन्द्रिय ज्ञान सुखरूप मोक्षपद प्राप्त होता है...** उस शील द्वारा अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय सुख ऐसा जो मोक्षपद, वह पाता है। क्योंकि आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप, उसके ऊपर एकाग्र होने से अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय का आनन्द, ऐसा जो शीलस्वभाव प्रगट होता है। उसके द्वारा पूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञान और पूर्ण सुखरूप मोक्षपद को पाता है। कहो, समझ में आया?

वह भव्य जीव... हे भव्य जीवों! **इस शील को अंगीकार करो, ऐसा उपदेश का आशय सूचित होता है;...** ऐसे शील को आदरो। अर्थात् भगवान पूर्ण शुद्ध ध्रुव स्वरूप चैतन्य अतीन्द्रिय, उसे अंगीकार करो। समझ में आया? **शील को अंगीकार करो, ऐसा उपदेश का आशय सूचित होता है;...** ऐसा तो पाठ है न। **बहुत कहाँ तक कहें, इतना ही बहुत प्रकार से कहा जानो।** जो कुछ कहना है, इतना सब इसमें बहुत कहा गया, कहते हैं। आत्मा द्रव्य वस्तु शुद्ध स्वभाव का सागर, पवित्रता की पूर्ण स्थितिवाला तत्त्व, उसका आश्रय करके। आश्रय बाद में लेंगे। ३४वीं गाथा में। परन्तु यहाँ सम्मुच्चय कहा है कि उसका जो स्वभाव, उसे अन्तर में शक्तिरूप से है, उसे श्रद्धा-ज्ञान में प्रगट व्यक्तरूप करना, ऐसा जो शीलस्वभाव, वह अतीन्द्रिय ज्ञान और सुख का रूप जिसका है, ऐसे मोक्ष को पाता है। कहो, व्यवहार के विकल्प से नहीं पाता, ऐसा निषेध नहीं किया परन्तु यह अस्ति से पाता है, ऐसा कहकर उसका निषेध किया है। समझ में आया?

गाथा-३४

आगे कहते हैं कि इस शील से निर्वाण होता है, उसका बहुत प्रकार से वर्णन है, वह कैसे?

सम्मत्तणाणदंसणतववीरियपंचयारमप्पाणं।
जलणो वि पवणसहिदो डहंति पोरायणं कम्मं।।३४।।

सम्यक्त्वज्ञानदर्शनतपोवीर्यपंचाचाराः आत्मनाम्।
ज्वलनोऽपि पवनसहितः दहंति पुरातनं कर्म।।३४।।

हैं आतमा के चरण पाँचों ज्ञान तप सम्यक्त्व बल।
दृग जलाते पूरव करम प्रज्वलित अग्नि पवन-वत्।।३४।।

अर्थ – **सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, तप, वीर्य – ये पंच आचार हैं, वे आत्मा का आश्रय पाकर पुरातन कर्मों को वैसे ही दग्ध करते हैं जैसे कि पवन सहित अग्नि पुराने सूखे ईंधन को दग्ध कर देती है।**

_भावार्थ_ – यहाँ सम्यक्त्व आदि पंच आचार तो अग्निस्थानीय हैं और आत्मा के त्रैकालिक शुद्ध स्वभाव को शील कहते हैं, यह आत्मा का स्वभाव पवन स्थानीय है, वह पंच आचाररूप अग्नि और शीलरूपी पवन की सहायता पाकर पुरातन कर्मबंध को दग्ध करके आत्मा को शुद्ध करता है, इस प्रकार शील ही प्रधान है। पाँच आचारों में चारित्र कहा है और यहाँ सम्यक्त्व कहने में चारित्र ही जानना, विरोध न जानना।।३४।।

गाथा-३४ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि इस शील से निर्वाण होता है, उसका बहुत प्रकार से वर्णन है,... बहुत प्रकार से अर्थात् दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ऐसा। **वह कैसे ? उसका बहुत प्रकार से वर्णन है, वह कैसे ?** वह कैसे है ? उसका कहना ऐसा है। लो, यह शील।

सम्मत्तणाणदंसणतववीरियपंचयारमप्पाणं।
जलणो वि पवणसहिदो डहंति पोरायणं कम्मं।।३४।।

एक तो समकितदर्शन—सम्यक्त्व। यह समकित निश्चय समकित अर्थात् आत्मा अखण्ड सुखरूप ऐसा पूर्ण स्वभाव, उसमें सुखबुद्धि से उत्पन्न होती सम्यग्दर्शन-ज्ञान की परिणति, उसे यहाँ समकित कहते हैं। पुण्य-पाप के विकल्प या पर में सुखबुद्धि का उठ जाना, पर में हितबुद्धि का, सुखबुद्धि का उठ जाना और स्वभाव में सुखबुद्धि का स्थिर होना, उसका नाम यहाँ सम्यग्दर्शन कहते हैं। कैसे है ? श्वास ऐसा कैसे निकलता है ? ...हो जाता है अन्दर से। ...वहाँ कोई ऐसा नहीं होता था। वहाँ तो हर्ष आवे।

मुमुक्षु : प्रिय चीज़ थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रिय चीज़। यह तो कहते हैं, भगवान! यह दया, दान, व्रत के परिणाम हैं, उन्हें प्रिय करना, वह मिथ्यात्वभाव है।

भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन, ऐसा कहा न सीधे-सीधा ? चैतन्य अनन्त शान्ति आदि शक्तियों का भण्डार एकरूप वस्तु, उसके ओर की दृष्टि और संयोग, राग, एक समय की पर्याय की दृष्टि का अभाव। समझ में आया ? और वस्तु के त्रिकाली स्वभाव

की श्रद्धा, निर्विकल्प परिणति ऐसा जो सम्यक्त्व, उसे यहाँ शील कहा जाता है। वह शील। सम्यग्ज्ञान—वह भी आत्मा का जो ज्ञानस्वरूप है, उसका ज्ञान। ज्ञान का ज्ञान। शास्त्र का ज्ञान नहीं, पर का ज्ञान नहीं। भाई नहीं आये?

मुमुक्षु : भावनगर गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावनगर गये हैं। समझ में आया?

आत्मा का ज्ञान। दूसरा ज्ञान-जानपना हो, न हो, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। नव तत्त्व के नाम भी न आते हों।

मुमुक्षु : आप ऐसा कहोगे तो हमें ऐसा हो जायेगा कि नाम सीखने की क्या आवश्यकता?

पूज्य गुरुदेवश्री : सीखने की आवश्यकता का कौन कहता है? सीखना... आवे नहीं? परन्तु नाम सीखा, इसलिए दृष्टि हो जाये और नाम नहीं आते, इसलिए दृष्टि नहीं होगी, (ऐसा नहीं है)। पण्डितजी! ऐसा है?

मुमुक्षु : इसकी सन्मुखता से...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। आत्मा स्वयं ज्ञान-आनन्दस्वरूप है। परमेश्वर स्वयं ही परमेश्वर है। ऐसे परमेश्वर के सामने देखकर प्रतीति करना, अनुभव, इसका नाम ज्ञान है। उस ज्ञान को यहाँ शील कहते हैं। समझ में आया? शील उसका स्वभाव है, स्वभाव है। ओहोहो! त्रिकाल स्वभाव है, उसे स्पर्श कर प्रगट किया भाव, वह शील है। धीर की बातें हैं, भाई! यह तो। आगे ३५वीं (गाथा) लेंगे। धीर। यह कहीं ऊपर से ऐसे मिल जाये बाहर से, ऐसी चीज़ नहीं है।

अन्तर में भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्यकन्द, जिसकी शक्ति का सत्त्व इतना बड़ा है कि जिसमें से अनन्त-अनन्त केवलज्ञान की पर्याय का प्रवाह निकले तो भी वह शक्ति कम नहीं होती। ऐसा उस शक्ति का विशाल पाताल कुआँ है। उसके ऊपर नजर जाना (चाहिए)। ऐसे बाहर में नजर है पर्याय के ऊपर, राग के ऊपर, निमित्त के ऊपर। वहाँ से दृष्टि उठाकर यहाँ द्रव्यस्वभाव में दृष्टि करने से जो ज्ञान होता है, उसे यहाँ ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! शास्त्र पढ़ा हो चाहे जितने। नेमिचन्दजी! मार्ग ऐसा है, हों! बाहर के

व्यवहारवालों को झगड़ा उठे, हों! भाई! व्यवहार तो परवस्तु है। परवस्तु में से स्ववस्तु का प्रगटपना कैसे हो? विकल्प और शुभोपयोग तो व्यवहार है। उसमें से तो विभावपना उत्पन्न हुआ है और विभाव होता है। उससे त्रिकाल स्वभाव और विभाव की एकता ही जिस स्वरूप में नहीं, ऐसे पृथक् स्वभाव को, विभाव से पृथक् स्वभाव अपना, उसके स्वभाव का आश्रय लेने से जो ज्ञान हो, उसे ज्ञान-आत्मा का शील कहा जाता है।

'**णाणदंसण**' समकित लिया, तथापि दर्शन लिया है वहाँ। चारित्र नहीं लिया परन्तु उसमें समाहित कर दिया है। समकित में चारित्र समाहित कर दिया है। **सम्यक्त्व कहने में चारित्र ही जानना,...** ऐसा नीचे अर्थ है। '**दंसण**' तप। इच्छा निरोधरूपी आनन्द की दशा को तप कहते हैं। आहाहा! गजब! इच्छा का अनुत्पन्न होना और आत्मा के आनन्द की तपती दशा प्रतपति-प्रगट होना, उसे यहाँ तप, उसे यहाँ शील कहा जाता है। वीर्य-पुरुषार्थ। वह भी स्वभाव में से जो स्वभाव पूर्ण पुरुषार्थ का पिण्ड है, उसमें से निकली हुई वीर्यदशा, उसे यहाँ वीर्य अथवा उसे आत्मा का पुरुषार्थरूपी शीलस्वभाव कहा जाता है।

कहते हैं कि यह **आत्मा का आश्रय पाकर...** '**मप्पाणं**' है न? '**मप्पाणं**' वह आत्मा अखण्डानन्द प्रभु का आश्रय पाकर यह शीलपना पाता है। उसमें पर का आश्रय नहीं हो सकता। आहाहा! कठिन काम इसका। यह तो दिशा बदलने की बातें हैं। आहाहा! दिशा न बदले, तब तक दशा पलटती नहीं। कहते हैं कि जहाँ भगवान स्वयं है, वहाँ वीर्य का झुकाव होकर जो जागृत पुरुषार्थ की जागृति हो, उस वीर्य को शील कहते हैं और उस शील का आधार आत्मा का है। है? उस **आत्मा का आश्रय पाकर...** ऐसा कहकर '**मप्पाणं**' शब्द पड़ा है न? ऐसा कहकर यह कहते हैं कि पंच आचार जो विकल्परूप व्यवहार है, उसे आत्मा का आश्रय नहीं है। समझ में आया?

ज्ञानाचार आता है न? प्रवचनसार में सब बहुत आता है। वहाँ तो ऐसा कहते हैं कि तेरी कृपा से जब तक न पाऊँ... वहाँ ऐसा आता है, चरणानुयोग में। ऐई! वजुभाई! यह क्या कहना? यह तो व्यवहार के कथनों की शैली-पद्धति है। समझ में आया? कि तेरी कृपा से जब तक पूर्ण न पाऊँ, तब तक तुझे अंगीकार करता हूँ, जानता हूँ कि तू मेरा स्वरूप नहीं है। वापस ऐसा तो लिया न साथ में? लिया है न? आहाहा! विनय से

पढ़ना, ज्ञानाचार आठ, दर्शनाचार आठ, व्यवहार। चारित्राचार। भाई! विकल्प है। वह विकल्प है। जानता हूँ, मेरी जाति नहीं, मेरा स्वरूप नहीं। परन्तु जब तक मैं पूर्णता को न प्राप्त करूँ, तब तक तुझे अंगीकार करता हूँ। अंगीकार अर्थात् कि उसे होता है। समझ में आया? परन्तु उससे पूर्ण पद की प्राप्ति–मुक्ति नहीं है।

आश्रय पाकर पुरातन कर्मों को वैसे ही दग्ध करते हैं... जो ज्ञान, जो दर्शन, जो चारित्र, जो वीर्य, जो तप। उसकी दशा को आत्मा दशावान का आश्रय हो तो वह शीलपने को पाकर मुक्ति का कारण होता है। समझ में आया? कल्याणजीभाई! ऐसा मार्ग है। कठिन, भाई! और वापस मन्दिर (बनाना), पंच कल्याणक (आयोजित करना)... ऐई! डालचन्दजी! कैसा किया अहमदाबादवालों ने। यह तुम्हारी महिमा कल आयी थी। जैनसन्देश में। अहमदाबाद में, मुम्बई में ऐसा पंच कल्याणक किया और कैसा हुआ! भाई कैलाशचन्दजी ने। ऐसा कि यह बहुत अच्छा किया। प्रतिमा, प्रतिमा और मन्दिर देखकर ऐसा पंच कल्याणक... उन्हें ऐसा कि कानजीस्वामी ने जो अभी किया, ऐसा कोई कर नहीं सके, ऐसा करके...

मुमुक्षु : कानजीस्वामी कहते हैं कि मैं तो कर सकता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ किया नहीं। परन्तु उन्होंने ऐसी बात रखी थी, जैनसन्देश में। अहमदाबाद का मन्दिर भी बहुत सुन्दर, प्रतिमा, मन्दिर। पंच कल्याण के समय भी बहुत शान्ति रही। कोई विरोध नहीं। यह तो बाहर ऐसा होनेवाला हो तो होता है। कौन करे और कौन रोके? आहाहा! कहते हैं कि ऐसा हो, तथापि वह आत्मा का कार्य नहीं है। उस काल में परमाणु की पर्याय का परिणमन के स्वकाल में उस रीति से परिणति खड़ी हुई है। वह आत्मा का कार्य नहीं। यह उसके प्रति के प्रेम का शुभराग, वह भी आत्मा का स्वरूप नहीं।

मुमुक्षु : ....बाकी किया तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने किया? सबने इकट्ठे होकर किया था। कल्याणजीभाई ने, शान्तिभाई ने। क्यों मलूकचन्दभाई! इनके लड़कों ने मदद की थी। बापू! कौन करे? भाई! स्वतन्त्र रजकण पदार्थ हैं। उनका उस स्वकाल में उनकी पर्याय हो, उसके काल

में वह रचना हो, उसे दूसरा कौन रचे ? समझ में आया ? भारी कठिन काम। अपनी उपस्थिति में वह हो, परन्तु वह होता है, वह भी अस्तिवाला तत्त्व है या नहीं ? और अस्तिवाला तत्त्व अपने परिणमन के अस्तित्व से होता है। यह उपस्थित है, इसलिए इसके कारण से वह है, ऐसा कहाँ से आया ? समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा के कारण से तो पाँच आचार आवे वे इसके सही। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? इसके आश्रय से राग भी न हो तो बाहर के आचरण तो कहाँ से होंगे ? आहाहा ! प्रकाशदासजी ! प्रतिमा माने नहीं, इसलिए स्थानकवासी प्रतिमा माने, उसे ठीक लगे। और यह प्रतिमा माने और फिर ऐसी बातें करे न, और प्रतिमा बड़ी खड़ी करे। वर्षों बरस बड़े मन्दिर और पंच कल्याणक। कौन करे भगवान ! फतेपुर तीन है। इस काल में... आहाहा ! परमाणु का वह स्वकाल जो परमाणु का उसी क्षेत्र में उसी प्रसंग में होने का। उसे दूसरा कौन करे ? वह आत्मा का आचरण नहीं। वह तो नहीं, परन्तु उसके प्रति का शुभभाव होता है, वह भी आत्मा का स्वरूप आचरण नहीं है। आहाहा ! होवे सही। समझ में आया ?

यहाँ तो '**अप्पाणं**' शब्द पर पूरा वजन है। उन सबको आत्मा का आधार चाहिए। पण्डितजी ! है शब्द ? '**जलणो वि पवणसहिदो**' **जैसे कि पवनसहित अग्नि पुराने सूखे ईंधन को दग्ध कर देती है।** अपने कहते हैं कि जहाँ ला, वहाँ वा। ऐसा नहीं कहते ? ऐसा कहते हैं। सुना है या नहीं ? ऐसा कि अग्नि हो और मौके से हवा निकले। सबको बराबर कर दे। हमारे पालेज में बहुत बार ऐसा होता था। घी के डिब्बे पड़े हों, घासलेट के डिब्बे हों और सुलगे हों, ऐसे हल... हल... हल... भडका बाहर खड़े-खड़े देखें। राणपुरवाले का एक बार सुलगा था। राणपुरवाला नहीं वह ? विशाश्रीमाली नहीं था ? कैसा कहलाता है ? वहाँ मकान है अपना मन्दिर है। वह जगह उसकी थी। वह मकान उसका था पहले। वाडीभाई ने उससे ले लिया। उसके पहले विशाश्रीमाली का था। लो ! वह और प्रश्न रखता है। उसके पहले विशाश्रीमाली का था। वह कैसा था, वह नाम भूल गये। हमारे यहाँ था। राणपुर की दुकान जल गयी बड़ी। राणपुर में सुलगी। वह विशाश्रीमाली की थी। हमने देखा हुआ न। कच्चा मकान था। यह तो बहुत वर्ष पहले की (बात), (संवत्) १९७० की। कैसा नाम कहते कुछ। वह लड़का देवचन्द नहीं ?

भाणेज उसका था। घंटीयो। वह घंटिया के मामा-ननिहाल था। उसका मकान सुलगा था पालेज। हळ... हळ... दो-तीन दुकानें। क्या करो? खड़े-खड़े देखे। वहाँ पानी कहाँ से लाना? छिड़के कहाँ से? होने के काल में होवे, उसे रोके नहीं और वह बुझे नहीं। ऐसे मन्दिर आदि होने के काल में हो, इसके रोकने से रुकते नहीं और करने से होते नहीं। **जैसे कि पवनसहित अग्नि पुराने सूखे ईंधन को दग्ध कर देती है।** ऐसा... क्या?

भावार्थ :- यहाँ सम्यक्त्व आदि पंच आचार तो अग्नि स्थानीय हैं और आत्मा के त्रैकालिक शुद्ध स्वभाव को शील कहते हैं, यह आत्मा का स्वभाव पवन स्थानीय है,... शील वहाँ लिया। त्रिकाली शुद्ध स्वभाव शील है और यह पंचाचार में यह वर्तमान शुद्धता मिलती है, वह भी शीलस्वभाव है। विकल्प नहीं। **आत्मा के त्रैकालिक शुद्ध स्वभाव को शील कहते हैं, यह आत्मा का स्वभाव पवन स्थानीय है, वह पंच आचाररूप अग्नि और शीलरूपी पवन की सहायता पाकर...** ऐसा शब्द चाहिए थोड़ा। यह पंच आचार अर्थात् भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य ध्रुव का आश्रय पाकर जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप हुए, ऐसे जो पंच आचार को आत्मारूप पवन की सहायता प्राप्त कर, ऐसा चाहिए। '**अप्पाणं**' शब्द है सही न। समझ में आया? पंच आचार को तो अग्निस्थानीय कहा। ऊपर नहीं कहा? और पंच आचाररूप पवन की सहायता प्राप्त करके, कहाँ से आया वापस? वहाँ से कहाँ से आया? इस पंचाचार को आत्मरूप **पवन की सहायता पाकर...** ऐसा चाहिए। समझ में आया? शब्द में अन्तर पड़ गया। आहाहा! 'ढिंग धणी का आश्रय हो कहते हैं पाँच आचार को।' आहाहा! द्रव्यस्वभाव वस्तु ध्रुवस्वभाव का जिसे ज्ञान-दर्शन-चारित्र-वीर्य का आश्रय हो, वह कर्म को जलावे, वह निर्जरा करे कर्म की। समझ में आया?

आत्मा को शुद्ध करता है,... बन्ध को दग्ध करके... राग, द्वेष, बन्ध और कर्म जड़। **इस प्रकार शील ही प्रधान है।** भगवान आत्मा के पवित्र स्वभाव का प्रगटपना पवित्रभाव वह शील ही प्रधान है। **पाँच आचारों में चारित्र कहा है...** यहाँ नहीं कहा, कहते हैं। शास्त्र में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य में चारित्र कहा है। यहाँ नहीं कहा। **और यहाँ सम्यक्त्व कहने में चारित्र ही जानना, विरोध न जानना।**

मुमुक्षु : दोनों ले लेना।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों आये। दर्शन अलग किया है न? '**सम्मत्तणाणदंसण-तववीरियं**' डाला है न? दर्शन डाला वापस। समझ में आया? चारित्र भले न कहा हो परन्तु समकित के साथ चारित्र (आ जाता है)। परन्तु कौन सा चारित्र? स्वरूप का आश्रय पाकर स्थिरता और शान्ति प्रगट करे वह। पंच महाव्रत के विकल्प आदि वह चारित्र नहीं। अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प, वह चारित्र नहीं, वह शील नहीं। कुशील है। आहाहा! **विरोध न जानना।**

गाथा-३५

आगे कहते हैं कि ऐसे अष्टकर्मों को जिनने दग्ध किये वे सिद्ध हुए हैं –

णिद्दड्ढअट्ठकम्मा विसयविरत्ता जिदिंदिया धीरा।
तवविणयसीलसहिदा सिद्धा सिद्धिं गदिं पत्ता।।३५।।

निर्दग्धाष्टकर्माणः विषयविरक्ता जितेंद्रिया धीराः।
तपोविनयशीलसहिताः सिद्धाः सिद्धिं गतिं प्राप्ताः।।३५।।

तप विनय शील–सहित जितेन्द्रिय धीर विषय विरक्त जो।
वे अष्ट कर्म विनष्ट कर हो सिद्ध पाते मोक्ष को।।३५।।

अर्थ – जिन पुरुषों ने इन्द्रियों को जीत लिया है, इसी से विषयों से विरक्त हो गये हैं और धीर हैं, परीषहादि उपसर्ग आने पर चलायमान नहीं होते हैं, तप विनय शीलसहित हैं, वे अष्टकर्मों को दूर करके सिद्धगति जो मोक्ष उसको प्राप्त हो गये हैं, वे सिद्ध कहलाते हैं।

भावार्थ – यहाँ भी जितेन्द्रिय और विषयविरक्तता ये विशेषण शील ही को प्रधानता से दिखाते हैं।।३५।।

गाथा-३५ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि ऐसे अष्ट कर्मों को जिन ने दग्ध किये, वे सिद्ध हुए हैं :-

णिद्दड्ढअट्ठकम्मा विसयविरत्ता जिदिंदिया धीरा।
तवविणयसीलसहिदा सिद्धा सिद्धिं गदिं पत्ता।।३५।।

धी—इसमें होगा कहीं है, उसमें अर्थ में। धी—बुद्धि—री। बुद्धि को ध्येय के प्रति प्रेरे, उसे धीर कहा जाता है। धी अर्थात् बुद्धि-ज्ञान। र—प्रेरे। ध्येय के प्रति प्रेरे। बुद्धि को द्रव्य के प्रति प्रेरे। समझ में आया? इसमें तो अर्थ नहीं। दूसरे में आ गया है पहले। इसमें तो नहीं। संस्कृत नहीं। पहले में आ गया है। वीरा और धीरा दोनों का अर्थ संस्कृत में आ गया है। धीरा। धी-धी-धी। बुद्धि, ज्ञान। उस ज्ञान को ध्येय के प्रति, द्रव्य के प्रति प्रेरे, ऐसे जीव को धीर कहा जाता है। बाकी सब अधीर हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह सब डॉक्टर-बॉक्टर की बुद्धि सब अधीर है, ऐसा कहते हैं। यह वकील नहीं रामजीभाई! आहाहा!

कहते हैं, धीरा। अरे! तेरी ज्ञान की वर्तमान दशा, उसे द्रव्य की ओर झुकाये तो उसे बुद्धिवाला धीर कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। बाहर की आँख भले बन्द हो परन्तु अन्तर के ज्ञान के नेत्र जिसने अन्तर में झुकाये, उसे यहाँ बुद्धिवन्त, शयाना और धीर कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कितनी धीरज...! अनादि की पर्यायबुद्धि, अंश ऊपर लक्ष्य, राग के ऊपर लक्ष्य। उसे ऐसे दिशा में झुकाना, उसे बुद्धि कहते हैं। समझ में आया? भले फिर उघाड़ थोड़ा हो तो भी वह बुद्धिवन्त है।

अर्थ :- जिन पुरुषों ने इन्द्रियों को जीत लिया है... इन्द्रियों को जीता है। अर्थात् कि जिसे राग की रुचि गयी है। खण्ड इन्द्रिय, जड़ और बाह्य सबका जिसे प्रेम और रुचि गयी है। **विषयों से विरक्त हो गये हैं,...** वह परविषय जो राग, पुण्य का विकल्प, उससे भी जो विरक्त हुआ है। उसका नाम विषय से विरक्त है। समझ में आया? परविषय ऐसा राग, उससे जिसने विरक्त, राग में रक्तपना था, उस राग से विरक्त हुआ, वह विषय से विरक्त हुआ। समझ में आया? बाहर से विषय छोड़े हों, तथापि राग का

विषय रखा हो तो वह राग में-विषय में लीन है। आहाहा! कहीं भी उसे राग में सुखबुद्धि लगती हो तो वह विषय में लीन है। विषय में लीन है। वह विषय से छूट गया है। राग में लीनता छूटी है, वह राग से विरक्त है और स्वभाव में रक्त है। समझ में आया?

विषयों से विरक्त हो गये हैं, और धीर हैं, परीषहादि उपसर्ग आने पर चलायमान नहीं होते हैं,... जो स्वभाव का ध्येय पकड़ा है, उससे प्रतिकूलता का योग हो तो उसे ज्ञेयरूप से जानता है। उसमें डिगता नहीं है। समझ में आया? **परीषहादि उपसर्ग...** दुनिया ऐसा बाहर में देखे और जाने, ऐसा नहीं है। अन्तर में ध्येय को पकड़े हुए पड़ा है, वह भाव प्रतिकूल-अनुकूल को गिनता ही नहीं। वह तो प्रतिकूल-अनुकूल राग से माना था। राग की रुचि से माना था। राग की रुचि गयी और स्वभाव के ध्येय में पड़ा, उसे बाहर के अनुकूलता-प्रतिकूलता में ज्ञाता-दृष्टारूप रहता है। उसका नाम धीर कहा जाता है। **चलायमान नहीं होते हैं,...** ध्येय से हटे नहीं, इसलिए ज्ञाता-दृष्टा में रहता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

और **तप, विनय शीलसहित है...** लो! इच्छा की उत्पत्ति का अभाव, विनय, स्वरूप की ओर का बहुमान, ऐसा जो शील, उससे सहित है। यहाँ गीत तो भगवान के हैं। आहाहा! महिमावन्त उसका स्वभाव है न? यह भगवान स्वयं है। परिपूर्ण प्रभु स्वयं है। उसके ध्येय को पकड़कर जो दशा हुई, उसे यहाँ शील कहा जाता है। **शीलसहित हैं, वे अष्ट कर्मों को दूर करके...** भाषा तो क्या हो? आठ कर्म जड़ हैं। उन्हें दूर किया जा सकता है? परन्तु उसे आठ कर्म का सम्बन्ध नहीं रहता। स्वभाव के ध्येय की ओर के जोर के झुकाव में उसे राग की उत्पत्ति नहीं होती, इसलिए राग के निमित्त कर्म भी वहाँ नहीं रहते। उसे यहाँ आठ कर्म का नाश किया, ऐसा कहा गया है।

एक ओर कहा कि राग का नाश करने का कर्तापना आत्मा में है नहीं। यहाँ कहे, आठ कर्म का नाश करे। अब इसमें मेल किस प्रकार करना?

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं। दोनों सच्चे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों सच्चे परन्तु किस अपेक्षा से? एक में राग का नाशकर्ता जीव को कहना, वह नाममात्र है। राग का नाशकर्ता आत्मा है ही नहीं। आत्मा तो

जाननेवाला–देखनेवाला है। राग की उत्पत्ति हो, उसे जाने, नाश हो, उसे जाने। नाश करे नहीं। यहाँ कहते हैं कि आठ कर्म का नाश करे। स्वयं और स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। ऐई!

मुमुक्षु : जैसे ठीक पड़े...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा हो ? ठीक पड़े ऐसा हो ? उसमें हो ऐसा होता है। उसमें हो, उसका कथन होता है। न हो, उसका होगा ? फुदड़ीवाद है यह ? ...का अर्थ वहाँ कर्म का असद्‌भूतव्यवहारनय से नाश होता है, अशुद्धनय से राग का नाश होता है। वे... नाश होते हैं। शुद्धनय से तो स्वभाव का आश्रय है, वहाँ उसकी उत्पत्ति नहीं होती, उसे नाश होता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! पण्डितजी! फिर कहे चर्चा करो, कि लो, भाई! चर्चा की रीति समझे बिना चर्चा किसके साथ करना ? देखो! शास्त्र में कहा है कि कर्म के कारण भटकता है और कर्म का नाश करता है। यह किस अपेक्षा से है ? पूर्वापर विरोध हुआ तब तो। एक ओर राग का नाशकर्ता इनकार करना और एक ओर आठ कर्म का नाशकर्ता कहना। किस नय का कथन है, यह जानना चाहिए न।

मुमुक्षु : अनेकान्त है न, ऐसा भी होता है, ऐसा भी होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकान्त है। आत्मा को जहर से लाभ होता है और अमृत से लाभ होता है, ऐसा अनेकान्त होगा ? व्यवहार से निश्चय होता है, निश्चय से निश्चय होता है, ऐसा अनेकान्त होगा ? व्यवहार से होता नहीं और निश्चय से होता है, इसका नाम अनेकान्त है। ऐई! आहाहा! देखो न!

वे अष्टकर्मों को दूर करके... जिसने। दूर क्या ? दूर हो जाता है उसके कारण से। कर्म के कारण से, हों! आत्मा के कारण से नहीं। **सिद्धगति जो मोक्ष उसको प्राप्त हो गये हैं,...** ओहो! पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान-दर्शन और वीर्य की प्राप्ति हो गयी। वे मोक्षपद को प्राप्त हुए। '**वे सिद्ध कहलाते हैं।**' लो! '**सिद्धा सिद्धिं गदिं पत्ता**' ऐसा है न ? उसे सिद्ध कहते हैं और वे सिद्धगति को प्राप्त कहे जाते हैं। सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु। नहीं आता लोगस्स में ? यह लालभाई को बैठे और लालभाई के कुटुम्ब भाईयों को न बैठे, यह कैसे होगा ? यह क्या है ? और यह विकल्प आया। कोई कहता था, हों!

घर में लालभाई जैसे पके और इनके भाई को बैठे नहीं, ऐसा कोई कहता था। ऐसा। कोई कहता था, हों दो दिन पहले।

मुमुक्षु : योग्यता...

पूज्य गुरुदेवश्री : योग्यता। इनके पिता और इनके सगे भाई हैं। सगे भाई हैं न? वह बुढ़िया थी न, एक बार गये नहीं थे अपने? उनके घर में वृद्धा थी। गये थे, बैठे थे। बस योग्यता की बात है। आहाहा! अरे! भगवान! तेरे स्वभाव में... उसे वह बाहर के सम्प्रदाय की पद्धति से अच्छा लगा हो न। यह क्या कहते हैं, उसे अन्दर पकड़ना कठिन है।

कहते हैं, ऐसे जीव मुक्ति को पाते हैं, ऐसा कहते हैं। जिसका आत्मस्वभाव खिल निकला है। वे खिले हुए पूर्ण स्थिरता को पाते हैं, ऐसा कहते हैं। राग के कारण से या निमित्त के कारण से (पाते हैं), यह होता नहीं।

भावार्थ :- यहाँ भी जितेन्द्रिय और विषयविरक्तता ये विशेषण शील ही की प्रधानता दिखाते हैं। लो! यहाँ जितेन्द्रियपना कहा न? और विषय से विरक्त अर्थात् पर से पृथक्, राग से भिन्न। **ये विशेषण शील ही की प्रधानता दिखाते हैं।** शील की मुख्यता बताते हैं।

गाथा-३६

आगे कहते हैं कि जो लावण्य और शीलयुक्त हैं, वे मुनि प्रशंसा के योग्य होते हैं –

लावण्यसीलकुसलो जम्ममहीरुहो जस्स सवणस्स।
सो सीलो स महप्पा भमिज्ज गुणवित्थरं भविए।।३६।।

लावण्यशीलकुशलः जन्ममहीरुहः यस्य श्रमणस्य।
सः शीलः स महात्मा भ्रमेत् गुणविस्तारः भव्ये।।३६।।

है जिन श्रमण का जन्म–तरु लावण्य शील कुशल–सहित।
हैं वे महात्मा शील–युत फैलें जगत में सभी गुण।।३६।।

अर्थ – जिस मुनि का जन्मरूप वृक्ष लावण्य अर्थात् अन्य को प्रिय लगता है ऐसा सर्व अंग सुन्दर तथा मन वचन काय की चेष्टा सुन्दर और शील अर्थात् अंतरंग, मिथ्यात्व विषय रहित परोपकारी स्वभाव – इन दोनों में प्रवीण निपुण हो वह मुनि शीलवान् है, महात्मा है, उसके गुणों का विस्तार लोक में भ्रमता है, फैलता है।

भावार्थ – ऐसे मुनि के गुण लोक में विस्तार को प्राप्त होते हैं, सर्वलोक के प्रशंसा योग्य होते हैं, यहाँ भी शील ही की महिमा जानना और वृक्ष का स्वरूप कहा, जैसे वृक्ष के शाखा, पत्र, पुष्प, फल सुन्दर हों और छायादि करके राग–द्वेषरहित सब लोक का समान उपकार करे उस वृक्ष की महिमा सब लोग करते हैं, ऐसे ही मुनि भी ऐसा हो तो सबके द्वारा महिमा करनेयोग्य होता है।।३६।।

गाथा–३६ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो लावण्य और शीलयुक्त हैं, वे मुनि प्रशंसा के योग्य होते हैं :-

लावण्यसीलकुसलो जम्ममहीरुहो जस्स सवणस्स।
सो सीलो स महप्पा भमिज्ज गुणवित्थरं भविए।।३६।।

अर्थ :- जिस मुनि का जन्मरूप वृक्ष लावण्य अर्थात् अन्य को प्रिय लगता है... कहते हैं कि इनका जन्म ही जगत को प्रिय लगता है। शरीर प्रिय लगे, ऐसा जिसका अवतार होता है। '**लावण्णसीलकुसलो जम्ममहीरुहो**' है न? जन्मरूपी पृथ्वी में उगा हुआ वृक्ष। अर्थात् वह आत्मा लावण्य से, जिसका शरीर ही पहले से लोगों को प्रिय लगे, ऐसा शरीर होता है, लावण्यता होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **मुनि का जन्मरूप वृक्ष लावण्य अर्थात् अन्य को प्रिय लगता है, ऐसा सर्व अंग सुन्दर...** देखो! पहले एक बार इनकार किया था। कि... ऐसा हो, शरीर ऐसा हो परन्तु आत्मा के शील बिना वह शोभता नहीं। ऐसा गाथा में आया था। आया था या नहीं? '**वट्टेसु**' '**वट्टेसु**' २५ गाथा।

वट्टेसु य खंडेसु य भद्देसु य विलासेसु अंगेसु।
अंगेसु य पप्पेसु य सव्वेसु य उत्तमं सीलं॥२५॥

प्राणी के देह में कई अंग तो वृत्त अर्थात् गोल सुघट प्रशंसायोग्य होते हैं,... बराबर सुन्दर शरीर, नाक चाहिए वैसा, कान चाहिए वैसा, कुण्डल जैसे सभी अंग सुन्दरता और लावण्यतावाले। **कई अंग खण्ड अर्थात् अर्धगोल सदृश प्रशंसायोग्य होते हैं,...** अर्धगोल शरीर प्रशंसा करनेयोग्य है। **कई अंग भद्र अर्थात् सरल सीधे प्रशंसायोग्य होते हैं...** नाक आदि। **और कई अंग विशाल अर्थात् विस्तीर्ण चौड़े...** छाती आदि। **इस प्रकार सब ही अंग यथास्थान शोभा पाते हुए भी अंगों में यह शील नाम का अंग ही उत्तम है,...** कहो, समझ में आया? उसमें आत्मा के स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, उस शील की शोभा है। वह कहीं शरीर के कारण नहीं है। यहाँ जरा आचार्य ने व्यवहार डाला है। जिसकी शरीर की सुन्दरता और उसमें आत्मा की सुन्दरता। दो होवे तो जगत में उसे उसका माहात्म्य पसरता है। ऐसा कहा। माहात्म्य है न।

अर्थ :- जिस मुनि का जन्मरूप वृक्ष लावण्य अर्थात् अन्य को प्रिय लगता है, ऐसा सर्व अंग सुन्दर तथा मन-वचन-काय की चेष्टा सुन्दर... ऐसा वापस। कण्ठ कुछ तोतला हो, शरीर कुछ जरा सुन्दर होने पर भी कहीं टेढ़ा हो। कहते हैं कि काय की चेष्टा सुन्दर **और शील अर्थात् अन्तरंग मिथ्यात्व विषयरहित...** लो! अन्तरंग तो राग की एकतारूपी मिथ्यात्व से रहित। कहो, समझ में आया? **अन्तरंग मिथ्यात्व विषयरहित...** देखा! मिथ्यात्व विषय से रहित, ऐसा है न? मिथ्यात्व विषय से रहित। वह तो मिथ्यात्व विषय, मिथ्यात्व स्वयं पर विषय है। अथवा मिथ्यात्व स्वयं विषय है। अथवा परसन्मुख का विषय वही मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? आत्मा ज्ञायकभाव का विषय छोड़कर अकेला परविषयभाव करना, वही मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। यह अष्टपाहुड़ में शीलपाहुड़ है। और यह शब्द डाला है थोड़ा। परोपकारी स्वभाव। पाठ में से निकलता है? पाठ में नहीं। लावण्य शीलकुशल। ... '**जम्ममहीरुहो**'

मुमुक्षु : बाहर के पुण्य में से...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें से निकाला। लावण्य साथ में डाला है। लावण्यता के

साथ ऐसी लावण्यता, ऐसा। परोपकारी स्वभाव होता है। पर का हित होने का जिसका भाव विकल्प आदि। ऐसा।

परोपकारी स्वभाव, इन दोनों में प्रवीण निपुण हो, वह मुनि शीलवान है... 'सो सीलो' ऐसा है न? **'जस्स सवणस्स सील' 'स महप्पा'** वह **महात्मा है, उसके गुणों का विस्तार लोक में भ्रमता है, फैलता है। 'भमिज्ज'** ऐसे जीव का। **'भमिज्ज'** का अर्थ होगा? भव्ये। **भ्रमता है, फैलता है।** विस्तार होता है। ऐसे भव्य जीव का... शब्दार्थ संस्कृत नहीं, इसलिए फिर टीका **'भमिज्ज गुणवित्थरं भविए'** ऐसा। **उसके गुणों का विस्तार लोक में भ्रमता है,...** अर्थात् दुनिया जिसकी प्रशंसा करती है। दुनिया में जिसकी इज्जत विशेष है। अन्तर मिथ्यात्व के विषयरहित है। बाहर में ऐसी लावण्यता और परोपकार का स्वभाव है। ऐसे दो। समझ में आया? **उसके गुणों का विस्तार लोक में भ्रमता है, फैलता है।**

भावार्थ :- ऐसे मुनि के गुण लोक में विस्तार को प्राप्त होते हैं, सर्व लोक के प्रशंसायोग्य होते हैं, यहाँ भी शील ही की महिमा जानना... मूल तो शील की महिमा है, कहते हैं। परोपकार का भाव भी उस प्रकार का व्यवहार विकल्प शील है न? ऐसा। व्यवहारशील। और अन्तर का निश्चयशील। वह भी शील की ही महिमा कही है। ऐसा। क्या कहा, समझ में आया? एक तो आत्मा में स्वविषय बनाकर मिथ्यात्व के विषय का जिसने त्याग किया है। और लावण्यता अर्थात् शरीर की सुन्दरता और परोपकारी स्वभाव। ऐसी लावण्यता, ऐसा। समझ में आया? उसके गुण जगत में विस्तरते हैं, फैलते हैं।

वृक्ष का स्वरूप कहा, जैसे वृक्ष के शाखा, पत्र, पुष्प, फूल सुन्दर हो... कहा है न? **'जम्ममहीरुहो'** ऊपर आया था न? जन्मरूपी वृक्ष। **वृक्ष का स्वरूप कहा, जैसे वृक्ष के शाखा, पत्र, पुष्प, फूल सुन्दर हों और छायादि करके राग-द्वेषरहित...** छाया में कोई राग-द्वेष है, उसे छाया में? **सब लोक का समान उपकार करे...** वृक्ष-वृक्ष की बात है अभी पहली। **छायादि करके राग-द्वेषरहित...** छाया दे, उसमें कहीं पर के ऊपर प्रेम है? समझ में आया? **सब लोक का समान उपकार करे...** वृक्ष-वृक्ष-वृक्ष।

उस वृक्ष की महिमा सब लोग करते हैं... लो! देखो! एक बड़ा वृक्ष है, भरूच

में। एक मील में है बड़ा, डालियाँ छोटी। वटवृक्ष बड़ा है। कोई कहते हैं उसे कबीरवड। भरूच में है एक बड़ा। बड़ा वृक्ष है। छाया... छाया... छाया... छाया... वहाँ भी एक वृक्ष है कलकत्ता बाहर वन में, बाग में है एक बड़ा वृक्ष। बगीचा में है, खबर है। सब देखा है। निकले थे। वे लोग कहते थे। इस कबीरवड में तो साथ में निकले थे तब। वह तो छोटी उम्र की बात है। (संवत्) १९६५-६६ की बात है। एक मोहनलालजी साधु आये थे। वरवाळा के। वे कहाँ उतरे थे, यह देखने निकले थे। वहाँ तो यहाँ होंगे, यहाँ होंगे, ऐसे देखते-देखते निकले। यहाँ बड़ा वृक्ष है। एक साधु निकले। भरूच की धर्मशाला स्टेशन के सामने निकले। तब फिर ऐसा मेले में से नाटक देखने गये थे। वह बात है। बहुत वैरागी नाटक, हों! उस समय नाटक बहुत वैरागी थे। डाह्याभाई नहीं? डाह्याभाई घोळशा। मैं और फावाभाई दो थे। फावाभाई हमारे नहीं? दो थे। ६५-६६ की बात होगी। वहाँ 'घेली थई रे राणा घेली थई, हुं साधुडाने संगे राणा घेली थई।' अभी के तो तुम्हारे नाटक में-फिल्म में तो जगत को मार डाला है, । एक महिला ऐसी देखती है न एक... अर र! यह तो नैतिक जीवन का ठिकाना भी नहीं होता, ऐसे नाटक। और गीत गाये तो लड़के बाहर निकलें, उस राग में गाये वापस देशी के। पहले के तो वैराग्य के। ओहो! सब बहुत बदल गया, हों! नैतिक जीवन नाटक, नैतिक जीवन आदि सब बदल गये, हों! धर्म में जैसे अराजकता आ गयी, वैसे बाहर में भी आ गयी। तब धर्म का ऐसा स्वरूप नहीं था। नैतिकता थी। बाहर आया नहीं था उस समय ऐसा।

मुमुक्षु : उस समय धर्म की अराजकता बहुत बड़ी थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यही कहता हूँ। अभी कम हो गयी। अभी तो ऐसा कहाँ था? आहाहा! ऐसी बातें, ऐसा ज्ञान, ऐसी लाईन कहाँ थी?

कहते हैं, वह वृक्ष जैसे **राग-द्वेषरहित सब लोक का समान उपकार करे, उस वृक्ष की महिमा सब लोग करते हैं; ऐसे ही मुनि भी ऐसा हो तो सबके द्वारा महिमा करनेयोग्य होता है।** मिथ्यात्व के विषय से विरक्त हो तो, ऐसा कहते हैं। शर्त यह है। मुनि हो और मिथ्यात्वभाव है, राग से धर्म माने, व्यवहार से धर्म माने, देह की क्रिया मैं कर सकता हूँ—ऐसा माने, दृष्टि पर के ऊपर है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? **तो सबके द्वारा महिमा करनेयोग्य होता है।** लो! सबको महिमा करनेयोग्य है।

गाथा-३७

आगे कहते हैं कि जो ऐसा हो वह जिनमार्ग में रत्नत्रय की प्राप्तिरूप बोधि को प्राप्त होता है –

णाणं झाणं जोगो दंसणसुद्धीय [1]वीरियायत्तं।
सम्मत्तदंसणेण य लहंति जिणसासणे बोहिं।।३७।।

ज्ञानं ध्यानं योगः दर्शनशुद्धिश्च वीर्यायत्ताः।
सम्यक्त्वदर्शनेन च लभन्ते जिनशासने बोधिं।।३७।।

हैं शक्ति-आश्रित ज्ञान-ध्यान सुयोग दर्शन शुद्धि भी।
सम्यक्त्व दर्शन से मिले बोधि कहा जिनदेव ही।।३७।।

अर्थ – ज्ञान, ध्यान, योग और दर्शन की शुद्धता – ये तो वीर्य के आधीन हैं और सम्यग्दर्शन से जिनशासन में बोधि को प्राप्त करते हैं, रत्नत्रय की प्राप्ति होती है।

भावार्थ – ज्ञान अर्थात् पदार्थों को विशेषरूप से जानना, ध्यान अर्थात् स्वरूप में एकाग्रचित्त होना, योग अर्थात् समाधि लगाना, सम्यग्दर्शन को निरतिचार शुद्ध करना – ये तो अपने वीर्य (शक्ति) के आधीन है, जितना बने उतना हो, परन्तु सम्यग्दर्शन से बोधि अर्थात् रत्नत्रय की प्राप्ति होती है, इसके होने पर विशेष ध्यानादिक भी यथाशक्ति होते ही हैं और इससे शक्ति भी बढ़ती है। ऐसे कहने में भी शील ही का माहात्म्य जानना, रत्नत्रय है, वही आत्मा का स्वभाव है, उसको शील भी कहते हैं।।३७।।

गाथा-३७ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो ऐसा हो, वह जिनमार्ग में रत्नत्रय की प्राप्तिरूप बोधि को प्राप्त होता है :- लो! तीन की प्राप्ति को यहाँ बोधि कहते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन की प्राप्ति को यहाँ बोधि कहते हैं। बोधिलाभं, आता है न?

१. मुद्रित सं. प्रति में 'वीरियावत्तं' ऐसा पाठ है जिसकी छाया 'वीर्यत्वं' है।

णाणं झाणं जोगो दंसणसुद्धीय वीरियायत्तं।
सम्मत्तदंसणेण य लहंति जिणसासणे बोहिं।।३७।।

जैनशासन में यह प्राप्त होता है। वीतरागमार्ग में। अन्यत्र यह बात होती नहीं। ऐसा सिद्ध करते हैं।

अर्थ :- ज्ञान, ध्यान, योग, दर्शन की शुद्धता ये तो वीर्य के आधीन हैं... ऐसा। देखो! वह पुरुषार्थ के आधीन है। ज्ञान भी आत्मा के पुरुषार्थ से प्राप्त होता है, ध्यान भी आत्मा के पुरुषार्थ से प्राप्त होता है। अपने आप प्राप्त नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? योग-स्वरूप का जुड़ान। राग की एकता टूटकर स्वरूप का जुड़ान भी पुरुषार्थ से होता है। समझ में आया? '**वीरियायत्तं**' शब्द है न? '**वीरियायत्तं**' किसी-किसी जगह किया है। वीर्यपना।'**वीरियायत्तं**' आयतन है न? वह वीरियावत्तं। अर्थात् वीर्यतं-वीर्यपना '**दंसणसुद्धीय वीरियायत्तं।**' ऐसा। परन्तु यहाँ वीर्यपना ऐसा ले लिया, फिर सब वीर्य के आधीन है।

ज्ञान, ध्यान, योग,... आत्मा का ज्ञान, हों! वह पुरुषार्थ से प्राप्त होता है। वीर्य के आधीन है। लो! सहज साध्य है, ऐसा कहा न वीर्य? कलशटीका में। समकित सहज साध्य है, यत्नसाध्य नहीं, ऐसा कहा था न। यहाँ तो कहते हैं, वीर्याधीन है। समझ में आया? बिना पुरुषार्थ मिले, दुर्धर पुरुषार्थ से प्राप्त हो, ऐसी चीज़, बिना पुरुषार्थ मिले, ऐसी चीज़ वह है नहीं। आहाहा! **सम्यग्दर्शन से जिनशासन में बोधि को प्राप्त करते हैं,...** लो! उसमें '**णाणं झाणं जोगो दंसणसुद्धीय**' ली थी। तथापि वापस '**सम्मत्तदंसणेण**' ऐसा। सम्यग्दर्शन यदि हो तो उन सब द्वारा वह बोधि को पावे। सम्यग्दर्शन मुख्य है। तो वह ज्ञान और चारित्र को पावे। सम्यग्दर्शन न हो, वहाँ ज्ञान और चारित्र नहीं होते।

सम्यग्दर्शन से जिनशासन में बोधि को प्राप्त करते हैं,... वह भी जैनशासन में, ऐसा। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो मार्ग कहा, उस मार्ग में आवे तो यह पावे। अन्यत्र यह वीतराग के अतिरिक्त मार्ग नहीं होता। **रत्नत्रय की प्राप्ति होती है।** लो! रत्नत्रय। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। जैनशासन में उसे बोधि कहते हैं। बोधि में तीनों की प्राप्ति को बोधि कहा जाता है। परन्तु जैनशासन में उस पुरुषार्थ से तीनों प्राप्त होते हैं, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान वह तो पुरुषार्थ बिना कौन सा कार्य होता है? राग में भी

उल्टा पुरुषार्थ है न? उसे वीर्य गिना नहीं। वीर्य तो उसे गिना कि जो स्वरूप की रचना करे, उसे वीर्य कहा जाता है। समझ में आया? वीर्यगुण आया है न शक्ति में ? ४७ शक्ति। उसमें वीर्यगुण की व्याख्या यह है। अपना सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र निर्मलता को रचे, तो उसे वीर्य कहा जाता है। राग को रचे, उसे वीर्य नहीं कहते। लो, यह बात डाली थोड़ी, हों! पुरुषार्थ के आधीन सब है। भावार्थ आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१९५, गाथा-३७-३८, बुधवार, माघ कृष्ण १४, दिनांक २४-०२-१९७१

३७वीं गाथा। भावार्थ। क्या कहते हैं उसमें? देखो! **ज्ञान अर्थात् पदार्थों को विशेषरूप से जानना,...** अपना आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है। उसका ज्ञान करना, उसका नाम यहाँ ज्ञान कहने में आता है। शील की व्याख्या चलती है न? शील... शील। शील अर्थात् अपना जो त्रिकाली ज्ञानस्वभाव, उसमें एकाग्र होकर अपने ज्ञान की स्वावलम्बी पर्याय प्रगट हो, उसको ज्ञान कहते हैं और उसको आत्मा का शील कहते हैं। शास्त्र का ज्ञान भी यथार्थ ज्ञान नहीं। मोक्ष के मार्ग की बात चलती है। पण्डितजी! ऐसा मोक्षमार्ग है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रूप-स्वरूप उसका है। उसमें अन्तर्मुख होकर, चैतन्य के सन्मुख होकर जो ज्ञान की वर्तमान दशा शुद्ध प्रगट हो, उसका नाम आत्मा का ज्ञान अथवा आत्मा का शील स्वभाव कहने में आता है। समझ में आया?

ध्यान अर्थात् स्वरूप में एकाग्रचित्त होना,... स्वरूप जो शुद्ध है, पवित्र वीतरागस्वरूप आत्मा का है। स्वरूप ही उसका वीतरागस्वरूप है। जिन सो ही आत्मा। उस आत्मा में एकाग्रता, उसका नाम ध्यान है। स्वरूप शुद्ध चैतन्य परम अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, उसको ध्येय बनाकर उसमें एकाग्रता होना, उसका नाम आत्मध्यान कहने में आता है और वही मोक्ष का मार्ग है। और वही ध्यान... आत्मा शुद्ध चैतन्य

परमपवित्र, उसके ध्यान में जो पवित्रता प्रगट हो, वही आत्मा का शील-स्वभाव कहने में आता है। समझ में आता है ? ऐसी वस्तु है। हिन्दी में भी जो हो वह आये न। बाकी न आवे। ऐसी चीज़ है, भैया! वीतरागमार्ग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने जो स्वरूप आत्मा का देखा और उस स्वरूप में लीन होकर केवलज्ञान पाया, वह केवलज्ञान पाने की रीति बताते हैं। मोक्ष होने की।

तेरा स्वभाव, तुम जो विकल्प का-राग का, पर का ध्यान करते हो, अरिहन्त, सिद्ध का ध्यान करना, वह भी विकल्प है। क्योंकि वह तो परद्रव्य है। परद्रव्य पर लक्ष्य जाने से, परद्रव्य की ओर झुकने से तो विकल्प, पुण्य-शुभभाव होता है। यथार्थ ध्यान नहीं होता। यथार्थ ध्यान, भगवान आत्मा सिद्धस्वरूपी शुद्ध चैतन्यघन, उसमें एकाग्रता होना, उसका नाम वास्तविक ध्यान और आत्मा का शील स्वभाव उसको कहने में आता है कि जो शील से आत्मा की मुक्ति हो। समझ में आता है ? ध्यान एकाग्रचित्त।

योग अर्थात् समाधि लगाना,... कौन-सी समाधि ? प्रकाशदासजी! स्वभाव समाधि। ...आत्मा... जो विकल्प-राग उठता है,... सूक्ष्म स्वभाव वीतरागमार्ग है, भैया! परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव का पंथ वीतरागमार्ग से उत्पन्न होता है-वीतरागभाव से उत्पन्न होता है। आहाहा! कहते हैं कि **योग अर्थात् समाधि लगाना,...** अर्थात् जो विकल्प में एकाग्रता है, वह स्वभाव में एकाग्रता होनी। समझ में आता है ? पाठ है न ? '**णाणं झाणं जोगो**' ३७वीं गाथा है। '**णाणं झाणं जोगो**' उसका अर्थ चलता है। ज्ञान भी आत्मा का, ध्यान भी आत्मा का, योग अर्थात् जुड़ान आत्मा में जुड़ान उसका। रागरहित अपनी शान्ति से अपने आत्मा में जुड़ान करना, उसका नाम समाधि और योग कहने में आता है। समझ में आता है ?

सम्यग्दर्शन को निरतिचार शुद्ध करना... है न ? '**दंसणसुद्धीय**' '**सम्मत्तदंसणेण य लहंति**' दर्शनशुद्धि, ऐसा कहा है न ? दर्शनशुद्धि का अर्थ—अपना आत्मा पूर्ण शुद्ध आनन्द अभेद, उसकी दृष्टि शुद्ध करना और उस दृष्टि में आत्मा पूर्ण को लेना, उसका नाम दर्शनशुद्धि है। और निरतिचार। उसमें अतिचार दोष नहीं, ऐसा सम्यग्दर्शन। आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका भान, अनुभव होकर उसमें प्रतीति करना उसका नाम दर्शनशुद्धि कहने में आता है। समझ में आया ? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि थे, २०००

वर्ष पहले, संवत् ४९। भरतक्षेत्र में उपस्थिति थी। भगवान के पास गये थे। साक्षात् सीमन्धर परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं, वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे। उसके बाद यह बनाया है। यहाँ आकर फिर शास्त्र बनाया। भगवान ऐसा कहते हैं, ऐसा सन्देश जगत को देते हैं। आहा! समझ में आया?

कहते हैं, **सम्यग्दर्शन को निरतिचार शुद्ध करना ये तो अपने वीर्य (शक्ति) के आधीन है,...** देखो! कोई कर्म मिटे, कर्म टले, कोई गुरु की कृपा हो जाये और मिले, ऐसा नहीं है। नेमिचन्दजी! सच्चिदानन्द प्रभु सिद्ध समान अपना निज शुद्ध स्वरूप। उसका श्रद्धा-ज्ञान आदि पुरुषार्थ से होता है। पुरुषार्थ-वीर्य आधीन है। कोई कर्म हट जाये और प्रगट हो, ऐसा है नहीं। अपना वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ, अपना विकल्प और पर ओर जो अनादि का पुरुषार्थ है, उस पुरुषार्थ को पर ओर से हटाकर, अपना पूर्ण आनन्द शुद्ध चैतन्य पदार्थ में पुरुषार्थ लगाना, उससे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, ध्यान सब होता है। पुरुषार्थ बिना होता नहीं। बाहर का पैसा तो पुरुषार्थ बिना मिले। पुण्य का परमाणु पड़ा हो, पुण्य, पुण्य सातावेदनीय आदि तो पाँच-पच्चीस लाख बाहर मिल जाये। वह पुरुषार्थ बिना मिलता है, वह तो पूर्वपुण्य के कारण मिलते हैं। धर्म ऐसा नहीं है।

धर्म तो अपना शुद्ध चैतन्यद्रव्य, (उसकी) पहले पहिचान करनी चाहिए। मैं कौन हूँ? कैसा हूँ? अनन्त गुण सम्पन्न पवित्र का धाम आत्मा है। रागादि है, वह तो विकल्प पर्याय में है। वह अपने स्वभाव में नहीं। स्व-भाव। अपना नित्य भाव। वह तो ज्ञान, आनन्द और शान्ति आदि आत्मा का नित्य अविनाशी है। उसमें अपने पुरुषार्थ से एकाग्र होना, वह आत्मा के वीर्य आधीन है। कोई कर्म हटे और कोई दे-दे, गुरु की कृपा हो जाये और मिल जाये, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही नहीं कहीं। यहाँ तो एक ही बात है। ऐ... नवरंगभाई! भगवान आत्मा की कृपा हो जाये। अपने आत्मा की कृपा।

मुमुक्षु : वह तो अपनी पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात पूरी। पोपटभाई! भगवान! तेरा मार्ग तो ऐसा है। सर्वज्ञ

वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ अनादि से ऐसा कहते आये हैं, कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे। वहाँ से यह लाये। अनुभवी मुनि थे, दिगम्बर सन्त थे। ध्यानी, ज्ञानी थे। परन्तु थोड़ी विशुद्धता (लेकर) भगवान के पास गये और निर्मलता बहुत लाये। और कहते हैं, भाई! तेरा शील उसको कहते हैं, शरीर से ब्रह्मचर्य पालना, वह शील नहीं है। वह तो एक विकल्प शुभराग है। ऐसा जो विकल्प से ब्रह्मचर्य शरीर से पालना, ऐसा तो अभव्य ने भी अनन्त बार किया है। समझ में आया? पंच महाव्रत का परिणाम जो है, वह तो विकल्प, राग, आस्रव, है। वह आत्मा का शील नहीं। कठिन बात, भाई!

अपूर्व आत्मा का पुरुषार्थ। स्वभाव शुद्ध चैतन्य की ओर झुके तो दर्शन, ज्ञान, ध्यान, समाधि उत्पन्न होती है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म, भाई! लोगों को यह सत्य बात ऐसी लगे... रूखी है, यह तो रूखी बात है-वीतरागी बात है। आहाहा! समझ में आया?

पाठ में आया न? '**वीरियायत्तं**' ये तो आत्मा के पुरुषार्थ आधीन बात है। कर्म आधीन नहीं। धर्म पाना कर्म आधीन नहीं। एक गोकुलभाई थे, वह कहते थे, पैसा मिलता है ऐसे हमें धर्म मिल जायेगा, ऐसा कहते थे। चल बसे। चूड़ावाले। गोकुलभाई शिवलाल। व्यापार था न? लोखण्ड की पाट का। सरकार के साथ तकरार हुई। आगबोट थी। आगबोट कहते हैं? क्या कहते हैं? स्टीमर थोड़ा समय पड़ी रही, सरकार के साथ तकरार के कारण। उसमें भाव बढ़ गये पचास गुना। ऐसा कुछ था। मालूम नहीं। पचास हजार के बीस लाख (हो गये)। फिर तो पैसा-पैसे को खींचता है। पचास-साठ लाख बहुत हो गये थे। अभी चल बसे, चूड़ावाले। पचास-साठ लाख। वह कहते थे, मैं कहाँ पैसे ढूँढ़ने गया था? पैसा कहाँ खोजना पड़ा? पैसा आ गया, वैसे धर्म आ जायेगा। उसकी स्त्री उसको कहती थी, तुम धर्म करो। महाराज कहते हैं, धर्म करो। धर्म क्या? यह पैसा कैसे मिल गया? ऐसे कर्म से धर्म हो जायेगा। सच्ची बात है? कर्म में धर्म कहाँ है? धर्म तो आत्मा में है। भगवान आत्मा... ऐई! छोटाभाई! इसके गाँव के सेठ थे। आहाहा! शरीर का कैसे रहना, बाहर पैसा मिलना, स्त्री-कुटुम्ब आदि मिलना, वह पूर्वपुण्य से नहीं मिलता? मिलता है। ऐसे धर्म भी कोई पुण्य जड़कर्म में पड़ा होगा, मिल जायेगा। झूठ बात है। यहाँ आत्मा में शुद्धता पड़ी है, उस ओर झुकाव

पुरुषार्थ करे तो शुद्धता प्रगट होगी। धर्म पुरुषार्थ बिना होता नहीं। पुरुषार्थ निज स्वभाव का। समझ में आया? अनन्त काल का अनजाना पंथ, मुक्ति का पंथ अनादि से अनजाना है। बाह्य क्रियाकाण्ड ऐसा करो, वैसा करो, महाव्रत, दया, अहिंसा और फलाना... वह सब तो विकल्प है, राग है, पुण्यबन्ध का कारण है। धर्म नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **अपने वीर्य (शक्ति के) आधीन है,...** मूल पाठ उतना था। अब थोड़ा अर्थ ढीला करके कहते हैं। **जितना बने उतना हो...** उतना डाला। अर्थात् क्या कहते हैं? क्या कहते हैं? हमारी गुजराती भाषा बीच में थोड़ी आ जाती है। आत्मा में शुद्ध आनन्द और ज्ञान पड़ा है, उस ओर का वीर्य यथाशक्ति-अपना वर्तमान पुरुषार्थ जितना हो, उतना झुकाना। चौथे में थोड़ा पुरुषार्थ है, पाँचवें में विशेष है, सच्चे सन्त मुनि कहते हैं, आत्मध्यानी, ज्ञानी, आनन्द में रहनेवाले, उसको तो बहुत पुरुषार्थ स्वसन्मुख का होता है। स्वसन्मुख का पुरुषार्थ तो बहुत होता है उनको। समझ में आया?

परन्तु सम्यग्दर्शन से बोधि अर्थात् रत्नत्रय की प्राप्ति होती है,... यहाँ अन्तिम शब्द है न? सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन नहीं हो तो कोई चीज़ है नहीं। उसका व्रत भी नहीं, तप भी नहीं, संयम भी नहीं, सब मिथ्या है। सम्यग्दर्शन पहले होना चाहिए। सम्यग्दर्शन की स्थिति-आत्मा अखण्ड आनन्दस्वरूप का अनुभव होकर उसमें प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन-सच्चा सम्यग्दर्शन कहने में आता है। वह सम्यग्दर्शन नहीं हो और अकेली क्रियाकाण्ड हो तो उससे आत्मा को कुछ लाभ होता नहीं। समझ में आया? बाह्य आचरण सुधारो, व्यवहार सुधारो, पंच महाव्रत करो, अणुव्रत ले लो, यात्रा निकालो, पूजा-भक्ति करो। उसमें तो शुभराग है, पुण्य है। पाप से बचने को वह चीज़ आती है। परन्तु वह धर्म नहीं। सम्यग्दर्शन धर्म पहले होना चाहिए। आहाहा!

पुण्य-पाप से, पुण्य-पाप के राग से रहित; शरीर से तो रहित आत्मा है ही, वह तो अजीव है। कर्म से रहित है, क्योंकि वह भी अजीव है। परन्तु पुण्य-पाप का विकल्प जो शुभ-अशुभ होता है, वह आस्रवतत्त्व है। आस्रवतत्त्व से रहित आत्मा है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा अपना सम्यग्दर्शन, ज्ञान, समाधि सब अपने पुरुषार्थ से प्राप्त करता है। पुरुषार्थ बिना होता नहीं। क्रमबद्ध में होगा, सो होगा। क्रमबद्ध में नहीं आता है? क्रमबद्ध का निर्णय करनेवाला कौन है? क्रमबद्ध का निर्णय करनेवाला अपने स्वसन्मुख

पुरुषार्थ करता है तो क्रमबद्ध का निर्णय होता है। समझ में आया? कहते हैं न कि होनेवाला होगा, होनेवाला होगा। होनेवाला होगा, उसका निर्णय किसने किया? उसका निर्णय स्वसन्मुख हुए बिना होनेवाले का जाननेवाला प्रगट नहीं होता। समझ में आया? आहा!

यहाँ यह कहते हैं। वीर्यपना है, ऐसा कहना है न। छाया में ऐसा लिखा है। सम्यग्दर्शन में भी पुरुषार्थपना है। सम्यग्ज्ञान आत्मा में पुरुषार्थपना है, समाधि में भी पुरुषार्थपना है। पुरुषार्थ बिना कोई चीज़ अपने स्वभाव की प्रगट होती नहीं। पुरुषार्थ ... है? पुरुषार्थ अपना स्वभाव प्रभु चैतन्यसागर, अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र भगवान आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द में डुबकी मारना, अन्तर एकाकार होना, वही पुरुषार्थ है। समझ में आया? बड़ी कठिन बातें, भाई! नेमिचन्दजी! ऐसी बात है।

सम्यग्दर्शन से बोधि अर्थात् रत्नत्रय की प्राप्ति होती है,... क्या कहते हैं? दर्शनशुद्धि। '**बोहि**' ऐसा है न? चौथा पद। सम्यग्दर्शन हो तो सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र तीनों की एकतारूपी बोधि प्राप्त होती है। सम्यग्दर्शन न हो तो ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति होती नहीं। तो उसको बोधि नहीं कहते हैं। समझ में आया? आहा! देखो! शील का वजन! भगवान आत्मा... देखो! यहाँ सम्यग्दर्शन की महिमा कहते हैं। देखो! लो! समझ में आया? सम्यग्दर्शन बिना,... **सम्यग्दर्शन से बोधि अर्थात् रत्नत्रय की प्राप्ति होती है,...** वस्तु अपना निज शुद्धस्वरूप पवित्र पुराणपुरुष अनादि स्वरूप, उसमें निर्विकल्प—राग का आश्रय छोड़कर, स्वरूप का आश्रय करके, राग के अवलम्बन बिना जो निर्विकल्प समकितदर्शन होता है, वह सम्यग्दर्शन हो तो फिर ज्ञान और चारित्र होता है। सम्यग्दर्शन हो तो बोधि की प्राप्ति होती है। बोधि अर्थात् तीनों की एकता। बहुत सूक्ष्म। समझ में आया? है? **सम्यग्दर्शन से बोधि अर्थात् रत्नत्रय की प्राप्ति होती है,...** है न उसमें? हिन्दी है, हिन्दी। पण्डित जयचन्द्र, जयपुर में हुए न, उसने लिखा है। पण्डित जयचन्द्र।

इसके होने पर विशेष ध्यानादिक भी यथाशक्ति होते ही हैं,... क्या कहते हैं? आत्मा वस्तुस्वरूप शुद्ध चिद्घन विज्ञानघन आत्मा है। उसमें राग, पुण्य-पाप का विकल्प है नहीं। ऐसी चीज में पुरुषार्थ से एकाकार हो और सम्यग्दर्शन हो तो सम्यग्ज्ञान, चारित्र होता है। इससे विशेष ध्यानादि भी हो। सम्यग्दर्शन हो तो अन्दर एकाग्रता

ध्यानादि होते हैं। सम्यग्दर्शन बिना ध्यान कैसा? लोग कहते हैं, ध्यान लगाओ। किसका ध्यान? अभी वस्तु क्या है, दृष्टि हुई नहीं, अनुभव हुआ नहीं तो ध्यान में किसको ध्येय बनाना? चीज़ दृष्टि में आये बिना ध्येय किसको बनाना? आहाहा! समझ में आया?

वीतरागमार्ग सूक्ष्म है। अन्यत्र कहीं है नहीं। सर्वज्ञ वीतराग के सिवा ऐसा मार्ग कहीं नहीं है। कोई अन्यमत में है नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई! सुनने भी मिले नहीं, वह विचार में कब ले, अन्तर में रुचि कब करे? और अनुभव कब करे? सत्य सुनने मिले नहीं। बाहर में ऐसा करो, ऐसा करो। वर बिना की जान। वर बिना की समझते हो? दूल्हा। दूल्हा कहते हैं न? दूल्हे बिना की बारात। दूल्हा नहीं है, बारात जोड़ दी। ऐसे आत्मा क्या, सम्यग्दर्शन क्या, वह कुछ नहीं, बाकी सब किया। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा... ओहोहो! दूल्हे बिना की बारात है।

मुमुक्षु : वापस आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाये ही नहीं। दूल्हा ही नहीं है। हमारे में वर कहते हैं। दूल्हा। आहाहा!

भगवान आत्मा जिसके श्रद्धा-ज्ञान में नहीं है, अनुभव आत्मा का नहीं है, वहाँ क्या है? तेरी सब क्रिया पूजा, भक्ति, दान, व्रत, तप बिना अंक के शून्य हैं। अंक बिना के शून्य।

वह कहते हैं, देखो! **इसके होने पर विशेष ध्यानादिक भी यथाशक्ति होते ही हैं...** देखो! अपना निज स्वभाव चैतन्यपदार्थ का सम्यग्दर्शन, उस ओर की प्रतीति अनुभव होकर हुई, तो यथाशक्ति ध्यान भी होता है। यथाशक्ति शान्ति भी होती है, यथाशक्ति स्वरूप में जुड़ान भी-योग भी होता है। **और इससे शक्ति भी बढ़ती है।** लो। यथाशक्ति भी हो और इससे शक्ति भी बढ़ती है। सम्यग्दर्शन से आत्मा की शक्ति बढ़ती है। कोई पुण्य-पाप की क्रिया, दया, दान, व्रत के विकल्प से शक्ति बढ़ती है, ऐसा है नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रकाशदासजी! बड़ी कठिन बातें। ऐसा मार्ग।

तीन बात की। कौन-सी तीन? सम्यग्दर्शन से बोधि प्राप्त होती है। एक (बात)। अपना निज स्वभाव का अनुभव में प्रतीति हुई हो तो उस सम्यग्दर्शन द्वारा सम्यग्ज्ञान

और चारित्र की बोधि की प्राप्ति होती है। एक। दूसरी बात। सम्यग्दर्शन हो तो विशेष ध्यानादिक भी यथाशक्ति होते हैं। स्वरूप शुद्ध भगवान आत्मा अनुभव में आया हो तो ध्यान, योगादिक यथाशक्ति होते हैं। दो। तीसरी (बात)। इससे शक्ति भी बढ़ती है। तीन हुआ। स्वरूप का अनुभव हो तो उससे शक्ति भी—निर्मल दशा बढ़ती है। समझ में आया? तीन बोल लिये।

वस्तु भगवान आत्मा शरीर, वाणी, मन से पर, राग से पर, विकल्प से पर और अपना निज आनन्दादि स्वभाव से अभेद। ऐसा आत्मा का स्वसन्मुख होकर अनुभव सम्यग्दर्शन हुआ न हो तो कोई क्रिया उसकी सच्ची है नहीं। परन्तु सम्यग्दर्शन हो तो ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति होती है। सम्यग्दर्शन हो तो उससे यथाशक्ति ध्यानादि भी होता है। सम्यग्दर्शन हो तो यथाशक्ति ध्यानादि, समाधि आदि बढ़ती है। समझ में आया?

ऐसे कहने में भी शील ही का माहात्म्य जानना,... भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने शील का माहात्म्य कहा। समझ में आया? सम्यग्दर्शन शील, ध्यान शील, अन्दर योग-जुड़ान करना, वह शील और ज्ञान एवं चारित्र सम्यग्दर्शन में प्राप्त होते हैं, वह भी शील। ध्यानादिक शक्ति अपने विशेष होती है, वह भी शील और शक्ति बढ़ती है, वह भी शील। लोगों को बाहर में सम्प्रदाय में चढ़ा दिये हैं। प्रवृत्ति मार्ग, अकेली प्रवृत्ति। पुण्य की क्रिया और उसमें धर्म मना दिया। आहाहा! उसे तो ऐसा लगे कि यह क्या है? यह अमृत के सागर का नमूना है। अमृत के सागर का उछाल। आहाहा! जब तक चैतन्य भगवान अपनी शक्ति में से उछाला नहीं आता है, तब तक सब मिथ्या-मिथ्या है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! मार्ग तो ऐसा चलता है। बहुभाग तो ऐसा चलता है। आहा! ऐसा है, भाई! अपूर्व मार्ग तो उसको कहते हैं। कभी स्वभाव सन्मुख पुरुषार्थ किया नहीं, ऐसा कहते हैं। अब तक जितना पुरुषार्थ किया, वह सब पुण्य-पाप के विकल्प का राग का पुरुषार्थ किया। परन्तु अपना निज स्वरूप निर्विकल्प शुद्ध आनन्दघन, उस ओर का कभी अपूर्व पुरुषार्थ किया नहीं। पूर्व में नहीं किया, ऐसा नहीं किया। पूर्व में जो किया, वह का वही किया। आहाहा! उसमें आता है न? एक बार जो वन्दे कोई, नरक पशु न होई। ठीक! सम्मेदशिखर का दर्शन करे, एक बार वन्दे जो कोई... फिर क्या? ताही

नरक पशु गति न होई। उसमें क्या हुआ? एकाध भव नहीं हो। परन्तु सम्मेदशिखर के दर्शन से कोई सम्यग्दर्शन होता है? समझ में आया? आत्मा सम्मेदशिखर अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है। अनन्त गुण का साम्राज्य का राजा आत्मा है। उस पर आरूढ़ हो, वह सम्मेदशिखर की यात्रा है। समझ में आया? बड़ी सूक्ष्म बात, भाई!

ऐसा कहने में भी शील ही का माहात्म्य जानना, रत्नत्रय है, वही आत्मा का स्वभाव है,... देखो! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र, ये तीनों आत्मा के स्वभाव के आश्रय से प्रगट होते हैं। तीनों आत्मा का स्वभाव है। व्यवहाररत्नत्रय राग है, वह आत्मा का स्वभाव नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत का राग और विकल्प से शास्त्र का पढ़ना, वह तो विकल्प-राग है, वह आत्मा का स्वभाव नहीं। इसलिए उसको शील कहते नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! इसलिए यह महंगी लगती है न। महंगी... महंगी, ये क्या? यह एक ही मार्ग सत्य? दूसरा कोई मार्ग नहीं है? यह एक मार्ग ही सत्य है, दूसरा कोई मार्ग सत्य है ही नहीं।

वही आत्मा का स्वभाव है, उसको शील भी कहते हैं। लो। यह तो आत्मा का स्वभाव है। पुण्य-पाप का विकल्प, वह आत्मा का स्वभाव नहीं; वह तो विभाव है। महाव्रत का परिणाम भी विभाव है। समझ में आया? आहाहा! क्या है, प्रकाशदासजी! महाव्रत पालो, अणुव्रत का आन्दोलन करो। आहाहा! ऐसे मार्ग का सुनना भी महापुण्य से होता है। भाग्य से, यह चीज़ क्या है, वह सुनना भी महाभाग्य से होता है। और उसकी हाँ कहनी, वह तो बहुत पुरुषार्थ से होता है। समझ में आया? आहा! जिन्दगी चली जाती है, मृत्यु के समीप देह जा रहा है। आहाहा! और यदि यह काम नहीं किया तो कुछ नहीं किया, भगवान! ऐसा कहते हैं। आहाहा!

ऐसा अन्तर निर्णय निर्विकल्प अनुभव में आना चाहिए कि मैं तो शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द हूँ। मेरे में व्रत की क्रिया का परिणाम और अव्रत का परिणाम कुछ है नहीं। समझ में आया? कल्याणजीभाई! बड़ा कठिन। श्वेताम्बर में तो ऐसा सुनने पर ऐसा लगे... उसमें तो यह बात है नहीं। अनादि सनातन दिगम्बर मार्ग, सनातन अनादि परमात्मा का मार्ग, उसमें यह बात है। दूसरे में यह बात है नहीं। लोगों को ऐसा लगे। मार्ग, प्रभु! स्वआश्रय बिना मार्ग कहाँ से प्रगट होगा? पराश्रय से तो राग उत्पन्न होगा।

चाहे तो तीन लोक के नाथ समवसरण में विराजते हों। ऐसे लक्ष्य जाता है तो राग उत्पन्न होता है। स्व-आश्रय में से अराग श्रद्धा-ज्ञान उत्पन्न होते हैं। समझ में आया? पहले ऐसा समझ में तो ले कि ऐसी चीज़ है। ऐसा समझ में पक्का करना चाहिए। समझ में आया? मार्ग दूसरा है नहीं। ऐसा मार्ग पहले उसके ज्ञान में पक्का करना चाहिए, तो कभी रास्ता निकलेगा। उल्टा रास्ता पकड़ने से कभी रास्ता मिलेगा नहीं।

गाथा-३८

आगे कहते हैं कि यह प्राप्ति जिनवचन से होती है -

जिणवयणगहिदसारा विसयविरत्ता तवोधणा धीरा।
सीलसलिलेण ण्हादा ते सिद्धालयसुहं जंति।।३८।।

जिनवचनगृहीतसारा विषयविरक्ताः तपोधना धीराः।
शीलसलिलेन स्नाताः ते सिद्धालयसुखं यांति।।३८।।

ले जिन-वचन का सार विषय-विरक्त धीर तपोधनी।
जो शील जल से नहाते वे सिद्ध-सुख को प्राप्त ही।।३८।।

_अर्थ_ - जिनने जिनवचनों से सार को ग्रहण कर लिया है और विषयों से विरक्त हो गये हैं, जिनके तप ही धन है तथा धीर हैं, ऐसे होकर मुनि शीलरूप जल से स्नानकर शुद्ध हुए वे सिद्धालय, जो सिद्धों के रहने का स्थान उसके सुखों को प्राप्त होते हैं।

_भावार्थ_ - जो जिनवचन के द्वारा वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानकर उसका सार जो अपने शुद्धस्वरूप की प्राप्ति का ग्रहण करते हैं, वे इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होकर तप अंगीकार करते हैं-मुनि होते हैं, धीर-वीर बनकर परिषह उपसर्ग आने पर भी चलायमान नहीं होते हैं, तब शील जो स्वरूप की प्राप्ति की पूर्णतारूप चौरासी लाख उत्तरगुण की पूर्णता वही हुआ निर्मल जल, उससे स्नान करके सब कर्ममल को धोकर सिद्ध हुए, वह मोक्षमंदिर में रहकर वहाँ परमानन्द अविनाशी अतीन्द्रिय अव्याबाध सुख

को भोगते हैं, यह शील का माहात्म्य है। ऐसा शील जिनवचन से प्राप्त होता है, जिनागम का निरन्तर अभ्यास करना उत्तम है।।३८।।

गाथा-३८ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि यह प्राप्ति जिनवचन से होती है :- देखो! सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागदेव त्रिलोकनाथ, उनकी वाणी से यह मार्ग प्राप्त होता है। क्योंकि वह वाणी आत्मा में निमित्त (होती) है। वीतराग की वाणी। दूसरे अज्ञानी की वाणी नहीं। देखो! यह शील का अधिकार। **जिनवचन से होती है।** वीतराग की वाणी में वीतरागता आती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वीतराग की वाणी ऐसा कहती है कि तेरे स्वसन्मुख होओ। हमारे सन्मुख से तेरी दृष्टि छोड़ दे। आहाहा! यह जिनवचन कहे। हमारी भक्ति भी तेरा विकल्प भाग है, राग का भाग है, ऐसा कहते हैं। तेरी भक्ति अरागी परिणाम है। तेरा शुद्ध स्वभाव का भजन अन्दर एकाग्रता होना, वह तेरी सच्ची भक्ति है। समझ में आया?

जिणवयणगहिदसारा विसयविरत्ता तवोधणा धीरा।
सीलसलिलेण ण्हादा ते सिद्धालयसुहं जंति।।३८।।

यह आत्मा मुक्ति को पाता है, ऐसा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज दिगम्बर सन्त करुणा से जगत को कहते हैं। समझ में आया? छद्मस्थ है तो करुणा का विकल्प है। कहते हैं, भगवान! तेरा स्वरूप तो सच्चिदानन्द प्रभु है, प्रभु! ऐसा जिनवचन कहता है, जिनवचन के सिवा ऐसी वाणी दूसरी कभी होती नहीं। आहाहा! हमारी भक्ति करो, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। हमको हाथ दो तो तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। तीर्थंकर नामकर्म बँधेगा। धूल भी बँधता नहीं,... बँधता है।

वह बात हमारे (संवत्) १९७९ में चली थी। १९७९ के वर्ष की बात है। कितने साल हुए? ४८ वर्ष। एक जन बीमार थे, सेवा करे। दोनों मिथ्यादृष्टि।... कहाँ तीर्थंकरगोत्र था? तीतरगोत्र होगा, कहा। भगवान हो, वह बहुत जीवों को तिरने में निमित्त (होते हैं)। तीतर बहुतों को मारने में निमित्त। तीतर नहीं होता है? तीतर होता है न, तीतर

पक्षी। कीड़े को चुनते हैं, छोटे-छोटे कीड़े को। तीतर-तीतर। तीन लोक के नाथ तीर्थंकर समकिती हो, उन्हें वह विकल्प आये। सम्यग्दृष्टि के बिना तीर्थंकरगोत्र का भाव कभी आता नहीं। दर्शनशुद्धि। प्रथम तो शुद्ध दर्शन होना चाहिए। पीछे उसको विकल्प आता है तो तीर्थंकरगोत्र बँधता है। जिसकी श्रद्धा मिथ्यात्व है, उसको तीर्थंकरगोत्र बँधता नहीं। क्योंकि ऐसा विकल्प होता नहीं। समझ में आया ?

अर्थ :- जिन ने जिनवचनों से सार को ग्रहण कर लिया है... देखो! आचार्य अब अन्तिम की गाथा कहते हैं। वीतराग के वचन में से तो सार जिसने ग्रहण किया है। क्या ? वीतरागता। ऐसा वीतरागता सार कहा है। जिनवचन में वीतरागता भरी है। तू पर की अपेक्षा छोड़, राग की अपेक्षा छोड़ और त्रिकाली स्वभाव की अपेक्षा में झुकाव कर। तुझे सम्यग्दर्शन, ज्ञान होगा। समझ में आया ? एक बात यह ली। **जिन ने जिनवचनों से सार को ग्रहण कर लिया है...** बाद में दूसरी बात। अर्थात् प्रथम सम्यग्दर्शन-ज्ञान वीतरागता कहना है, स्वसन्मुख होने का कहना है, पर से विमुख होने का कहना है, ऐसा जिनवचन का सार है। समझ में आया ? ऐसा सार ग्रहण किया है।

और विषयों से विरक्त हो गये हैं,... यह आसक्ति से विरक्त, यहाँ ऐसा कहना है। समझ में आया ? यहाँ तो पहले सम्यग्दर्शन हुआ-जिनवचन का सार, स्वभावसन्मुख होकर सम्यग्दर्शन (हुआ), वह जिनवचन का सार है और बाद में विषय से विरक्त हो गये हैं। जो विषय में आसक्ति-अस्थिरता की थी, उससे भिन्न हो जाता है। आत्मा में निर्विकार स्थिर होता है-चारित्र। **विषयों से विरक्त हो गये हैं, जिनके तप ही धन है...** आहाहा! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सम्यग्दर्शन और उसमें आसक्ति का-विषय की आसक्ति का अभाव और जिसमें इच्छा निरोध होकर अमृतसागर का-भगवान अमृत का अन्दर में ओप चढ़ता है, उसका नाम तप कहते हैं। तप्यन्ते इति तपः। आत्मा का आनन्द उज्ज्वलपने शोभित हो, उसका नाम तप कहने में आता है। तीन बात ली। जिनवचन का सार ग्रहण किया। स्वसन्मुख होना, ऐसा भान किया। बाद में आसक्ति का-विषय की आसक्ति का त्याग किया। और फिर तप लिया। उग्र तप। पूर्वकर्म को नाश करने को स्वरूप की लीनता में उग्रता, स्वरूप में लीनता की उग्रता, उसका नाम तप है। अकेले

उपवास आदि करना, वह सब तो अनन्त बार किया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो।' वह छहढाला में आता है। सुना है? छहढाला है न? उसमें आता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पै आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' दौलतरामजी में आता है। समझ में आया? कहते हैं कि मुनिव्रत भी अनन्त (बार) लिया, वह तो विकल्प है। आहाहा! नौवीं ग्रैवेयक गया। अन्तिम ग्रैवेयक। परन्तु वहाँ से गिरा। द्रव्यसंयम से ग्रैवेयक पायो, फेर पीछो पटकयो। सम्यग्दर्शन बिना स्वर्ग में चला गया। वहाँ से नीचे पटका, पशु और निगोद। समझ में आया?

जिनके तप ही धन है... लो, ये लक्ष्मीवाले। पोपटभाई! यह धन। वह धूल धन नहीं। धूल धन कहाँ उसके बाप का है। उसका कहाँ है? वह तो जड़ का है।

मुमुक्षु : उसमें भी दो प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक जड़धन और एक चैतन्य की लक्ष्मी का धन। आहाहा! जिस धन को लेकर आत्मा धन्य हो, उसको धन कहते हैं। ये धूल तेरी पाँच-पचास लाख, करोड़-दो करोड़ धूल नहीं, उसमें कहाँ धन्य है, वह तो दुर्गति का निमित्त है। लक्ष्मी पाप का निमित्त है। कल्याणजीभाई! पैसे हो तो रथयात्रा निकाल सके, गजरथ निकाल सके। धूल भी नहीं है, सुन न। तेरा गजरथ आदि सब हो, विकल्प-राग है। लक्ष्मी से राग हुआ है? तूने राग किया है तो पुण्यबन्ध होता है। क्रिया से कुछ होता नहीं। आहाहा! बड़ा कठिन काम, भाई!

आत्मा का ज्ञान अथवा समकित और चारित्र का रथ अन्दर चलाना, उसे विद्यारथारूढ़ कहा। निर्जरा अधिकार में आता है। यहाँ तो दर्शन और चारित्र दो। सम्यक् स्वरूप का अनुभव-दर्शन और बाद में स्वरूप की स्थिरता। विषय से विरक्तता और तप के भावसहित। **जिनके तप ही धन है...** आहाहा! अन्दर में अमृतसागर उछलता है, ऐसा कहते हैं। उपवास किया, वह तो बाह्य निमित्त तप है। अन्तर अभ्यन्तर तप यह है। राग और इच्छा से रहित होकर स्वरूप में अतीन्द्रिय आनन्द का ओप चढ़ता है, जैसे सुवर्ण में गेरु लगाकर... गेरु होता है न, गेरु? सुवर्ण ऊपर। गेरु नहीं होता है? लाल। करते हैं न? तो शोभता है। सुवर्ण ओपित होता है। तेज करता है, सुवर्ण तेज करता है। ऐसे

भगवान आत्मा इच्छा का नाश करके अनिच्छक आनन्द की उत्पत्ति करता है, उसमें आत्मा का तेज प्रगट होता है। इसका नाम तप कहने में आता है। यह उसका धन है। तप का तेज, वह मुनि का धन है। तपोधन। समझ में आया? तपोधना है न। पाठ में है। तपोधना। तपरूपी धन। वह कौन-सा तप है? है न, तपोधन है। क्या उपवास करना, ये करना? वह तपोधन नहीं। अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द का श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र के अतिरिक्त अन्दर विशेष स्थिरता होनी, वह आत्मा की लक्ष्मी-तपोधन-लक्ष्मी है। वह लक्ष्मी का चक्रवर्ती है। आहाहा! समझ में आया?

तथा धीर हैं... धीर... धीर। जिसकी धी-बुद्धि, र-ध्येय प्रति प्रेरित है। त्रिकाल ज्ञायकभाव ध्रुव प्रति धी को प्रेरी है, उसका नाम धीर कहते हैं। फिर से, धीर। धी-धी-बुद्धि। ज्ञान की बुद्धि, वर्तमान बुद्धि। र-प्रेरित। ध्येय त्रिकाल ध्रुव ज्ञायकभाव, अक्रिय सामान्य, उसकी ओर ध्रुव की ओर बुद्धि को प्रेरी है, उसका नाम धी कहते हैं और उसका नाम धीर कहते हैं। वह धीर है। अन्तर में जुड़ान करे, वह धीर है। आहाहा! समझ में आया? कितनी धीरता! स्वस्वभाव परिपूर्ण प्रभु पड़ा है, उस ओर की एकाग्रता होनी, वह बुद्धि का कार्य है। बुद्धि का यह कार्य है। बुद्धि का दुनिया की चतुराई करना, ऐसा करना वह बुद्धि नहीं, वह सब तो कुबुद्धि है। समझ में आया? धीर।

ऐसे होकर... ऐसे होते हुए **मुनि शीलरूप जल से स्नानकर...** ऐसा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप, धन और धीर, ऐसे **शीलरूप जल से स्नानकर शुद्ध हुए...** सब मैल निकल गया। शुद्ध चैतन्यमूर्ति निर्मलानन्द भगवान प्रगट हुआ। **वे सिद्धालय जो सिद्धों के रहने का स्थान उसके सुखों को प्राप्त होते हैं।** लो। **'सिद्धालयसुहं जंति।'** मुक्ति के सुख को वह आत्मा प्राप्त होता है। सिद्धालय तो स्वयं अपना स्वरूप ही है, हों! पूर्ण सिद्ध का आलय-स्थान तो द्रव्य स्वयं आत्मा है। ऐसे पूर्ण सुख को, सिद्धालय के सुख को प्राप्त करता है। अपने अतीन्द्रिय आनन्द के परिपूर्ण सुख को प्राप्त करता है, उसका नाम मुक्ति कहते हैं। बातें याद रहनी मुश्किल है। एक घण्टे में कितनी बातें आये। संसार की बातें कितनी याद रखता है। जहाँ जिसकी रुचि... धमाका करता हो दुकान पर बैठा हो तो। इसका ऐसा होता है, उसका वैसा होता है, इसका ऐसा होता है। धूल

में भी नहीं होता है, पाप की गठरी बाँधे। यह वस्तु, जिसने चैतन्य के व्यापार की दुकान लगायी है। आहाहा! जिसमें मात्र कमाई का ही धन्धा है, आमदनी का ही धन्धा है, नुकसानी का धन्धा है नहीं। नुकसानी का धन्धा समझे? खोट कहते हैं? नुकसान। नुकसानी का धन्धा आत्मा के स्वभाव सन्मुख में है ही नहीं। लाभ का ही धन्धा है। लाभ सवाया, नहीं कहते? बनिये कहते हैं न।

सिद्धों के रहने का स्थान उसके सुखों को प्राप्त करते हैं। लो। शील की व्याख्या करके फिर कहते हैं, ऐसा शील अर्थात् आत्मा का स्वभाव, वह तो नित्य शील है, परन्तु अब उसका प्रगट किया हुआ शील, शुद्धता में से शुद्धता प्रगट की, शुद्धता में से शुद्धता प्रगट हुई, वह शील। और उस शील से सिद्धालय के सुख को प्राप्त करते हैं। देखो, भावार्थ में है, जिनवचन का सार।

भावार्थ :- जो जिनवचन के द्वारा वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानकर उसका सार जो अपने शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति उसका ग्रहण करते हैं... देखो! भगवान के वचन में यह कहा है। जिनवचन-वीतरागी वचन परमात्मा के, सन्तों के, कुन्दकुन्दाचार्य आदि सन्तों भी वीतराग के ही वचन कहते हैं। स्वयं वीतराग मुनि है, वीतरागी। तीन कषाय का अभाव। ओहो! मुनि को तो एक दिन में हजारों बार आनन्द का अप्रमत्त का ध्यान आ जाता है। अप्रमत्त ध्यान। प्रमत्त-अप्रमत्त, अप्रमत्त-प्रमत्त हजारों बार एक दिन में (होते हैं)। सच्चे मुनि की बात है, हों! समझ में आया? सच्चे मुनि हैं जैनशासन के, उनकी तो पौन सेकेण्ड की अन्दर निद्रा आती है। एक सेकेण्ड भी नींद नहीं आती है। इतनी स्वरूप की ओर की सावधानी का पुरुषार्थ है। समझ में आया?

कहते हैं, **जिनवचन के द्वारा वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानकर...** पहले तो यथार्थ जानकर **उसका सार जो अपने शुद्धस्वरूप की प्राप्ति उसका ग्रहण करते हैं...** भगवान ने तो वह बताया है कि तेरा शुद्ध चैतन्यस्वरूप, उस ओर झुकाव कर और उसको ग्रहण कर। शुद्धस्वभाव को ग्रहण करो। पुण्य-पाप के विकल्प का ग्रहण छोड़ दे। आहाहा!

स्वद्रव्य की ग्राहकता त्वरा से करो। आता है न? यह पुस्तक आयी है या नहीं?

ये पुस्तक। उसमें है, श्रीमद् के वाक्य है उसमें। वह तो श्रीमद् का भक्त है न पहले से। देखो! स्वद्रव्य और अन्यद्रव्य भिन्न-भिन्न देखो। श्रीमद् के वाक्य हैं। स्वद्रव्य के रक्षक त्वरा से होओ। स्वद्रव्य अखण्ड आनन्दमूर्ति का रक्षणहार त्वरा से होओ। स्वद्रव्य के रक्षक त्वरा से होओ। देखो! स्वद्रव्य में व्यापक त्वरा से होओ। अपने शुद्ध स्वरूप की ओर त्वरा अर्थात् शीघ्रपने पुरुषार्थ करके आत्मा को ग्रहण करो। हमारी ओर का (लक्ष्य) छोड़ दो। ऐसा कहते हैं। स्वद्रव्य है न, उनकी पुस्तक में है, श्रीमद् की पुस्तक में है। पढ़ा नहीं है? आठ बोल। नहीं पढ़ा है? बड़े में आते हैं। बड़े में से यह निकाला है। परन्तु उसमें पूरा सार है।

अपने शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति... भाषा ऐसी है या भगवान के (स्वरूप की)? जिनवचन का सार अपने शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति। देखो! **उसका ग्रहण करते हैं...** पहला बोल लिया। '**जिणवयणगहिदसारा**'। वह बोल पहले लिया। बाद में **इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होकर...** ये तो मुनि हैं न। सम्यग्दर्शन स्वसन्मुख होकर ग्रहण किया, फिर विषय की आसक्ति है, उसे छोड़ देते हैं। बाद में, सम्यग्दर्शन होने के बाद विषय की आसक्ति छूटती है। **तप अंगीकार करते हैं...** इच्छा निरोधरूपी आनन्द को अंगीकार करते हैं, तब **मुनि होते हैं,...** तब वह सच्चे मुनि होते हैं। वीतराग का सच्चा मुनि जंगल में बसता है। वनवासी मुनि। जिनको कपड़े का एक धागा भी होता नहीं और आत्मा के आनन्द में मस्त हो और उनकी प्ररूपणा में वीतरागता आती है। उनकी प्ररूपणा कथन-उपदेश वीतराग। वीतराग आत्मा का स्वभाव, उसको ग्रहण करो। वीतराग आत्मा का स्वभाव, उसका ज्ञान करो। वीतराग आत्मा का स्वभाव, उसमें लीन होओ। ऐसा उपदेश करनेवाला वीतरागी मुनि होता है। राग से लाभ मनावे, वह मुनि है ही नहीं। जिनवचन का सार उसने जाना नहीं। बाद में धीर-वीर की बात। विशेष आयेगी.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१९६, गाथा-३८ से ४०, शुक्रवार, फाल्गुन शुक्ल १, दिनांक २६-०२-१९७१

शीलपाहुड़। ३८वीं गाथा का भावार्थ। थोड़ा चला था।

भावार्थ :- जो जिनवचन के द्वारा वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानकर... सर्वज्ञ भगवान वीतराग परमेश्वर ने, जो दिव्यध्वनि हुई, उसमें जो वस्तु का स्वरूप आया, उसे जानकर **उसका सार जो अपने शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति उसका ग्रहण करते हैं...** सार तो आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्द निर्मल आनन्द ऐसा जो स्वभाव, ऐसा आत्मा को ग्रहण करना, वह जिनवचन का सार है। **वे इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होकर...** स्वरूप आत्मा का परिपूर्ण आनन्द और ज्ञान को ग्रहण करके अर्थात् उसके सन्मुख होकर उसका अनुभव करके आत्मा को ग्रहण करना। यह जिनवचन का सार है। पश्चात् विषय से विरक्त होना। पाँच इन्द्रिय के विषय में जो आसक्ति हो, आत्मा का भान हो, तथापि उसे-आसक्ति को टालना।

तप अंगीकार करते हैं-मुनि होते हैं,... अन्तिम गाथायें हैं न? क्रम से लेकर पूरा करते हैं। **मुनि होते हैं, धीर-वीर बनकर परीषह उपसर्ग आने पर भी चलायमान नहीं होते हैं...** आत्मा के आनन्द के अनुभव में इतना यह स्थिर होता है कि जिसे प्रतिकूल परीषह या उपसर्ग आवे (तो भी) धीर चले नहीं। धीर स्वरूप में धीर है। अन्तर में ध्येय को पकड़ा है। वीर-पुरुषार्थ की जिसे अन्तर ज्योति की जागृति है। ऐसा मुनिपना लेकर **तब शील जो स्वरूप की प्राप्ति की पूर्णतारूप चौरासी लाख उत्तरगुण की पूर्णता...** यह चौरासी लाख जो गुण है-उत्तरगुण, उनकी पूर्णता, पूर्ण शुद्ध स्वभाव प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं।

निर्मल जल उससे स्नान करके... पूर्ण पवित्रता की प्राप्ति में निर्मल जल द्वारा जैसे स्नान करे और मल जाये, वैसे **सब कर्ममल को धोकर...** अन्तिम बात है न? आत्मा के स्वरूप को पहला तो अनुभव करके ग्रहण करना, विषय आसक्ति छोड़ना, मुनि होकर उपसर्ग-परीषह आवे तो चिगना नहीं, स्वरूप की पूर्णता की प्राप्ति करना, वह पूर्णता की प्राप्ति द्वारा कर्ममल को धो डालना। **धोकर सिद्ध हुए,...** यह सिद्ध होता

है, लो! **मोक्षमन्दिर में रहकर...** मोक्ष अर्थात् आत्मा के आनन्द में पूर्णता में रहे हुए **परमानन्द अविनाशी अतीन्द्रिय अव्याबाध सुख को भोगते हैं,...** वह अपने स्वरूप में पूर्ण आनन्द जो प्रगट हुआ, अविनाशी अतीन्द्रिय अव्याबाध ऐसे सुख को भोगे, उसे सिद्धपद कहा जाता है। **शील का माहात्म्य है।** शील अर्थात् आत्मा के स्वभाव को यहाँ शील कहते हैं। आत्मा का स्वभाव तो शुभ-अशुभभाव से भिन्न पवित्र है। उसकी पवित्रता की पूर्ण प्राप्ति होना, उसे शील का पूर्ण स्वरूप कहते हैं। वह शील का माहात्म्य है।

ऐसा शील जिनवचन से प्राप्त होता है,... ऐसा वास्तविक आत्मा का स्वभाव, वीतराग के वचन से प्राप्त हो। अर्थात् कि निमित्तरूप से वीतराग के वचन हों, उसमें होता है। वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र यह बात कहीं नहीं होती। सर्वज्ञ परमात्मा है। पूर्ण स्वरूप देखा है, पूर्ण अनुभव किया है, तीन काल-तीन लोक जाने हैं। उनकी वाणी में जो आत्मा का स्वरूप आया, ऐसा जानकर अनुभव करे तो सिद्ध पद को पावे। इसलिए **जिनागम का निरन्तर अभ्यास करना उत्तम है।** लो! अपने लक्ष्य से जिनागम का निरन्तर अभ्यास होना चाहिए। मानो कि उसमें से तत्त्व की प्राप्ति की समझ हो।

गाथा-३९

आगे अंतसमय में सल्लेखना कही है, उसमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप इन चार आराधना का उपदेश है, ये भी शील ही से प्रगट होते हैं, उसको प्रगट करके कहते हैं -

सव्वगुणखीणकम्मा सुहदुक्खविवज्जिदा मणविसुद्धा।
पप्फोडियकम्मरया हवंति आराहणापयडा ।।३९।।

सर्वगुणक्षीणकर्माणः सुखदुःखविवर्जिताः मनोविशुद्धाः।
प्रस्फोटितकर्मरजसः भवंति आराधनाप्रकटाः ।।३९।।

आराधना परिणत सकल गुण से करे कृश कर्म को।
सुख-दुख-रहित मन शुद्ध वे फैंकें करममय धूल को।।३९।।

अर्थ – सर्वगुण जो मूलगुण उत्तरगुणों से जिसमें कर्म क्षीण हो गये हैं, सुख-दु:ख से रहित हैं, जिसमें मन विशुद्ध है और जिसमें कर्मरूप रज को उड़ा दी है ऐसी आराधना प्रगट होती है।

भावार्थ – पहिले तो सम्यग्दर्शन सहित मूलगुण व उत्तरगुणों के द्वारा कर्मों की निर्जरा होने से कर्म की स्थिति अनुभाग क्षीण होता है, पीछे विषयों के द्वारा कुछ सुख दु:ख होता था उससे रहित होता है, पीछे ध्यान में स्थित होकर श्रेणी चढ़े तब उपयोग विशुद्ध हो, कषायों का उदय अव्यक्त हो, तब दु:ख-सुख की वेदना मिटे, पीछे मन विशुद्ध होकर क्षयोपशम ज्ञान के द्वारा कुछ ज्ञेय से ज्ञेयान्तर होने का विकल्प होता है, वह मिटकर एकत्ववितर्क अविचार नाम का शुक्लध्यान बारहवें गुणस्थान के अन्त में होता है, यह मन का विकल्प मिटकर विशुद्ध होना है।

पीछे घातियाकर्म का नाश होकर अनन्त चतुष्टय प्रकट होते हैं, यह कर्मरज का उड़ना है, इस प्रकार आराधना की संपूर्णता प्रकट होना है। जो चरमशरीरी हैं उनके तो इस प्रकार आराधना प्रकट होकर मुक्ति की प्राप्ति होती है। अन्य के आराधना का एकदेश होता है अंत में उसका आराधन करके स्वर्ग प्राप्त होता है, वहाँ सागरों पर्यंत सुख भोग कर वहाँ से चयकर मनुष्य हो आराधना को संपूर्ण करके मोक्ष प्राप्त होता है, इस प्रकार जानना, यह जिनवचन का और शील का माहात्म्य है।।३९।।

गाथा-३९ पर प्रवचन

आगे अन्तसमय में सल्लेखना कही है,... अब अन्तिम गाथा है न। सल्लेखना आराधना-आराधना। स्वयं भी मुनि है। अन्तिम गाथा में आराधना का स्वरूप वर्णन करते हैं। **अन्तसमय में सल्लेखना कही है, उसमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप इन चार आराधना का उपदेश है। ये भी शील ही से प्रगट होते हैं,...** वह भी आत्मा के स्वभाव से ही आराधना प्रगट होती है। समझ में आया? व्यवहार के पुण्य-पाप के विकल्प से प्रगट नहीं होती, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा! आत्मा का स्वभाव परिपूर्ण शुद्ध है, उसकी प्रगटता, वह शील है। और वह शील इस प्रकार से प्रगट होता है। आराधना प्रगट होने से वह शील ही प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

सव्वगुणखीणकम्मा सुहदुक्खविवज्जिदा मणविसुद्धा।
पप्फोडियकम्मरया हवंति आराहणापयडा।।३९।।

अर्थ :- सर्व गुण जो मूलगुण उत्तरगुणों से जिसमें कर्म क्षीण हो गये हैं,... जिसे आत्मा की शान्ति का आराधन, स्वरूप का शान्तस्वरूप अविकारी स्वभाव है, उसका जिसे... ३९ गाथा चलती है न? **सर्व गुण जो मूलगुण उत्तरगुणों से...** आत्मा की शान्ति और वीतरागता के भाव द्वारा **जिसमें कर्म क्षीण हो गये हैं, सुख-दु:ख से रहित हैं,...** कल्पना में यह सुख-दु:ख जो है, उस भाव से तो रहित है। आत्मा में आनन्द है। इससे पर में सुख-दु:ख की कल्पना से मुनि, धर्मात्मा रहित है। उसे आराधना प्रगट होती है। मृत्यु के समय आराधना करना अर्थात्? अन्तर आनन्दस्वरूप के प्रति का आदर करके आनन्द की उज्ज्वलता प्रगट करना। वह अन्तर्मुख में ध्यान द्वारा होता है। उस आराधना से कर्म का नाश होकर सुख-दु:ख से विरक्ति होकर **मन विशुद्ध है...** मन विशुद्ध है। विशुद्ध शब्द से यहाँ निर्मल। विशुद्ध शब्द से शुभभाव नहीं। **कर्मरूप रज को उड़ा दी है...** आठ कर्म की रज जिसने उड़ा दी है। **ऐसी आराधना प्रगट होती है।** ओहोहो! ऐसी आराधना प्रगट होने से, शील का पूर्ण स्वरूप प्रगट होने से उसे मुक्ति होती है।

भावार्थ :- पहिले तो सम्यग्दर्शन सहित मूलगुण उत्तरगुणों के द्वारा कर्मों की निर्जरा होने से... पहले में पहला तो सम्यग्दर्शन चाहिए। आत्मा के आनन्दस्वभाव की अन्तर दृष्टि में अनुभव और अनुभव में प्रतीति, उसे प्रथम में प्रथम धर्म की शुरुआत का सम्यग्दर्शन कहते हैं। **सम्यग्दर्शन सहित मूलगुण उत्तरगुणों के द्वारा कर्मों की निर्जरा होने...** तब आत्मा के शुद्ध स्वभाव के आश्रय से कर्म की निर्जरा अर्थात् कर्म का गलना होता है। समझ में आया?

पीछे विषयों के द्वारा कुछ सुख-दु:ख होता था... क्या कहते हैं? समकित दर्शन में पुण्य-पापरहित स्वरूप चैतन्यकन्द प्रभु का भान हुआ। परन्तु अभी विषय की आसक्ति रह गयी है। समकिती को भी (रह गयी है)। रुचि नहीं है, सुखबुद्धि नहीं है, तथापि निर्बलता आसक्ति की रह गयी है। इसलिए उसे सुख-दु:ख होता है। आसक्ति का, हों! कल्पना। सुख-दु:ख अर्थात्? पर में सुख है और पर में दु:ख है, ऐसा नहीं।

जरा अरुचि और जरा रति आदि का भाव, आसक्ति का धर्मी को भी, सम्यग्दर्शन में आनन्द मैं हूँ, ऐसा भान होने पर भी रति-अरति का भाव जरा मुनि नहीं है, तब तक उसे होता है। **उससे रहित होता है,...** उससे रहित हो तो साधु होता है। समझ में आया? गजब बातें। यह आत्मा... आत्मा... कहे एक व्यक्ति। आत्मा के अतिरिक्त क्या चीज़ है परन्तु यह? जगत में चीज़ माहात्म्यवाली तो यह आत्मा है। यह आत्मा तो अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति का भण्डार है। उसका आराधना करना यह धर्म है। भगवान का आराधन करना, वह भी एक विकल्प है। यह तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव की भक्ति और आराधन, वह भी शुभभाव है। सच्ची आराधना नहीं। ऐसी बात है।

अपने सन्मुख होकर **पीछे ध्यान में स्थित होकर श्रेणी चढ़े...** पहले अनुभव में सम्यग्दर्शन होता है, पश्चात् विषय की आसक्ति छोड़े तो सुख-दुःख की कल्पना का नाश होता है, पश्चात् **ध्यान में स्थित होकर श्रेणी चढ़े...** आठवाँ गुणस्थान कहते हैं। स्वरूप का ध्यान करके ध्येय बनाकर स्थिर करे, विषय आत्मा को बनावे। ज्ञान की वर्तमान दशा में विषय ध्येय ध्यान में आत्मा को बनावे। समझ में आया? ऊँची बात है पहली भाई!

तब उपयोग विशुद्ध हो,... उपयोग शुद्ध विशेष हो। आठवें गुणस्थान में। **कषायों का उदय अव्यक्त हो...** कषाय का उदय रहे परन्तु अव्यक्त। प्रगट रहे नहीं। प्रगट नहीं, अव्यक्त रहे थोड़ा। आठवें-नौवें-दसवें (गुणस्थान में)। **तब दुःख-सुख की वेदना मिटे...** कल्पना का—सुख-दुःख की कल्पना का वेदन जाता है। आत्मा के ध्यान की श्रेणी चढ़ने से आनन्द की धारा विशेष बहती है। उसका नाम श्रेणी। आनन्द की धारा का झरना विशेष आवे, तब आनन्द का वेदन रहे, सुख-दुःख का वेदन टले। जरा आसक्ति का हो वह। **पीछे मन विशुद्ध होकर क्षयोपशम ज्ञान के द्वारा कुछ...** और फिर ज्ञान कम है, इसलिए **ज्ञेय से ज्ञेयान्तर होने का विकल्प होता है...** एक ज्ञेय को जानने से फिर दूसरा जानने का अन्दर भेद पड़ जाता है।

वह मिटकर एकत्ववितर्क... वह भी मिट जाता है। स्वज्ञेय में इतना अधिक लीन हो जाये कि दूसरे एक ज्ञेय को जानने से, दूसरे ज्ञेय को जानने की ओर भेद पड़ता,

विकल्प पड़ता, वह भी छूट जाता है। अब तो पूरा करना है न। **एकत्ववितर्क अविचार नाम का शुक्लध्यान बारहवें गुणस्थान के अन्त में होता है।** लो! बारहवें गुणस्थान में यह ध्यान की दशा हो। **मन का विकल्प मिटकर विशुद्ध होना है।** मन का विकल्प मिटकर शुद्ध होता है।

पीछे घातिकर्म का नाश होकर अनन्त चतुष्टय प्रकट होते हैं... ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय, इन चार का नाश होकर अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त बल प्रगट होता है। **यह कर्मरज का उड़ना है,...** यह कर्मरज का टलना है। **इस प्रकार आराधना की सम्पूर्णता प्रकट होना है।** लो! यह आराधना की सम्पूर्णता। प्रथम सम्यग्दर्शन से लेकर पूर्ण शुद्धता का प्रगट होना, यह आराधना, यह शील।

जो चरमशरीरी हैं, उनके तो इस प्रकार आराधना प्रगट होकर मुक्ति की प्राप्ति होती है। वह शरीर छूटकर उसी भव में मुक्ति पाते हैं। और **अन्य के आराधना का एकदेश होता है...** इतनी अधिक आराधना नहीं हो तो एकदेश भी आराधना मुनि आदि को हो तो एकाध देव का भव करके मनुष्य होकर मोक्ष जाता है। **अन्त में उसका आराधन करके स्वर्ग प्राप्त होता है,...** पूर्ण आराधना हो जाये तो मुक्ति होती है। अपूर्ण आराधना रहने से जरा विकल्प रह जाये (तो) स्वर्ग में जाये। **वहाँ सागरोपर्यन्त सुख भोग...** लो! सागरोपम। असंख्य अरबों वर्ष पर्यन्त स्वर्ग के सुख को भोगकर। सुख अर्थात् है तो राग। परन्तु बाहर की अनुकूलता बहुत है; इसलिए उसे जरा सुख कहा जाता है। सुख-दुःख कहीं धूल में भी नहीं है। वहाँ भी दुःख है। देवता भी सुख की कल्पना के अंगारों में जल रहे हैं। अपना शान्त आनन्दस्वरूप, इसके अतिरिक्त यह विषयों के भोग में विकल्प, वह तो अंगारे हैं। परन्तु बाहर की मनुष्य की साधारण की अपेक्षा से उन्हें सुविधा बहुत होती है, इसलिए सुख भोगते हैं, ऐसा कहने में आता है।

वहाँ से चयकर मनुष्य हो आराधना को सम्पूर्ण करके मोक्ष प्राप्त होता है,... वहाँ से निकलकर, मनुष्य हो, अपूर्ण रहा तो वह वहाँ भव में पूर्ण करे, तो मोक्ष होता है। **इस प्रकार जानना, यह जिनवचन का और शील का माहात्म्य है।** यह वीतराग के वचन में यह मार्ग होता है, दूसरा नहीं होता। समझ में आया?

गाथा-४०

आगे ग्रंथ को पूर्ण करते हैं, वहाँ ऐसे कहते हैं कि ज्ञान से सर्वसिद्धि है, यह सर्वजन प्रसिद्ध है, वह ज्ञान तो ऐसा हो उसको कहते हैं –

अरहंते सुहभत्ती सम्मत्तं दंसणेण सुविसुद्धं।
सीलं विसयविरागो णाणं पुण केरिसं भणियं ।।४०।।

अर्हति शुभभक्तिः सम्यक्त्वं दर्शनेन सुविशुद्धं।
शीलं विषयविरागः ज्ञानं पुनः कीदृशं भणितं ।।४०।।

अरहंत में शुभ भक्ति श्रद्धा शुद्धि-युत सम्यक्त्व है।
है शील विषय-विरागता इससे पृथक् क्या ज्ञान है?।।४०।।

अर्थ – अरहंत में शुभ भक्ति का होना सम्यक्त्व है, वह कैसा है? सम्यग्दर्शन से विशुद्ध है, तत्त्वार्थों को निश्चय-व्यवहारस्वरूप श्रद्धान और बाह्य जिनमुद्रा नग्न दिगम्बररूप का धारण तथा उसका श्रद्धान ऐसा दर्शन से विशुद्ध अतिचार रहित निर्मल है – ऐसा तो अरहंत भक्तिरूप सम्यक्त्व है, विषयों से विरक्त होना शील है और ज्ञान भी यही है तथा इससे भिन्न ज्ञान कैसा कहा है? सम्यक्त्व शील बिना तो ज्ञान मिथ्या ज्ञानरूप अज्ञान है।

भावार्थ – यह सब मतों में प्रसिद्ध है कि ज्ञान से सर्वसिद्धि है और ज्ञान शास्त्रों से होता है। आचार्य कहते हैं कि हम तो ज्ञान उसको कहते हैं जो सम्यक्त्व और शील सहित हो, ऐसा जिनागम में कहा है, इससे भिन्न ज्ञान कैसा है? इससे भिन्न ज्ञान को तो हम ज्ञान नहीं कहते हैं, इनके बिना तो वह अज्ञान ही है और सम्यक्त्व व शील हो, वह जिनागम से होते हैं। वहाँ जिसके द्वारा सम्यक्त्व शील हुए और उसकी भक्ति न हो तो सम्यक्त्व कैसे कहा जावे, जिसके वचन द्वारा यह प्राप्त किया जाता है, उसकी भक्ति हो तब जानें कि इसके श्रद्धा हुई और जब सम्यक्त्व हो, तब विषयों से विरक्त होय ही हो, यदि विरक्त न हो तो संसार और मोक्ष का स्वरूप क्या जाना? इस प्रकार सम्यक्त्व शील होने पर ज्ञान सम्यक्ज्ञान नाम पाता है। इस प्रकार इस सम्यक्त्व शील के संबंध से ज्ञान की तथा शास्त्र की महिमा है। ऐसे यह जिनागम है, सो संसार से निवृत्ति करके

मोक्ष प्राप्त करानेवाला है, यह जयवंत हो। यह सम्यक्त्व सहित ज्ञान की महिमा है, वही अंतमंगल जानना ।।४०।।

इस प्रकार श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत शीलपाहुड ग्रंथ समाप्त हुआ।

इसका संक्षेप तो कहते आये कि शील नाम स्वभाव का है। आत्मा का स्वभाव शुद्ध ज्ञान दर्शनमयी चेतना स्वरूप है, वह अनादि कर्म के संयोग से विभावरूप परिणमता है। इसके विशेष मिथ्यात्व कषाय आदि अनेक हैं, इनको राग-द्वेष-मोह भी कहते हैं, इनके भेद संक्षेप से चौरासी लाख किये हैं, विस्तार से असंख्यात अनन्त होते हैं, इनको कुशील कहते हैं। इनके अभावरूप संक्षेप से चौरासी लाख उत्तरगुण हैं, इन्हें शील कहते हैं, यह तो सामान्य परद्रव्य के संबंध की अपेक्षा शील-कुशील का अर्थ है और प्रसिद्ध व्यवहार की अपेक्षा स्त्री के संग की अपेक्षा कुशील के अठारह हजार भेद कहे हैं, इनका अभाव शील के अठारह हजार भेद हैं, इनको जिनागम से जानकर पालना। लोक में भी शील की महिमा प्रसिद्ध है, जो पालते हैं, वे स्वर्ग-मोक्ष के सुख पाते हैं उनको हमारा नमस्कार है वे हमें भी शील की प्राप्ति करावें, यह प्रार्थना है।

(छप्पय)

आन वस्तु के संग राचि जिनभाव भंग करि।
वरतै ताहि कुशीलभाव भाखे कुरंग धरि।।
ताहि तजैं मुनिराय पाय निज शुद्धरूप जल।
धोय कर्मरज होय सिद्ध पावै सुख अविचल।।
यह निश्चय शील सुब्रह्ममय व्यवहारै तिय तज नमै।
जो पालै सबविधि तिनि नमूं पाऊँ जिन भव न जनम मैं।।१।।

(दोहा)

नमूं पंचपद ब्रह्ममय मंगलरूप अनूप।
उत्तम शरण सदा लहूं फिरि न परूं भवकूप।।२।।

इति श्रीकुन्दकुन्दाचार्यस्वामि प्रणीत शीलप्राभृत की जयपुर निवासी
पण्डित जयचन्द्र छाबड़ा कृत देशभाषामय वचनिका का
हिन्दी भाषानुवाद समाप्त।।८।।

गाथा-४० पर प्रवचन

आगे, ग्रन्थ को पूर्ण करते हैं, वहाँ ऐसे कहते हैं कि ज्ञान से सर्व सिद्धि है... लो! ज्ञान से सर्वसिद्धि। **यह सर्वजन प्रसिद्ध है, वह ज्ञान तो ऐसा हो उसको कहते हैं :-** अब देखो! अन्तिम गाथा है न!

अरहंते सुहभत्ती सम्मत्तं दंसणेण सुविसुद्धं।
सीलं विसयविरागो णाणं पुण केरिसं भणियं ।।४०।।

सर्वज्ञ परमात्मा अरिहन्त के विषय में भली भक्ति। '**सुहभत्ती**' है न? कल्पना की नहीं। अन्दर बराबर... इष्टता प्रभु के प्रति। व्यवहार है न। ऐसी भक्ति आये बिना नहीं रहती। उसे व्यवहार समकित कहते हैं। अरिहन्त देव, वे देव हैं। उनके वचन के प्रति प्रतीति करके भक्ति करना, वह व्यवहार समकित कहा जाता है।

वह कैसा है? सम्यग्दर्शन से विशुद्ध है तत्त्वार्थों का निश्चय-व्यवहारस्वरूप... पश्चात्? '**दंसणेण सुविसुद्धं**' है न? यह निश्चय समकित कहा वहाँ। '**अरहंते सुहभत्ती सम्मत्तं दंसणेण सुविसुद्धं**' अन्तर सम्यग्दर्शन से स्वस्वरूप के अनुभव की प्रतीति। भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध ऐसे आनन्द के भानसहित के ज्ञान में प्रतीति, वह निश्चय समकित है। निश्चय हो तो अरिहन्त की भक्ति को व्यवहार समकित कहा जाता है। दोनों होते हैं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है।

सम्यग्दर्शन से विशुद्ध है तत्त्वार्थों का निश्चय-व्यवहारस्वरूप श्रद्धान... दोनों, ऐसा। निश्चय भी आत्मा का सम्यग्दर्शन स्वभाव और व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प राग। दोनों में जिसमें बराबर हो, विरोध हो नहीं। निश्चय समकित हो, उसे अरिहन्त के देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का विकल्प होता है; कुगुरु-कुशास्त्र का विकल्प हो, ऐसा नहीं। इसलिए उसे व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया? अरिहन्त सर्वज्ञ परमात्मा ने मार्ग कहा। इससे उनकी भक्ति का राग और रागरहित स्वरूप की प्रतीति का अनुभव, यह दो होकर निश्चय और व्यवहार समकित कहा जाता है। समझ में आया?

बाह्य जिनमुद्रा नग्न दिगम्बररूप का धारण... लो! पहले से शुरु किया है न? दर्शन अर्थात्। जिनमुद्रा नग्न दिगम्बररूप हो। मुनि की दशा अनादि की, वीतरागमार्ग में परमेश्वर के पंथ में एकदम माता से जन्मा, ऐसी नग्नदशा होती है। समझ में आया? **नग्न दिगम्बररूप का धारण तथा उसका श्रद्धान ऐसा दर्शन से विशुद्ध...** लो! ऐसी श्रद्धा। मुनि तो नग्न होते हैं। अन्तर तीन कषाय का नाश होता है, ऐसे मुनि को दर्शन कहा गया है। ऐसे दर्शन की श्रद्धा। समझ में आया? **उसका श्रद्धान ऐसा दर्शन से विशुद्ध...** आया था न? पहले बहुत आ गया।

मुमुक्षु : दर्शनपाहुड़ में।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाहुड़ में आ गया है।

जैनदर्शन में अनादि वीतराग मार्ग में दिगम्बरदशा थी। वीतराग मार्ग में यह मार्ग अनादि का चला आता है। यह बीच में भ्रमणा खड़ी की और यह वस्त्र-पात्रसहित मुनि मनाते हैं, मानते हैं, वे सब वीतरागमार्ग से विरुद्ध-विरुद्ध हैं। समझ में आया? पक्ष नहीं होगा यह? वस्तु का स्वरूप ऐसा है। ऐई! प्रकाशदासजी! वस्तु का परिचय ऐसा है। '**दंसणेण सुविसुद्धं**' है न? अर्थात् वह दर्शन डाला। निश्चय सम्यग्दर्शन डाला और दंसण अर्थात् मुनि। मुनि का मार्ग जो नग्नदशा, अन्तर में (तीन कषाय का अभाव), वह जैनदर्शन है। ऐसे जैनदर्शन की श्रद्धा। समझ में आया? दूसरे वस्त्र-पात्रसहित मुनि माने, वह जैनदर्शन ही नहीं है। वह वीतराग मार्ग ही नहीं है। कल्पित मार्ग खड़ा किया हुआ है। समझ में आया?

क्या कहा? **बाह्य जिनमुद्रा नग्न दिगम्बरस्वरूप धारण तथा उसका श्रद्धान...** ऐसा वापस। **ऐसा दर्शन से विशुद्ध...** है। ऐसे दर्शन से विशुद्ध, ऐसा। '**दंसणेण सुविसुद्धं**' दूसरा पद। उसमें से अर्थ निकाला। पहले आ गया है। बोधपाहुड़ में आ गया है, दर्शनपाहुड़ में आ गया है। जैनदर्शन उसे कहते हैं, ऐसा कहते हैं। जिसे अन्दर स्वरूप का अनुभव और आनन्द जागृत हुआ हो, तदुपरान्त जिसकी शान्ति और स्थिरता बढ़ गयी हो और बाह्य में जिसकी नग्न दिगम्बरदशा हो, उसे जैनदर्शन कहा जाता है। उससे विरुद्ध, वह जैनदर्शन नहीं; अन्य दर्शन है। पोपटभाई! गजब!

बाह्य जिनमुद्रा नग्न दिगम्बरस्वरूप का धारण तथा उसका श्रद्धान ऐसा दर्शन से विशुद्ध... ऐसी भाषा है न? **अतिचार रहित निर्मल है, ऐसा तो अरहन्त भक्तिरूप सम्यक्त्व है,...** देखो! अरिहन्त की भक्ति का यह व्यवहार समकित ऐसा तो। समझ में आया? जिसे व्यवहारश्रद्धा का ठिकाना नहीं, उसे निश्चय समकित नहीं हो सकता। कहो, बालचन्दजी! क्या है यह? शून्य रखा। जिसकी नग्न दिगम्बरदशा और जिसकी अन्तर में तीन कषाय के अभाव की वीतरागता, उसे जैनदर्शन और उसे मुनिपना कहा जाता है। उसे श्रद्धा निरतिचार, वह अरिहन्त की भक्ति है। व्यवहार समकित की बात है न। समझ में आया? भारी गड़बड़ कर डाली न।

मुमुक्षु : उसका राग न आवे तो करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु आता है। नहीं करना क्या? न आवे तो अन्दर स्थिर हो जाये। ऐई! मावजीभाई! तो अन्दर स्थिर हो जाये वीतरागता में शान्त... शान्त।

मुमुक्षु : दोनों न आवे तो क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों न आवे तो? पानी छानकर पीना। ऐसा आवे तो फिर। आहाहा!

यहाँ तो आचार्य इस शील में अन्तिम गाथा में ऐसा कहना चाहते हैं कि वास्तव में शील क्या? कि आत्मा का जो शुद्ध स्वभाव है, वह शील है परन्तु उसमें से प्रगट होता निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह भी शील है। और उस शील में सम्यग्दर्शन उसे कहते हैं—व्यवहार, व्यवहारसम्यग्दर्शन, वह व्यवहारशील है। निश्चय स्वभाव का आश्रय होकर निश्चय समकित (हो), वह निश्चयशील है। व्यवहारशील में भी जिसकी दिगम्बर मुद्रा हो, अनादि-अनन्त जैनमार्ग में थी, नग्नपना था। और अकेला नग्नपना नहीं। अन्तर में तीन कषाय का नाश होकर वीतरागता की मुद्रा प्रगट हुई। ऐसी अन्तर जिनमुद्रा और बाहर जिनमुद्रा। ऐसे की श्रद्धा करना, वह जैनदर्शन व्यवहार से कहा जाता है। उसकी श्रद्धा को व्यवहार समकित कहा जाता है। उसने अरिहन्त की भक्ति की। ऐसा न माने और दूसरे प्रकार से करे तो अरिहन्त की भक्ति नहीं करता। ऐई! ऐसा कहते हैं, देखो! वस्त्रसहित हो, उसे साधु माने, साध्वी माने, वह अरिहन्त की भक्ति

नहीं है। अरिहन्त की आसातना करता है। अरिहन्त का विरोध करनेवाला है, ऐसा कहते हैं। प्रवीणभाई! गजब!

श्रद्धान ऐसा दर्शन से विशुद्ध अतिचार रहित... ऐसा। '**सुविसुद्धं**' है न दूसरा पद? **ऐसा तो अरहन्त भक्तिरूप सम्यक्त्व है,...** लो! ऐसा तो अरिहन्त की भक्ति का समकित शुभराग, विकल्प इस प्रकार होवे तो कहा जाता है। और इसके अतिरिक्त दूसरे कुशीलरूप वस्त्रपात्रसहित को मुनि माने, उसे मुनिपना है, ऐसा माने, कहे, वे सब अरिहन्त की व्यवहारभक्ति से भी विरोधी है। समझ में आया? उसे निश्चयभक्ति तो नहीं होती।

विषयों से विरक्त होना शील है... ऐसा सम्यक् निश्चय स्व के आश्रय से और व्यवहार अरिहन्त की भक्ति अर्थात् ऐसे दर्शन की प्रतीति। यहाँ तो मुनिपने की दशा को ही जैनदर्शन कहा है। क्योंकि वीतरागता प्रगटी है, इसलिए जैनदर्शन और वीतरागता प्रगटी है, इसलिए बाह्य वेश में भी नग्नदशा-परिग्रह से रहित है, इसलिए वह भी व्यवहार से जैनदर्शन का वेश कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? अकेला नग्नपना ले, वह कहीं जिनमुद्रा नहीं है। अन्तर में जिनमुद्रा वीतरागता प्रगटी हो सम्यग्दर्शन, राग का भी कर्ता नहीं, देह की क्रिया का कर्ता नहीं और उसे स्वरूप की स्थिरता विशेष उग्र बढ़ गयी हो, इसलिए उसे वस्त्र-पात्र लेने की वृत्ति भी नहीं होती। ऐसी नग्नदशा को व्यवहार कहते हैं और अन्तर दशा रागरहित दशा को निश्चय कहते हैं। डाला वहाँ देखो न मेल करके। '**अरहंते सुहभत्ती सम्मत्तं दंसणेण सुविसुद्धं**' ऐसा। ऐसे दर्शन से सुविशुद्ध हो। समझ में आया?

अनादि का वीतरागमार्ग तो नग्न दिगम्बर था। पश्चात् भगवान के बाद बहुत वर्ष में दुष्काल पड़ा और उसमें से यह श्वेताम्बर पंथ निकला। यह जैनमार्ग नहीं है, ऐसा यहाँ कहना है। उसकी श्रद्धा है, उसे अरिहन्त की भक्ति भी नहीं है, ऐसा कहते हैं। स्थानकवासी तो श्वेताम्बर में से अभी निकले हैं। यह तो पाँच सौ वर्ष हुए। उसमें से निकले हैं। उनकी श्रद्धा भी अरिहन्त की भक्ति नहीं है। व्यवहार, हों! निश्चय तो आत्मा की भक्ति होवे तो व्यवहारभक्ति कहलाती है। आहाहा! परन्तु गजब। ऐई! क्या है यह?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं? हिन्दी है। अन्तिम गाथा ४०। उसमें इतना लेखन नहीं है। एकाध शब्द... समझ में आया?

एक तो अरिहन्त में भली भक्ति, ऐसा लिखा है न? वह समकित। **वह कैसा है? सम्यग्दर्शन से विशुद्ध है...** ऐसा। तत्त्वार्थ की श्रद्धा निश्चय भी सच्ची है और व्यवहार भी सच्ची श्रद्धा है। अब व्यवहार की श्रद्धा की निर्मलता बतलाते हैं। **बाह्य जिनमुद्रा नग्न दिगम्बररूप धारण...** आहाहा! एक वस्त्र का भी तन्तु नहीं। शास्त्र में तो ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, एक वस्त्र का धागा रखकर मुनि माने, मनावे और मानते हुए को भला जाने, वे तीनों निगोदगामी हैं। तीनों निगोद के पंथ में पड़े हैं। अरे! गजब! ककड़ी के चोर को फाँसी की सजा नहीं है न यह? नहीं। महातत्त्व का महा चोर है। अनन्त अरिहन्तों, अनन्त केवलियों, अनन्त सन्तों ने जो मार्ग कहा, उससे विरुद्ध है। इसलिए वह जिनमुद्रा अथवा जैनदर्शन ही नहीं है। जैनदर्शन तो दिगम्बर मुनि हो, अट्ठाईस मूलगुण हो, वह भी व्यवहार। अन्तर के आनन्द के मूलगुण हों, आनन्द, ज्ञान, दर्शन आदि – ऐसे सहित को जिनमुद्रा कहा जाता है। परन्तु वह पर है न? इसलिए उसकी श्रद्धा, वह व्यवहार समकित, ऐसा कहना है। क्या कहा? सामने मुनि है, वीतरागी भले हो और नग्न (हो) परन्तु उनकी श्रद्धा, वह तो व्यवहार श्रद्धा हुई। परद्रव्य की श्रद्धा है न वह तो? समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई!

विषयों से विरक्त होना शील है और ज्ञान भी यही है... स्पष्टीकरण करेंगे, हों! भावार्थ में। और ज्ञान दूसरा कौन सा? कहते हैं। ज्ञान तो आत्मा आनन्दस्वरूप का अनुभव करे और स्वसंवेदन हो, उसे ज्ञान कहते हैं। ज्ञान और दूसरा क्या ज्ञान था? शास्त्र का पठन और सब, कहते हैं वह ज्ञान नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **और ज्ञान भी यही है तथा इससे भिन्न ज्ञान कैसा कहा है?** है न? '**णाणं पुण केरिसं भणियं**' जिसका परविषय बदला नहीं और स्वविषय आत्मा हुआ नहीं, उसे ज्ञान कहें कैसे? ऐसा कहते हैं। स्वविषय समझ में आता है? राग, विकल्प, शरीर आदि देव-गुरु-शास्त्र वे सब पर हैं। उस पर का विषय जिसका है, वह तो अनादि का है। वह

परविषय बदलकर स्वविषय हुआ नहीं। ऐई! नवनीतभाई! कठिन मार्ग। उसे ज्ञान कैसे कहें? देव-गुरु-शास्त्र का ज्ञान। समझ में आया? अनेक प्रकार की कला बाहर का ज्ञान, कथा का ज्ञान,... बाहर का ज्ञान, उसे ज्ञान कैसे कहें? कहते हैं। जिस ज्ञान ने विषय बदला नहीं, उसे ज्ञान कैसे कहें? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? चेतनजी!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : जात्यान्तर है। यह शुद्धनय का पक्ष। आहाहा! भारी गजब बात करते हैं। पाठ है, हों! '**सीलंविसयविरागो णाणं पुण केरिसं भणियं**' जिसमें आत्मा ध्येय बनकर आत्मा का ज्ञान हुआ नहीं। और पर से विरक्त नहीं, विकल्प से विरक्त नहीं। उसे ज्ञान कैसे कहें? ऐसा कहते हैं। ऐई! प्रकाशदासजी! बहुत ऐसे सच्चे विद्वान हैं और अमुक हैं, वे सब पानी भरते हैं इसमें। नहीं? आहाहा! कठिन मार्ग, भाई!

इससे भिन्न ज्ञान कैसा कहा है? सम्यक्त्व शील बिना तो ज्ञान मिथ्याज्ञानरूप अज्ञान है। देखो! कहते हैं कि स्वद्रव्यस्वरूप भगवान आत्मा के अभेदपने का भान नहीं, ज्ञान हुआ नहीं, ऐसे समकित के शील बिना, वह ज्ञान सब मिथ्याज्ञान कहा जाता है। समझ में आया?

भावार्थ :-..... देखो! यह स्पष्टीकरण करेंगे, हों! पण्डितजी स्वयं स्पष्टीकरण करेंगे। **यह सब मतों में प्रसिद्ध है कि ज्ञान से सर्वसिद्धि है...** 'जहाँ लगी आत्मतत्त्व चिह्नयो नहीं...' आता है उसमें? बात तो सब करते हैं। परन्तु वास्तविक आत्मा, वास्तविक ज्ञान आत्मा का क्या है, इस बात की खबर नहीं। समझ में आया? आत्मा तो सब बहुत करते हैं, भाई! आत्मा का ज्ञान चाहिए।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...मतवाला कहे, लो। परन्तु वह आत्मा ऐसा नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ आत्मा, जिनवचन में आया हुआ आत्मा और उस आत्मा में अन्तर का एकाग्र होना, उसे ज्ञान कहा जाता है। ज्ञान का ज्ञान, उसे ज्ञान कहते हैं। आत्मा का ज्ञान, उसे ज्ञान कहते हैं। थोड़ी-थोड़ी भाषा समझ में आती है। हिन्दी है न।

ज्ञान से सर्वसिद्धि है और ज्ञान शास्त्रों से होता है। ज्ञान हो, उसे शास्त्र का निमित्त है न उसमें? **आचार्य कहते हैं कि-हम तो ज्ञान उसको कहते हैं जो सम्यक्त्व और शीलसहित हो,...** आहाहा! आचार्य कहते हैं, हम तो उसे ज्ञान कहते हैं कि समकित और शीलसहित हो। स्वरूप का अनुभव और अनन्तानुबन्धी के अभावरूपी शीलभाव—ऐसा हो, उसे हम ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? बड़े विद्वान बड़ा नाम धरावे, हजारों शास्त्र बनावे, पाँच-पाँच लाख श्लोक बनावे। वह ज्ञान नहीं, वह तो अज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? लाखों लोगों में जिसकी वाणी की छाप पड़ती हो, बड़ी सभा भराती हो, वह ज्ञान नहीं है। आहाहा! स्वरूपचन्दभाई! यह तो स्वरूप का ज्ञान, उसे ज्ञान कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहा हुआ आत्मा, वह उसका स्वरूप। दूसरे में आत्मा कहा, उसे जाने बिना कल्पना से कहा है। समझ में आया? ऐसा जो आत्मा उसका जो ज्ञान। सम्यक् शीलसहित हो तो ज्ञान कहते हैं। समकित अर्थात् आत्मा अन्तर भरा हो, जिस ज्ञान में स्वरूप का ज्ञान हो, जिस ज्ञान में शीलपना आया हो। द्रव्य का आश्रय ले तो उसे शीलपना आवे। परसन्मुख के आश्रय में शीलपना नहीं आता। परसन्मुख के आश्रय में शुभभाव और कुशीलपना है, वह तो। ओहोहो! समझ में आया?

यह तो सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की ओर का ज्ञान, वह शुभविकल्प का ज्ञान है। वह आत्मा का ज्ञान नहीं। समझ में आया? वह शील नहीं। शील तो जिसमें आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसी दशा शामिल हो, उसे समकित सहित के शील को ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! गजब काम, भाई! कठिन पड़े, इसलिए लोग फिर दूसरे रास्ते चलते हैं। अनादि से चलते हैं दूसरे रास्ते। उसमें क्या है? आहाहा! समझ में आया?

जिनमार्ग में कहा है,... जिनमार्ग में कहा है,... देखो भाषा। क्या कहते हैं? वीतराग के आगम में ऐसा कहा है कि चैतन्यस्वरूप भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसका आश्रय करके उसके आश्रय से जो सम्यक्त्व और शील होता है, उसे ज्ञान कहा जाता है। जिनागम में ऐसा कहा है। आहाहा! देखो न एक बात। जिनागम में शास्त्र का पठन, देव-गुरु-शास्त्र का ज्ञान, उसे ज्ञान जिनागम में (कहा है)। क्योंकि जिनागम तो

वीतरागपने को बतलाता है। क्या कहा? क्या कहते हैं यह? जिनागम वीतरागभाव को बतलाता है। तो जहाँ वीतरागी आत्मा स्वभाव है, निर्विकल्प अकषाय – ऐसे स्वभाव के सन्मुख का सम्यग्दर्शन और शील प्रगट नहीं हुआ, उसे ज्ञान नहीं कहते। आहाहा! अन्तिम योगफल डाला शील का। आहाहा!

जिनागम में यह कहा है अर्थात्? वीतराग परमेश्वर की वाणी में ऐसा आया है कि हमारी श्रद्धा, वाणी की श्रद्धा को हम ज्ञान नहीं कहते। समझ में आया? वीतराग मार्ग के जिनागम में तो जिन ऐसा जो आत्मा का वीतरागी स्वभाव उसका अन्तर्मुख होकर सम्यक्त्व और ज्ञान हो, उसे जिनागम में समकितसहित शील को ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! बात यह भी गजब की है न! कैसी संक्षिप्त में डाल दी है!

ऐसा जिनमार्ग में कहा है, इससे भिन्न ज्ञान कैसा है? क्या कहते हैं? समझ में आया? भगवान अनन्त आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु, उसका अन्तर स्वसंवेदन, स्व का वेदन होकर ज्ञान हुआ नहीं, उसे हम ज्ञान कैसे कहें? आहाहा! देखो! यह वीतराग की कला और वीतराग की क्रीड़ा। समझ में आया? **इससे भिन्न ज्ञान कैसा है? इससे भिन्न ज्ञान को तो हम ज्ञान नहीं कहते हैं, इनके बिना तो वह अज्ञान ही है...** आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का ज्ञान, अरिहन्त सिद्धों का ज्ञान, साक्षात् परमात्मा तीर्थंकर समवसरण में विराजते हैं, उनकी श्रद्धा का ज्ञान, उसे भी हम ज्ञान नहीं कहते। ऐई! स्वरूपचन्दभाई! ऐसा है यह। भारी परमात्मा। स्वयं ही वीतरागमूर्ति आत्मा है, कहते हैं। और उस वीतरागमूर्ति का आश्रय लेकर जो श्रद्धासहित-समकितसहित स्व का ज्ञान हुआ, उसे हम ज्ञान कहते हैं। आहाहा!

जैसे वह कषाय की मन्दता की क्रिया, पाँच महाव्रत की, अमुक कर करके हमारे चारित्र है, (ऐसा मानता है), वह अत्यन्त मिथ्यादृष्टि है। वह वस्तु नहीं है। उसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि शास्त्र का ज्ञान भी, देव-गुरु की श्रद्धा का, अरिहन्त की श्रद्धा ऐसी कि सिर काट डालो तो माने नहीं दूसरे को। परन्तु वह ज्ञान नहीं है। ज्ञान तो ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा स्वयं स्वरूप, उसका अन्तर्मुख होकर ज्ञान आवे, उसे ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया? मार्ग कठिन, भाई! वस्तु तो जैसी है, वैसी है। उसे

कठिन कहना वह भी जरा... वह तो है वैसी है। समझ में आया? अनन्त काल का अभ्यास नहीं, श्रवण में यह मार्ग मिले नहीं। दूसरे रास्ते चढ़ गये और मार्ग में हैं, ऐसा मानते हैं। भगवान भूल में है, हों! और जो अनादि की भूल, वह की वह भूल है।

यहाँ तो परमेश्वर ऐसा कहते हैं, हमारे सम्प्रदाय में जन्म लिया—जैन में और जैन अरिहन्त सर्वज्ञ, दिगम्बर मुनि ऐसे होते हैं, उन्हें मुनि कहते हैं, केवली ऐसे होते हैं और सिद्ध ऐसे होते हैं, ऐसी जो श्रद्धा परसन्मुख की, उसकी श्रद्धा के ज्ञान को ज्ञान नहीं कहते। कठिन पड़े यह श्रीमद् में। वे कहे, श्रीमद् की श्रद्धा करो। यहाँ कहे कि तीन लोक का नाथ मैं परद्रव्य हूँ, ऐई! स्वरूपचन्दभाई! आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग में बात होती है। साक्षात् मैं विराजता होऊँ परन्तु यदि मेरी श्रद्धा और उसका ज्ञान, तू सम्मिलित हुए बिना ज्ञान हम कहते नहीं। आहाहा! गजब बात है! परमेश्वर की वीतरागता, उनकी निःस्पृहता, उनकी वस्तु की स्थिति का ज्ञान करने में जरा भी संकोच नहीं कि यह मेरा सम्प्रदाय नहीं रहे तो। ऐई! नवरंगभाई! आहाहा!

बापू! तेरा आत्मा... आहाहा! यह ज्ञानजल से आनन्द से भरा है न, प्रभु। उसमें से जो झरना आवे, वह सम्यक् श्रद्धा, सम्यग्ज्ञान, स्वसंवेदन, उसे भगवान ने ज्ञान कहा है। आहाहा! पुस्तक है वहाँ? छोटाभाई! नहीं? ठीक। परन्तु यह... यह बहुत सरस बात है। पूरा जो शील का न्याय कहना था, वह सब यहाँ समाहित हो जाता है। आहाहा!

आत्मा अपना शुद्ध चैतन्यस्वभाव पर की अपेक्षा और पर की दिशा और दशारहित, ऐसा जो आत्मा का अन्तर स्वभाव... आहाहा! उसके सन्मुख होकर जो अन्तर में से ज्ञान का प्रवाह आवे, उसे ज्ञान कहते हैं। भले थोड़ा पढ़ा हो और थोड़ा आता हो। पण्डितजी! गजब बात, भाई!

हम ज्ञान नहीं कहते हैं, इनके बिना तो वह अज्ञान ही है और सम्यक्त्व व शील हो, वह जिनागम से होते हैं। स्वभाव के आश्रय का समकित और उसमें शील अर्थात् अनन्तानुबन्धी का अभाव, ऐसा समकितरूपी शील जिनागम से होता है। वीतराग की वाणी में वह आता है। ऐसी वाणी अन्यत्र नहीं हो सकती। आहाहा! निमित्तरूप की बात है, हों! नहीं तो जिनागम की श्रद्धा, वह भी पर की है। परन्तु वह स्व की श्रद्धा कराती

है, ऐसा जिनागम में है। ऐई ! वजुभाई ! **जिनागम से होते हैं। वहाँ जिसके द्वारा सम्यक्त्व शील हुए और उसकी भक्ति न हो तो सम्यक्त्व कैसे कहा जावे,...** ऐसा कहते हैं। जिस जिनागम में, वीतरागवाणी में ऐसा स्वरूप कहा है और उस वीतराग की वाणी की भक्ति और बहुमान न हो तो समकित कैसे कहें ? तो निश्चय समकित भी उसे है नहीं। समझ में आया ? ऐसा सिद्ध करते हैं। पाठ है न वह '**अरहंते सुहभत्ती**' पाठ है न ? यह सिद्ध करते हैं।

श्रीमद् में आता है, ज्ञानी की भक्ति बिना ज्ञान नहीं होता। इसका अर्थ कि ज्ञान होता है स्वयं से, परन्तु उसे ज्ञानी की भक्ति का बहुमान का राग आये बिना नहीं रहता। इतनी बात है। ऐसा है, चन्द्रकान्तभाई ! ऐसा मार्ग है। वहाँ वह रुपये-बुपये के ढ़ेर हों, ऐसा यह मार्ग नहीं। वहाँ तो उस पुण्य के रजकण हों न, ढ़ेर हो बाहर से। धूल का। कहा, शास्त्र में एक जगह कि जो लक्ष्मी सब इकट्ठी की न, ढ़ेर करना मरते हुए। और माँगना यह तेरे लिये यह सब किया, अब मुझे कुछ शरण दे। ऐई ! जादवजीभाई ! श्वेताम्बर में आता है दूसरे ग्रन्थ में। लक्ष्मी का ढ़ेर करके, अरे ! मैंने तेरे लिये जिन्दगी गँवाई, हों ! अब मेरे देह का अन्त आया है। तो अब कुछ शरण ही (देना)। जड़ तो बोले नहीं। तेरी लक्ष्मी अन्दर है, उसकी शरण ले। वह तो जड़ बोले नहीं। इसका अर्थ हुआ कि तू मेरे ऊपर बैठना रहने दे। अन्दर में जा। हम अनबोला हैं। समझ में आया ? आहाहा !

वहाँ जिसके द्वारा सम्यक्त्व शील हुए और उसकी भक्ति न हो तो सम्यक्त्व कैसे कहा जावे, जिसके वचन द्वारा यह प्राप्त किया जाता है, उसकी भक्ति हो... समझ में आया ? परन्तु वचन में यह वीतरागता ऐसी होती है। आहाहा ! वाह, प्रभु वाह ! जिसके वचन में वीतरागता स्व का आश्रय लेने की बात करे, उसकी भक्ति हुए बिना रहे नहीं। इतनी बात है। **तब जाने कि इसके श्रद्धा हुई...** जब ऐसी निश्चय की श्रद्धा हो और उसके साथ जिनवचन की श्रद्धा हो। **जिसके वचन द्वारा यह प्राप्त किया जाता है, उसकी भक्ति हो, तब जाने कि इसके श्रद्धा हुई और जब सम्यक्त्व हो, तब विषयों से विरक्त होय ही हो,...** कारण कि राग में प्रेम छूट गया, राग में सुखबुद्धि छूट गयी है,

इसलिए उसे आगे बढ़कर विषय की आसक्ति भी छूट जाती है। सुख मुझमें है, विषय में नहीं, ऐसा जिसे स्वआश्रय से भान हुआ, उसे पराश्रय का राग थोड़ा रहा, वह छूट जायेगा, उसे छोड़कर स्थिर होगा।

यदि विरक्त न हो तो संसार और मोक्ष का स्वरूप क्या जाना? यदि पर के विकल्प से छूटकर स्वसन्मुख न आवे और अन्तर में स्थिर न हो तो वह संसार-मोक्ष का स्वरूप कहाँ जाना है? समझ में आया? **इस प्रकार सम्यक्त्व शील होने पर ज्ञान सम्यग्ज्ञान नाम पाता है।** लो! ऐसा समकित शील हो, (तब) ज्ञान सम्यक् नाम पाता है। **इस प्रकार इस सम्यक्त्व शील के सम्बन्ध से ज्ञान की तथा शास्त्र की महिमा है।** यह ज्ञान की और शास्त्र की महिमा है। दोनों। **ऐसे यह जिनागम है, सो संसार में निवृत्ति करके मोक्ष प्राप्त करनेवाला है, वह जयवन्त हो। यह सम्यक्त्वसहित ज्ञान की महिमा है, वही अन्तमंगल जानना।** लो! अन्तिम थोड़ा भाग है। यह कल होगा और नियमसार शुरु होगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१९७, गाथा-४०, शनिवार, फाल्गुन शुक्ल २, दिनांक २७-०२-१९७१

पाठ में है न, शील पाहुड़? **शील नाम स्वभाव का है।** यह अधिकार पूरा हो गया है, परन्तु यह पण्डितजी इसका थोड़ा लिखते हैं। **आत्मा का स्वभाव शुद्ध ज्ञान-दर्शनमयी चेतनास्वरूप है।** भगवान आत्मा तो ज्ञान-दर्शन की चेतनामय अभेद है, उसे आत्मा कहते हैं। **वह अनादि कर्म के-संयोग से विभावरूप परिणमता है।** है तो वह ज्ञान-दर्शन चेतनामय स्वभाव वस्तु आत्मा, परन्तु अनादि कर्म के संग से विकाररूप से-दोषरूप से होता है। उनके भेद बहुत हैं। **उनके विशेष मिथ्यात्व-कषाय आदि अनेक है, उन्हें राग-द्वेष-मोह भी कहते हैं। उनके संक्षेप चौरासी लाख भेद हैं।** उस विभाव के चौरासी लाख भेद हैं। कुशील, कुशील। **विस्तार से असंख्यात अनन्त होते हैं। इनको कुशील कहते हैं।**

भगवान आत्मा जानन-देखन-आनन्द, इससे उल्टे जितने विकल्प-भेद हैं, वे सब कुशील कहे जाते हैं। **इनके अभावरूप संक्षेप से चौरासी लाख उत्तरगुण हैं...** विकल्प दु:खरूप हैं। इन सब विभाव का अभाव करके, स्वरूप चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा की अस्ति का विकास करके, अनुभव करके प्रगट दशा हो, उसे चौरासी लाख उत्तरगुण कहने में आता है। विस्तार अनन्त... **यह तो सामान्य परद्रव्य या सम्बन्ध की अपेक्षा से शील-कुशील का अर्थ है। प्रसिद्ध व्यवहार स्त्री के संग की अपेक्षा से कुशील के अठारह हजार भेद कहे हैं...** यह सब बात आ गयी है, यह शील और कुशील का अर्थ। **इनका अभाव, शील के अठारह हजार भेद हैं, वे जिनमार्ग के जानकर पालना। लोक में भी शील की महिमा प्रसिद्ध है, जो पालते हैं, वे स्वर्ग-मोक्ष का सुख पाते हैं। उन्हें हमारा नमस्कार। वे हमें भी शील की प्राप्ति करो।** हमारा आत्मा आनन्द और ज्ञान-दर्शन का पिण्ड प्रभु है; उसकी ज्ञाता-दृष्टा और आनन्द की दशा हमें प्रगट हो, यह हमारा स्वरूप है और यह हमारा धर्म है। समझ में आया?

अन्तर बीच में दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम आते हैं, वह कुशील है, सुशील नहीं; सुशील तो आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञान और दर्शन की चेतनामय अभेदस्वरूप,

उसकी एकता से प्रगटी हुई वीतरागी निर्मलदशा, उसे शील और सुशील तथा उसे धर्म कहते हैं। **अन्य वस्तु के संगराची जिनभाव भंग करि** अन्य आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप को छोड़कर अन्य वस्तु मुझसे निजभाव भंग करि, अपना वीतरागभाव है, उसे भंग करके राग-द्वेष उत्पन्न करता है, वह सब कुशील और अधर्म तथा दु:खरूप है। **वर्ते ताहिं कुशील भाव भाखे कुरंग भरी।** वह राग का रंग पुण्य-पाप के विकल्प का रंग वह कुरंग है। आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, उसका अन्तर ज्ञान और आनन्द का रंग लगने से ज्ञान और आनन्द की दशा प्रगट हो, उसे भगवान जैनधर्म कहते हैं। सूक्ष्म बात है। बण्डीजी!

ताहिं तजे मुनिराज शुद्ध जल आनन्दस्वरूप भगवान ऐसे चैतन्य आनन्द के जल को धर्मी जीव अन्तर्मुख होकर पाकर शुद्धरूपी जल, **धोयी कर्मरज** - उसने कर्म की रज धो डाली है। वह सिद्धि को पाता है और अविचल सुख को पाता है। यह **निश्चय शील शुद्ध...** आत्मा का आनन्द और ज्ञान चैतन्यस्वरूप, उसकी एकाग्रता का ब्रह्मचर्य, वह निश्चय ब्रह्मचर्य है। वह निश्चय शील, **व्यवहार रे तिय तजि...** व्यवहार से स्त्री का त्याग वह व्यवहार कहलाता है। **जो पावे शिव विधि।** जिसे भव को-जन्म नहीं, ऐसे धर्मात्मा को, जिनेन्द्र को मैं नमन करता हूँ।

इन **नमूँ पंच पद ब्रह्ममय।** इससे मांगलिक करते हैं। **नमूँ पंच पद ब्रह्ममय,** पाँच पद ब्रह्म आनन्दमय है। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, वह तो अतीन्द्रिय आनन्दमय पाँच पद है। यह बाहर का वेश है, वह कहीं पद नहीं है। ऐसे पंच महाव्रत के अन्दर विकल्प उठते हैं, वह कहीं निजपद नहीं है, वह आचार्य, उपाध्याय, साधु पद नहीं है। ब्रह्ममय निजपद है। आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, तीर्थंकर सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखा, जाना और कहा—ऐसे आत्मा को आनन्दमय करके प्रगट करते हैं। ऐसे... **मंगलरूप** हैं, मांगलिक हैं। **अनूप** अन्त जिसकी कोई उपमा नहीं '**उत्तम चरण सदा लहूँ**', ऐसे भगवान सन्तों के पाँच परमेष्ठी... **फिरि न परूँ भवकूप** फिर से भव में आऊँ नहीं। ऐसे अधिकार पूरा किया।

●●●